



युग-पुरुष

# वीर सावरकर

(विचारोत्तेजक एवं रोमांचक जीवन गाथा)

अशोक कौशिक

सूर्य-प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

प्रकाशक	सूय प्रकाशन नई मंडक, दिल्ली ११०००६
संस्करण	१६६०
सर्वाधिकार	प्रकाशनाधीन
मुद्रक	एस कुमार प्रिंटिंग सर्विस बाबूराम चौक मोजपुर, दिल्ली ११००५३
मूल्य	१००-००

## भूमिका

क्रान्तिकारियों के मुकुटमणि, स्वतंत्रता सेनानियों के अग्रणी, साहित्याकाश के उज्ज्वल नक्षत्र, सिद्धान्तनिष्ठ श्री विनायक दामोदर सावरकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। साहस, धैर्य, सहनशीलता, वीरता एवं कर्तव्यनिष्ठा के पुत्र सावरकर के जीवन का प्रत्येक क्षण घटनापूर्ण रहा है। सावरकर सोद्देश्य जीवनयापन करने वाला मे सव-श्रेष्ठ ही नहीं अपितु अग्रणी भी हैं। अथवा महाराजा एवं कवि-सम्राट् भर्तृहरि के अनुसार—

परिवर्तिनि ससारं भवः का वा न जायत ।

स जातो यन जातन याति वश समुन्नतिम् ॥ नीतिशतक ॥

‘परिवर्तनशील इस ससार में कौन नहीं जन्मता और कौन नहीं मरता, किन्तु उसका ही जन्म साधक है जिसके जन्म से वश की उन्नति होती हो।’ वश का अभिप्राय सकुचित नहीं है। अर्थात् जिससे जन्म से देश की उन्नति होती हो।

क्रान्तिकारियों एवं साहित्यकारों के गुण हैं—साहस, धैर्य, वीरता, सहनशीलता और कर्तव्यनिष्ठा। ये सभी गुण सावरकर में समाहित थे। इसी कारण वे विश्व के क्रान्तिकारियों के मुकुटमणि बन पाये और इन्हीं गुणों के कारण वे उत्कृष्ट साहित्य निर्माता भी बन पाये।

मात्र एक ‘व्यक्ति’ के कारण यदि किसी विद्वन्मन्त्री की कुर्सी लड़खड़ाई तो वह एक व्यक्ति से वीर सावरकर और प्रधानमन्त्री से फ्रांस के एम. त्रायन, जिसका वणन हमने इस पुस्तक में मथास्थान किया है।

सावरकर के कृत्यों अर्थात् गुणों का बखान कर पाना किसी के लिये भी सहज सम्भव नहीं है। उनके असाधारण व्यक्तित्व और महान् कृतित्व पर यदि कोई आजीवन अपनी लेखनी चलाता रहे तो भी वह कृतकाय हो पायगा, इसमें सन्देह है। ऐसे ही व्यक्ति के लिए सश्रुति के कवि ने कहा है—

असित गिरिसम स्यात् वज्जल सिन्धुपात्रे,

सुरतस्वरक्षां लेखनीं पत्रमूर्ध्वम् ।

लिखति यद् गृहीत्वा शारदा सवकासम्,

तदपि तब गुणानां ईश पार न याति ॥

इसका हिन्दी भावाप है—

सात समुन्दर की मसि करूँ, लेखनी सब बनराय ।

घरती को कागद करूँ, तब गुण लिख्यो न जाय ॥



ऐसे गुणातीत व्यक्ति पर लेखनी उठाना मम सद्गुण सामान्य व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं था। तदपि सावरकर के प्रति अपनी श्रद्धा और निष्ठा से प्रेरित होकर सन्त तुलसीदास की भाँति 'स्वात सुखाय' यह जीवन चरित लिपिबद्ध करने का मैंने प्रयास किया है। श्री सावरकर की अनक कृतियों का पारायण करने के उपरान्त मैंने एक ठूक और कसक-सी उठती थी कि ऐसे नर-पुंगव का जीवन चरित हिंदी के पाठकों के लिए उपलब्ध किया जाना चाहिए। सावरकर के जो जीवन चरित अब तक लिखे गए हैं, उनकी 'ओपेंटिसिटी' अर्थात् आधिकारिकता को चुनौती न देते हुए यह तो कहा ही जा सकता है कि वे सब सवषा अपूर्ण हैं। यहाँ तक कि प्रसिद्ध जीवनी लेखक श्री घनश्याम कोर ने उनकी जो जीवनी लिखी है वह कुछ चिस्तूत तो है, किन्तु पूर्ण वह भी नहीं है। मैंने यह अनुभव किया कि सावरकर की जीवनी लेखकों ने उनके जीवन पर प्रकाश डालने की अपेक्षा उनके विचारों पर अधिक प्रकाश डाला है। विचार और कर्तृत्व का विभेद वे नहीं कर पाये, ऐसी मेरी भावना है। सावरकर के जीवन की घटनाएँ ही इतनी प्रेरणा प्रद हैं कि तभी उनके विचारों की बाह में जाने की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है।

इस प्रसंग में एक अर्थ बात की ओर संकेत कर देना भी समीचीन होगा। सावरकर को सदा ही सरकार का विरोधी सिद्ध करने का यत्न किया गया है, फिर वह सरकार चाहे स्वदेशी हो अथवा विदेशी। किन्तु हमारी दृष्टि में तो सावरकर जनहित कर्ता थे। जनहितकर्ता तो सरकार की आँख की किरकिरी स्वयं ही हो जाता है। संस्कृत के एक सुभाषित में कहा गया है—

जनपदिहितकर्ता त्यज्यत पार्थिवेन ।

'जो व्यक्ति जनता की प्रजा की भलाई करता है, राजा उसका त्याग कर देता है।'

यह परिपाटी तो प्राचीन काल से ही चली आ रही है। सावरकर ने स्वतंत्रता का हित किया इसीलिए पहले अंग्रेज सरकार ने और कालान्तर में स्वतंत्र भारत की भारतीय सरकार ने उन्हें केवल त्याज्य मान कर यथा-सामर्थ्य यातनाएँ ही दीं। स्वतंत्र भारत के दो महान नेता गाँधी और नेहरू तक उनसे सदा द्वेष करते रहे। कुमारसम्भव ने इस विषय पर सुन्दर टिप्पणी की है—

द्रिपन्ति मन्दाश्चरित महात्मनाम् ॥ ५७५ ॥

'दुष्ट जना की महान् व्यक्तियों के काय नहीं सुहाते, इसलिए वे उनमें डूब करते हैं।'

सावरकर के जीवन की हर श्वास, उनके शरीर का प्रत्येक रोम उनके हृदय के हर घटक जनहिताय समर्पित रही है। वे कोटि-कोटि नर-नारियों के प्रेरणा स्रोत रहे हैं। ऐसे नर साहू में के जीवन की कायज के कुछ पृष्ठों पर अवित्त कर अपने बन्धु-भ्राता सेना जहाँ उनके जीवन के प्रति पूरा योग नहीं होगा वहाँ पाठकों

प्रति भी कितना 'याय' होगा यह विचार का विषय है। तदपि कुछ न होने से तो कुछ होना भला, इस विचार से हमने यह प्रयास किया है।

दिल्ली की प्रसिद्ध प्रकाशन संस्था सूय-प्रकाशन ने जब मुझे इस काय के लिए प्रोत्साहित किया तो मुझे अपने हृदय में उठने वाली हूक को शान्त करने का अवसर प्राप्त हो गया। मैंने तुरन्त ही इस पर काय करना आरम्भ कर दिया और सावरकर द्वारा तथा सावरकर पर लिखित जो भी साहित्य उपलब्ध हो सका, मैं उसके अध्ययन में प्रवृत्त हो गया। इस अध्ययन और लेखन में लगभग ६-१० मास लग गए। उसके परिणामस्वरूप ही सावरकर की जीवनी का यह स्वरूप प्रस्तुत कर पा रहा हूँ। मैं इसमें पूर्णतया 'कृतकाय' हो पाया हूँ, ऐसी मेरी भावना नहीं है। 'सागर को गागर में समेटना' जीवनी लेखन के प्रसंग में उचित नहीं होता। वह भी सावरकर जैसे महापुरुष का विशाल जीवन-वृत्त। तदपि इतना तो मैं साधिकार कह सकता हूँ कि इन पृष्ठों में मैंने केवल उनके जीवन के कार्यों को ही लिपिबद्ध किया है, उनके जीवन-दशन एवं विचारों से पुस्तक की पृष्ठ संख्या बढ़ाने की प्रक्रिया के लोभ से मैंने स्वयं की असम्पुक्त रखने का यत्न किया है।

इस जीवनी के लेखन में मैंने जिन-जिन ग्रंथों से सहायता प्राप्त की है, उनकी सूची पुस्तक के अन्त में दे दी है। जहाँ-जहाँ से मैंने जो कुछ उद्धृत किया है उसका उल्लेख भी मैंने यथास्थान कर दिया है। इन सहायक ग्रंथों के उन सभी लेखकों के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ। सावरकर के बम्बई निवासकाल में उनके निजी सहायक के रूप में आचार्य बालाराव सावरकर उनके जीवन के अन्तिम क्षणों तक सावरकर के साथ रहें और उन्होंने न केवल सावरकर पर अनेक पुस्तकें लिख कर प्रकाशित की हैं अपितु सावरकर पर अन्य लेखकों की पुस्तकों को भी उन्होंने प्रकाशित किया है। इस जीवनी की रचना में उनका अनन्य सहयोग मुझे प्राप्त हुआ है, इसके लिए मैं हृदय से उनका आभारी हूँ। अन्त में—

त्वदीय वस्तु गोविन्द । तुभ्यमेव समर्पये ।

हिन्दी जगत् में सावरकर के पाठकों की इस वस्तु को मैं उनको ही समर्पित करता हूँ।

—अशोक कौशिक



# अनुक्रम

## अध्याय १ आरम्भिक जीवन

६ से १७

पूण पीठिका, जन्म एवं बाल्यकाल, मातृशोक, नासिक में काव्य प्रतिभा, अभिनव भारत, विद्यालय से निष्कासन, विदेशी का बहिष्कार।

## अध्याय २ लन्दन की ओर

१८ से २५

बम्बई का काय, श्याम जी कृष्ण वर्मा, फ्री इंडिया सोसाइटी, लन्दन के सह-योगी, गाँधी से भेंट, लन्दन में नेहरू।

## अध्याय ३ १८५७ की स्वर्ण जयन्ती

२६ से ३८

लन्दन में दूसरा वर्ष, स्वातंत्र्य-मर्मर की रचना, प्रकाशन पूर्व प्रतिबंध, होलेण्ड में प्रकाशन, फ्रेच सम्मरण, राजभक्त नेहरू की पराजय, भारत में हलचल, इंडिया हाउस के प्रभारी, भारतीय स्वाधीनता का ध्वज, लेख एवं पत्रक।

## अध्याय ४ विश्व युद्ध की आशंका

३९ से ६०

क्रान्ति की योजना, भारत की गतिविधियाँ, बम्बे मैनूअल, भारत में धर पकड़, गोखले की राजभक्ति, भारतीय नेता लन्दन में, राइफल क्लब, लेनिन से भेंट, ढोंगरा से सम्पर्क, वाइली का बध, निर्भीकता की गूँज, सावरकर सक्कट में, ढोंगरा पर न्याय का नाटक, ढोंगरा को फाँसी, गाँधी-नेहरू की कायरता, गाँधी की साम्राज्य निष्ठा, परिवार पर विपत्तियाँ, भाभी का सान्त्वना, भारत में जैक्सन बध, परिस प्रवास।

## अध्याय ५ लन्दन में बन्दी

६१ से ७७

बम्बई से वारंट, अतीत कृत्यों पर दण्ड मृत्यु पत्र, एक और नाटक, सहयोगियों की छटपटाहट, मार्सेल्स में मिलन की इच्छा, भारत की ओर, समुद्र में छलांग, हा दुर्दैव ! छुड़ाने का प्रयत्न असफल, फ्रांस में प्रयत्न, हेग न्यायालय का नाटक, फ्रेच प्रधानमंत्री का त्याग-पत्र, जलपोत में यातनाएँ।

## अध्याय ६ शेर पिंजरे में

७८ से १०६

बम्बई प्रत्यागमन भारत में न्याय का नाटक, एक साथ दो आजन्म कारावास, सावरकर की प्रतिक्रिया, बन्दी जीवन का आरम्भ, पत्नी से भेंट, भाग्यवता कारागार में ठाणे कारागार में मद्रास कलक्टर का बध, ठाणे कारागार का महत्त्व, अण्डमान की प्रत्यान, पुन जलपोत पर।

## अध्याय ७ अण्डमान की यातनाएँ

११० से १८७

अण्डमान में, अण्डमान का बारी साहब, जेल में प्रथम दो दिन, काव्य रचना, गुप्त पत्र, यातनाएँ प्रारम्भ, शहीद द्वीप की कल्पना, निराशा की क्षलक, हाडिंग पर बम्बे, कोल्हू का बैल, शिक्षा प्रसार, हिंदी का महत्त्व, जेल में हडताल, भ्रातृ मिलन, पत्राचार एवं समाचार, होतीलाल का साहस, बन्धियों की समाचार ऐजेन्सी आशा की किरण, काराकार में मुसलमानों का बचस्व, असह्य यातनाएँ, थोरा हुआ पागलपन, कारागार में स्वातंत्र्य साधना, हडताल और यातनाएँ नानी गोपाल का बलिदान, कारागार में बम्बे होम मेम्बर हतप्रभ, तीसरी हडताल, बन्धियों की विजय, शुद्ध आन्दोलन, आय साम्राज्य की कल्पना, लाला हरदयाल का कार्य, 'एमडन' मद्रास में, सावरकर को छुड़ाने का यत्न।

## अध्याय ८ अण्डमान के अन्तिम वध

१८८ स २१५

क्रान्ति और विश्व युद्ध, नागरिकों में क्रान्ति, पं परमानन्द और बारी, सावरकर अस्वस्थ, चौथी हड़ताल, भानसिंह का बलिदान, आजाद का अनशन, मुक्ति के लिए अभियान, गिरता स्वास्थ्य, परिजनो से भेंट, सावरकर को हवाई प्रणाम, बारी का अंत, जांच आयोग का नाटक, द्वितीय भेंट, जन जागृति और राजक्षमा, अण्डमान से विदाई, पुन हायकडी ।

## अध्याय ९ आकाश से खजुर पर

२१६ स २२८

अलीपुर कारागार, स्थानान्तरण, रत्नागिरि कारागार, यरवदा कारागार, लौयड सावरकर भेंट, मोंटगुमरी के साथ, शर्तें एवं मुक्ति ।

## अध्याय १० रत्नागिरि में स्थानबद्ध

२२९ से २४३

शोकतअली को लताड, डॉ० हेडगेवार की भेंट, मुसलमान स्वराज्य के विरुद्ध, गांधी सावरकर भेंट, अछूतोद्धार और गांधी, सवजाति सहभोज, भगतसिंह की गुप्त भेंट हडसन वध, सरकारी अकुश, गांधी का विचार, द्विधा सृष्टि, काँग्रेस का अध्यक्षत्व ?, स्वीटलैंड वध, गांधी कौन सावरकर ?, स्थान बदलता से मुक्ति ।

## अध्याय ११ मुक्ति के अनन्तर

२४४ से २४८

गांधी निःशब्द, राजनीति में प्रवेश, पूना व बम्बई में स्वागत, बम्बई स्थायी निवास, लेखक की विशेषता, नेहरू का विवृत इतिहास, हिंदू महासभा में, गांधी की भत्सना, महासभा के अध्यक्ष, क्रान्ति कुंज कानपुर, सैनिक प्रशिक्षण पर बल, निजाम का विरोध, विरला को करारा उत्तर, काँग्रेस की तलवा चाटू नीति, गांधी की साम्प्रदायिकता ।

## अध्याय १२ द्वितीय विश्व युद्ध

२५९ से २७८

जिन्ना का वचस्व, गांधी-नेहरू ने घुटने टेके, सैनिकीकरण का प्रचार, नेताजी की भेंटवार्ता, सिगापुर का पतन क्रिस्-योजना, सावरकर की भविष्यवाणी, सत्याग्रह-प्रकाश पर प्रतिबन्ध, बड़े भाई का निधन, युद्ध के उपरान्त, शिमला समझौता, आजाद हिन्द सेना, सैनिक विद्रोह अन्तरिम सरकार, ३ जून की घोषणा ।

## अध्याय १३ भारत स्वतंत्र

२७९ से ३०४

खण्डित भारत, गांधी का अनशन एवं वध, स्वतंत्र भारत में बन्दी, ऐतिहासिक वक्तव्य, रिहार्ड, छोटे भाई का निधन, गणराज्य भारत, मासाहार का पोषण, अभिनव भारत का समापन मुखर्जी की हत्या, ईसाई वचस्व क्रान्ति की शताब्दी, पूना में स्मृति चिह्न, नेहरू का ओछापन, पत्नी का निधन, दीप निर्वाण ।

## उपसंहार

३०५

## सावरकर साहित्य

३०६

## सहायक ग्रन्थ-सूची

३१४

## आरम्भिक जीवन

### पूर्व पीठिका

यह उस काल की गाथा है जब हमारा भारत अंग्रेज साम्राज्यवादियों की दासता की श्रृंखलाओं में जकड़ा हुआ छटपटा रहा था। भारत का जन-मानस दासता की इन श्रृंखलाओं को तोड़ने के लिए सब प्रकार के प्रयत्न कर रहा था। १८८० और १८९० का हमारे देश का इतिहास अत्यन्त अधकारमय पड़ा वाला रहा है। इस दशक तक पहुँचते-पहुँचते हमारा देश राजनीतिक दृष्टि से पतित, सामाजिक दृष्टि से अपमानित तथा आर्थिक दृष्टि से सवथाक्षीण हो चुका था। यह वह काल था जब स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द और महात्मा रानाडे जैसे आध्यात्मवादी सुधारक अपना कार्य सम्पन्न कर राष्ट्रीय मंच से तिरोहित हो चुके थे। इन लोगों ने भारतीयों को चिर निद्रा से जगाने का बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। इसी प्रकार नामधारी राममिह कूका और क्रांतिकारी वासुदेव बलवन्त फडके के विद्रोह ने भी भारतीयों की विचारतन्त्री को झकझोरने का कार्य किया था। लोकमान्य तिलक यथाशक्ति अपनी ओर से यत्न कर रहे थे। उधर देश के पूर्वी भाग में बाबू आनन्दमोहन बोस और मुरेन्द्रनाथ बनर्जी जन-जन में नवजीवन का संचार करने में लगे थे।

भारत में क्रांति के बीज पनपने लगे थे। इसलिए भारतीय क्रांति को पनपने से पूर्व ही समाप्त कर देने के विचार से अंग्रेज सरकार ने एक कुटिल चाल खली। ब्रिटिश सरकार के सवानिवृत्त अंग्रेज एब कुछ थोड़े से भारतीय उच्चाधिकारियों के सम्मिलित प्रयास से २८ दिसम्बर १८८५ को 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना करवाने में अंग्रेज सरकार का मनोरथ सफल हो गया। अंग्रेज उच्चाधिकारी वर्ग रूपी पिता और भारतीय उच्चाधिकारी-वर्ग रूपी माता की मानस सत्तान 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' के जन्म-दाता सेवा निवृत्त अंग्रेज उच्चाधिकारी सर ए० ओ० ह्यूम को इसका प्रथम प्रधान नियुक्त किया गया। क्योंकि यह अंग्रेजों द्वारा, अंग्रेज सरकार के हित के लिए स्थापित संस्था थी। अतः आरम्भ में इसके अधिवेशनों में सर्वप्रथम अंग्रेज राजा के सुख-समृद्धिमय

सुदीर्घ जीवन की कामना की भगवान से प्रार्थना की जाती थी ।

अतः संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि वह काल बहुत ही शोक और लज्जा से परिपूर्ण काल था जिसका विकल्प या तो उस स्थिति में सुधार हो सकता था या फिर क्रांति ।

## जन्म एवं बाल्यकाल

सन १८८३ में स्वामी दयानंद अपने पार्थिव जीवन के अंतिम क्षण पर पृथ्वी विद्रोही वासुदेव बलवन्त फडके भारतीय जनतन्त्र की स्थापना का स्वप्न सजोए अदम्य समाधिस्थ हो गए थे । इसी काल में २८ मई सन १८८३ को सोमवार ८ दिन प्रातः काल १० बजे हमारा चरित नायक और विनायक दामोदर सावरकर इस धरा पर अवतीर्ण हुआ था । उसी काल की दो अन्य उल्लेखनीय घटनाएँ हैं—सावरकर के जन्म से ७५ दिन पूर्व लंदन में सवहारा बग ने कथित मसीहा काल मावस का इस संसार से चुपचाप विदा ले जाना और विनायक के जन्म के ६२ दिन बाद इटली की भाग्य विधाता मुसोलिनी का जन्म होना ।

सावरकर का जन्म उस चित्तपावन ग्राह्य कुल में हुआ था जिसमें इन्से पूर्व भी अनेक देशभक्त महापुरुषों का जन्म दिया था । मराठा साम्राज्य के प्रथम पशवा बालाजी विश्वनाथ, १८५७ के स्वतंत्रता सनानी नाना साहब, प्रसिद्ध क्रांतिकारी वासुदेव बलवन्त फडके, गद्यनाट्य चाफेकर बंधु, महादेव गोविंद राणाडे, लोकमाय बाल गंगाधर तिलक, ये सभी जिन्होंने स्वतंत्रता देवी की कीर्तिपताका फहराने का संकल्प लिया था, उसी चित्तपावन कुल में उत्पन्न हुए थे । कालांतर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डॉ॰ केशव बलिराम हेडगेवार भी उसी कुल के दीपक बने । और विनायक सावरकर के पूज्य भूलतया महामुनि परशुराम की लीलास्थली कोकण के निवासी थे । कोकण में उनके पूज्यों की अच्छी ख्याति थी और अपनी विद्वत्ता के लिए वे दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे । अपने ऐसे पूज्यों की देशभक्ति, संघपथीलता और विद्वत्ता सावरकर के रक्त, मांस, मज्जा और मस्तिष्क में समाहित थी । जिस प्रकार मेजिनी के उत्थान के साथ-साथ इटली पर सौस्ट्रियन साम्राज्य घुमिल होता गया उसी प्रकार सावरकर के उत्थान के साथ ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें भी खोखली होनी आरम्भ हुईं ।

विनायक का घर का नाम तात्या था । उनके पिता दामोदर पंत अच्छी कदवाठी के अध्ययनशील आत्मसम्मानी, अतीत गौरव के प्रति आस्थावान तथा कवि हृदय ध्यक्षित थे । लोकमाय तिलक ने वे परमभक्त थे । विनायक की माता राधाबाई बड़े धार्मिक विचारों की सुंदर और उज्ज्वल चरित्र दयालु स्वभाव की महिला थी । यह सब कुछ ही विनायक को उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था । दामोदर पंत की चार संतान थी—तीन पुत्र तथा एक कन्या । सबसे बड़े पुत्र का नाम गणेश उसके बाद विनायक, फिर कन्या मना और सबसे छोटे थे नारायण । दशभक्ति और स्वाभिमान तो इन चारों का ही धुन्टी में मिला था । सावरकर दम्पति रामायण और महाभारत का नित्य प्रति

अध्ययन और पाठ किया करते थे। उनकी कहानियाँ अपने बच्चों को सुनाना उनका नित्य का नियम था। इसके अतिरिक्त वे छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप तथा पेशवाजी की वीर गाथाएँ एवं वीरनाम परिपूर्ण लावणी और पोवाड़े भी अपनी सतति को नियमित रूप से सुनाते तथा उन्हें कठमथ करन के लिए प्रेरित करते थे। समय-समय पर माता राधाबाई अपने पुत्र गणेश को कहती रहती थी कि वह अपने भाई बहिनो को रामायण और महाभारत पढ़कर सुनाए। सब गाथाया, आख्यानों और कविताओं का हमारे चरित्रनायक विनायक के विवास में बड़ा योगदान था।

छ वर्ष की आयु में बालक विनायक को गांव की पाठशाला में प्रविष्ट करा दिया गया। शीघ्र ही विनायक के भीतर विद्यमान प्रतिभा प्रकट होनी लगी। ज्यों-ज्यों उस अक्षरज्ञान हाता गया त्यों-त्यों उसकी बुद्धि की प्रखरता निखरती गई और पढ़ने में दिनानुदिन उसकी रुचि बढ़ती गई। पुस्तक और समाचार पत्र के लिए उसकी भूख भी उसी अनुपात में बढ़ती गई। पुस्तक अथवा समाचार पत्र को हाथ में लेने के बाद उसे अधोपात पढ़ने के उपरांत ही विश्राम लेना बालक विनायक का स्वभाव बन गया था।

दस वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते विनायक मराठी में अच्छी कविता करने लग गये, जिसका प्रमाण है उनकी उस आयु में रचित कविता का पूना के प्रसिद्ध मराठी दैनिक पत्र में प्रकाशित होना। समाचार पत्र के सम्पादक यह अनुमान भी नहीं कर सकते थे कि जिस कविता को वे प्रकाशित कर रहे हैं उसका रचयिता दस वर्ष का बालक मात्र है। विनायक के पिता ने जब अपने पुत्र की काव्य प्रतिभा देखी तो उनको बड़ी प्रशंसा दी। किन्तु उस दिन तो वह बड़े आश्चर्यचकित रह गए जब उस आयु में उनका पुत्र आरण्यक (शास्त्रग्रन्थ) पढ़ने लगा। उसके दो कारण थे। एक तो यह कि उस आयु में आरण्यक जैसे गहन शास्त्र ग्रन्थ में रचित होगा और उसके गूढ़ रहस्यों को समझना तथा दूसरी बात थी आरण्यक को घर पर पढ़ना। उन दिनों यह निर्वर्ति प्रचलित थी कि आरण्यको का घर पर पढ़ना अशुभ होता है, उन्हें बन में पढ़ना चाहिए। इतना ही नहीं अपने बालपन में ही उन्होंने धनुर्विद्या और घुड़सवारी भी सीख ली थी।

‘होनहार बिरवान के होत चौकने पात’। ग्रेजा के कवि मिल्टन का भी यही कहना है कि जिस प्रकार प्रभात को देखकर दिन का अनुमान लगा लिया जाता है कि धूप खिलेगी या बादल छाये रहेगा, उसी प्रकार मनुष्य का बचपन बता देता है कि भविष्य में यह बालक कैसा बन सकता है। यह संयोग की ही बात थी कि विनायक जब दस वर्ष का था तभी संयुक्त प्रांत के आजमगढ़ नगर में और फिर उसके बाद जबई में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो गए। मुसलमानों ने हिन्दुओं को जायातनाएँ दीं उनका बियरण जब विनायक ने सुना तो उसके मन में प्रतीकार की भावना उठी और उसने अपने साधियों की एक बटालियन बना ली और उसका लेकर समीप के गाँव में जा, मस्जिद पर पराजय किया। जिससे वह तहस नहस हो गई। लौटते हुए उन्हें मुसलमानों के आश्रम का सामना करना पड़ा, किन्तु उसमें भी उनकी विजय ही मिली। उस समय उस बालकता को भली प्रकार समझ में आ गया कि उस अपने दम को न केवल सुगठित करना होगा



अपितु उसको सुशिक्षित और सुसज्जित भी करना होगा, तभी उनका प्रतीकार सफल हो सकता है।

### मातृशोक

उसी आयु में विनायक को मातृशोक ने आ घेरा। उनके गाँव में हैजा फैला और उनकी माता जो उसकी चपेट में आ गई। विनायक का माता के प्रति बहुत लगाव था, इससे उसको माता का अभाव छटकने लगा किन्तु पिता ने किसी प्रकार बच्चों को सम्हाला। उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। इस प्रकार चारों भाई बहिन और पिता मिलकर घर का काम चलाने लगे।

### नासिक में

विनायक की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में पूर्ण हुई तो उसको अपने बड़े भाई के साथ नासिक भेज दिया गया। नासिक में भी विनायक ने अपने साथियों का एक दल गठित कर लिया। अपनी वृत्ति के माध्यम से वे अपने दल के साथियों में देशभक्ति और वीरता की भावना का संचार करते रहते थे। विनायक रचित पोवाडा को जो भी सुनता वही उनसे प्रभावित होता और उसमें देशभक्ति की भावना जागृत होने लगती। उही दिनों सन् १८६४ में क्रान्तिकारी चाफेकर बंधुओं ने 'हिन्दू धर्म रक्षिणी सभा' की स्थापना भी कर ली थी। यह सभा हिंदुओं के हितों की रक्षा करने के लिए कृतसंकल्प थी। इसने परिणामस्वरूप महाराष्ट्र में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध एक लहर सी दौड़ने लगी थी। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध देश के युवकों में रोष की भावना भड़क रही थी कि मन १८६७ के आरम्भ में महाराष्ट्र में भयंकर अकाल पड़ने के साथ-साथ प्लेग का भी प्रकोप होने लगा। अकाल और रोष इन दो पाटों में महाराष्ट्र की जनता पिसन लगी किन्तु अंग्रेजी शासन की कानों में जू तक नहीं रेंगी।

शासन जब अपने बल का प्रयोग करने लगा तो लोकनायक तिलक ने महात्मा की सैद्धांत की अंग्रेज सरकार को बतावनी दी कि 'तुम उसका भी कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ। न केवल इतना अपितु अंग्रेज सैनिक जनता पर और अधिक अत्याचार करने लगे। युवकों में रोष तो पहले ही फैला हुआ था और अब इस कारण दुःख का भयंकर पर शासन द्वारा प्रजा को राहत देने की अपेक्षा, जब उनके मनिक प्रजा पर अत्याचार करने लगे तो सहनशीलता की परीक्षा हो गई। तभी अन्तर पार पाके हुए बंधुओं ने ब्रिटिश राज का विरोध और एक अंग्रेज अधिकारी पर गोली चला कर उनको मारने का प्रयत्न किया। यह २७ जून १८६७ का वह दिन था जिस दिन महात्मा और भीष्म प्लेग का पतन का उदगार भी सरकार की ओर में धूमधाम में होकर जयन्ती का आयोजन किया गया था।

मिस्टर रैड की समझ में आया कि अंग्रेजों ने किन्तु सरकार ने नितर

को उम्मुक्त रखना उचित नहीं समझा तो उनको अपन पत्र 'केमरी' में राजद्रोहिता से पूर्ण एवं भडकाने वाला लेख छापने के आरोप में बन्दी बना लिया। बाद में द्रविड बन्धुओं के धोखा देने पर दामोदर पत्र चाफेकर को भी पकड़ लिया गया और उन पर मुकदमा चलाकर १८४१-४२ को फाँसी पर लटका दिया गया।

द्रविड बन्धुओं के इस दुष्कृत्य से युवकों में उनके प्रति रोष फैला और एक दिन अवसर पाकर दामोदर चाफेकर के छोटे भाई, वासुदेव, जिनको पकड़ने में सरकार असफल रही थी ने अपने अन्य साथी महादेव राणाडे के साथ मिलकर एक दिन पूना की सड़क पर उनको यमलोक भेज दिया। इस बाण्ड में वासुदेव चाफेकर उनका छोटा भाई बालकृष्ण चाफेकर और महादेव राणाडे को मई १८६६ में फाँसी पर सटका दिया गया। इस प्रकार चाफेकर बन्धुओं के अन्त से भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में एक नया मोड़ ले लिया।

इसी बीच विनायक सावरकर को शीतला का प्रकोप हुआ तो उनको अपन गांव भगूर भेज दिया गया। वहीं उन्होंने समाचार पत्र में चाफेकर बन्धुओं को फाँसी का समाचार पढ़ा तो उनका देशभक्त बाल हृदय क्रोध से कांप उठा। इस घटना से उनके हृदय में अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति विद्रोह के बीज अंकुरित होने लगे। विनायक ने अपनी कुल-देवी दुर्गा माता की प्रतिमा के सम्मुख जाकर उनसे प्रार्थना की और फिर उनके सम्मुख ही दृढ़ प्रतिज्ञा करते हुए कहा, 'देश की स्वाधीनता के लिए मैं जीवन के अन्तिम क्षणों तक संशय नान्ति का झंडा उठाते हुए साम्राज्यवादियों से जूझता रहूँगा।'।

## काव्य प्रतिभा

सावरकर ने चाफेकर बन्धुओं के वलिदान पर एक ऐसा पोवाडा रचा जिस जो भी सुनना उसकी आखा से अश्रुधारा बह निकलती। स्कूल में भी उनके अध्यापक उनकी विलक्षण प्रतिभा के विषय में नित्य प्रति चर्चा करते थे। तभी नासिक के दैनिक पत्र 'नासिक बैभव' में 'हिंदुस्थान का गौरव' शीर्षक से उनका लेख पत्र के सम्पादकीय के रूप में दो भागों में प्रकाशित हुआ। म कंस साम्राज्य पाठका ने अपितु उनके अध्यापकों ने भी उस लेख की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। इससे उत्साहित होकर सावरकर नियमित रूप से कविता और लेख लिखने लगे। श्री राणाडे और श्री तिलक उनकी भोजस्वी कविताओं को पढ़कर ही सबप्रथम उनसे परिचित हुए थे। विनायक ने ग्रामीण समाज के लिए पोवाडे लिखे जिनको बहुत ख्याति मिली।

सन् १८६६ में सावरकर के पिता और चाचा दोनों का ही प्लेग से देहान्त हो गया। इसके साथ ही उनके छोटे भाई नारायण पर भी प्लेग का प्रकोप हो गया। उसको पहले तो गांव से दूर एक मन्दिर में रखा गया किन्तु बाद में नासिक प्लेग अस्पताल में भरती करा दिया और उसने बड़े भाई गणेश सावरकर अपने जीवन को खतरे में डालकर उसकी देखभाल करते रहे। किन्तु एक दिन उनको भी प्लेग ने आ घेरा। तब तक उनका विवाह हो गया था। विनायक ने उनकी युवती पत्नी को इसकी सूचना नहीं दी और

नासिक में रह कर चांदयो की सेवा करते रहे। ईश्वर ने उनकी प्रार्थना सुनी और दोनों भाई निरोग होकर घर लौट आये।

कुछ दिनों बाद विनायक की महम्क और पगे नामक दो युवक से मित्रता हो गई। सावरकर के ये दो मित्र बड़े ही निष्ठावान दशभक्त थे। इन पर तिलक और पराजपे का प्रभाव था। पराजपे के विचार बड़े नास्तिकारी थे और वे अच्छे वक्ता भी थे। यही स्थिति सावरकर की भी थी। राजनीति में तीनों के विचार समान थे। सावरकर न उन दोनों को अपनी ओर मिला लिया और उन तीनों ने मिल कर शपथ पूर्वक 'देश भर्ता' का दल' निर्माण कर लिया। यह बात १८६६ की है। सन् १९०० का वर्ष आरम्भ होते होते इन तीनों ने मिलकर 'मित्र मेला' नामक एक संगठन भी खड़ा कर दिया। समय बीतते बीतते यह 'मित्र मेला' बड़कर १९०४ में 'अभिनव भारत सोसाइटी' के रूप में परिणत हुआ।

## अभिनव भारत

अभिनव भारत का कार्य समस्त पश्चिमी और मध्य भारत में प्रसार पाने लगा। इसके साथ ही यह सोसाइटी गदर पार्टी के नाम से इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका, हाँव कौंग, सिंगापुर और बर्मा आदि विदेशों में भी फैलने लगी। मित्र मेला का उद्देश्य भारत को पूर्ण राजनीतिक स्वतन्त्रता था। नासिक की सभी सावजनिक और राजनीतिक सस्थाओं में मित्र मेला का बचस्व रहने लगा। ग्रामिक अवसर हो अथवा मेले का, व सब अवसर अब राजनीतिक अवसरों में ही परिणत होने लगे थे। इसके परिणामस्वरूप जिला अधिकारियों की नींद हुराम होने लगी। इस प्रकार मित्रमेले ने नासिक वासियों के जीवित में नव जीवन का संचार कर दिया था। नासिक में भारत के प्राचीन और आधुनिक इतिहास में बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग अदा किया था। नासिक ही वह स्थान माना जाता है जहाँ स. धीराम ने रावण के विरुद्ध अभियान आरम्भ किया था। यह वही स्थान है जहाँ पर लक्ष्मण ने शूषणखा की नासिका का छेदन किया था और इसी नासिक में मित्र मेला ने ब्रिटिश साम्राज्य की नाक काटने के लिए अपना स्वतन्त्रता अभियान आरम्भ किया था।

२२-१-१९०१ के दिन इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया का देहान्त हुआ और उसमें स्पान पर किंग एडवर्ड सप्तम को राज्यासीन करने का कार्यक्रम भी निर्धारित हुआ। भारत में शोक सभाओं का आयोजन होने लग तो मित्र-मेला की साप्ताहिक बैठक में भी पर विचार होने लगा कि महारानी विक्टोरिया के निधन पर शोक और सम्राट व राज्यासीन होने पर बधाई का प्रस्ताव पारित किया जाय अथवा नहीं। महत्कर और पगे का विचार था कि प्रस्ताव पारित कर लेना चाहिए, जिससे कि हम अंग्रेजों की मर्ह की नजरो में बचे रह सकें। उस अवसर पर सावरकर ने कहा, 'राजा हो या रानी के विले राजा और रानी है। व हमारे शत्रु दश के राजा रानी है हम क्यों उनके मरने पर शोक और राज्यासीन होने पर प्रसन्नता मनायें? ऐसा करना दासता की वृत्ति का ही परिचा

यक होगा।' इस प्रकार वह प्रस्ताव अस्वीकार हो गया। मित्र मेला द्वारा प्रभूत मात्रा में कवि वक्ता, प्रचारक, देशभक्त और बलिदानी लोग तैयार किए जा रहे थे।

सन १९०१ में सावरकर ने मेट्रिकुलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके आगे की पढ़ाई के लिए उन्होंने फर्गुसन कालेज में प्रवेश लिया। कालेज में प्रविष्ट होने से पहले ही सावरकर बहुत अच्छे डिक्टर, वक्ता, लेखक और कवि के रूप में प्रख्यात हो चुके थे। मेट्रिकुलेशन परीक्षा में बैठने से कुछ मास पूर्व सावरकर का विवाह हो गया था। सावरकर के स्वसुर श्रम्यक रामचंद्र चिपलूणकर उन्हे बाल्यकाल से ही जानते थे। इस विवाह का सावरकर के जीवन में मुख्य प्रभाव यह पड़ा कि उनकी अर्थाभाव की स्थिति समाप्त हो गई और उनको विश्वविद्यालय में पढ़ने की सुविधा मिल गई। अतथा उनके भाई बाबाराव सावरकर को उनकी विश्वविद्यालय की पढ़ाई की चिन्ता बहुत सता रही थी। माता पिता के देहान्त के उपरान्त परिवार का सारा बोझ उनके भाई बाबाराव के कंधों पर ही आ पड़ा था। घर की आर्थिक स्थिति वैसे ही ठीक नहीं थी, उस पर उनके घर में खोरी हो गई और सब कुछ चला गया। विनायक उस समय अस्वस्थ थे तब भी बड़े भाई ने कहा चाहे कुछ हो जाय विनायक को चिन्ता नहीं करनी चाहिए, वे उनका विश्वविद्यालय में अवश्य भेजेंगे। उधर विनायक न भी पब्लिक सर्विस परीक्षा उत्तीर्ण कर सरकारी नौकरी में जाने का विचार बनाया, तभी उनके स्वसुर भाऊराव चिपलूणकर ने उनको सहायता का आश्वासन दिया और फिर उन्होंने अपना वचन निभाया। उनकी इस सहायता के लिए विनायक ने सदा उनका आभार माना।

मेट्रिकुलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण करने के साथ ही सावरकर का नासिक का लगभग पांच छ वर्ष का प्रवास पूरा हुआ और पूना का जीवन आरम्भ हुआ।

### विद्यालय से निष्कासन

जनवरी १९०० में सावरकर पूना के फर्गुसन कॉलेज में प्रविष्ट हुए। पूना में उन दिनों महादेव गोविंद राणाडे की बड़ी ख्याति थी। यद्यपि वे सर्वात्मना कांग्रेसी नहीं थे किन्तु उनके युग में कांग्रेस के दार्ष्टिक अधिवेशनों में उनके निर्देशों को मानना ही कांग्रेस का धर्म बन गया था। उन्हीं दिनों आरपी पराजप इंग्लैंड में अपनी पढ़ाई समाप्त कर पूना लौट थे और गोपालकृष्ण गोखले कालेज के अंतिम वर्ष पूरा कर राजनीति में प्रविष्ट होने का विचार कर रहे थे। तिलक नेता के रूप में उभरने लग थे। शिवराम पन्त पराजप अपनी मन्त्रमुग्ध कर देने वाली वक्तृता और सेखनी के कारण पूना की महान हस्ती मान जाते थे। इस प्रकार पूना जहाँ एक ओर महाराष्ट्र का जीवन्त हृदय माना जाता था वहाँ दूसरी ओर फर्गुसन कॉलेज ऐतिहासिक व्यक्तियों का जन्मदाता माना जाता था। और ज्योंही सावरकर फर्गुसन कॉलेज में प्रविष्ट हुए उन्होंने महाराष्ट्र के इस प्रख्यात नगर में प्रतिष्ठा की बीजारोपण आरम्भ कर दिया। शीघ्र ही उन्होंने पूना में 'सावरकर ग्रुप' का गठन कर लिया। कुछ ही दिनों में इस ग्रुप ने 'आयन बोवती' नाम से एक हस्त-लिखित साप्ताहिक भी आरम्भ कर दिया। सावरकर के लेख और वक्तव्यों इस पत्रिका

मे प्रकाशित होने लगीं ।

‘आयन योक्ती’ के अतिरिक्त सावरकर अयाय मराठी समाचार पत्रों में भी अपनी कविताएँ और लेख भेजने लगें । प्रसिद्ध समाचार पत्र ‘काल’ के सम्पादक इनकी रचनाओं में अत्यधिक प्रभावित हुए । उनके माध्यम से ही सावरकर का लोकमाय काल मगाधर तिलक से परिचय हुआ । तिलक तो सावरकर की रचनाओं से अधिक उनके आकर्षक एवं तेजस्वी व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए थे । प्रथम भेंट के दिन में ही सावरकर इन दोनों के नियमित सम्पर्क में रहने लगे । सावरकर की वक्तवता से तो प्रसिप्त भी बहुत प्रभावित रहते थे, यद्यपि आधुनिक राजनीति में उनके राजनीतिक विचारों में ब असहमत रहते थे । सावरकर के राजनीतिक विचारों से असहमत उनके प्राध्यापक गण उनकी वक्तवता सुन कर उन्हें ‘शैतान’ तक कह देत थे ।

काल के सम्पादक शिथराम पंत पराजप के सम्पर्क में आने के उपरान्त सावरकर पूना के सावजनिक जीवन में भी प्रख्यात होने लगें थे । यद्यपि जब तक उनका पराजप से व्यक्तिगत परिचय नहीं हुआ था, तब किसी आर्थिक कठिनाई के समय उन्होंने पराजप को लिखा था कि उनके पत्र में उन्हें सहायक के रूप में कुछ काम मिल जाए, भले ही वह काम कम्पोजीटर का ही क्यों न हो, तो उनकी आर्थिक समस्या का कुछ समाधान हो जायेगा किंतु तब यह सम्भव नहीं हो पाया था और सावरकर को भी उही दिनों उनके स्वसुर की ओर से सहायता मिल गई । सावरकर का १९०२ में पराजप से परिचय हुआ और तभी उन्होंने ‘काल’ में एक लेख में लिखा ‘हिन्दुस्तान की निधनता और विघटन के लिए हिन्दू उत्तरदायी हैं । किंतु यदि वे सम्पन्नता चाहते हैं तो उनको चाहिए कि वे हिन्दू बने रहें । इस लेख की सखत्र चर्चा और सराहना हुई ।

## विदेशी का बहिष्कार

धीरे धीरे सावरकर ने पूना के जन समाज में अपना स्थान बना लिया था । आचार्य काका कालेलकर जैसे व्यक्ति भी उनकी सराहना करते थे । सावरकर और उनके साथियों ने स्वदेशी का प्रचार और बगाल विभाजन का बहिष्कार करना आरम्भ कर दिया था । तिलक ने बगाल के विभाजन का अखिल भारतीय स्तर पर विरोध करना आरम्भ किया था । १ अक्टूबर १९०५ को पूना की विशाल जन सभा में सावरकर ने विदेशी के बहिष्कार की घोषणा कर दी और कहा कि विद्यार्थी दशहरे के दिन विदेशी वस्त्रा और अयाय विदेशी वस्तुओं की होली जलायेगे । केलकर और पराजप ने सावरकर के आन्दोलन का उसी सभा में जोरदार शब्दों में समर्थन किया । इस प्रकार ७ अक्टूबर को गान्धियों में भर भर कर विदेशी वस्तुएँ एवं कपड़े एक स्थान पर लाये गए । इस प्रकार सब प्रथम पूना में विदेशी वस्तुओं की होली जलाई गई ।

सभी विदेशी के बहिष्कार के पक्ष में हो ऐसी बात भी नहीं । अंग्रेजों द्वारा स्थापित मस्था ‘कौन्सिल’ के नरमदली पत्र इन्दु प्रकाश ने इस काम की भत्सना की और उसने सावरकर के विषय में कुछ अनगल बातें भी कही । आरपी पराजपे उन दिनों

कॉलेज के प्रिंसिपल थे, उन्होंने सावरकर पर १० रुपए के दण्ड के साथ-साथ कॉलेज से उनका निष्कासन भी कर दिया। इस प्रकार सावरकर वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सब-प्रथम विदेशी वस्त्रों की होली जलाई थी और वे पहले विद्यार्थी थे जिनको कॉलेज में निष्कासित किया गया था। तिलक आदि ने उनके निष्कासन की भत्सना की तथा इस विषय में भारत के लगभग सभी बड़े समाचारपत्रों ने भी उनका साथ दिया। बिजली की भांति यह समाचार फैला तो विश्व भर के समाचारपत्रों में इसकी चर्चा होन लगी। भावरकर के प्रति लोगो की सहानुभूति उमड़ने लगी और दण्ड की पूर्ति के लिए उनके पास धन आने लगा। किंतु सावरकर ने इससे पहले ही अपनी जेब से दण्ड भर दिया और उस एकत्रित धनराशि को उन्होंने औद्योगिक श्रमिकों के लिए स्थापित 'पैसा फण्ड' तथा अन्य सामाजिक समस्याओं का दे दिया।

इस घटना का एक अन्य महत्त्व भी है। यहा से उन दो विभिन्न विचार-धाराओं के सूत्रपात का भी ज्ञान हो गया जो कुछ काल बाद प्रकाश में आई और आज तक भी भारतीय राजनीति पर छाई हुई हैं। गांधी उन दिनों दक्षिण अफ्रीका में थे उन्होंने वही स विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए कहा कि बहिष्कार आन्दोलन की जड़ें घणा और अहिंसा में होती हैं। कुछ समय बाद इसी प्रकार गांधी के भावी राजनीतिक गुरु गोपालकृष्ण गोखले ने भी १९०५ की बनारस कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण में इसका विरोध करते हुए कहा 'बहिष्कार शब्द ही ऐसा है जिससे एक प्रकार की ऐसी भावना का ज्ञान होता है कि जिसके द्वारा किसी अन्य को दुखी किया जाय। ऐसी भावना इंग्लैंड के साथ हमारे सम्बन्धों के लिए उपयुक्त नहीं है।'

गांधी ने जो तब अर्थात् १९०५ में कहा उसके ठीक विपरीत, उसके १७ वर्ष बाद २१ ११ १९२१ को असहयोग आन्दोलन के अग्रणी के नाते स्वयं उन्होंने बम्बई में विदेशी वस्त्रों की होली जलाई थी। इसमें ही गांधी के मन में निष्पक्ष की अपरिपक्वता एवं विद्वेष भावना का आभास मिल जाता है। नरमदलियों ने सावरकर को अपनी ओर करने का अथवा प्रयास किये किंतु इसमें उनकी सफलता नहीं मिली। कॉलेज में उनके प्राध्यापक आदि जहाँ एक ओर सावरकर की क्षमता से प्रभावित थे वहाँ वे उनके आतिकांगी विचारों में सबका असहमत रहते थे।

सावरकर को यद्यपि कॉलेज में निष्कासित कर लिया गया था तदपि किसी प्रकार से बम्बई विश्वविद्यालय ने उनकी बी.ए. की परीक्षा में बैठने पर रोक नहीं लगाई। परीक्षा के निश्चय दिनों में सावरकर ने अपनी पुस्तकों की ओर दया और परीक्षा में बैठ गया। भाग्य और ईश्वर की कृपा रही और वे परीक्षा में उत्तीर्ण भी हो गए। आन्दोलन के साथ-साथ सावरकर का लेखन और बीर-रस से परिपूर्ण पोवाडों की रचना भी चलती रहती थी। तानाजी और बाजी प्रभु पर रचित उनका पावाडे बहुत प्रसिद्ध और प्रचलित हुए। किंतु ब्रिटिश सरकार ने ध्वरावर उनके प्रचलन पर प्रतिबंध लगा दिया।

## लन्दन की ओर

### बम्बई का कार्य

दिसम्बर १९०५ में बी०ए० उत्तीर्ण करने के बाद सावरकर लौ' की पगड़ के लिए बम्बई गए। बम्बई में रहते हुए भी उन्होंने अपने कालेज के साथियों को संपर्क किया और नगर के विभिन्न क्षेत्रों में उसी प्रकार सभायें करके अपनी वक्तता से वहाँ के जन सामान्य का प्रभावित किया जिस प्रकार उन्होंने पूना में किया था। बी०जी० खर, जो कालांतर में बम्बई के मुख्यमंत्री बन थे उन दिनों उन युवकों में से एक थे जो अभिनव भारत क नता सावरकर के प्रभाव में आए थे। इससे पूव पूना में डक्कन कॉलेज के विद्यार्थी जे०बी० कृपालानी, जो कालान्तर में कांग्रेस के महामंत्री और अध्यक्ष बने व भी अभिनव भारत से प्रभावित रह।

बम्बई में प्रकाशित हान वाल मराठी साप्ताहिक 'विहारी' में सावरकर न जब लिखना आरम्भ किया तो कालांतर में वह एक प्रकार से अभिनव भारत का मुख पत्र ही बन गया। इसी प्रकार बंगाल में युगांतर साप्ताहिक काय कर रहा था। इन दोनों पत्रों का प्रसार मध्या निरन्तर बढ़ती जाती थी। सावरकर अब तक क्रांतिकारी आन्दोलन के सर्वमान्य नेता घोषित हो गए थे और स्थान स्थान पर से उनको सभाओं में बोलने के लिए आमन्त्रित किया जाा लगा था। उनके भाषण बहुत ही क्रांतिकारी होते थे। परिणामस्वरूप नासिक पूना और बम्बई में उनका बड़ी बनाए जाने की अप्वाहें भी फलन लगी। किंतु वे असत्य सिद्ध हुई।

इन्हीं दिनों सावरकर को विदित हुआ कि लन्दन में रहने वाले पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मान पोषणा की है कि 'यदि भारतीय कोई छात्र लन्दन में पढ़ना चाहता है तो उसका छात्रवृत्ति दी जा सकती है।' यह जानकर सावरकर की इच्छा लन्दन जाकर पढ़ने की होने लगी। किंतु जो छात्रवृत्ति पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मान दे रहे थे वह अपर्याप्त थी। अतः सावरकर पहले अपने घरमुर के पास गए और जब उनको उनमें कुछ आश्वासन मिल गया तो उन्होंने श्यामजी कृष्ण वर्मान वाली छात्रवृत्ति के लिए आवदन कर

दिया। अपने आवेदन के साथ सावरकर न महात्मा तिलक तथा सम्पादक पराजपे की सिफारिश भी भेज दी।

सावरकर न 'शिवाजी छात्रवृत्ति' के लिए आवेदन करते हुए दश धम की स्वतंत्रता के लिए अब तक किए गए अपने कार्यों का भी उल्लेख कर दिया था। तिलक और पराजपे की सिफारिश और सावरकर की ख्याति के कारण उनकी छात्रवृत्ति प्राप्त हो गई। छात्रवृत्ति सम्बन्धी सारी औपचारिकतायें पूण होने पर सावरकर को उसके प्रथम भाग के रूप में तिलक द्वारा ४०० रुपये भी प्राप्त हो गए।

सावरकर लन्दन जाने की तैयारी करने लगे। उनके स्वसुर श्री विपलूणकर न उनको उस समय दो हजार रुपये दिए। सारी औपचारिकतायें पूण होने के उपरान्त ६ जून १९०६ को वे बम्बई बन्दरगाह से 'परसिया' नामक जहाज से लन्दन के लिए रवाना हो गए। महात्मा तिलक स्वयं उनको विदाई देने के लिए बम्बई बन्दरगाह पर विद्यमान थे।

## श्यामजी कृष्ण वर्मा

इस प्रसंग में श्यामजी कृष्ण वर्मा का संक्षिप्त परिचय आवश्यक होगा। श्यामजी कृष्ण वर्मा भारत में अध्ययन करने के उपरान्त स्वामी दयानन्द सरस्वती के सम्पर्क में आए और उनसे विचार विमर्श करने के उपरान्त वे भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न करने के उद्देश्य से विदेश भेजे गए थे। अपने प्रयत्न और परिचय से उन्होंने इंग्लैंड में अपना स्थान बना लिया था और जिस समय की घटना का हम उल्लेख कर रहे हैं उस समय तक वे वहाँ 'इंडिया हाउस' की स्थापना कर उसका सम्यक संचालन करने लगे थे। यह इंडिया हाउस लन्दन में देशभक्त भारतीयों के लिए शरणस्थल का काम करता था। १९०५ में स्थापित और ६५, काम्बेल एव्यू, उत्तरी लन्दन में स्थित यह विशाल भवन राज्य विरोधी गतिविधियों के लिए विख्यात था। अंग्रेज गुप्तचर उस भवन को 'हाउस ऑफ मिस्ट्री' अर्थात् तिलस्मी महल कहा करते थे। पुस्तकालय, भाषण कक्ष एवं अन्य मनोरंजन की सुविधाओं से सम्पन्न इस भवन में २५ ३० व्यक्तियों के रहने की व्यवस्था भी थी।

१९०५ में ही श्यामजी कृष्ण वर्मा न 'इंडिया होम एल सोसाइटी' और एक मासिक पत्रिका 'इंडियन सोशियोलोजिस्ट' भी प्रारम्भ किए थे। वे मस्कृत, मराठी, गुजराती भाषा के प्रकाण्ड विद्वान होने के साथ साथ ग्रीक और लेटिन में भी नाता थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती की ही भाँति उन पर अंग्रेज दार्शनिक हरबर्ट स्पेन्सर का भी प्रभाव था। यही कारण है कि १९०३ में स्पेन्सर की मृत्यु पर वर्मा जी न उनके नाम पर एक हजार पौण्ड की छात्रवृत्ति की घोषणा की थी। अगले वर्ष श्यामजी ने भारतीय छात्रों के लिए ५ अरब छात्रवृत्तियों की घोषणा की। किन्तु भारतीय छात्रों के लिए यह शत थी कि वे पढ़ लिखकर अंग्रेजों की नौकरी नहीं करेंगे। इसके बाद उन्होंने स्वामी दयानन्द, राणा प्रताप और शिवाजी के सम्मान में तीन अरब छात्रवृत्तियों की भी घोषणा की।



इन्हीं में से शिवाजी छान्दवृत्ति के लिए सावरकर न आवेदन भेजते हुए अपने पत्र में लिखा था—'किसी भी देश की घटबटन उसकी स्वतन्त्रता होती है और अपने देश का स्वतन्त्रता ही मेरे रोम राम में बसी है। मैंने बचपन से आज तक हर रात इसी के स्वप्न देखे हैं और हर पल इसी का चिन्तन किया है।'

सावरकर के इस पत्र की सिफारिश करते हुए बाल गंगाधर तिलक ने लिखा था—'एक एक छान्दवृत्ति के लिए जहाँ इतनी आपाधापी मची हो वहाँ किसी विशेष व्यक्ति की सिफारिश करना व्यर्थ है। फिर भी, इन आवेदकों में से सम्बन्धित एक सावरकर हैं जिन्होंने पिछले वर्ष स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की है और जिन्हें मैं देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए बहुत उत्साहित पाता हूँ। यहाँ तक कि उसकी प्रखर दशमक्ति के लिए उस युवक को फर्गुसन कॉलेज के अधिचारियों का कोपमाजन बनना पड़ा। उसका सरकारी नौकरी का कोई विचार नहीं है तथा आचरण भी उत्तम है।'

सावरकर को छान्दवृत्ति मिल गई और वे 'परसिया' नामक जहाज द्वारा लन्दन के लिए प्रस्थान कर गए, यह हम पिछले पृष्ठों पर लिख आए हैं। जहाज में उनकी भेंट हरनामसिंह नामक एक युवक से हुई जो घर की स्मृति में उदास होकर अपनी यात्रा अधूरी छोड़ घर लौटने की सोच रहा था। सावरकर ने उसे ढाढस दिया और हरनाम सिंह ने वापस जाने का विचार त्याग दिया। कालांतर में वह सावरकर का अनन्य भक्त बन गया।

## फ्री इण्डिया सोसाइटी

सावरकर जब लन्दन में स्थापित हो गए तो उन्होंने उसी वर्ष वहाँ 'फ्री इण्डिया सोसाइटी' नाम की एक संस्था का गठन किया। यह संस्था पूना में स्थापित 'अभिनव भारत मण्डल' के अनुरूप ही थी। लन्दन में इस नये मण्डल की नियमित बैठकें होतीं, भारतीय त्यौहार मनाये जाते, देशभक्तों, सन्तो महापुरुषों की जन्म तथा पुण्यतिथियाँ मनाये जाते और साथ ही देश की राजनैतिक एवं आर्थिक समस्याओं पर भी चर्चा होती।

प्रत्येक रविवार को इण्डिया हाउस में सभा होती और तद्बुपरान्त सहभोज होता। उस अवसर पर 'भवन' का भाषण कदा खचाखच भरा रहता था। इण्डिया हाउस की उन सभाओं में सावरकर इटली, फ्रांस और अमेरिका के राजनीतिक सचय आदि विषयों पर तथा विभिन्न ऐतिहासिक क्रान्तियों पर बहुत ओजस्वी भाषण देते। भीष्म ही उनकी संस्था में नवयुवक भर्ती होने लगे। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार उस समय इंग्लैंड में पढ़ने वाले भारतीयों की संख्या ७०० के लगभग होगी। रविवारीय सभाओं में भाग लेने वालों की संख्या १०० या इसमें कुछ अधिक भी हो जाया करती थी।

फ्री इण्डिया सोसाइटी की एक वर्ष के भीतर ही लन्दन में धूम मच गई और उसके साथ ही सावरकर की भी ख्याति फैलने लगी। प्रयागजी भी उनसे प्रभावित हुए और १९०७ में जब वे लन्दन छोड़कर पेरिस जाने लगे तो उससे पूर्व उन्होंने अपनी इण्डिया होम रुल सोसाइटी को सावरकर की संस्था से सम्बद्ध कर दिया और इण्डिया

हाउस' का भी सारा काम उन्होंने सावरकर को ही सौंप दिया ।

इंडिया हाउस में रहते हुए सावरकर का अथ अनेक देशभक्तों से परिचय हुआ जिनमें मुख्य थे—भाई परमानन्द, लाला हरदयाल, सेनापति बापट वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, जे०सी० मुखर्जी, ज्ञानचन्द वर्मा, सरदारमिह राणा, मादाम कामा और एम० पी०टी० आचार्य ।

भाई परमानन्द दक्षिण अफ्रीका में डरबन में गांधी से मिलने के उपरान्त लन्दन आए थे । लन्दन आकर सावरकर के सम्पर्क में आने के बाद वे गांधी को भूल गये और सावरकर के समर्थक एवं प्रशंसक बन गए । उन्होंने लन्दन में ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी में भारतीय इतिहास का निष्पक्ष अध्ययन करने का विचार किया और लगभग डेढ़ बर के निरन्तर अध्ययन के उपरान्त उन्होंने लन्दन विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर उपाधि के लिए 'भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का उत्थान' पर अपना शोध प्रबंध लिखा । यद्यपि उनके अग्रेज गाइड ने उनके शोध प्रबंध की प्रशंसा की थी, किन्तु दो अन्य एंग्लो इंडियन प्राध्यापकों ने उसे अस्वीकार कर दिया । तब वे लाला हरदयाल से मिलने के लिए अमेरिका चले गये और वहाँ के सान फ्रांसिस्को विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त करके १९१३ में भारत लौट आए ।

लाला हरदयाल जब लन्दन में रहते हुए सावरकर के सम्पर्क में आए तो भारत मुक्ति आन्दोलन के लिए उन्होंने अपना सबस्व समर्पित कर दिया । १९०६ में उन्होंने इंडियन सोशियोलोजिस्ट में एक लेख प्रकाशित कराया । इस लेख के परिणामस्वरूप वे राजनीतिक क्षितिज पर धूमकेतु की भाँति प्रकाशित हो गए । अग्रेज अधिकारियों की उन पर दृष्टि पड़ी, तो उनकी भ्रुकुटि तन गई । यह देखकर हरदयाल ने तुरन्त सरकारी छात्रवृत्ति को ठुकरा दिया । उनके इस क्रान्तिकारी पग ने राजनीतिक एवं बुद्धिशील क्षेत्रों में समस्तनी-सी फल आई । वे आक्सफोर्ड में अध्ययन कर रहे थे । उसे छोड़ छाड़ कर वे १९०८ में भारत आ गए किन्तु शीघ्र ही लन्दन वापस जाकर फिर और भी अधिक उत्साह से स्वतंत्रता आन्दोलन में जुट गए । वहाँ से लाला हरदयाल अमेरिका गये और वहाँ उन्होंने 'इंटरनशनल रेडिकल क्लब' तथा 'फ्रीटरनिटी ऑफ दि रेड प्लेग' नामक संस्थाओं की स्थापना की । कालांतर में इन दोनों संस्थाओं ने गंदर पार्टी का रूप धारण किया और १९१३ में 'गंदर' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ कर दिया ।

सावरकर के प्रभाव में आने वाले अथ उल्लेखनीय व्यक्ति थे सेनापति बापट । उनका पूरा नाम था पादुरंग महादेव बापट । वे १९०४ में बम्बई में छात्रवृत्ति लेकर इजिनियरिंग के अध्ययन के लिए एडिनबरा गये थे । यद्यपि वे भी सरकारी छात्रवृत्ति पर गये थे किन्तु सावरकर के सम्पर्क में आते ही उनमें राष्ट्रप्रेम जागृत हुआ और 'भारत में अग्रेजी शासन' शीपक में उन्होंने लन्दन में ओजस्वी भाषण दे डाला । उस भाषण को उन्होंने प्रकाशित भी करवा दिया । 'इंडिया आफिस' जो लन्दन में भारत के लिए स्थापित था, ने उस पर कारवाही की । अपने पर सावरकर के प्रभाव के विषय में २७ ५-१९३८ के भराठा में उन्होंने लिखा था—'मेरे मन परिवर्तन का प्रमुख कारण वह छाप थी,

जो सावरकर के ओजस्वी नेत्रों एवं भाषणों में मुग्ध पर डाली। इस जन्मजात प्रान्ति-कारी, लेखक और वक्ता के आगे भला मेरी क्या विस्तार थी। मुझ अनुभव हुआ कि मैं लिखन बोलन का बाय उन्हीं के लिए छोड़कर क्रान्ति के किसी अन्य क्षेत्र में बाय करूँ। किन्तु कालान्तर में यही वापट बटटर गौरीवादी हो गए थे।

हैदराबाद निवासी वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय भारत बोक्लिता सराजिनी मायूढ़ तथा कवि एवं हास्य अभिनता हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के बड़े भाई थे। बनकता विषयविद्यालय में बी०ए० की डिग्री प्राप्त कर व १९०३ में आई सी०एम० की परीक्षा दान के लिए सन्दन गये किन्तु उत्तीर्ण नहीं हो पाये। तब उन्होंने कानून की पढ़ाई के लिए 'मिडिल टेम्पल इन' में प्रवेश किया। इंडिया हाउस के माध्यम से वे सावरकर के संपर्क में आए और फिर स्वतन्त्रता समर में कूट पड़े। कुछ दिन से दन में रहने के उपरान्त वे जमनी चल गए और वहाँ पर उन्होंने 'बर्तन कमटी' नाम से एक संस्था स्थापित की। वहाँ रहकर उन्होंने बहुत कुछ किया और फिर उनका अन्त किस प्रकार हुआ यह आज तक किसी को ज्ञात नहीं है।

जे०भी० मुखर्जी को लोग 'गदा' के नाम से अधिक जानते थे। वे दक्षिण अफ्रीका से प्रकाशित गौरी के पत्र 'इंडियन ओपीनियन' के लिए 'लन्दन की बिठठी' नामक एक साप्ताहिक स्तम्भ लिखा करते थे। किन्तु ज्यों ही वे सावरकर के सम्पर्क में आए कि उनके जीवन में भी नया मोड़ लिया। गौरी के पत्र से सम्बद्ध होत हुए भी वे दिन प्रति दिन बटटर प्रान्तिकारी होने गए और लिखन लग—'इस गोर दुश्मन का मुख काना करो और हम दश में निकाल भगाओ।'।

ज्ञानचंद वर्मा लंदन में कानून की पढ़ाई करने गये और 'श्री इंडिया सोसाइटी' के वे सचिव भी थे। मिथन परिवार के होने पर भी पढ़ने की लगन, स्टीमर में फायर मैन का काम करते हुए, उन्हें लंदन ले आई था। सावरकर के सम्पर्क में आने पर वे भी उसी रंग में रंग गए। सावरकर ने उनके विषय में एक स्थान पर कहा था—'यदि इस व्यक्ति ने किसी काम का बीड़ा उठा लिया तो समझ लो कि वह काम सम्पन्न हो गया। फिर उसे समार की कोई शक्ति नहीं रोक सकती।'।

सरदारसिंह राणा सीरापुट के निम्बडी रियामन के राजकुमार थे। १८९८ में बम्बई से स्नातक बनकर कानून की पढ़ाई के लिए लंदन चले गए। वहीं से वे परित चले गए और वहाँ हीरे जवाहरात की एक भारतीय दुकान में लग तो फिर वहीं के हो कर रह गए। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के वे परम समर्थक थे। १९०५ में उन्होंने 'होम रूल' के प्रचार प्रसार के लिए पेरिस में एक मीटिंग आयोजित की थी। कोई-कोई तो यहाँ तक कहते हैं कि श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा स्थापित छात्रवृत्तियों का धन उनके पास से ही आता था। वे सावरकर की मस्त्रा 'अभिनव भारत' के कोषाध्यक्ष थे। बाद में सावरकर द्वारा लिखित भारतीय स्वातन्त्र्य समर का इतिहास नामक पुस्तक के प्रांतीयी संस्करण के प्रकाशन के लिए भी उन्होंने ही धन दिया था। उनका इन वारनामों से कुछ होकर अंग्रेज सरकार ने राणा साहब की समस्त सम्पत्ति अपने अधिकार में कर

ली थी।

मादाम भीकाजी रस्तम जी कामा का बचपन का नाम 'मुनी' था। किन्तु कालांतर में उनको 'भारतीय क्रान्ति की जननी'—भारत की 'जो ओफ आक' दुर्गा अथवा काली की अवतार' आदि विशेषणों से जानी जानी लगा था। बचपन से ही वह भारतीय स्वतंत्रता की कहानियाँ मे रुचि लेती हुई देशभक्त बलिदानिया की पूजा करने लगी थी। उनके पिता ने उन्हें रोकना चाहा किंतु असमर्थ रह तो उन्होंने १८८२ में एक अंग्रेज भक्त युवक रस्तमजी कामा के साथ उनका विवाह कर दिया। उनके पति कामा भी उनकी देशभक्ति को रोक नहीं पाए। तभी बम्बई में पत्र फला। मुनी मरीजा की तीमारदारी में लगी तो स्वयं रोगग्रस्त हो गईं। स्वास्थ्य लाभ के लिए उन्हें विदेश भेजा गया तो वे लदन की राजनीतिक ज्वालामुखी में कूद पड़ी। सावरकर के सम्पर्क में आते ही उनकी गतिविधियाँ तीव्र रूप धारण करने लगी। उन्होंने पेरिस जाकर 'वन्दे मातरम्' पत्र निकाला। मई १९०८ में भारतीय स्वतंत्रता मंच की स्थापना के अवसर पर उन्होंने जा झंडा फहराया था वही तिरंगा आज किसी न किसी रूप में भारत का राष्ट्रीय ध्वज है।

तमिल के प्रसिद्ध कवि सुब्रह्मण्यम भारती मद्रास में 'वन्दे मातरम्' पत्र प्रकाशित करते थे, एम पी टी आचार्य उनके सहयोगी थे। सुब्रह्मण्यम भारती को जब अंग्रेज सरकार ने बन्दी बना लिया तो आचार्य के लिए प्रकट रहना दूभर हो गया। वे पहले पाण्डिचेरी गये, वहाँ से लम्बा और फिर किसी प्रकार लदन पहुँच गये। यहाँ जब वे सावरकर के सम्पर्क में आये तो बस फिर वे भी सावरकरमय हो गये।

## लदन के सहयोगी

इनके अतिरिक्त अभिनव भारत सोसाइटी में जो लोग रुचि लेने वाले थे उनमें बम्बई के डब्ल्यू बी फडवे, मद्रास के टी एस राजन और के बी आर स्वामी बंगाल के मुखसागर दत्त और निरजन पाल, इन लोगों के साथ एम पी सिन्हा, कोरेगावकर होतीलाल वर्मा, मदनलाल ढीगरा, रविशंकर शुक्ला, सिकन्दर ह्यात घाँ, (कालान्तर में 'सर') सुहरावर्दी, आसफ अली, नाभा के आर एम खान आदि प्रमुख थे। इतना ही नहीं एक अन्य भारतीय मुसलमान जियाउद्दीन अहमद, उन दिनों जमनो में रहता था, उसने विदेशों में पढ़ने वाले भारतीय मुसलमानों का 'इंडिया हाउस' की छूत से परे रहने का आह्वान किया था। यही कारण था कि कालांतर में सुहरावर्दी और आसफ अली आदि ने इस संस्था में सम्मेलन विच्छेद कर लिया था। यहाँ तक कि आसफ अली ने तो प्रथमजी को १९०६ में एक पत्र में लिखा— मैं कुछ ऐसे मुसलमान विद्यार्थियों के साथ रह रहा हूँ जो नहीं चाहते कि मैं राष्ट्रभक्ता से सम्बंधित रहूँ। मैं उनकी व्यय में श्रुति करना नहीं चाहता, जिससे कि अत्यंत अरुचिकर प्रसंगों को टाल सकूँ।'

जियाउद्दीन ने तो अपने मुस्लिम भाइयों का पत्र में लिखा—'क्या आप समझते हैं कि 'होम रूल' से मुसलमानों को लाभ होगा? इसमें सन्देह नहीं कि यह होम रूल

अलीगढ़ नीति के विरुद्ध है अलीगढ़ नीति ही मुगलमानों की वास्तविक नीति है।' इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय स्वातंत्र्य सघन म मुगलमानों का विरोध तात्कालिक नहीं आरम्भ से ही रहा है।

## गांधी से प्रथम भेंट

२० अप्रैल १९०६ को गांधी ३३ दिन गए थे। सर्वप्रथम वे इंडिया हाउस में ही दो दिन रहे और वहाँ पर सावरकर से उनकी भेंट हुई। किन्तु तीसरे दिन बिना कोई कारण बताये इंडिया हाउस में लंदन के अलीगढ़ सलिल होटल में चले गए। श्री धनंजय कीर ने अपनी पुस्तक 'महात्मा गांधी पोलिटिकल सेंट एण्ड अनआम्ब प्रोफ' के पृष्ठ १०२ पर लिखा—'इतना ही नहीं इस पचासवाँ होटल में पाँच सप्ताह रहे, जिसके खर्च के विषय में सोच कर ही सिहरन होती है, गांधी ने होटल सौदय का भी कई बार केश सज्जा भी कराई। सलून वाले के सुझाव पर, कि इस सज्जा में विशेष प्रकार के मर्ग शैम्पू से बाल सवारन पड़ेगें, गांधी ने तुरन्त दो पाण्डे दकर वह शैम्पू भी मंगा डाला। बच हुए शैम्पू की बोतल उठाने अफीवा में अपनी आनिषय धीमती पोलक की भेंट कर दी। केश सज्जा और शैम्पू की यह घटना पोलक परिवार के लिए हमने हँसान की स्थायी सामग्री बन गई।"

सेसिल होटल में ठहरने के बाद भी श्यामजी तथा सावरकर से मिलने के लिए गांधी इंडिया हाउस आते रहे और श्यामजी को सावरकर के प्रभाव से मुक्त करने का हुम्नयन करते रहे। किन्तु उसमें उनकी सफलता नहीं मिली। उसके बाद भी जब-जब वे लंदन गए इंडिया हाउस में सावरकर से मिले, उनसे वार्तालाप भी हुआ, किन्तु दोनों में मतभेद बना रहा।

## नेहरू लन्दन में

इसी प्रसंग में एक और बात का भी यहाँ पर उल्लेख कर दें। हमने लिखा है कि लंदन में श्री इंडिया सोसाइटी की साप्ताहिक बैठकें हुआ करती थी और अधिकांश भारतीय छात्र उसमें भाग लेते थे। इन साप्ताहिक बैठकों के अतिरिक्त वे शिवाजी, गुरु गोविंदसिंह गुरु नानक, राणा प्रताप आदि की जयन्तियाँ मनाने के साथ साथ भारतीय पक्ष और त्योहारों तथा समारोहों का भी आयोजन किया करते थे, जिसमें ब्रिटेन के सभी कोनों से भारतीय विद्यार्थी आकर भाग लेते थे। किन्तु कुछ पण्डित जवाहरलाल नेहरू जैसे विद्यार्थी भी वहाँ थे जो इन समारोहों में सम्मिलित नहीं होते थे। मोतीलाल नेहरू नहीं चाहते थे कि उनका लाडला किसी सकट में पड़े। उन्होंने अपने पुत्र का इसकी हिदायत की थी।

अपने विचारों के प्रचार प्रसार के लिए सावरकर पम्फलेट लिखकर प्रकाशित करते थे। वे इटली के क्रांतिकारी मजिनी से बड़े प्रभावित थे। उन्होंने मराठी में मजिनी के लिखी और उस पाण्डुलिपि को उन्होंने अपने बड़े भाई बागाराव सावरकर

के पास नासिक भेज दिया था। बाद में उसको पूना से प्रकाशित किया गया। नासिक और पूना जैसे नगरों में इस पुस्तक का ऐतिहासिक अभिनन्दन हुआ। सिखों का इतिहास नामक एक अन्य पुस्तक भी सावरकर ने लिखनी आरम्भ की। जिसको लिखन में चार वर्ष लग और १९१० में अन्ततः यह पुस्तक पेरिस में पूर्ण हुई।

मैजिनी के जीवन चरित्र की लोकप्रियता से अंग्रेज सरकार घबरा गई। उसे प्रतिबन्धित कर दिया गया और उसने जाने कहाँ कहाँ से उसकी प्रतियाँ खोज-खोज उन सबको नष्ट कर दिया। हजारों प्रतियाँ नष्ट कर देने के बाद भी उसकी कुछ सौ प्रतियाँ फिर भी सुरक्षित रह ही गई।

महाराष्ट्र में सावरकर की 'मैजिनी' का असामान्य ख्याति प्राप्त हुई थी। महाराष्ट्र के प्रमुख विद्वानों वित्तका लेखकों, पत्रकारों ने इसका हृदय से स्वागत किया। यहाँ तक कि सर वेल्लेटाइन बिगेल ने इसको राष्ट्रीयता की पाठ्यपुस्तक के नाम से अभिहित किया था।

सिखों का इतिहास लिखने के लिए सावरकर ने विशेष रूप से गुरुमुखी का अध्ययन किया था और फिर उसके बाद उहोन आदि ग्रन्थ, पथ प्रकाश, मृत्यु प्रकाश, विचित्र नाटक आदि आदि सिख गुरुआ और विचारका द्वारा लिखित अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया। आरम्भ में उन्होंने सिख इतिहास से सम्बन्धित छोटे छोटे पैम्फलेट लिखे। इनको सिख सिपाहियों में वितरित किया गया। किन्तु अंग्रेज सरकार की आँखा से यह किस प्रकार छिपा रह सकना था। उसने उन सभी पत्रों को प्रतिबन्धित कर दिया और सिख सनिकों की चेतावनी दी गई कि वे ऐसे पत्रों से दूर रहें।

## १८५७ की स्वर्ण जयन्ती

### लन्दन में दूसरा वर्ष

उसके बाद आया मई १९०७। मई मास इंग्लैंड जैसे शीत प्रधान देश के लिए वसन्तागम का प्रतीक होने से बड़ा आनन्द और उत्साह का मास माना जाता है। इस अवसर पर स्थान स्थान पर मनोरंजन के रंगारंग कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं, लाख नृत्य होते हैं, सौंदर्य प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं। इसके माध्यम ही इंग्लैंड में प्रथम मई का दिवस 'थैमस गिविंग डे,' के रूप में मनाया जाता है। तत्कालीन अंग्रेज शासक यह मानते थे कि उस दिन उठे हुए भारत में 'गदर' आन्दोलन को कुचल लिया था।

अंग्रेजों के लिए १९०७ का मई दिवस और भी अधिक महत्व का इसलिए हो गया था क्योंकि उस दिन वे भारतीय क्रांतिकारियों को दबाने की स्वर्ण जयन्ती मना रहे थे। डली टेलिग्राफ जैसे लन्दन के प्रख्यात दैनिक ने अपने पत्र के प्रथम पृष्ठ पर शीर्षक दिया था। पचास वर्ष पूर्व इस सप्ताह वीरतापूर्ण कृत्यों से एक साम्राज्य को सुरक्षित रखा गया था। न केवल इतना अपितु शासन की ओर से एक नाटिका का भी आयोजन किया गया था जिसमें रानी लक्ष्मी बाई और नाना साहिब जैसे क्रांतिकारी को हत्यारे और छुट्टे के रूप में दिखाया गया था।

इस विशेष 'धर्मवाद दिवस' पर न केवल लन्दन में अपितु भारत में भी अंग्रेज भक्त समाचार पत्रों में मानो एक से एक सज्जजन के साथ 'विजय विशेषांक' निकालने की होड़ सी लग गई थी। इन विशेषांक में जितने भी लेख प्रकाशित किए गए उन सब में भारतीय क्रांति स्वातंत्र्य समर तथा भारतीय वीरों एवं धीरावनाओं और दशक के लिए बलि हुए वीर पुरुषों की खूब जो खोलकर खिलियाँ उड़ाई गई थी।

भारत में विशेषतया दिल्ली में, एक सप्ताह तक अंग्रेजों और अंग्रेज भक्तों ने दिल खोलकर एक प्रकार में गदर सा ही मचा दिया था।

सरकार ने इस अपमानजनक दुष्प्रचार का उत्तर देने के लिये सावरकर न १८५७

के स्वातन्त्र्य समर की स्वर्ण जयन्ती मनान का निश्चय किया। १० मई १९०७ को भारतीयों ने इंग्लैंड में सत्रायें की, व्रतोपवास विये, प्रतिज्ञायें की और सबने अपने सीने पर '१८५७ के शहीदों की जय' के बैज लगाए। सभी विद्यार्थी उन बैजों को लगाकर अपने अपने कॉलेज और युनिवर्सिटी में गए। इंडिया हाउस में इस अवसर पर विशेष आयोजन किया गया। उस दिन 'भवन' की अत्यंत मुरुचिपूर्ण रीति से मजाया-संवारा गया था। सुन्दर सज्जित मंच पर श्रान्ति के योद्धाओं और हुतात्माओं के आदमकद चित्र रहे गए। योरोप के कोने-कोने से लगभग २०० विद्यार्थी इसमें सम्मिलित हुए थे।

समारोह का आरम्भ राष्ट्रीय गान से हुआ। उच्चस्वर से 'वंदे मातरम' का घोष किया गया। उस समारोह के अध्यक्ष राणा साहब थे। वे अपने कुछ साथियों के साथ ठीक साढ़े चार बजे पधार गए। मादाम कामा स्वयं उपस्थित नहीं हो सकी थी, राणा साहब उनका सहाय्य लेकर आए। उन्हें सभा में पढ़कर सुनाया गया। उसी अवसर पर सावरकर ने १८५७ के गदर को 'भारत का प्रथम स्वतन्त्र्य समर' परिभाषित किया। भारत के श्रान्तिवीरों को सभी वक्ताओं ने गावनीनी उद्वाजलि अर्पित की। भाषणोपरान्त कुछ छात्रों ने अपनी टोपियाँ निकाल कर चढ़ाएकत्रित करना आरम्भ किया तो वहाँ उपस्थित जनों में जिसका पाम जो था उसने उस टोपी में डालकर भारतीय स्वातन्त्र्य समर के प्रति अपनी निष्ठा और श्रद्धा प्रदर्शित की। अंत में प्रसाद वितरण में सभा का समापन हुआ।

देशभक्त विद्यार्थी जब बाजारा में निकले तो कुछ मिरकिरे अंग्रेजों में उनकी कहालुनी होने लगी। कालेजों और युनिवर्सिटियों के प्रवक्ताओं ने भारतीय विद्यार्थियों की टोकाटाकी की। हरनामसिंह और आर०एम० खान ने तो अपने कॉलेज के प्राचार्यों द्वारा श्रान्तिवीरों के प्रति अपमानजनक शब्द कहने पर विरोधस्वरूप कक्षा का बहिष्कार कर दिया। स्थान-स्थान पर भारतीय छात्रों की अवज्ञा गुण्डा से मुठभेड़ भी हुई। इस प्रकार इस काण्ड ने जादोसन का रूप ग्रहण कर लिया।

## स्वातन्त्र्य समर की रचना

सन् १८५७ में भारत में जो सैनिक विद्रोह हुआ था उसको ब्रिटिश सरकार ने 'गदर' का नाम दिया था। किंतु सावरकर उसको आरम्भ से ही भारत का प्रथम स्वातन्त्र्य समर कहने आए थे। जब लंदन में मई १९०७ में इस समर की स्वर्ण जयन्ती मनाई गई उसके बाद से ही सावरकर इस महान घटना का सच्चा और विस्तृत इतिहास लिखने के लिए अधीर हो रहे थे। इटली के स्वतन्त्रता संग्राम का उन्होंने विस्तार में और मार्मिक शब्दां भवणन कर एक पुस्तिका का प्रकाशन करवा लिया था। अब वे अपने देशवासियों को प्रथम स्वतन्त्र्य समर की कथा सुनाने में उनकी श्रान्ति की भावना जागृत कर स्वतन्त्रता के लिए मर मिटने की भावना भरना चाहते थे। सावरकर का मत था कि अब तक अधिकांश भारतीय इतिहास या तो विदेशियों द्वारा लिखा गया है या फिर उन्होंने अपने भाड़े के टट्टूओं को लिखाने के लिए प्रोत्साहित किया है। उन्होंने



जो इतिहास लिखा उसमें उन्होंने ब्रिटिश सरकार के गुणगान में ही इतिहास के पन्नों को काला किया है। वह सब मिथ्या और भ्रमात्मक इतिहास है।

सावरकर इतिहास को राष्ट्रीय दृष्टिकोण से लिखन की आवश्यकता को अनुभव कर रहे थे। अपने तब की पुष्टि में वे १८५७ की गौरव पूर्ण क्रांति का उदाहरण प्रस्तुत किया करते थे। इस अंग्रेज अधवा उनके पिछड़े इतिहासकारों ने 'केवल मुठ्ठी भर सैनिकों का विद्रोह' या 'गदर' कहकर इतिहास की खिल्ली उड़ाई थी। सावरकर का यह तर्क उनके सहयोगी इतिहासकार रमेशचन्द्र दत्त और के०पी० जयमवाल को नितांत खरा लगा। यद्यपि गोपालकृष्ण गोखले भी उस समय लंदन में विद्यमान थे किन्तु उनका यह तर्क किंचित भी नहीं भाया। यही गोखले का सात्तर में गांधी के राजनीतिक गुरु कहलाए। अस्तु।

सावरकर ने जब निश्चय कर लिया तो उसे कार्यान्वित करने के लिए बड़ा जान से जुटा भी गए। जिस समय सावरकर लंदन गए थे। उस समय 'इंडिया आफिस' के पुस्तकालय की प्रबंधक उनके मित्र श्री मुखर्जी की पत्नी थी। उनके माध्यम से सावरकर को उस पुस्तकालय में प्रवेश प्राप्त हो गया। यद्यपि श्रीमती मुखर्जी स्वयं अंग्रेज महिला थी किन्तु तदपि उन्होंने इस विषय में सावरकर की यथाशक्ति सहायता की। उस पुस्तकालय में सावरकर ने न जाने कितने ग्रंथ, कितनी फाइलें और कितने हारिकार्डों के ढेर पढ़ डाले। अनेक गोपनीय कागजात उनको पढ़ने को मिले, कितने हार्ड ससद की कागजाती के गुप्त पत्र तथा सैनिक पत्रों की पढ़न का भी सुयोग उनको वहाँ पर मिल गया।

इसके अनिवार्य वे ब्रिटिश म्यूजियम के पुस्तकालय में भी जाते रहे। वहाँ भी उनको अनेक पुस्तकें तथा रिकार्ड पढ़न और देखने का अवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार इन दोनों पुस्तकालयों में १८५७ की क्रांति से सम्बंधित ऐसा कोई भी दस्तावेज नहीं रहा होगा जो कि सावरकर की दृष्टि से न गुजरता हो। अनेक इतिहास ग्रंथ, दैनिकी, यात्रा वृणन सैनिक पत्राचार युद्ध सम्बंधियों के विवरण, चित्र, मानचित्र, अदालती कागजातियाँ, समाचार पत्रों की कतरनें तथा अन्य जो भी सामग्री हो सकती थी वह सब उनको वहाँ देखने और पढ़न को मिला।

पूरे अठारह मास तक सावरकर ने इन पुस्तकालयों को छान मारा था। उन्होंने राजनीतिकान्त द्वारा लिखित बंगला पुस्तक 'सिपाही का बलिदान' भी पढ़ी। इस प्रकार निरन्तर प्रयत्न के उपरान्त अप्रैल १८५८ में उन्होंने अपना मराठी ग्रंथ पूर्ण कर लिया। सावरकर ने अपनी यह पाण्डुलिपि नासिक में अपने बड़े भाई बाबाराय सावरकर के पास भेज दी। गुप्तचरों का किसी प्रकार इसकी भनक मिल गई तो उन्होंने नासिक में अनेक प्रेसों को छान मागा किन्तु पाण्डुलिपि हाथ नहीं लगी।

भारत में इस प्रकार की रचना को प्रकाशित करने के लिए बाबाराय सावरकर माहम और साधन जुटा भी लेते किन्तु कोई मुद्रक उसको मुद्रित करने के लिए तैयार ही नहीं हुआ। तब बाबाराय ने निराश होकर पुस्तक को सावरकर ने एक पत्र

स्थित मित्र के पाम भित्रवा दिया। उन्होंने जर्मनी में इस पुस्तक के प्रकाशन का यत्न किया, क्योंकि जर्मनी में ससृष्ट छापने वाले प्रेस थे, अतः वे मराठी पुस्तक भी छाप सकते थे। किन्तु वहाँ के कम्पोजीटरो ने उसके कम्पोज करने में नितान्त कठिनाई अनुभव की। परिणामस्वरूप जर्मनी के प्रेस भी उसको प्रकाशित करने में असफल रह।

उधर लंदन में अभिनव भारत के कुछ बुद्धिशील सदस्यों में से डब्ल्यू० बी० फडके जैसे युवको ने अग्यर के मागदशन में इसका अंग्रेजी अनुवाद कर डाला। अनुवाद पूर्ण होने पर अभिनव भारत के सदस्यों ने परस्पर कुछ धन एकत्रित कर उसे अंग्रेजी में प्रकाशित करने का निश्चय किया। किन्तु ब्रिटिश गुप्तचर विभाग के कानों में जब इसकी भनक पड़ी तो इसका लंदन में मुद्रण भी असम्भव हो गया। अतः वह अंग्रेजी पाण्डुलिपि भी पेरिस भेज दी गई। किन्तु उन दिनों तो फ्रांस सरकार भी ब्रिटिश सरकार से डरती थी। परिणामस्वरूप वहाँ भी इसका प्रकाशन सम्भव नहीं हो पाया। वहाँ के गुप्तचर भी अब इसकी टोह में रहने लग थे।

### प्रकाशन पूर्व प्रतिबन्ध

ब्रिटिश सरकार को यह भलीभाँति विदित हो गया था कि सावरकर ने 'स्वातन्त्र्य समर' नामक पुस्तक मराठी में लिख डाली है और उसका अंग्रेजी अनुवाद भी कर लिया गया है। किन्तु उसको न तो कहीं से मराठी पाण्डुलिपि प्राप्त हुई और न ही उसका अंग्रेजी अनुवाद। तदपि ब्रिटिश सरकार सावरकर और उनके क्रांतिकारी विचारों में अब तक भलीभाँति परिचित तो हो ही चुकी थी। अतः उस पुस्तक के प्रकाशित हो जान की कल्पना मात्र से ही सरकार और उसके गुप्तचर भयभीत तथा प्रकम्पित हो रहने लगे थे। सरकार को तो यही विश्वास था कि इस ग्रन्थ का अब तक कहीं और किसी भी भाषा में प्रकाशन नहीं हुआ है अतः उसने उस अप्रकाशित ग्रन्थ पर ही प्रतिबन्ध लगा दिया। इस प्रकार की यह घटना विश्व के प्रकाशन के इतिहास में अभूतपूर्व सिद्ध हुई। सरकार का खोखलापन और असमयता का प्रमाण भी इस घटना से मिल गया। ब्रिटिश सरकार ने जब प्रतिबन्ध लगा दिया तो फिर भारत-सरकार किस प्रकार पीछे रहती, उसमें भी उस अप्रकाशित पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

प्रकाशन पूर्व प्रतिबन्ध लगान की भी एक छोटी सी भूमिका है। हुआ यह कि ज्यों ज्यों सावरकर अपनी पाण्डुलिपि तैयार करते जाते थे, त्यों त्यों उसके कुछ अंशों को व 'फ्री इंडिया सोसाइटी' की साप्ताहिक बैठकों में सुनाया भी करते थे। स्वीटलैंड याडों को इसकी भनक वही से लगी थी। उसने इसको हथियान का उपक्रम किया। सावरकर भी भतक थे। स्वीटलैंड याड के गुप्तचरों ने सोसाइटी में सावरकर के भाषणों को सुना था और उससे उन्होंने पुस्तक की विषय वस्तु की भयकरता का अनुमान लगा लिया था और तब से वे उसको प्राप्त कराने की टोह में लगे रहे और अपने इस प्रयत्न

मे कुछ-कुछ सफल भी हो गए। क्योंकि कुछ ही दिना में सावरकर १ दया कि जन्म मूल ग्रंथ मे दो अध्याय सुप्त हो गए हैं। कुछ दिनों में उनको यह तो विदित हो गया कि किसी न किसी माध्यम में स्वाटलड याड के गुप्तचर विभाग में व अध्याय पहुँच गए हैं किन्तु उन माध्यम का ज्ञान भी पता नहीं चल पाया। तदपि व इससे निराश नहीं हुए उन्होंने उन अध्यायों को पुनः पूरा किया और भारतीय कस्टम तथा डाक विभाग के मित्रों में उसको किसी प्रकार बचाकर बाबाराय सायणर के पास पहुँचाने में व सफल हो गए।

पुस्तक की पाण्डुलिपि को ही प्रतिवर्धित करने की यह पृष्ठभूमि थी। यहाँ तक कि कुछ ब्रिटिश समाचार पत्र अपनी सरकार के इस दुष्कृत्य की सराहना करने में यत्नरत भी रहे थे। सावरकर न ब्रिटिश, अमेरिकन और योरोपियन पत्रों में सरकार के इस कृत्य की निंदा के वक्तव्य भेज थे।

### होलैण्ड में प्रकाशित

१९०७ में प्रारम्भ हुआ यह प्रयत्न सन् १९०९ में होलैण्ड में जाकर किसी प्रकार कुछ सफल हुआ। ब्रिटिश सरकार और फ्रांस सरकार के गुप्तचर अपने अपने दशा में इसकी पाण्डुलिपि की खोज करते रहे किन्तु सावरकर उन सबकी आँखों में धूल झाँक कर पुस्तक की पाण्डुलिपि को होलैण्ड भेज कर वहाँ मुद्रित कराने में सफल हो गए। वहाँ से सभी मुद्रित प्रतियों को फ्रांस पहुँचा दिया गया। मुद्रित प्रतियों को गुप्त रूप से रख कर उन्हें वितरित करने की व्यवस्था होन लगी। पुस्तकें पेरिस में राजा के घर पर रखी गई थी। इस प्रकार सावरकर जहाँ एक ओर इतिहास लिख रहे थे वहाँ स्वयं के इतिहास का निर्माण भी कर रहे थे।

पुरतक के प्रसार का इतिहास भी उतना ही रोमांचकारी रहा। किसी न किसी प्रकार से पुस्तक न केवल भारत अपितु चाइना, जापान और अमेरिका तक पहुँचा दी गई थी। जहाँ यह ३०० ३०० रुपये तक में बिकी। अंग्रेजों ने अपने मित्रों को अनुपलब्ध उपहार के रूप में इस पुरतक को प्रदान किया। मोहम्मद अली जिन्ना ने अपने मित्र सर चार्ल्स क्लोवलड से माग कर इस पुस्तक को पढ़ा था। योरोपियन लखक और इतिहासकारों ने इस पुस्तक को बड़े चाव और लगन से पढ़ा। इस प्रकार यह पुस्तक जन जन में चर्चा का विषय बनती गई और इसके अनक सस्करण अनक भाषाओं में प्रकाशित हुए।

पुस्तक पर प्रतिपक्ष लगाने की आज्ञा जब सावरकर को बताई गई तो उन्होंने उसके विरोध में सदन टाइम्स में एक पत्र प्रकाशित करवाया। उस पत्र में उन्होंने लिखा 'सरकार स्वयं यह स्वीकार करती है कि उसको इस बात की जानकारी नहीं है कि ग्रंथ की मूल पाण्डुलिपि मुद्रित होने के लिए कहा गई है। अतः सरकार यह किस आधार पर आरोप लगा रही है कि यह ग्रंथ राजद्रोह को प्रेरणा देने वाला भयंकर साहित्य है?' वह इस ग्रंथ के मुद्रित होने से पूर्व ही ऐसी टिप्पणी किस आधार पर कर रही है?

इसके तो केवल दो ही कारण हो सकते हैं कि या तो यह पाण्डुलिपि सरकार के ही पास है और यदि नहीं है तो सरकार का यह कृत्य नितांत ही अनुचित और दमनकारी है। यदि सरकार के पास इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि है तो उसे चाहिए कि वह राजद्रोह के आरोप में मुझे 'यायालय के समक्ष उपस्थित करे। यदि सरकार के पास वह पाण्डुलिपि नहीं है तो वह बताए कि किस आधार पर वह यह कहती है कि इस ग्रन्थ में राजद्रोह का प्रतिपादन किया गया है ?'

लॉरेन टाइम्स ने इस पत्र को प्रकाशित करते हुए अपनी टिप्पणी में लिखा 'जब सरकार न स्पष्ट रूप से अपनी उच्छ खलता को प्रकट करते हुए इस ग्रन्थ पर प्रतिबंध लगाने का असाधारण पग उठाया है तो यह निश्चित समझ लेना चाहिए कि 'बाल में कुछ बाला' अवश्य है।'

### फ्रेंच संस्करण

इस पुस्तक का फ्रेंच संस्करण १९१० में प्रकाशित हुआ। यह फ्रेंच अनुवाद मैडम कामा और एम पी टी आचाय ने किया था और उसका प्राक्कथन फ्रेंच क्रांतिकारी तथा पत्रकार ई० पिरियोन ने लिखा था। उसके कथनानुसार पुस्तक में हिंदू मुस्लिम एकता की बान बही गई थी और इस राष्ट्रीय जागरण का नाम दिया था। पुस्तक वास्तव में बड़ी ही कायमयी है। पुस्तक में लेखक के नाम के स्थान पर 'एक भारतीय राष्ट्रवादी' लिखा गया है किन्तु मैं भलीभांति जानता हूँ कि इसको सावरकर ने लिखा है।' यह प्राक्कथन जब पेरिस की किसी पत्रिका में प्रकाशित किया तो सरकार ने पत्रिका के उस अंक को ही जप्त कर लिया।

विभिन्न सरकारों द्वारा किए गए इन भयंकर प्रहारों से इन क्रांतिकारियों का माहस मंद नहीं पड़ा। लाला हरदयाल भाग्य कामा और चट्टोपाध्याय आदि ने इस पुस्तक का द्वितीय अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित करने का निश्चय किया। उनको सफलता मिली और उस संस्करण की बिक्री से प्राप्त राशि का उपयोग क्रांतिकारी आंदोलन की सहायता के लिए किया गया। लाला हरदयाल ने अपने अमेरिका में प्रकाशित होने वाले पत्र 'गदर' में इसका हिन्दी उर्दू और पंजाबी अनुवाद प्रकाशित किया था।

कालांतर में किसी प्रकार इस ग्रन्थ की मूल मराठी प्रति पेरिस में मादाम कामा के पास भेज दी गई। गुप्तचरों को किसी प्रकार भी इसका पता न लग सकने के लिए उसकी सुरक्षा की दृष्टि में उन्होंने उस पाण्डुलिपि को 'जेबर बैंक ऑफ पेरिस' में सुरक्षित रखवा दिया। यद्यपि उसके कुछ बाल बाद ही विश्व युद्ध आरम्भ हुआ और जिस नगर के जिस बैंक में यह प्रति सुरक्षित थी वह नगर ही ध्वस्त कर दिया गया। किन्तु उससे पूर्व ही सावरकर के एक गोदा वासी मित्र डाक्टर कोटिनो का जब फ्रांस से निष्कासन हुआ तो वे उस पाण्डुलिपि को अपने साथ अमेरिका ले जाने में सफल हो गए थे।

## राजभक्त नेहरू की पराजय

ऐसा नहीं कि योरोप में रहने वाले सभी भारतीय छात्र देशभक्त ही थे। उनमें से अधिकांश ऐसे भी थे जो इंग्लैंड में पढाई समाप्त करके भारत में उच्च अधिकारी बनने की आकांक्षा से वहाँ गये थे। ऐसे विद्यार्थी इस प्रकार के समारोहों में सम्मिलित नहीं होते थे। जवाहरलाल नेहरू उनमें से एक थे। इस ओर हम पहले ही इंगित कर आये हैं। जहाँ प्रातिवीर सदन की सड़का, रेलो, कॉलेजो आदि में अंग्रेज सेना, अंग्रेज नागरिक और अंग्रेज अध्यापकों में सघर्ष कर रहे थे, वहाँ ये दबू छात्र अपने अपने कमरों में दुबके हुए बैठे रहते थे। उनमें बाहर निकलने का साहस नहीं था।

मात्र छिपकर बैठे रहने से तो इन कायरों की राजभक्ति का प्रदर्शन हो नहीं सकता था अतः जब मामला कुछ शांत हुआ तो इन राजभक्त तथा कथित भारतीय छात्रों की सदन के कैन्सटन हॉल में एक सभा हुई। उसमें इंडिया हाउस तथा थयान्स स्पांनों पर सम्पन्न स्वर्ण जयंती से सम्बन्धित कार्यक्रमों पर खेद प्रकट किया गया। किंतु तदपि किसी प्रकार का प्रस्ताव पारित करने में वे सक्षम असमर्थ रहे। ज्योंही कोई 'राजभक्त' कुछ बोलने के लिए उठता, शोर मचाकर उसको चुप करा दिया जाता। थोड़ा-बड़ा तब उसका स्वर पहुँच ही नहीं पाता था। परिणामस्वरूप बिना कोई प्रस्ताव पारित किया यह सभा विसर्जित करनी पड़ी। हाँ, इतना इनको लाभ हुआ कि ये सदन की गुप्तचर पुलिस की मजरा में राजभक्त के रूप में चढ़ गये।

ब्रिटिश समाचार जगत इन हलचलों में अछूता नहीं रहा। उन दिनों प्रसिद्ध पत्र 'द टाइम्स' और 'जान बुल' ने साबरकर के पाम अपने विशेष प्रतिनिधि भेजे। तब तक साबरकर का न कहीं चित्र छपा था और न किसी सावजनिक सभा में उनका भाषण ही हुआ था जिससे कि समाचार पत्र जगत उनकी छवि देख पाता। किंतु उनके प्रातिविक कार्यों से सबने अपने अपने मन में उनकी एक विशेष आकृति अंकित कर ली थी। वे कल्पित यही सोचते थे कि ऐसी सिंह गजना करने वाला यह व्यक्ति स्वयं भी सिंह की भाँति सुपुष्ट शरीर और वैसे ही डीलडोल वाला होगा। पर ज्योंही इंडिया हाउस में जाकर वे साबरकर से मिले तो उनकी देखत ही उनकी यह प्रतिमा भग्न हो गई। उनके मम्मुख एक मोहक आकृति, मधुर स्वर वाला सुसंस्कृत एवं सुशील युवक उभा था।

कालांतर में 'द टाइम्स' के सम्वाददाता ने उनके विषय में छरहरे शरीर में विद्युत की भी कौंध' वाला लिखा तो जान बुल' के सम्वाददाता ने इस व्यक्ति के सलाट पर एक विशिष्ट ओजसिता की आभा देखी। मानचेस्टर गार्जियन ने उसे 'मर्मपित व्यक्ति' की सज्ञा दी कि जिसके समक्ष कोई भी शिथिल पड़ सकता है।' उधर 'डेली न्यूज' ने जहाँ एक ओर साबरकर की विचारधारा की कड़ी आलोचना की वहाँ दूसरी ओर उसने उनके 'खनकत स्वर' की सराहना की।

ब्रिटिश अधिकारियों को जब इन सब समारोहों का विवरण मिला और समाचार पत्रों की टिप्पणियाँ पढ़ने का मिली तो वे चौकन्ने हो गए और पुलिस विभाग को

निर्देश दिया गया कि सावरकर की गतिविधियों पर सतकतापूर्ण निगरानी रखी जाय। सावरकर को इसकी जानकारी दी गई तो उन्होंने ध्वग्य करते हुए कहा, 'इन लोगों के स्वास्थ्य के लिए यदि इंडिया हाउस की जलवायु उत्तम है तो ठीक है।'

सावरकर की गतिविधियों पर इससे कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने रूस, फ्रांस, स्पेन चीन, अमेरिका, जर्मनी आदि के समाचार पत्रों में भारतीय स्वातंत्र्य समर से सम्बंधित अनेक तकपूर्ण लेख लिखकर प्रकाशित कराये। भारत में भी वे कलकत्ता के 'युगांतर' और बम्बई के 'विहारी' के लिए लेख भेजते रहे। उनके लेखों से सभी देशों के राजनीतिज्ञों में भारतीय स्वतंत्रता के लिए भूमि तयार होन लगी। अनेक पत्रकार अपने अपने पत्र में भारतीय स्वाधीनता के समर्थन में लेख लिखने लग। उनका निष्कर्ष यही होता था कि भारतीयों के स्वाधीन होने की भाग सवधा 'यायोचित' है। कुछ पत्रों में तो यहाँ तक लिखा कि 'अब उन्हें अधिक समय तक पराधीन नहीं रखा जा सकता।'

ब्रिटिश समाचार पत्रों में जब इन आतिशकारियों की गतिविधियों की खुलकर चर्चा होने लगी तो अंग्रेज अधिकारियों की दृष्टि श्यामजी कृष्ण वर्मा पर गई। उसका कारण यह था कि ये सारी गतिविधियाँ इंडिया हाउस से संचालित होती थीं और इंडिया हाउस श्यामजी कृष्ण वर्मा के आधिपत्य में था। इस प्रकार जहाँ एक ओर समाचार पत्रों में भारत की स्वतंत्रता के सम्बंध में लेख प्रकाशित होने लगे वहाँ दूसरी ओर इन आतिशकारियों, विशेषतया 'श्यामजी कृष्ण वर्मा की गतिविधियों के विरुद्ध भी लेख प्रकाशित होने लगे। सरकार ने सवप्रथम उनके समाचार पत्र 'इंडियन सोशियो-लोजिस्ट' को प्रतिबंधित कर दिया।

सरकार की इस प्रकार की कामवाही से 'श्यामजी सतर्क हो गये और उन्होंने भी अपनी रणनीति में परिवर्तन आरम्भ कर दिया। उन्होंने विचार किया कि नई छात्र-वासियाँ में धन लगाने की अपेक्षा कुछ नए भारतीय संगठन बना कर उनमें धन लगाया जाय। इसके लिए उन्होंने दस हजार रुपए निर्धारित कर दिए। अपनी इस योजना के विषय में उन्होंने भारत में बाल गंगाधर तिलक, विपिनचंद्र पाल और लाला लाजपत राम, जो उन दिनों बाल-पाल-लाल नाम से विख्यात हो गए थे, को पत्र लिखा तो उन तीनों ने इसमें अपनी सहमति प्रकट की।

यह संयोग की ही बात थी कि जुलाई १९०७ ई. मिस्र के प्रख्यात पत्रकार तथा काहिरा में अल बीबा' के सम्पादक मुस्तफा कामिल लंदन पहुँचे। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने निश्चय किया कि वे उनमें जाकर मिलेंगे और मिस्र की क्रूर सत्ता से आतंकित मिस्र वासियों के प्रति अपनी सवेदना व्यक्त कर उनकी भी भारत के प्रति सहानुभूति अर्जित करेंगे। यह भी संयोग की ही बात थी कि पैन इस्लामिक सोसाइटी की ओर से २४ जुलाई १९०७ को आइटरियन रेस्टोराँ में विशाल भोज का आयोजन किया गया। इसमें जहाँ अन्धाय लोगों को आमंत्रित किया गया था वहाँ श्यामजी कृष्ण वर्मा भी उन आमंत्रितों में से एक थे।

श्यामजी कृष्ण वर्मा न इस अवसर पर उनको बधाई देते हुए उस दिवस को उहोने 'स्वर्णम दिवस' घोषित किया और मुस्तफा कामिल को अपनी शुभकामनाएँ दत्त हुए उहोने उहे 'मिस्र की राष्ट्रीय एकता का आधार स्तम्भ' और 'स्वतंत्रता का उन्नायक' कहा। मुस्तफा से उनकी यह भेंट लाभकारी सिद्ध हुई।

हम पहले ही लिख आये हैं कि इटाली हाउस में भारतीय स्वातन्त्र्य समर की जो स्वर्ण जयन्ती मनाई गई थी उसने काफी तहलका मचा दिया था। उसी समय सयोग में श्यामजी कृष्ण वर्मा और सावरकर के एक आयरिश मित्र ह्यू थो० डानिल ने एक बहुत ही विचारोत्तेजक लेख लिखा था। श्यामजी ने स्वर्ण जयन्ती की पूर्व संध्या को वह लेख प्रसारित किया था। उस लेख में १८५७ की भारतीय क्रांति में भारतीय सेना एवं नागरिकों का गुणगान करने के साथ साथ अंग्रेजों द्वारा किए गए दमनकारी जघन्य कृत्यों के लिए उनकी घोर भत्सना भी की गई थी। उसमें कलकत्ता, मेरठ और दिल्ली की गौरवपूर्ण घटनाओं के उल्लेख के साथ साथ यह भी लिखा था कि अंग्रेजों ने जिस सेना के बलबूते पर इस क्रांति को विफल करने का दावा किया है उसके तीन चौथाई सैनिक भारतीय ही थे जिन्हें अंग्रेज अधिकारियों ने चर्बी वाले कारतूसों के विषय में अधिकार में रखा था। यह एक प्रकार से उनके साथ छल-कपट का व्यवहार था।

## भारत में हलचल

प्रसंगवशान यह यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि यद्यपि भारत में भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम की स्वर्ण जयन्ती का कोई कार्यक्रम आयोजित नहीं किया गया था तदपि जनकस्थानों पर अनेक भारतीयों ने क्रांति से सम्बन्धित वीरों को श्रद्धाजलियाँ अर्पित कर उनके आरम्भ किए संघर्ष को जारी रखने की शपथ ली थी। लाड मिटो को जब यह चौकाने वाला समाचार मिला तो उसने भारत में बहुत कड़े सुरक्षा उपाय किए। इतना ही नहीं उसने ६ मई को ही लाहौर में साला लाजपतराय को बन्दी बना लिया और फिर कुछ दिन बाद २ जून को सरदार भगतसिंह के चाचा सरदार अजीत सिंह को भी बन्दी बनाकर दोनों को चुपचाप माण्डले जेल भिजवा दिया। इसमें भारत में भी स्थिति दड़ी विस्फोटक बन गई। ११ मई को सरकार ने एक अधिनियम के द्वारा जन सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इन दो गिरफ्तारियों में देश भर में राय की लहर दौड़ गई।

भारत का लाल बन्दी बना कर विदेश भेज दिया गया हो और श्यामजी कृष्ण वर्मा शान्त बैठे रहें यह किस प्रकार सम्भव था। उन्होंने इस विषय पर बड़े जोरशुर्वा लेख लिखकर अंग्रेज सरकार की भत्सना करते हुए भारतीयों के मानस को भी मक झारा था। अपने एक लेख में उन्होंने लिखा 'साला जी का भारत से निवाला जाना साम्प्रत में अंग्रेजों का भारत से निवान जाने का पूर्व सन्केत है।'।

साला जी के बन्दी बनाए जाने पर पेरिस की सभा को सम्बोधित करते हुए

११ मई १९०७ को मादाम कामा ने गजत हुए कहा था, 'मुझे इस बात से बहुत ठेस पहुँची है कि साजपतराय जस सच्चे देशभक्त को उनके घर परिवार से छीन कर वदी बना दिया गया है। आप इन विदेशी शासकों के आशवासनों पर भूल से भी विश्वास न करें। यह हमारा हाल सुधारने की अपना हमारी खाल खींच रहे है। भारत के नर नारियो। आप इनके अत्याचार का विरोध करें। दासता के इस नरक में सड़ने से तो कहीं अच्छा है कि स्वतन्त्रता के लिए मिट जाय। उठो और स्वराज्य लेकर स्वतन्त्रता व समानता की स्थापना करो। अपन लिए और आन वाली पीड़ियों की खातिर उठो। मानव अधिकारों के लिए जूझ पड़ो और दुनिया को दिखा दो कि अब भी पूर्व में पश्चिम को सीख देने की क्षमता है। विशेषकर पश्चिम के उन अंग्रेजों को जिन्हें उही के एक प्रसिद्ध कवि ने 'सफेदपोश दरिद्र' कहा है।'

सावरकर ने ७ जून को इंडिया हाउस में एक सभा का आयोजन किया जिसकी अध्यक्षता श्यामजी कृष्ण वर्मा ने की। उस सभा में उन्होंने राज्य सचिव लॉर्ड मार्ले के कुछ भ्रूषतापूर्ण वक्तव्यों का हवाला देते हुए अंग्रेजी सरकार को आड़े हाथों लिया। इसी बीच कुछ एंग्लो इंडियन्स ने भारतीय नान्ति तथा इंडिया हाउस और उसके कर्ताधर्ता श्यामजी कृष्ण वर्मा के विरुद्ध कुछ लेख लिखे। सावरकर की दृष्टि उन लेखों पर गई तो उन्होंने श्यामजी कृष्ण वर्मा की ओर से उनका उत्तर दिया। उनके करारे उत्तरों से इंडिया हाउस में ही एक प्रकार से भीत युद्ध की सी स्थिति उत्पन्न हो गई। इतना ही नहीं लंदन तथा अन्य योरोपीय देशों में श्यामजी कृष्ण वर्मा और सावरकर के विरुद्ध लेखों की भरमार होने लगी।

स्ट्राटलैंड याद अर्थात् ब्रिटिश पुलिस इंडिया हाउस पर धीरे धीरे अपना शिकजा बसान लगा। श्यामजी कृष्ण वर्मा और सावरकर के घर खोसकर पड़े जान लग। कभी कभी छुट पुट छापे भी उनके कमरे में अथवा उनके कार्यालय में पड़ जाते। वर्मा जी सरकार के इन कारनामों के प्रति प्रणतया सजग थे, फिर भी दिनानुदिन स्थिति भयावह होती जा रही थी। वे इससे निस्तार पाने के लिए विचार करने लग। अन्त में अन्य कोई उपयुक्त उपाय न देखकर उन्होंने इंग्लैंड छोड़ देने का विचार किया।

### इंडिया हाउस के प्रभारी

यह निश्चय करत ही उन्होंने 'इंडिया होम रूल सोसाइटी' को ममटा और इंडिया हाउस का सारा काय भार सावरकर का सौंप दिया। यह सारा काय यद्यपि गुप्त रखा गया था तदपि उनके सभी हितचिन्तकों को उनका सदन छोड़ने और फ़्राम जान के विषय में जात था। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने सारा प्रबंध कर जून के प्रथम सप्ताह में सन्धन से प्रस्थान कर दिया। वे पेरिस पहुँच गए। वहाँ के राजनीतिक क्षेत्र में अब तक चर्चित हो चुके थे इसलिए वहाँ काय आरम्भ करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई।



## भारतीय स्वाधीनता का ध्वज

लन्दन के इंडिया हाउस के अब सावरकर ही सर्वोत्तम थे। काय सचालन को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सबप्रथम अपने साथियों और अपने विश्वस्त जनो की एक बैठक बुलाई। अब तक सभी यह अनुभव करने लगे थे कि लन्दन का वातावरण खुले रूप से सरकार का विरोध करने के लिए उपयुक्त नहीं रह गया है अतः इस काय को सुचारु रूप से सचालन के लिए अपनी कार्य प्रणाली में भी तदनुरूप परिवर्तन करना आवश्यक होगा। उन दिनों के सावरकर के प्रभाव के विषय में एम पी टी आचार्य ने लिखा— 'उस व्यक्ति में ऐसी मोहिनी थी कि बि बि एस अय्यर और साता हरदयाल जैसे व्यक्ति मात्र एक बार के हाथ मिलान पर ही न केवल उसके होकर रह गये अपितु उसने जो कहा वह कर गुजरने के लिए सन्नद्ध हो गए। न केवल साधारण व्यक्ति अपितु उच्चाधिकारी, व्यवसायी आदि सभी सावरकर के पवित्रतम उद्देश्य के प्रति अनुरक्त होकर उसके लिए कुछ भी त्याग करने के लिए तत्पर रहते थे।'।

इसी प्रसंग में बापट का कहना है कि 'मैंने पहले सोचा था कि मैं क्रान्तिकारी पत्रक लिख कर उनका वितरण करूँगा और इधर उधर जा कर लोगों को जागृत करने के लिए व्याख्यान दूँगा। यही मैंने अपना जीवन उद्देश्य बनाना चाहा था। किन्तु जब कुछ मास बाद सावरकर से मेरी भेंट हुई तो मैंने अपना कार्यक्रम बदल दिया और निश्चय किया कि परिस जाकर बम्बईनिर्माण की प्रक्रिया सीखूँगा। इसका मुख्य कारण यही था कि मैं जो लिखता और जो मैं अपने व्याख्यानों में कहता अथवा जिस ढंग से लिखता अथवा कहता वह तो सावरकर के लेख और व्याख्यान का जश भी न होता। सावरकर तो जन्म जात क्रान्तिकारी लेखक और वक्ता थे, इस लिए मैंने सोचा कि लिखने और बोलने का काय सावरकर के लिए छोड़ कर मुझे कुछ अन्य करना चाहिए।'।

सावरकर के दिना के इंडिया हाउस के वातावरण के विषय में आसफ अली ने लिखा था, 'मुझे आश्चर्य होता था कि सावरकर जैसा २०-२२ वर्ष का युवक किस प्रकार उन सबको जो कोई भी उनके सम्पर्क में आने दें, अपने वश में कर लेता था। उसमें शिवाजी का आत्मविश्वास दिखाई देता था।'।

## लेख एवं पत्रक

अपने मित्रों की उस बैठक में सावरकर न न केवल भारत में प्रचार पर अपितु विश्व में आचार्य दशा में किस प्रकार प्रचार किया जाय इस पर विचार विनिमय किया, जिससे कि उन देशों में जागरण को न भी भारत की स्वतंत्रता के लिए सहानुभूति अर्जित की जा सके। इसने लिए हर सम्भव प्रयास किया जाना चाहिए। इंग्लैंड का पहली मैन आयरमेट तथा सर्वोत्तम सावरकर का समर्थन बन गया था। सावरकर के लेख वहाँ के समाचार पत्रों में निरन्तर प्रकाशित होने रहते थे। उन्होंने 'यूरोप' के 'मैसिज अमेरिका', में भारतीय राजनीति पर प्रभावशाली रचनाएँ लिख कर भेजीं। पत्र न उनको प्रकाशित और सावरकर न अपने उन सत्रों का जमन पच, इटालियन, रूसी और पोर्चुगीज

आदि भाषाओं में अनूदित कराकर उन-उन देशों में उनकी प्रकाशित कराया। इंग्लैंड की गरीबी सरकार को जब पता चला कि 'गैलिक अमेरिका' में सावरकर के लेख प्रकाशित होते हैं और विश्वभर में उनको पढ़ा जाने लगा है तो उसने जम पत्र के भारत प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया। अब दशों में तो वह प्रतिबंध लगा नहीं सकती थी।

इस प्रकार विश्व के कोन-कोन में सावरकर का सन्देश पहुँचने लगा था। इस प्रसंग में एमिली ब्राउन ने अपनी पुस्तक 'हृदयालु हिन्दू रेवोल्यूशनरी एण्ड रेशनलिस्ट' में लिखा — सावरकर के मख में विश्व के देशभक्ता विश्वपतया नवयुवकों को भारतभूमि की मुक्ति के लिए प्राण-पण से जुट जान की प्रेरणा मिलती थी।'

सावरकर चाहते थे कि विश्व राजनीति में भारत की स्वाधीनता का विषय सदा जीवन्त बना रहे। इस निमित्त २२ अगस्त १९०७ को जमनी के स्टुटगार्ट शहर में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय सोशलिस्ट कांग्रेस के लिए मादाम कामा और सरदारसिंह राणा को प्रतिनिधि बनाकर वहाँ भेजा गया। मादाम कामा ने जब उस सम्मेलन में भारत की स्थिति पर प्रस्ताव प्रस्तुत किया तो ब्रिटेन की सोशलिस्ट पार्टी के प्रतिनिधि रमजे मक्डो-नल ने उसका पार विरोध किया। किन्तु इंग्लैंड के ही श्री हाइण्डमैन और फ्रांस के एम जीन ज्योस के सहयोग से मादाम कामा अपना प्रस्ताव प्रस्तुत करने में सफल हो गईं। न केवल इतना, अपितु उन्होंने वहाँ पर सावरकर द्वारा निमित्त स्वतन्त्र भारत का ध्वज भी लहराया क्योंकि मादाम कामा का प्रस्ताव विधिपूर्वक पहले अन्तर्राष्ट्रीय व्यूरो के विचाराय प्रस्तुत नहीं किया गया था, अतः ब्रिटिश प्रतिनिधि उसको वहाँ पर पारित न कर सकने में समय हो गए। फिर भी मादाम कामा को अपनी बात बहने का अवसर दिया गया और उन्होंने कहा, 'मैंने भारतीय स्वाधीनता का ध्वज सहारा दिया है। अब आप नवयुवकों का यह वक्तव्य है कि आप इसको प्रणाम करें, क्योंकि यह उन असंख्य बलिदानियों के रक्त से रजित है, जिन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के लिए न केवल अपनी धन सम्पत्ति अपितु अपने प्राणों तक की 'चीछावर कर दिया है। मैं सत्कार के स्वतन्त्रताप्रेमी सज्जनों से निवेदन करती हूँ कि वे इस ध्वज के साथ भारत की स्वतन्त्रता के लिए सहयोग करें।'

उस अवसर पर प्रतिनिधियाँ न उठकर ध्वज का वन्दन किया। सभी लोग मादाम कामा के व्याख्यान से अभिभूत हो गए और सम्मेलन के सभापति ने कहा कि इटलरनशतल व्यूरो ऑफ कांग्रेस ने मादाम कामा के प्रस्ताव की भावना को तो स्वीकार कर ही लिया है।

मादाम कामा का मिशन सफल हुआ। इसके बाद मादाम कामा 'यू योर्क गइ तो वहाँ' पर भी उन्होंने उसी प्रकार अपनी वक्तृता से जन समुदाय का अभिभूत किया और भारत की स्वतन्त्रता का सन्देश अनक-जन सभाओं में दोहराया। यह सावरकर के काय की सफलता थी, उनकी योजना की सफलता थी। इसके दूरगामी परिणाम निकले। उनकी सफलता का अनुमान इससे ही लगाया जा सकता है कि कैसर जर्मनी के महान् शक्तिशाली व्यक्ति ने मादाम कामा का सुनकर और उनके साहस को देखकर अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन को उत्तर देते हुए कहा था—'विश्व शान्ति के लिए यह परम आव-

३८ / १८५७ की स्वर्ण जयन्ती

शुद्ध है कि भारत को पूर्ण रूपेण राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो ।'

सावरकर के प्रयत्नो का ही यह परिणाम था कि भारत के राजनीतिक नेता अब प्रायनाओ और आवेदनो की अपेक्षा दबाव की नीति को अपना लगे थे । उसका ही यह परिणाम था कि दादा भाई नौरोजी जैसे वयोवृद्ध नेता निराश होकर विद्रोह का स्वर उठाने लगे थे । पंजाब में तूफान उठने लगा था और उसको दबाने के लिए सरकार ने पंजाब के प्रख्यात नेता लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह को दश स निष्कासित कर दिया था ।

## विश्व युद्ध की आशंका

### क्रान्ति की योजना

विश्व का घटनाक्रम बड़ी तीव्रता से बदलन लगा था। महायुद्ध की सम्भावनाएँ दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। सावरकर समझ रहे थे कि भारत के लिए यह सुअवसर होगा। रूस आयरलैंड, मिश्र व चीन के क्रान्तिकारी देशभक्तों से अभिनव भारत का सम्पर्क निरन्तर बढ़ता जा रहा था। कमाल अतातुक, जो उन दिनों तुर्की का प्रमुख आन्दोलनकर्ता नेता माना जाता था, वह भी लन्दन में रह कर अपना काम कर रहा था। उसका प्रयत्न अपने देश के राजतन्त्र को उखाड़न के लिए था। सावरकर उससे निमित्त रूप से मिलते रहते थे। सावरकर चाहते थे कि कमाल अतातुक से मिल कर संयुक्त ब्रिटिश विरोधी मोर्चा बनाया जाय और योजनाबद्ध रूप से दोनों देश एक ही समय अपने अपने देश में ब्रिटिश साम्राज्य के विरोध में उठ खड़े हों। उस योजना का एक अंग यह था कि जहाँ ही संश्लेष क्रान्ति आरम्भ हो उसी समय स्वतंत्रता की लड़ाई शुरू की जाय। मित्र के निर्वासित नेताओं को सावरकर की यह योजना स्वीकार्य थी। और उन्होंने सावरकर को आश्वासन दिया कि वे उनसे पूर्ण सहयोग करेंगे।

उधर भारत में कुछ मुक्तकों ने छिप छिप कर राइफल ग्रांटिंग क्लबों की स्थापना कर उनमें प्रशिक्षण प्राप्त करना आरम्भ कर तो दिया था, किन्तु उन पर पुलिस की कड़ी दृष्टि रहन लगी थी। लन्दन में भी इस प्रकार प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं हो सकती थी। और जब तक भारतवासी स्वयं इस प्रकार की युद्ध विद्या में प्रवीण न हो जाय तब तक विदेशी सहयोग और सहायता का उतना महत्त्व नहीं था। यही सावरकर की चिन्ता का विषय था।

### भारत की गतिविधियाँ

इसी बीच दिसम्बर १९०७ में नागपुर में कांग्रेस अधिवेशन की तैयारी होन लगी। किन्तु नरम दल के कांग्रेसियों को यह भय सताने लगा कि यदि कांग्रेस का अधि-

वेशन नागपुर में होता है तो उसमें तिसरा का अध्ययन निर्वाचित होना सुनिश्चित है। किंतु वह ऐसा नहीं चाहते थे अतः उन्होंने इसको टालने का यत्न किया और उन्हें वे सफल भी हो गए। ब्रिटिश सरकार ने उनकी सहायता की और नागपुर में अधिवेशन नहीं हान दिया। तब सूरत में अधिवेशन करने का निश्चय हुआ। सावरकर ने अपने बड़े भाई बाबाराव सावरकर को लिखा कि सरकार का इस पक्ष का विरोध होना चाहिए। उन्होंने विरोध भी किया, किंतु नागपुर में अधिवेशन कराना सम्भव नहीं हुआ। तब बाबाराव सावरकर अपने अभिनव भारत का साधियों के साथ सूरत अधिवेशन में गए और लगभग ऐसे दो सौ कमठ कायकर्त्ताओं की एक गुप्त बैठक सूरत में का गई।

सरकार हर प्रकार से राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिए कटिबद्ध थी। उसने तमिल के सुप्रसिद्ध कवि और दशभक्त सुब्रह्मण्य भारती तथा अभिनव भारत के सदस्य चिदम्बरम पिल्लई को बन्दी बना लिया। सावरकर लन्दन में बड़े भारत की इस गति विधि पर दृष्टि लगाए हुए थे। लन्दन में अभिनव भारत के क्रांतिकारी रूस, आयरलैंड, इजिप्ट और चाइना आदि के क्रांतिकारियों से सम्पर्क बनाए हुए थे। सावरकर चाहते थे कि इस प्रकार विभिन्न देशों के क्रांतिकारी मिलकर ब्रिटिश सरकार के विरोध में संगठित हो जाय। इस संयुक्त मोर्चे का एक उद्देश्य स्वेज नहर को बन्द करना भी था। इजिप्ट के प्रमुख क्रांतिकारियों ने इसके लिए सावरकर की महात्मा करने का वचन भी दिया था। यही कारण था कि जब स्पेन और मोरक्को में युद्ध छिन्न तो सावरकर ने अपने तीन साधियों को इस युद्ध में भाग लेने के लिए भेजा था। जिससे कि वे युद्ध कला से परिचित हो और यदि उस युद्ध में वे भारत के पक्ष में कुछ कर सकें तो वह भी सम्भव हो जाय। वे क्रांतिकारी थे अलीपुरदम काण्ड के नेता उल्हासकर दत्त के छोटे भाई सुखसागरदत्त और दूसरे थे नाभा के आर एम खान, तीसरे थे एम पी टी आचार्य। किंतु उनको सफलता नहीं मिली, क्योंकि दोनों ही पक्षों ने उनको अपने विपक्षी का गुप्ताचर समझ कर अपने साथ लगने नहीं दिया।

सावरकर इससे हताश और निराश नहीं हुए। वे अधिकाधिक शस्त्रास्त्र जटाने की योजना बनाने लगे। अपनी विभिन्न गतिविधियों से जो समय उन्हें मिलता उसको वे अपनी प्रयोगशाला में बिताया करते थे। यह प्रयोगशाला इंडिया हाउस के पीछे बनाई गई थी। वहाँ जाकर चुपचाप बम बनाने का अभ्यास किया करते थे। कभी-कभी तो वे अभिनव भारत की बैठकों में भी बहुत थोड़े समय के लिए आ पाते थे। इस प्रकार वे भारत की मुक्ति के लिए युद्ध की तैयारी में जुटे रहते थे। इस युद्ध के लिए वे स्वदेशी की शिक्षा अंग्रेजों एवं अंग्रेजियत का बहिष्कार राष्ट्रीय शिक्षा, क्रांतिकारी भावना, शस्त्रास्त्र का खरीदना, छोटी छोटी बम फैक्टरियाँ खोलना, विदेशों से शस्त्रास्त्र खरीद कर उन्हें भारत भेजना, जहाँ और जब भी सम्भव हो गुरिल्ला युद्ध नीति को प्रयोग करना, क्रांति के लिए उपयुक्त अवसरों की प्रतीक्षा करना तथा जनसाधारण का साथ-साथ मना में देशभक्ति और राजनीति का भावों का भरना परम आवश्यक मानते थे।

## बम्बे मैनुअल

इन सब बातों की ध्यान म रखत हुए अभिनव भारत सोमाइटी के सदस्य दिन रात विभिन्न कार्यों में व्यस्त रहने लगे। सावरकर १ अपन दो साथी सेनापति बापट और हेमचन्द्रदास को परिस में रूसी नाटिकारिया स बम बनान की विधि सीखने के लिए भेजा। संयोग में उन्हें वहाँ एक रूसी प्राध्यापक मिल गया जिसने उनको यह विद्या सिखाई और सावरकर की प्रतिभा के सम्मुख नतमस्तक उस व्यक्ति को अपने पास विद्यमान रूसी भाषा का बम मैनुअल ही उनको दे दिया। किंतु कठिनाई यह थी कि य दानो ही नवयुवक रूसी भाषा नहीं जानते थे। हमचन्द्रदास ने उस मैनुअल की फोटो प्रति तैयार की और बापट उसको बलिन में ले गया और वहाँ आयुर्विज्ञान की छात्रा कुमारी आया स उसका अंग्रेजी अनुवाद करवाया।

दोनों युवक बम मैनुअल लेकर लंदन आए और उनकी अधिकाधिक प्रतिया तैयार होने लगी। इन दानो के साथ तीसर होतीलाल वर्मा भी सम्मिलित हो गय और जितनी भी अधिक स अधिक प्रतियाँ तैयार हो सकती थी उन्हें तैयार कर भारत भेजने का प्रब ध कर लिया गया। स्थान-स्थान पर स्थापित अभिनव भारत की शाखाओं में यह मैनुअल पहुँचाया गया और उसकी एक प्रति लोहमाय तिलक की भी दी गई।

सन्नास्य विद्या का अभ्यास तथा उनको खरीदन के साथ साथ सावरकर का लिखना भी निरंतर जारी था। १८५७ क्रांति की स्वर्ण जयंती के अवसर पर उन्होंने 'ओ बलिदानियों' शीर्षक स पत्रक लिखा। उस पत्रक में जिस भाषा में दशभक्ता स अपील की गई थी उसका प्रभाव न केवल जन साधारण में अपितु सैनिक में भी हुआ था। रोजनानुसार सिख, जाट व डोगरा सैनिक परिवारों के पत्र संग्रह करके उन पत्रों पर पत्रक भेजे जाने लगे। य पत्रक अंग्रेजी में होते थे, किन्तु सैनिक इसको गुरुमुखी और हिंदी में अनुवाद करके अपने साथियों की तथा परिवार वालों को पढ़ाया करते थे। किंतु शीघ्र ही भारत सरकार की इसका ज्ञान हो गया और उसने घोषित कर दिया कि 'इन पत्रकों को रखना और पढ़ना सैनिक अपराध है।' सावरकर न यही उचित समझा कि अब इस प्रकार डाक से वे पत्रक न भेजे जाय किन्तु सरदार अजीतसिंह आदि क्रांतिकारियों ने उनकी लाखों प्रतिया बनाकर उनको गुप्त रूप स भारत भर में वितरित किया।

सेनापति बापट, होतीलाल वर्मा और हेमचन्द्रदास मार्च १९०८ में भारत पहुँचे और उन्होंने बम मैनुअल की प्रतियाँ अपने विश्वस्त जना में बाँटी। इस प्रसंग में बापट की बंगाल के प्रसिद्ध क्रांतिकारी वारीन्द्र धोष प्रफुल्ल चक्रवर्ती और नरेन्द्र गोसाई स ७ अप्रैल को भेंट हुई। तब माणिकतला के मुरारीगुरु उद्यान भवन में बम बनाने का कार्य आरम्भ हुआ। बम मैनुअल के आधार पर निर्माण किया गया बम बड़ा प्रभावी सिद्ध हुआ था और तब फिर उस बम की महानतम स्मरणीय घटना घटित हुई जब २० अप्रैल को मुजफ्फरपुर के चीफ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट किंसफीड पर खुदीराम बोस ने यह बम फँका था। किंतु दुर्भाग्य स किंसफीड तो बच गया और दो महिलाएँ परलोक सिधार गईं। बोस का निशाना चूककर दूसरी गाड़ी पर जा लगा था।

## भारत में धरपकड़

इस वम काण्ड से तो सारे देश में हाहाकार मच गया। भारतीय श्रमिकों की धरपकड़ आरम्भ हो गई। जाम बगल और महाराष्ट्र के प्रभावी सम्पादक, महान नेता तथा साहसी युवक की संख्या अधिक थी। प्रफुल्ल चत्रवर्ती का जब लगा कि अब उसका पकड़ा जाना निश्चित है तो उसने स्वयं अपनी रिवाल्वर से अपना अंत कर लिया, किंतु खुदीराम और उमन दो साथी २ मई का पकड़ में आ ही गए। खुदीराम बोस ने उस घटना का मारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। नरेंद्र गोसाईं दुबल हृदय निक्ता और जब पकड़ा गया तो उसने सारे भेद खोल दिए। परिणामस्वरूप कर्हाईलाल दत्त और सत्येंद्र बोस ने किसी प्रकार जलोपुर जेल में जाकर उसको गोली मार कर पार लगा दिया। बाद में भी पकड़ लिए गए। इस प्रकार भाणिकताला अभियोग की उन दिनों बहुत चर्चा रही और ११ अगस्त को खुदीराम बोस भगवद्गीता की प्रति हाथ में लेकर फासी के तख्त पर चढ़े तो नवम्बर में कर्हाईलाल दत्त और सत्येंद्र बोस को भी फासी पर लटका दिया गया।

सरकार की ओर से धरपकड़ का सिमसिला जारी रहा। उल्हासकरदत्त, हेम चंद्रदाम इ भूप्रसाद राय, उद्देन्द्रनाथ बनर्जी तथा बाबू अरविंद घोष के छोटे भाई बारी उद्देन्द्रनाथ घोष तथा अन्य अनेक लोगों को बंदी बनाया गया था। यह अभियोग बलकला उच्च न्यायालय में चल रहा था। एक दिन भरी अदालत में सरकारी वकील और पुलिस उपाध्यक्ष को तही तरफ कर दिया गया। इससे तो भारत का वायसरॉय लार्ड मिंटो चौंका उठा और उसने भारत सचिव लार्ड मोरले को और अधिक कड़े कानून बनाने का परामर्श दिया। २ जून को विस्फोटक पदार्थ और समाचार पत्रों के विरुद्ध दो कड़े नियम पारित करवा दिए।

इन नियमों के अन्तर्गत जिन अनेकानेक जनों को बंदी बनाया गया उनमें प्रमुख थे—युगांतर के सम्पादक भूपद्रनाथ दत्त, जो स्वामी विवेकानंद के भाई थे, बाद में राम के सम्पादक अरविंद घोष, यवतमाल के हरिकिंशोर के सम्पादक पथिवीगीर हरिगीर, बम्बई के बिहारी के सम्पादक भास्कर विष्णु फडके, पूना के काल के सम्पादक शिवराम पंत पराजप और केसरी के सम्पादक लोकमाय तिलक। इन सबको बंदी बनाकर एक या दो वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। मुजफ्फरपुर वम काण्ड पर आपत्तिजनक लेख लिखने के लिए शिवराम पंत को १६ मास का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। और इसी प्रकार के अन्य अपराधों के लिए लोकमाय तिलक को ६ वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड देकर ६ वर्ष के लिए माण्डले कारावास में भेज दिया गया।

तिलक के निष्कासन के समाचार ने देश तथा विदेश में भारी तहलका मचाया। बम्बई के श्रमिकों ने तत्काल हड़ताल करके जलूस निकाला। पुलिस भीड़ पर काबू नहीं पा सकी तो उसने उस पर गोली चला दी। देश विदेश के समाचार पत्रों में यह घटना की निंदा के समाचार प्रकाशित होने लगे। यहाँ तक कि रूस के लनिन ने अपने पत्र प्रोलेतरी में इसने विरोध में लिखा। लंदन में इस घटना की मिश्रित प्रतिक्रिया हुई।

उधर सरकार ने तो यह समय ही लिया था कि ५१ वग के तिलक अब माण्डले जेल में चला वापस आयेगा ।

सरकार को इतने में ही मन्तव्य नहीं हुआ । उसने उन-उन पत्रों के लिए सम्पादकों को भी बन्दी बना लिया जिनके सम्पादक मुजफ्फरपुर काण्ड के बाद पकड़े गए थे । उनमें प्रमुख थे—बिहारो व आर एम माण्डलिक, थाना व सण्डे ने घोड़ापत फड़ने, स्वराज्य शांतापुर के बलवन्तराम तिमय सदश नागपुर व अच्युत बनबत कोल्हाटकर तथा हरि-किशोर व एन बी भाव । इन सब पर भी मुख्य आरोप महा था कि ये सावकर के अभि-नव भारत में सम्बन्धित हैं और उन्होंने अंग्रेज सरकार के एक गुप्त समाचार को अपने पत्रों में प्रकाशित कर दिया था ।

अलीपुर काण्ड में मुजबिरन सरकार के सम्मुख यह हथोड़घाटा किया कि हम मैनुअल तो भारत लाने का मनोपति बापट लंदन से ही सावरकर के अभिन मित्र हैं और उनके बंगाल व प्रान्तिकारियों में भी सम्बन्ध हैं । उनके आधार पर ही भारत में सावरकर से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों और समाचार पत्रों के सम्पादकों को बन्दी बना लिया गया ।

## गोखले की राज-भक्ति

जिस समय तिलक का निष्कासन किया गया था, गोखले उस समय अपने राज-नतिक काय से लंदन में ही थे । मारले मिटो सुधार की चर्चा थी । इसी प्रकरण में वे लंदन गए हुए थे । तिलक के निष्कासन और सरकार द्वारा दिए गए कठार दण्ड तथा उसी समय पारित किए गए नय कानूनों के विरोध में लंदन के भारतवासियों ने एक विरोध सभा का आयोजन किया तो उसकी अध्यक्षता के लिए गोखले से आग्रह किया गया ।

भारत की वर्तमान और भावी पीढ़ी का यह जानकर आश्चर्य होगा कि गांधी के इस राजनैतिक गुरु ने न केवल उसकी अध्यक्षता अस्वीकार की अपितु वह उसमें सम्मिलित भी नहीं हुआ । गोखले के इस कृत्य से मोरल पर जो पभाव पड़ा उसने मिटो का एक पत्र लिखते हुए कहा कि 'यह बच्चों की तरह रोने वाला प्राणी किस प्रकार नेता बन सकता है ?' उसी पत्र में उसने तिलक के विषय में लिखा कि उसका काय मराहतीय था । तब मिटो ने उत्तर में लिखा था कि तिलक तो विद्रोह का जन्म जात नेता था ।

गोखले की इस कायरता से खिन होकर सदन के कुछ प्रांतिकारियों ने गोखले के जीवन का वही अंत कर देने का निश्चय किया था । किंतु सावरकर ने उन्हें इस पाप कृत्य से रोक दिया । तिलक के निष्कासन के विरोध में आयोजित सभा कंसटन हॉल में की गई, जिसकी अध्यक्षता श्री पारख ने की और उसमें गोखले के विशेष नामोल्लेख के साथ उसके व्यवहार की निंदा की गई । इसी प्रसंग में यह बात भी उल्लेखनीय है कि जब गोखले लंदन में थे तो सावरकर उनमें मिल और उनकी बताना चाहते थे कि वे राष्ट्रीय दृष्टिकोण से १८५७ का स्वातंत्र्य युद्ध लिखना चाहते हैं तो गोखले ने उनको राष्ट्रीय स्वातंत्र्य युद्ध मानने से ही इनकार कर लिया । किन्तु वहीं पर उपस्थित दो अन्य इतिहा-



सकार सवध्री रमेशचन्द्र दत्त और बाणीप्रसाद जायसवाल ने मावरकर के तर्क को उचित मानकर उम राष्ट्रीय आन्दोलन स्वीकार किया।

गोघने की कायरता तथा अंधेज भक्ति का एक उदाहरण हम आगे व पढ़ेंगे। मदनमाल वीरगा प्रकरण में भी देखेंगे।

## भारतीय नेता सन्दन में

सन् १९०८ के अंतिम तीन महीने की इंडिया सोसाइटी के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण के रह। भारत के अनेक प्रसिद्ध नेता किसी न किसी कारण से उस अवधि में सन्दन पहुँचत रहे। उनमें में उल्लेखनीय हैं—लाला लाजपत राय, गोबुलचन्द नारंग, बाबू बिलिचन्द्रपाल, गोघने, रमेशचन्द्र दत्त, गणेश दापडें और आर.वी. करदीकर। सवध्री गणेश दापडें और करदीकर सिलक के अनन्य सहयोगी होने के नाते उनके निष्ठासम कविता प्रिन्सी कोमिल में अपोल करने के लिए आए थे। कुछ ही समय बाद चिदम्बरम रिले के वकील भी इसी प्रसंग में सन्दन पहुँच गए थे।

य सब लोग इंडिया हाउस में आकर सावरकर से मिले। लाला लाजपत राय व कुछ समय पूर्व ही बर्मा बारागार से मुक्त होकर वहाँ पहुँचे थे। लाला हरदयाल भी सितम्बर में यद्यपि भारत आए थे किन्तु अक्टूबर में वे पुनः सन्दन लौट गए थे। उस अवधि में कुछ ऐसे अवाचित व्यक्ति भी सन्दन पहुँचे थे जो कालान्तर में इंडिया हाउस के लिए अनिष्टकारी सिद्ध हुए। उनमें में रगून का आचार्य और 'वालिपर' हरिचन्द्र कोरेगावकर दो प्रमुख थे।

इन तीन महीने में अनेक समारोह सन्दन में हुए जिनमें से अक्टूबर समारोह उल्लेख हमें पूरा पृष्ठा पर कर आएँ। 'बगभग' के विरोध में भी अक्टूबर में ही एक नया आयोजित की गई, जिसकी अध्यक्षता लाला लाजपत राय ने की थी। विपिनचन्द्र दास दापडें, डा० कुमारस्वामी और करदीकर इसमें प्रमुख वक्ता थे। बाद में उसी दिन काँउसी हाल में एक अ.म.सभा भी हुई। यह सभा थी मचरजी भावनगरी की अध्यक्षता में दक्षिण अफ्रीका में दलित भारतीयों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने के लिए काँउसी दी। इस सभा के मुख्य वक्ता सावरकर ही थे।

२० दिसम्बर का कैम्पटन हॉल में इंडिया हाउस के तत्वावधान में इंडियन का नल बाफेस का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता दादा साहेब फारडे ने की। परिम में मादाम कामा और लाला हरदयाल भी इसमें भाग लेने के लिए आए थे। मादाम कामा ने 'वहिकार' का प्रस्ताव रखा तो नानचन्द्र केमान उसका अनुमोदन किया। डा० कुमारस्वामी ने 'पूर्ण स्वराज' का प्रस्ताव रखा जिसका अनुमोदन सावरकर ने किया। अक्सर पर सावरकर ने कहा था—'इस प्रस्ताव की सहमति में अपना मत व्यक्त करने से पूरा जाय लोग अपनी दृष्टि के सम्मुख भयकर कारागार की दीवारों की सीत की कागड़ियों के रूप में स्फोट कर लीजिए।' फिर भी प्रस्ताव में सम्मति से स्वीकार कर लिया गया।

उसी फक्सटन हॉल में २६ दिसम्बर १९०८ को गुरु गोविन्दसिंह के जन्मदिवस पर आयोजित सभा की अध्यक्षता बाबू विपिनचन्द्र पाल ने की। सावरकर द्वारा रचित 'अमर देश' शीर्षक गीत से सभा आरम्भ हुई। गुरुलचन्द्र नारंग ने अपना निवेदन पाठ किया और लाला लाजपतराय ने भाषण दिया। जब उपस्थित जन समुदाय ने सावरकर को बोलने के लिए विवश किया तो सावरकर ने उस अवसर पर जो ओजस्वी भाषण दिया श्रोताओं पर उसका जादू का सा प्रभाव हुआ।

सदन के इंडिया हाउस के संचालक सावरकर के विषय में सदन के विभिन्न समाचार पत्र अनेक आलोचनात्मक लेख लिखा करते थे। वे सम्पादक अथवा सम्पादका भी यही समझते थे कि सावरकर में जाने कैसा डील डौल वाला भारी भरोसा व्यक्त होगा। किन्तु समाचार पत्रों के इन प्रतিনিधियों ने जब सावरकर को साधारण भारीरवाला दाढ़ी मूछ रहित २५ वर्ष के युवक के रूप में पाया तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसके बाद उन्होंने उनकी प्रशंसा में भी कुछ वाक्य लिखे।

अंग्रेज सरकार ने इंडिया हाउस में अपने गुप्तचर नियुक्त करने के लिए भारतीयों को ही पथभ्रष्ट किया किन्तु सावरकर की दृष्टि से उनका गुप्तचर बन नहीं पाए। कीर्ति कर नाम का यह व्यक्ति दन्त चिकित्सा पढ़ने के बहाने सदन बुलाया गया और इंडिया हाउस में रखा गया। किन्तु सावरकर द्वारा उस पर नियुक्त गुप्तचरों ने शीघ्र ही उस पकड़ लिया, इस प्रकार सरकार की योजना विफल हुई।

कीर्तिकर की घटना ने इंडिया हाउस निवासियों को चौकन्ता कर दिया था। एम पी तिरमलाचारी नामक एक मद्रासी युवक इंडिया हाउस में ठहरा और उसने इच्छा व्यक्त की कि वह भी वहीं रह कर देश के लिए कुछ करना चाहता है। इस अनायास उपलब्ध देशभक्त को सहज ही पचा पाना स्वाभाविक नहीं था। अतः उस पर दृष्टि रखी गई। किन्तु जब उसको पकड़ने का अवसर आया तो वह वास्तव में देशभक्त ही सिद्ध हुआ। कालांतर में इसको सब एम पी टी नाम से ही जानने लग।

उसकी प्रतिभा से प्रभावित होकर सावरकर ने उसको गुप्तचरी पर नियुक्त कर दिया। उसे सदन की पुलिस के मुख्यालय स्काटलैंड याड में भेजा गया। एम पी टी अपनी चातुरी में वहाँ प्रवेश पा गया और उसने इंडिया हाउस की खूब बुराईयाँ करनी आरम्भ की। उसने कहा कि उसको वहाँ ५ पौंड की नौकरी मिली है जिसमें वह प्रातः सायंकाल तक वहाँ के सारे काम करता है। यदि उस १० पौंड मिल जाय तो वह इंडिया हाउस की सारी खबरें वहाँ लाकर दे सकता है। उसी अवसर पर उसने कुछ नमून की सूचनाएँ दी तो पुलिस अधिकारियों को उस पर विश्वास हो गया। उसको स्काटलैंड याड में नियुक्त कर लिया गया और वह प्रतिदिन स्काटलैंड याड जाकर आलतू फालतू सूचनाएँ वहाँ देने लगा।

राइफल क्लब

नाम न रादस्यता ग्रहण कर वहाँ शूटिंग आदि सीखना आरम्भ किया किंतु ज्यादा देर वाला को डाकी वास्तविकता का ज्ञान हुआ तो उनकी सदस्यता समाप्त कर दी गई। डा० राजन ने एक फोटोबैनिक में फोटोग्राफी के साथ साथ निशानवाजी की कक्षा में भी प्रवेश लिया, यह शिक्षा वे काफी समय तक लेते रहे।

सावरकर भारत के अपने साथियों को अस्त्रास्त्र से सज्जित करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने अनेक ग्रंथों से अर्थात् पुस्तकों के नाम पर पिस्तौलों के पामन भारत भेजे थे। लंदन में आने जान वाला के साथ भी वह कुछ अस्त्र भेज दिया करते थे। सिकन्दर ह्यातखा, जो बाद में 'सर' की उपाधि से विभूषित हुआ था तथा मिर्जा अक़्बाम के साथ भी उन्होंने कुछ पिस्तौलें भेजी थी।

सावरकर ने परिसर से स्वचालित ट्राउनिंग पिस्तौलें तथा एक हजार कारतूस मंगाए और उन्हें एक पेटी की तली में बंद करके इंडिया हाउस के रसोई चतुर्भुज अमीन के द्वारा भारत भेजा। चतुर्भुज अमीन १५ फरवरी को लंदन से रवाना हुआ और ७ मार्च को सुरक्षित बम्बई पहुँच गया। मार्ग में उसने किसीको किस भाँति चकमा दिया, यह दूसरी कहानी है। किंतु बम्बई में सब कुछ चौपट हो गया। अमीन का कहा गया था कि वह उस सड़क को महाराष्ट्र में अभिनय भारत के अध्यक्ष हरि अनंत बट्ट का दे दे। बट्टे उसको मिला नहीं तो उसने वह सड़क सावरकर के बम्बई के एक सहयोगी विष्णु महादेव भट्ट को देना चाहा किंतु विष्णु महादेव भट्ट पर पुलिस की बड़ी कड़ी दृष्टि थी, अतः यह भी सम्भव नहीं हो पाया। तब विवश होकर चतुर्भुज अमीन ने वह सड़क एक अन्य परिचित गोपालराव पाटणकर को दे दिया। सावरकर के सहयोगियों को इसका पता नहीं चला और वहाँ से वे पिस्तौलें गलत लोगो के हाथों में चली गईं इसलिए उनका जो उपयोग होना चाहिए था, वह नहीं हो पाया। बहोती गंगा में चतुर्भुज ने भी हाथ धोत हुए एक बटिया सी पिस्तौल अपने लिए रख ली। सावरकर को उन पिस्तौलों के सुरक्षित बम्बई पहुँचाने और उचित हाथों में दिए जाने का समाचार भी नहीं पहुँचा।

जो समाचार लंदन में सावरकर को उन दिनों मिले थे बड़े दुखदाई थे। उनकी एकमात्र सत्तान उनका ८ वर्षीय पुत्र प्रभाकर चकक से चल बसा और पितृ मुल्य बढ़ भाई बाबाराव सावरकर को राजसत्ता के विरुद्ध भडकान वाला साहित्य लिखने के आरोप में २८ फरवरी को बंदी बना लिया गया। २ मार्च को पुलिस ने बाबाराव के नासिक के घर में छापा मारा और उसमें जो वस्तुएँ मिली उनमें पचास पत्तों की एक अग्रेजी की टाइप की हुई बम मनुअल की प्रति भी थी। यह समाचार भारत में फना तो सार देश में आश्रय की लहर दौड़ गई। उधर लंदन में जब यह समाचार फला तो उसने वहाँ आग में घी का काम किया। सावरकर ने तुरन्त अपने साथियों की एक सम्मेलन आयोजित की और उसमें प्रत्येक सदस्य ने केवल शोध नहीं प्रतिशोध की शपथ ली।

फिर भविष्य की व्यूह रचना की गई।

## लेनिन से भेंट

अंग्रेज पिता और आयरिश माता का पुत्र गॉय अल्फ्रेड श्यामजी कृष्ण वर्मा के पत्र 'इंडिया सोशियोलोजिस्ट' का मुद्रक होने के नाते सावरकर का भी मित्र था। वह भी इंडिया हाउस की गतिविधियों में बढचढ कर भाग लेता था। उसका आमाय अनेक देशों के नातिकारियों से भी सम्बन्ध था। अवसर मिलने पर वह सदन में आने वाले इन नातिकारियों को इंडिया हाउस में लाता और सावरकर से उनका परिचय कराता। उन्ही व्यक्तियों में नवरुम का निर्माता लेनिन भी था जिस गॉय ने सावरकर से मिलवाया था। उसके बाद भी उनकी अनेक भेंटें हुईं जिनमें से कई तो घंटों तक चली। सावरकर ने लेनिन से अपनी इन भेंटों का उल्लेख १९३७ में रत्नागिरि से मुक्त होने के बाद ही किया उससे पूर्व नहीं। उनका कहना था कि इनको गुप्त रखने के अनेक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कारण थे।

सावरकर ने 'ग्रेज इन' से कानून की उपाधि प्राप्त की थी। किंतु सावरकर की राज विरोधी गतिविधियां स रुद्ध होकर उनकी कानून की उपाधि छीन ली गई। उह इस शत पर उपाधि देना स्वीकार किया कि सावरकर भविष्य में किसी भी प्रकार की राजनीतिक गतिविधि में भाग नहीं लेंगे। सावरकर ने इस आशा के विरुद्ध अपील की तो उनकी गूज पार्लियामेंट तक पहुँची। उधर ६ जून को अंग्रेज सरकार ने बाबाराध सावरकर को आजीवन कारावास का दण्ड घोषित कर दिया।

सावरकर को इसकी सूचना दी गई तो उनको बहुत क्रोध आया और उन्होंने २० जून को इंडिया हाउस में रविवार को होने वाले सत्संग के अवसर पर ऐसा भाषण दिया मानो ज्वालामुखी फूट पड़ा हो। उसी अवसर पर उन्होंने अपनी पुस्तक 'स्वातन्त्र्य समर' के कुछ अंश भी पढ़कर सुनाए। वहाँ उपस्थित श्रोताओं में भी उनी प्रकार क्रोध की ज्वाला फूटन लगी थी।

## डींगरा से सम्पर्क

इसी दिने मदनलाल डींगरा नामक एक पञ्जाबी युवक सावरकर के सम्पर्क में आया तो उसने सावरकर से निवेदन किया कि वह कुछ कर गुजरने के लिए तडक रहा है। सावरकर उसे जो भी काम सौंपेंगे उस वह निष्ठा से सम्पन्न करेगा। सावरकर को यह जानकर प्रसन्नता हुई फिर भी उन्होंने अनेक प्रकार से उस युवक की परीक्षा ली और जब उह विश्वास हो गया कि डींगरा वास्तव में कुछ कर गुजरने वाला है तो फिर उन्होंने उनको एक महत्तर कार्य का दायित्व सौंप दिया।

डींगरा उन दिने एक ऐसे विनोदी क्लब का सदस्य बन गया था जिसमें उच्च स्तर के अंग्रेज ही अधिक संख्या में होते थे। उसने उन सदस्यों का विश्वास भी अर्जित कर लिया। वही उसने शूटिंग का प्रशिक्षण प्राप्त किया और वह लोड मोरले, कजन और सर कजन वायली के निवृत्त सम्पर्क में भी बही आया। डींगरा की लोर्ड कजन घूमने लगा। बंगाल में जो कहूर उसने दयाया था, मदनलाल

उसका चित्र खिंच गया और उसने उसको अपना निशाना बनाने का निश्चय कर ही लिया। एक धार जब उसको पता चला कि अमुक स्थान पर लौड कजन एक सभा में बैठा है तो वह वहाँ जा पहुँचा किन्तु तब तक हॉल के द्वार बन्द हो गए थे। ढांगरा ने वापस आकर सावरकर से कहा, 'शेर बच निकला।'

ब्रिटिश सरकार ने भारत में जो अधेरगर्दी मचाई थी मदनलाल उसका बदला लेने के लिए कृत सकल्प था। उसने लौड कजन के समान ही उत्तरदायी विनियम कजन वाइली को समाप्त करने का निश्चय कर लिया। ३० जून को ढांगरा सावरकर के पास उनके निवास स्थान सिकलियर रोड स्थित विपिनचन्द्र पाल के घर पर गया। सावरकर ३ अप्रैल १९०६ में उसी स्थान पर रहने लगे थे। सावरकर और मदनलाल ढांगरा में बहुत बातें हुई। फिर निरजनपाल और सावरकर उसको छोड़ने के लिए रेलवे स्टेशन तक आए और वहाँ उसको गुप्त रूप से एक चमकती हुई रिवाल्वर दी और विदा होते हुए कहा, 'यदि इस बार असफल रह तो फिर मुझे अपना मुख मत दिखाता।'

## वायली का वध

अगले दिन १ जुलाई १९०६ को इपीरियल इस्टीट्यूट के जहाँगीर हाल में वाना नाई नौरोजी की संस्था नेशनल इंडियन एसोशियशन का वार्षिकोत्सव आयोजित किया गया था। २०० आमंत्रित जनो में भारतीय मित्रों के अतिरिक्त उनके अनेक अंग्रेज मित्र और परिचित भी इस समारोह में आमंत्रित थे। मनोरंजक कार्यक्रम से पूर्व निकट के ही सेबाय होटल में रात्रि भोज की व्यवस्था थी। सावरकर यद्यपि इस सभा में आमंत्रित थे किन्तु वे उस स्थान लंदन से बाहर चले गए थे। तदपि उनके दो विश्वस्त प्रिय मित्र ज्ञानचंद वर्मा और बोरगावकर ढांगरा का साह बचाने के लिए वहाँ निधनमान थे।

सभा के मुख्य अतिथि कजन वायली अपनी पत्नी के साथ सीढ़ियाँ उतर रहे थे कि तभी उनकी पत्नी किसी काम से वापस हाल की ओर चली गई। वायली ने ज्योंही जगली सीढ़ी पर पर रखा कि उस पर दनादन पांच गोलियाँ चल गईं। तभी उनका साथ चल रहे एक पारसी सज्जन डा० फावस ललकाका ने वायली को बचाना चाहा तो उस पर भी गोली चल गई और वह भी वायली के साथ वहीं डेर हो गया।

यह गोली चलाने वाला कोई अन्य नहीं मदनलाल ढांगरा था। छठी गोली कदाचित्त उसने अपने लिए बचाकर रखी थी किन्तु ललकाका ने बाधा उपस्थित कर दी तो उसको वह गोली उसके लिए व्यय करनी पड़ गई। ढांगरा को तत्काल बन्ध बना लिया गया। उसके पास दो पिस्तौल एक चाकू और एक छुरा पाए गए। ढांगरा को गिरफ्तार कारागार में रखा गया और उसने विरुद्ध अभियोग चलाने लगा।

दूसरे दिन प्रातः काल के इंग्लैंड के समाचार पत्र ही नहीं विश्व भर के समाचार पत्र वायली की हत्या के सनमनीखेज समाचारा से भरे पड़े थे। सबने अपने अपने प्रकार से घटना का वर्णन किया। भारत में भी इसकी बड़ी जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई। अखबार भारतीयों ने उच्च स्वर से इस कृत्य की निंदा की। ढांगरा के पिता ने लौड मोरल

को तार भेज कर कहा कि 'मदनलाल को अपना पैटा कहते हुए उह लज्जा आती है।' उसके सदन स्थित भाई न सावजनिक रूप से उसे भाई मानने से इन्कार कर दिया। ३ जुलाई को सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की अध्यक्षता में अंग्रेज भक्त भारतीयों द्वारा वायली व निघन पर आयोजित शोक सभा में मदनलाल व इस कुवृत्त्य की निंदा की गई।

अंग्रेज भक्त कायर भारतीयों की आत्मा का इतने से शक्ति और तृप्ति वहाँ? उन्होंने ढोंगरा की निंदा करने के लिए कैंवसटन हॉल में एक सभा का आयोजन किया। इसमें सर मनचेरजी भावनगरी, सर आगा खाँ, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, विपिनचन्द्र पाल, खापड़ें, कूच बिहार के महाराजकुमार सर दिनशा पट्टि तथा फजलभाई करीमभाई आदि अनेक व्यक्ति विद्यमान थे। इस सभा में भारतीयों के अतिरिक्त अनेकानेक अंग्रेज और एंग्लो इंडियन भी उपस्थित थे। सदन के कुछ समाचार पत्रों के अनुसार, उस सभा में उपस्थित पारसी स्त्रियाँ इस सभा के लिए विशेष प्रकार से सज धज कर आई थी। अध्यक्ष सर आगा खाँ, सर भावनगरी, सर बनर्जी, वी सी पाल और खापड़ें आदि सभी वक्ताओं ने अपने भाषणों में ढोंगरा के कृत्य को अक्षम्य, अमानवीय, असम्य आदि जिससे जो बल पड़ा वह सब कहा।

इतने पर ही बात समाप्त नहीं हुई। थियोडोर मॉरिसन नाम का एक व्यक्ति मदनलाल के छोटे भाई को खींचता हुआ मंच पर लाया और उससे कहा कि वह भी इस सभा में अपनी घृणा व्यक्त करे। उसने क्या कहा और क्या नहीं कहा, शोर-शराबे में वह किसी ने कुछ नहीं सुना। उसका पिता पहले ही लौट मोरले को तार द्वारा अपनी कायर भावना व्यक्त कर ही चुके थे।

## निर्भीकता की गूँज

भाषण समाप्त होने पर सभा के अध्यक्ष सर आगा खाँ ने उठकर कहा — 'यह सभा सर्वसम्मति से मदनलाल की निंदा करती है।'

कुछ क्षणों के लिए तो सभा में सन्नाटा सा छाया रहा। उससे पहले कि कोई हाथ उठाता या अपने मुख से कुछ बोलता बीच में से एक स्वर सुनाई दिया, नहीं सब सम्मति से नहीं।'

सभा में उपस्थित सभी व्यक्ति हतप्रभ से रह गए। कौन है यह व्यक्ति? सबके मन में विचार उठा। अध्यक्ष ने शोध में पुछा, 'कौन है यह 'नहीं' कहने वाला व्यक्ति?' तभी उस व्यक्ति ने चिल्ला कर कहा 'मैं कहता हूँ नहीं।' अध्यक्ष ने कहा, 'आपका नाम?' तब तक कुछ लोगो में उत्साह सा आ गया था। कुछ कहने लग, 'उम्मीद नोच उतारो उसको बाहर छेदेडो।'

उसी समय सर मनचेरजी भावनगरी मंच पर से नीचे उतरे और उस ओर बढ़े जिधर से उनको 'नहीं' का स्वर सुनाई दिया था। तभी चेतावनी सी दती हुई सावरकर की गूँजती आवाज सुनाई दी, 'यह मैं हूँ, मेरा नाम सावरकर है।'

'सावरकर' नाम सुनते ही लोगो में एक प्रकार का भय सा समा गया। उनके

जोड़ टीले पड़ा लगे। उनके मन में यह भय भा समा गया था कि कहीं क्रांतिकारी हम सभा में ही बम विस्फोट न कर दें और उन सबकी धज्जियाँ उड़ जायें। महिलाओं की चीख निकलने लगी। जो लोग यो ही तमाशा करने और देखने आय थे वे वहाँ से भागने लग और जो अपने को बड़ा अग्रेसर भक्त समझते थे उनकी मुट्ठियाँ तनने लगी। कुछ लोग ऊर के गारे कुंसियों और बैचो के नीचे छिपने लगे। सभी लोगो ने यह भी देखा कि सर भावनगरी के सनेस पर एडवड पामर नाम का एक युरेशियन युवक सावर कर की ओर लपका और उसने तानकर एक मुक्का मारा जो उनकी आँख के समीप जाकर लगा। उससे सावरकर का चश्मा टूट गया, आँख पर चोट लगी और उनका चेहरे में रक्त बहने लगा।

सावरकर इसमें घबराये नहीं। वे उठकर अपनी कुर्सी पर खड़े हो गए और बड़े उच्च स्वर में उन्होंने पुन घोषणा की, 'यह सब कुछ होने पर भी, मैं अब भी यही कहता हूँ कि मैं इस प्रस्ताव के विरुद्ध हूँ। जब तक रक्त की एक बूंद भी मेरे शरीर में विद्यमान है, मैं अपनी इस बात को निरंतर दोहराता रहूँगा।'।

सावरकर यह कह रहे थे कि उधर एम पी तिरुमलाचाय, जो कि सावरकर के समीप ही खड़ा था, आगे बढ़ा और उसने पामर के गाल पर ऐसा जोर का झपट मारा कि वह जाँघें मुड़ जाकर गिर पड़ा। उधर अय्यर ने अपना पिस्तौल निकाल लिया और वह पामर पर गोली चनाने ही वाला था कि सावरकर ने उसको रोक दिया।

सभा में भगदड़ मच गई। वह प्रस्ताव न सवसम्मति से स्वीकार किया जा सका और न बहुमत में ही। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी सावरकर पर किए गए कार्रवाई पूर्ण प्रहार के लिए सभा को छोड़ कर चल दिए। आगा खाँ को भी मानचरजी का यह असभ्य व्यवहार पसंद नहीं आया। और कोई चारा न देखा मानचरजी ने पुलिस बुना ली। किंतु पुलिस को भी उस सभा में कुछ ऐसा तह लगा कि वह किसी को पकड़ती। जब उसने देखा कि सत्य सावरकर ने पक्ष में है तो उसने किसी प्रकार की दखलदारी नहीं की और जसी आई थी वैसी ही वापस चली गई। सावरकर न पामर को भी जाने दिया। सभा समाप्त हुई।

## सावरकर सफट में

सभी क्रांतिकारी जो उस समय सदन में विद्यमान थे, वे विपिचन्द्र पाल के व्यवहार से चिन्न थे। उन्हें उस पर क्रोध आ रहा था। यहाँ तक कि एम पा टी ने उमी स्मि इटिपन मोशियोलोजिस्ट का पत्र में लिखा कि पाल की अतीत की गवाहों के बिना वे उन्हें आभारी हैं किंतु उनके बीगरा को कायर और हत्यारा बहन के कारण से जाना चाहिए।

सावरकर रात्रि में अपने निवास स्थान पर गये। किंतु उनका वह रात बिताती घड़ी बटिन हो गई। चोट की पीड़ा ने अधिक उनका मन की पीड़ा थी जो सहन नहीं की थी। उन्होंने बलम भागज उठाया और सन्ध के 'टाइम्स' में प्रकाशनायक पर

लिखने बैठ गए। यह पत्र ७ जुलाई के अंक में प्रकाशित हुआ, जिसका सार संक्षेप था—

‘अभियुक्त का अभियोग अभी विचाराधीन है और अनेक उच्चाधिकारी ता यह भी कहते सुने गए हैं कि सम्भवतया यह हत्या पागलपन अथवा निजी द्वेष के कारण की गई हो। इस अस्पष्ट अवस्था में उसके काय को राजनीतिक करार देना अथवा उसका हत्या का दोषी स्वीकार कर लेना ‘यायविद्या’ के प्रति अन्याय है। भविष्य में यदि ‘यायालय’ ने यह निर्णय दे दिया कि हत्या राजनीतिक दृष्टि से नहीं की गई थी तब क्या होगा? ऐसी स्थिति में भारतीय जन स्वयं ही ‘याय’ निर्णय करने की त्वरा न करें। इसी आशय से मैं अपना संशोधन प्रस्तुत किया था। मेरे संशोधन के उपरान्त भले ही वह प्रस्ताव सब सम्मति से स्वीकार कर लिया जाता। यदि यह सभा केवल श्रीमती वायली के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए आयोजित की गई होती तो मैं भी उनसे सहानुभूति व्यक्त करने में सबका साथ देता। किंतु ऐसा न करते हुए केवल ‘कारपनिव’ भ्रम के कारण भागते हुए लोगो ने मुझ पर अन्यायपूर्ण आक्रमण किया है जो कि अमानवीय था।’

‘टाइम्स’ में इस पत्र के प्रकाशित होने के उपरान्त अनेक ऐसे आलोचक थे जिन्होंने अब इस विषय पर धीन रहना ही उचित समझा था, किंतु पामर जैसा पामर फिर भी चुप नहीं रहा और उसने इसके उत्तर में लिखा, ‘मैं ही वह व्यक्ति हूँ जिसने साबरकर को असली ब्रिटिश घूस का आनंद दिलवाया था।’ किंतु पामर की गर्वोक्ति का उत्तर एम. पी. तिममलाचारी ने इन शब्दों में दिया, ‘और मैं ही वह व्यक्ति हूँ जिसने इस ब्रिटिश घूसे का उत्तर उस भारतीय हाथ से दिया था जिसने इन महाशय को धरती सुधा दी थी।’ य उत्तर और प्रत्युत्तर दोनों ही ‘टाइम्स’ ने प्रकाशित किये थे।

## ढींगरा पर न्याय का नाटक

तुरन्त ही अर्थात् १० जुलाई को ढींगरा अभियाग की सुनवाई बस्टमिस्टर ‘यायालय’ में आरम्भ हुई। यायाधीश थे होरेस स्मिथ। बचाव पक्ष के कुछ लोगो ने यत्न किया कि ढींगरा को पागल सिद्ध कर उसको क्षमा दिलवाई जाय। किंतु ढींगरा इसके लिए तैयार नहीं था। उसने तो स्पष्ट रूप में कह दिया था कि ब्रिटिश ‘यायाधि-करण’ उसको मृत्यु दण्ड दे, जिससे कि ‘उसके’ देशवासी और अधिक लगन और तीव्रता से स्वतंत्रता के आन्दोलन को आगे बढ़ा सकें। पहले दिन ही उसने अपने वक्तव्य में कहा, ‘‘मैं प्रचार जमाने को यह अधिकार नहीं है कि वे इस दश पर अधिकार जमायें ठीक उसी प्रकार अंग्रेजो को भी यह अधिकार नहीं है कि वे भारत पर अधिकार करें। और यह निश्चित ही हमारी ओर से न्यायोचित है कि जो लोग हमारी पवित्र भूमि का अपवित्र कर रहे हैं, हम उनको मारें। मैं स्वयं को किसी भी प्रकार दोषी नहीं मानता क्योंकि अपने देश की स्वतंत्रता के लिए किया गया कोई भी प्रयास अपराध नहीं हो सकता। मेरी यह इच्छा है कि ‘यायालय’ मुझे मृत्यु दण्ड दे जिससे कि मेरे प्राति की भावना और भी दृढ़ हो सके।’’



ढींगरा ने यह वक्तव्य मौखिक रूप से दिया था, क्योंकि उसके बंदी बनाए जाने के समय उसके पास जो वक्तव्य था उसको पुलिस ने दबा दिया था और कह दिया कि उसके पास से किसी प्रकार का कोई वक्तव्य नहीं मिला। इसके बाद ढींगरा को सत्र न्यायालय के अधिकार में दे दिया था। इधर भारत में अंग्रेज भक्त एन सी केलकर तथा गोखले जैसे व्यक्तियों ने सभायें आयोजित कर ढींगरा के काय की निन्दा की। गोखले ने तो केवल ढींगरा के कृत्य की निन्दा करने में ही अपने कर्तव्य को पूरा नहीं माना अपितु उसने इंडिया हाउस के अंतर्गत कार्यरत सभी श्रान्तिकारियों की निन्दा की और कहा कि जब तक सावरकर को बंदी नहीं बनाया जाता तब तक इस कृत्य को नहीं रोका जा सकता।

सत्र न्यायालय ने भी इस काय में अधिक समय नहीं गवाया। २० जुलाई तक सारी कायवाही समाप्त हो गई। निणय की घोषणा होने के उपरान्त २२ जुलाई को सावरकर ढींगरा से मिलने के लिए ब्रिक्स्टन जेल में गए और उन्होंने ढींगरा से कहा, 'मैं तुम्हारे दर्शन करने के लिए आया हूँ।' अपने प्रति कहे गए इन शब्दों को सुनकर ढींगरा का चेहरा रक्षित हो गया और उसकी आँखों से कृतज्ञता के आँसू प्रवाहित होने लगे। सत्र न्यायालय में कुछ विशेष बात नहीं हुई और मदनलाल ने भी वहाँ पर अपना पिछला वक्तव्य को ही दोहराया था। हा पुलिस जो बातें निचन न्यायालय में नहीं कह पाई थी उसने इस न्यायालय में वही और न्यायालय ने उसको मृत्युदण्ड देकर अभियोग को समाप्त कर दिया।

न्यायालय का निणय सुनकर मदनलाल के मुख से सहसा निकला, "मुझे गव है कि मेरा यह तुच्छ जीवन अपने देश हित काम आया।" अपनी अन्तिम इच्छा में मदनलाल ढींगरा ने चाहा कि प्राणदण्ड दिए जाने से पूर्व उसको क्षण मिल जाए जिससे वह दख सके कि मृत्यु की ओर जाते हुए उसके चहरे पर कहीं कोई शिकन नहीं है। वह चाहता था कि उसका अन्तिम सरकार हिंदू रीति से सम्पन्न हो और कोई अहिंदू उसकी मर्तब का स्पष्ट न कर सके। उसने वस्त्र तथा अनाज वस्तुएँ बेच दीं जाएँ उससे प्राप्त धन को राष्ट्रहित के काय में लगाया जाए।

मदनलाल के दो भाई उस समय लंदन में रहते थे। उन्होंने जब उससे मिलने के लिए प्रार्थना पत्र दिया तो मदनलाल ने यह कहकर उनसे मिलना अस्वीकार कर दिया कि वे 'दशद्रोही' और अंग्रेजों के 'चाटुकार' हैं।

इधर सावरकर का एक और ही चिन्ता सता रही थी। जब से उसे जेल में बंदी बनाए जाने तक मदनलाल की जेब में उसका वक्तव्य था किन्तु बाद में पुलिस ने उसको दबा दिया था तबसे ही वे उस वक्तव्य को अथवा उसकी किसी प्रति को प्राप्त कर मदनलाल को फाँसी पर लटकाए जाने से पूर्व प्रकाशित करा सकें। वे चाहते थे कि उस वक्तव्य की जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जाए। सावरकर का प्रयत्न सफल हुआ और किसी प्रकार १५ अगस्त को उनको उसकी प्रति प्राप्त हो ही गई। उसे लेकर

१८ मित्र गार्नेट के पास गए और गार्नेट उनको 'डेली यूज' में उपसम्पादक

राइट लिटर्ड के पाम से गए और सोमाग्य से दूसरे दिन के समाचार पत्र में वह वक्तव्य प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित हो गया।

जहाँ यह सावरकर और मदनलाल के लिए भी शव की बात थी वहाँ इससे ब्रिटिश पुलिस की बढ़त ही किरकिरी हुई। यह तो मानो शेर की माँद में घुसकर उमका शिकार उठा लाने जैसी ही बात थी। किन्तु सावरकर का दिल तो इस प्रकार के कार्यों में सिद्धहस्त था।

## ढींगरा को फाँसी

१७ अगस्त मदनलाल ढींगरा की फाँसी का दिन था। १८ अगस्त को 'डेली न्यूज' में प्रकाशित समाचारों के अनुसार बंदीगृह के बाहर न केवल भारतीयों की अपितु अब अनेक लोगों की भी भीड़ जमा थी। ६ बजने के तुरन्त बाद जेल के एक अधिकारी ने बाहर आकर सूचना दी कि प्रत्येक काय समयानुसार ठीक-ठीक हो गया है और ढींगरा की मृत्यु भी तत्काल ही हो गई थी। इस प्रकार भारत माँ का यह लाल हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर झूल गया। किन्तु तब एव अर्धे अंग्रेज सरकार ने उसकी अंतिम इच्छा की पूर्ति भी नहीं की। उसने न तो उसके किसी सम्बन्धी को उसका शव सौंपा और न स्वयं ही उसका दाह संस्कार किया। मदनलाल के शव को जेल के प्रांगण में ही गाड़ दिया गया। किन्तु ज्ञानचंद वर्मा ने मदनलाल के शेष सब अंतिम कृत्य किए। उसने अपना सिर भी मुड़वाया था। इसके ठीक ६६ वर्ष बाद प्रातिवारिक्तों के प्रयत्न से भारत सरकार द्वारा ढींगरा के पवित्र अवशेषों का अस्थिक्लेश भारत लाया गया और १३ दिसम्बर १९७६ को इस कलश को भव्य शोभा-यात्रा के रूप में मदनलाल के जन्म स्थान अमृतसर ले जाया गया। वहाँ उसकी स्मृति में शहीद स्मारक बनाया गया। अस्तु।

हम पहले ही उल्लेख कर आए हैं कि ली की उपाधि प्राप्त करने के उपरांत भी जब सावरकर को बार में जाने की सुविधा प्रदान नहीं की गई तो उन्होंने इसके विरुद्ध अपील की। तब 'ग्रेज इन' वाली ने इसकी छानबीन करने के लिए एक समिति गठित कर दी। यद्यपि भारत सरकार ने इस समिति के सम्मुख सावरकर के विरोध में बड़ा जोर लगाया था किन्तु फिर भी समिति को उनका विरुद्ध ऐसा कुछ नहीं मिला। फिर भी आखिर कमेटी तथा अग्रजों द्वारा अंग्रेज सदस्यों की ही गठित की गई थी। तो उसने शत रत दी कि जब तक सावरकर यह लिखकर नहीं दे दते कि वे राजनीति में कभी भाग नहीं लेंगे, उनको बार में जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। सावरकर ने उनके इस प्रस्ताव को पूणतया ठुकरा दिया। यही हरनामसिंह ने भी किया, क्योंकि उसको भी बार में नहीं जाने निया गया था और उसके साथ भी यही शर्त लागू की थी।

विगत दिनों की गतिविधियों के कारण सावरकर टूट से गए थे। उनका शरीर शिथिल पड़ गया था। चारों ओर से विपदा ही विपदा जाती दिखाई दे रही थी। कजन वाइली वाली घटना के बाद इंडिया हाऊस बन्द कर दिया गया था। सावरकर के लिए रहने का भी कोई स्थान नहीं रह गया था क्योंकि कजन वाइली की मृत्यु के दूसरे ही

दिन त्रिपिनचन्द्र पाल के मजान को घेर लिया था। पाल के बड़ भाई ने उन लोगों को बताया कि सावरकर उनका विरायदार अतिमि था और अब उहाँ उनका प्रवेश बंद कर दिया है। इस प्रकार एक अन्य दुर्घटना होत-हात घब मर।

## नेहरू की कायरता

इस घटना के उपरांत सावरकर ने अपने तथा त्रिपिनचन्द्र पाल के धुक् हित में यही उचित समझा कि जब उस स्थान पर नहीं रहना चाहिए। इस प्रकार वेधर, मित्र विहीन भूखे एकाकी और गुप्तचरों द्वारा पीछा किए जाने वाले सावरकर बिसौ छन की सलाश में दधर-उधर भटकते रहे, किन्तु पराजित सना-नायक को कौन धरण देता है? क्या पराजित तात्या टोप के साथ छोड़ा नहीं हुआ था? एक ही दिन में सावरकर को दो स्थानों में भागना पड़ा था, इनमें से एक स्थान पर स तो उनको आधी रात में बाहर कर दिया गया था। गुप्तचर छाया की भाँति उनके पीछे लग थे, खाना नहीं, सोना नहीं, आराग नहीं। अंत में एक जमन महिला ने कृपा कर कुछ दिना के लिए उनको रहने के लिए स्थान दिया। वहाँ यद्यपि सावरकर बड़ी शान्ति से रहने का यत्न करने लगे, जिसमें कि कोई उनको देखकर किसी पर सन्देह न करे अथवा उनसे कोई सहानुभूति व्यक्त न करे। तदपि लंदन में गुप्त बठकें करते हुए अपने प्रचार काय को उन्होंने चालू रखा।

कुछ दिनों के लिए सावरकर ब्राइटन में जाकर रहने लगे। वहाँ उन्होंने सप्तु किनारे बैठकर अनेक कविताओं की रचना की। वही उन्होंने ज्ञानचंद वर्मा को बुलाकर मदनलाल दीगरा के उस लिखित वक्तव्य के प्रकाशन की व्यवस्था करने के लिए प्रेरित किया जिसका उल्लेख हम पिछले पृष्ठा पर कर आए हैं। परितः में उसके प्रकाशन की व्यवस्था हुई और वही से स्थान-स्थान पर उसको प्रकाशन के लिए भेज दिया गया। यह बड़ा कठिन काम था कि लंदन के समाचार पत्रों में उसका प्रकाशन हो। किन्तु सावरकर के मित्र डेविड गारनेट की सहायता में 'ब्रेली यूज' के उपसम्पादक रोबर्त लिण्ड ने उसको किसी प्रकार प्रकाशित कर ही लिया।

दीगरा के वक्तव्य के अंतिम शब्द, जो कि उनकी इच्छा के रूप में व्यक्त किए गए थे, वे थे— 'मेरी कामना है कि मैं अपने उन्ही माना पिता के घर में ही और भारत भूमि में पुनः जन्म लू तथा पुनरेण दश को स्वतंत्र कराने के कार्य में सफल हो जाऊँ। मैं चाहूँगा कि मेरी पुनः मृत्यु होने तक मेरी मातृभूमि विदेशियों के पंजों से छूट जाए। मातृभूमि के स्वतंत्र होने तक मैं उसकी मुक्ति के लिए बार-बार जन्म लू और मृत्यु का चरण करता रहूँ। प्रभु मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करें यही मेरी कामना है।'

समस्त सप्ताह में दीगरा के इस वीरतापूर्ण वक्तव्य से हलचल मच गई। आयरलैंड के समाचार पत्रों में उसकी वृत्त चर्चा कर प्रशंसा की और वहाँ के लोगों ने 'आयरलैंड उन मदनलाल दीगरा का सम्मान करता है, जिन्होंने अपने देश के लिए अपने प्राणों की आहुति दी।' जन मानसों को 'नव वाह्य' पर लिखकर समस्त देश में घुमा दिया।

जवाहरलाल नेहरू उन दिनों सप्ताह में ही थे। वेबस उस जस ही कुछ अन्य

कायर भारतीय वे जो कि इस वीरनापूण कृत्य से सबधा असपक्त रहे। उसके पिता मोतीलाल नेहरू ने उसको सावधान कर दिया था कि 'मजलिस' मजहाँ भारतीय विद्यार्थी बैठकर भारतीय राजनीति की चर्चा किया करते थे, वह वहाँ न जाए। यह घटना डब्ल्यू एस ब्लॉट की पुस्तक 'माइ डायरीज' के भाग-दो के पृष्ठ २७६ पर विस्तार से अंकित की गई। यहाँ तक कि कालांतर में जब नेहरू ने स्वयं अपनी 'आत्मकथा' लिखी तो उसमें भी उसने इस घटना का अथवा सावरकर से सम्बन्धित अथ वीरतापूण कृत्य का उल्लेख नहीं किया। ब्लॉट ने अपनी उसी पुस्तक के आगे के पृष्ठ ४ डीगरा की वीरता की प्रशंसा करते हुए लिखा कि कोई भी बलिदानी ऐसा साहसी नहीं दिखाई देता जिसने मदनलाल डीगरा की भाँति साहस से अपने न्यायकर्ता न्यायाधीश का सामना किया हो। डीगरा का बलिदान दिवस भारतीयों को पीढ़ियाँ तक स्मरणीय रहेगा।

इतना ही नहीं, यहाँ यह कहना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि मदनलाल डीगरा के पक्षव्य के अन्तिम शब्दों को पढ़कर उस समय के इंग्लैंड में भावी प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल ने मुँह में महमा निकल पड़ा था, " ये देशभक्ति के नाम पर अभिव्यक्त सर्वोत्तम उद्गार हैं। ये ऐसे शब्द हैं जिन्हें सुनकर यूनानी लेखक प्लूटार्क के अमर वीरों का स्मरण हो आता है।" ऐसे वीर के लिए कायर नेहरू के पास उसके प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए शब्दों का भी अभाव हो गया था।

सावरकर लन्दन अथवा ब्राइटन में रहते हुए कबिताएँ, लेख और पत्रक लिखते रहे। उन्हें भारत भी भेजते रहे। अपने पत्रका में जहाँ वे दशवामिया और क्रांतिकारियों को सचेत करते रहते थे वहाँ उन्होंने दली रियायतों के राजाओं और राजकुमारों के नाम भी अनेक सन्देश इनके माध्यम से भेजे। जहाँ महाराजा खालियर ने क्रांतिकारियों को अंग्रेज सरकार के सुपुट कर दिया था वहाँ महाराजा बडौदा क्रांतिकारियों के प्रति सहानुभूति का व्यवहार करते थे। सावरकर का अनन्य भक्त शंकर बाबू नामक व्यक्ति महाराजा बडौदा के दरबार के रूप में कार्य करता रहा था और वही उनको क्रांतिकारियों से समाचार दिया करता था। ब्रिटिश गुप्तचरों की उस पर निगाह होने पर भी महाराजा ने उसको सेवा से पृथक् नहीं किया।

नेहरू पिता-पुत्र की कायरता का उल्लेख हम ऊपर कर आए हैं। यही पर उनके राजनीतिक गुरु गाँधी की अंग्रेज निष्ठा का भी उल्लेख कर दिया जाए तो अप्रासंगिक नहीं होगा।

## गाँधी की साम्राज्य निष्ठा

गाँधी जब कभी भी लन्दन आते तो वे इंडिया हाउस में अवश्य जाते। सावरकर के १९०६ में लन्दन पहुँचने के बाद से ही उनकी गाँधी से इंडिया हाउस में भेंट होती रहती थी और वे दक्षिण अफ्रीका की राजनीति के साथ साथ भारतीय राजनीति पर विचार विमर्श करते रहते थे। जहाँ गाँधी के अथ साथी सावरकर के तर्कों से प्रभावित होते थे वहाँ गाँधी उन्हें हतोत्साह करने का यत्न किया करता थे। इसी प्रसंग में एक

समय ऐसा भी आया जब गांधी और सावरकर का एक ही मंच पर एक ही विषय अपने-अपने विचार प्रकट करने का अवसर प्राप्त हुआ। यह १९०६ का विजया दशमी का अवसर था। लंदन के भारतीयों ने इस वर्ष विजया दशमी का उत्सव लंदन के वाटर के निकटस्थ 'निजामुददीन' रेस्टोरेंट में मनाने का निश्चय किया था।

गांधी उस समय लंदन में थे। इस समारोह की अध्यक्षता के लिए अम्बर यों स मिले तो गांधी इस बात पर तैयार हुए कि वहाँ का भोजन शाकाहारी होना चाहिए और सब मिलकर स्वयं भोजन बनायेंगे। गांधी निश्चित दिन वटिया से विलायती सूट में निर्धारित स्थान पर पहुँच गए और रसोई में जाकर अन्य भारतीयों की भाँति हाथ धोकर बर्तन में सहायता करने लग। अम्बर तनिक विलम्ब से आए और जब उन्होंने गांधी से आल छीलते हुए देखा तो उन्हें वहाँ से हटा दिया।

लगभग ७० भारतीय इस अवसर पर उपस्थित थे। अपने अध्यक्षीय भाषण में गांधी ने कहा, 'वाह कोई हिंदू हो, मुस्लिम अथवा पारसी, किन्तु उस इस बात का गव होना चाहिए कि वह उस देश का वासी है जहाँ श्री राम का जन्म हुआ था। उन भारत में यदि पुनः श्रीराम, सीता, लक्ष्मण और भग्न जन्म व्यक्ति उत्पन्न हो तो बहुत उतना ही समझ ही मन्ता है। यदि भारतीयों में भी राम के समान १२ वर्ष तक (बलकटह बक्स ओफ महात्मा गांधी के पण्ड ६ के पृष्ठ ४६६ पर १ वर्ष हाँक्रीत है।) ब्रह्मचर्य का पालन व वनवास भोगों की शक्ति सीता की पति परायणता, वर का भ्रातृ प्रेम और लक्ष्मण की सेवा की भावना जैसी उदात्त प्रवृत्तियाँ जगृत हों भारत भी शीघ्र ही स्वतंत्र होकर रहेगा।'

गांधी स्वयं की ब्रिटिश साम्राज्य का निष्ठावान नागरिक घोषित करने में कभी मन्दीब नहीं करते थे। यह उन्होंने विजय दशमी के समारोह में विलायती सूट पहनना और अपने भाषण में प्रातिहारियों की अनदेखी करके तथा दो मामल पुर बर्तन दीगरा की घटना को सबका भुलाकर प्रमाणित कर दिया। अपनी साम्राज्य निष्ठा का प्रमाण के समय-समय पर देते रहे हैं, जिसका उत्तेज आग व पण्डों पर दयालव किया जायगा।

आसफ अली ने एक स्थान पर इस उत्सव का वर्णन करते हुए कहा था कि वहाँ जो न अपने भाषण के अन्त में सावरकर के विषय में जो शब्द बहे थे वे कुछ इस प्रकार थे—'आज के मुख्य बक्ता का भाषण मेरे भाषण में उपरान्त होना जाता है, इसलिए आप लोग व और उनके बीच में अधिक व्यवधान बनना उचित नहीं समझना।' दो जो मन्दा ही दोहरी नीति अपनाते रहे हैं। मन में कुछ तो बचन में कुछ और ही। पर उन्होंने सावरकर के मन्त्र का समझा तो इस प्रकार की बात बह दो, कि इनने पुर अन्य स्थान पर व बह चुके थे—'मैं सत्य स्थित सभी प्रातिहारियों के समक्ष में आया हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी वीरता का मुझ पर प्रभाव पड़ा है कि इन अनुभव बिना कि उनका परिणाम उचित दिशा में नहीं हो रहा है। मैं अनुभव करता हूँ कि भारत की समझ के बिना किया जाई गन्धर्व नहीं हो सकती।'।

गांधी ने अपने विचार सन १९०८ के अंत में 'हिंदू स्वराज' के नए संस्करण की भूमिका में प्रकाशित किए थे। इतना ही नहीं उस समय लंदन में रहते हुए उन्होंने प्रत्येक श्रांतिकारी पर कुछ न कुछ फव्वती बसी और सावरकर पर तो उनकी विशेष कृपा रही। अपनी सारी प्रतिश्रिया उन्होंने पहने गुजराती में एक पत्र के रूप में वितरित की और फिर उसका अपनी पत्रिका, जिस में साठह अफ्रीका में रहते हुए प्रकाशित कर रहे थे, 'इंडियन ओपीयन' में उसकी प्रकाशित किया।

लंदन के उस विजया दशमी के उस वृत्त पर गांधी के बाद सावरकर बोले। उन्होंने कहा, "यह बात प्रत्येक भारतीय जानता है कि विजया दशमी से पूर्व दश दिनों की स्तुति में नवरात्रि पर्व मनाया जाता है। इन दिनों शक्ति अर्जित करने के लिए दश की स्तुति की जाती है। स्वयं राम ने भी रावण वध से पूर्व इसी लिए शक्ति की आराधना की थी, सभी वंश रामराज्य स्थापित करने में सफल हुए थे। यह ठीक है कि हिंदुस्थान हिंदुओं का है। फिर भी जिन प्रकार इन्द्रधनुष की सुंदरता उससे बढ़कर होनी से द्विगुणित हो जाती है, उसी प्रकार भारत में भविष्य का आकाश भी उतना ही सुंदर हो सकता है यदि वह मुस्लिम पारसी यहूदी तथा अनाथ संस्कृतियों के सर्वोत्तम गुणों को ग्रहण कर ले।"

यहां पर यह उल्लेख कर देना अप्रासंगिक नहीं होगा कि इसके बाद सावरकर और गांधी में वैचारिक और सद्भावनात्मक मतभेद निरंतर बढ़ता ही रहा। यद्यपि सावरकर अपने जीवन के अधिकांश वर्षों में राजनीतिक दृष्टि से परे, निरंतर कारागार में ही अपने जीवन के क्षण व्यतीत करते रहे तदपि दोनों में किसी भी बात पर कभी सहमति नहीं हुई।

## परिवार पर विपत्तियाँ

सावरकर के लिए सन १९०६ के अंतिम दो मास बड़े संघर्ष और कठिनाई का रहे। एक प्रकार से उन पर विपदाओं के बादल सदा ही छाये रहे। उधर भारत की स्थिति भी बड़ी ही खराब होने लगी थी। लाड मिटो अपनी दमनकारी नीति के अंतर्गत सब कुछ ही कुचल दन के लिए कृत सफल था। फिर भी श्रांतिकारी किसी प्रकार भयभीत नहीं हुए। उन्हीं दिनों बालियर में 'अभिनव भारत' की शाखा की स्थापना का समाचार मिला उसके बाद सतारा की शाखा प्रकाश में आई। महाराष्ट्र में बम्बई बन्तों की छोटी छोटी फ़ैक्टरियाँ सरकार की नज़रों में पड़ गई। यह सब सावरकर के बड़े भाई बाबाराव सावरकर के बढ़ती बनाए जाने के बाद की घटनाएँ हैं। उन्हें जून ८, १९०६ का जीवन कारावास का दण्ड घोषित किया जा चुका था। उन पर अभियोग था कि उन्होंने सम्राट के विश्व युद्ध भंडारण के लिए अनेक प्रकार का विद्रोही साहित्य प्रकाशित किया था जिनमें लिखा होता था 'बताओ बिना युद्ध के किसका राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई है?' जादि आदि।

भारत सरकार को बाबाराव सावरकर को बढ़ती बना लेने से ही मनाप नहीं

हुआ अपितु वह उनका परिवार के अन्य सदस्यों को भी अनेक प्रकार से प्रताड़ित करने लगी। १३ नवम्बर को अहमदाबाद में वायसराय लाह मिंटो के वध का अमर प्रकाश किया गया था। मिंटो पर जिस युवक ने वम फेंका था वह सावरकर के छोटे भाई नारायण सावरकर का परिचित था। उसका नाम था मोहनलाल पटेल। मोहनलाल गुजराती युवक था। केवल नारायण सावरकर में उसका परिचय होना मात्र नहीं नारायणराव सावरकर को भी बंदी बना लिया गया।

सावरकर का अपने बड़े भाई के आज में कारावास का दण्ड पान की सूचना नवम्बर १९०६ में प्राप्त हुई थी। उनको तभी यह भी विदित हुआ कि उनकी सारी पारिवारिक सम्पत्ति भी जब्त कर ली गई है। उस अवसर पर सावरकर ने अपने साथियों के मध्य कहा था 'जमी कया हुआ ह, कुछ भी नहीं। अभी तो स्वातंत्र्य सन्धी की आराधना के लिए हमें अपने प्राणों की बलि चढ़ानी है। सबस्व समर्पित करता हूँ।'

इसके कुछ ही दिनों बाद सावरकर को समाचार मिला कि उनके छोटे भाई नारायण सावरकर को भी अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध श्रान्तिकारी गतिविधियों में सम्मिलित होने के आरोप में बंदी बना लिया गया है। उस समय भी सावरकर ने कहा, चलो, इससे अधिक गौरव की बात क्या होगी कि हम तीनों भाई ही स्वातंत्र्य लक्ष्मी की आराधना में लीन हैं।'

## भाभी को सान्त्वना

नवम्बर १९०६ में जब सावरकर को अपने बड़े भाई के बंदी होने का समाचार मिला था तो उन्होंने अपनी भाभी श्रीमती मसुबाई को सान्त्वना देने के लिए एक पद्यमय मार्मिक पत्र लिखा था। उसका हिंदी पद्यांश, जिसे श्री हरीद्र भीवास्तव ने अपनी पुस्तक 'उदित मातण्ड' की सावरकर सन्देश में' के पृष्ठ १०८ पर इस प्रकार प्रकाशित किया है—'पत्र का शीर्षक था 'सान्त्वना'। पत्र के कुछ पद्यांशों का सार इस प्रकार है—

'अनेक पुष्प खिलते हैं और खिलकर मुझों जात है पर कोई उनकी गिनती नहीं करता। किंतु गजेंद्र की मूढ़ द्वारा भगवान के श्रीचरणा में समर्पित पुष्प अमर हो जाता है। इसी प्रकार हम तीनों भाई भी कमल पुष्प की भांति भगवान श्रीहरि (मातमूर्ति) के चरणा में समर्पित होकर अमर हो जायेंगे।'

सावरकर के मन में कुछ इस प्रकार की बात समा गई थी कि वे स्वयं एक प्रकार निष्कासन का सा ही जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनके बड़े भाई की आजीवन कारावास का दण्ड देकर कारागार के कष्ट भोगन के लिए भेज दिया गया है और सब छोटे भाई को भी बंदी बना लिया गया है जबकि उसकी आयु मात्र १६ वर्ष की है। हमने सरकार बदाचित्त उनका कणबीज ही नष्ट करने का उपक्रम कर रही है। अब उन्होंने उसी पत्र में आगे लिखा—

“देवकाय के हतु वीजनाश निवश’ होने वाली वशलता अमर हो जाती है और उसकी ‘लोकहित परिमल’ की सुगन्ध से समस्त दिशाएँ व्याप्त हो जाती है।”

किंकेड ने अपनी पुस्तक ‘फौर्टी फोर डेस ए पब्लिक सर्वेंट’ के पृष्ठ ११८ पर लिखा है कि सावरकर की पत्नी और उनकी भाभी ने पन पाकर प्रसन्नता अनुभव की और सावरकर की इच्छानुसार दहव्रती धने रहने का प्रण किया। उन्होंने उनको लिखा कि वे सरकार को पराजित करने का अपना युद्ध चालू रखें। यद्यपि वे स्वयं उस क्षरोक्षे पर खड़ी थीं जो कि टूट कर नीचे गिरने ही वाला था।

## भारत में जैक्सन वध

बाबाराव सावरकर को आजम कारावाम दिए जान और मिंटो पर असफल आक्रमण के बाद नारायण सावरकर के भी बन्दी बनाए जान से भारत के नांतिकारियों के मन में बड़ा जालोडन विस्फोटन चल रहा था। उसका परिणाम यह हुआ कि नांतिकारियों ने इस सबका बदला लेने का निश्चय किया और २१ दिसम्बर १९०६ को अनन्त काहेरे न नासिक के ब्रिटिश कलेक्टर ए एम टी जक्सन को, जो कि उस समय अपनी पत्नी के साथ नगर की विजयानन्द नाट्यशाला में आनन्द भग्न होकर नाट्य देख रहा था, गोली से भून डाला। क्या कोई कल्पना कर सकता है कि १६ वर्ष का किशोर ऐसा साहसिक कार्य कर सकेगा? किंतु काहेरे ने यह कर दिखाया।

२२ दिसम्बर १९०६ के साध्यकालीन समाचार पत्रों के माध्यम से सावरकर को यह समाचार मिला। काहेरे तथा उसके अग्रिम साथियों से पूछताछ करने पर विदित हुआ कि जिस पिस्तौल में जक्सन को भूना गया था वह उही वाउनिंग पिस्तौलों में से एक पिस्तौल थी जो सावरकर ने अपने इच्छिया हाउस के ग्योरे चतुर्भुज अमीन के माध्यम में भारत भेजी थी। जक्सन के वध से तो सरकार क्रोध से काँप उठी। उसने नगर में कहर बर्पा करना आरम्भ कर दिया। हजारों लोगों का पकड़ा गया, पूछताछ हुई और अन्त में मार-मोट की नीबत आ गई। इसे ‘नामिक पडयंत्र’ का नाम दिया गया। इस मुकद्दमे में ३६ व्यक्तियों पर अभियोग लगाया गया।

## लन्दन से विदा

इस प्रकार यह घटनाक्रम इतनी तीव्रता से चलता रहा कि सावरकर का इंग्लैंड में रहना दूसरा होता गया। उनके लिए लन्दन में रहना पल पल पर भारी होता गया। सावरकर के अनेक मित्र फ्रांस में थे, वे उनको फ्रांस में जाकर रहने का निमन्त्रण दत्त रहते थे। उस अवस्था में सावरकर न यही उचित समझा कि कम से कम कुछ समय के लिए ही सही उनको लन्दन छोड़ देना चाहिए। ऐसी स्थिति में परिस ही उनको उपयुक्त स्थान प्रतीत हुआ। इस प्रकार वे १९१० की जनवरी के प्रारम्भ में लन्दन से परिस के लिए प्रस्थान कर गए।

लन्दन से सावरकर की विदाई का वर्णन ज्ञानचन्द वर्मा ने इस प्रकार किया है—



‘जब विपदायें आती हैं तो एक साथ ही आती हैं। एक ओर तो सावरकर गभीर रूप से अस्वस्थ हो गए, उसके साथ ही उनको दोहरा निमोनिया हो गया। उनके चिकित्सक न इंग्लैंड के शीतल मन्चने के लिए स्थान परिवर्तन का सुझाव दिया। उसी दिन सावरकर ने किसी भारतीय होटल में जाकर बड़ी चावल खान की इच्छा व्यक्त की। उनको जान में असमर्थ समझ कर मैं स्वयं निजामुद्दीन होटल जाकर उनके लिए भोजन ले आया। उन्होंने जी भरकर भोजन किया। यथा समय मैं अपने कुछ अन्य मित्रों के साथ उन्हें विक्टोरिया स्टेशन पर विदा करने के लिए गया। स्वतंत्र सारा कर के रूप में मेरे लिए यह उनके अन्तिम दशन थे।’

## लन्दन में बंदी

### बम्बई से चारट

नियति को शायद कुछ और ही स्वीकार्य था। सावरकर जब लन्दन से पेरिस को प्रस्थान कर गए तो लन्दन में उनके लिए कुछ और ही तैयार किया जा रहा था। पेरिस पहुँचकर सावरकर भी चुप नहीं बठे रह सके। उन्होंने लन्दन जैसी गतिविधियाँ पेरिस में भी आरम्भ कर लीं। पेरिस में वे मादाम कामा के निवास पर रह रहे थे। वहाँ के भारतीय क्रांतिकारियों से उन्होंने सम्पर्क स्थापित किया और नई नई योजनाएँ बनाने लगे। क्रांति का केन्द्र अब लन्दन से पेरिस को स्थानान्तरित हो गया था।

अंग्रेज सरकार कुछ और ही मोच रही थी। सरकार को यह ज्ञात हो गया था कि जिस पिस्तौल से काट्टेरे ने जख्म का बंध किया था वह पिस्तौल भारत अथवा लन्दन की नहीं अपितु फ्रांस की बनी हुई थी। अतः ब्रिटिश सरकार ने इस आरोप में सरदारसिंह राणा, श्यामजी कृष्ण वर्मा और मादाम कामा को सपट में लेन का विचार किया। सावरकर उन दिनों पेरिस में थे। मादाम कामा ने जब स्थिति की गम्भीरता को देखा तो उन्होंने पेरिस में स्थित ब्रिटिश दूतावास का एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने उस पिस्तौल काण्ड में सारा दायित्व स्वयं अपने ऊपर ले लिया।

ब्रिटिश सरकार का इससे समाधान नहीं हुआ। उसका मुख्य लक्ष्य सावरकर थे। वह किसी न किसी प्रकार सावरकर को फसाने का यत्न कर रही थी। उन दिनों बम्बई के गवर्नर पद पर ज्योज क्लार्क था, जिसे कालान्तर में उसकी सेवाओं के लिए ब्रिटिश सरकार ने लाड सिडनिहम की उपाधि से विभूषित किया था। उसने नासिक के विशेष 'यायाधीश माण्टगुमरी' को आदेश दिया कि वह सावरकर के विरुद्ध ऐसी सामग्री जुटाए कि जिसके आधार पर उनके विरुद्ध अभियोग दायर किया जा सके। इस योजना के अनुसार १७ जनवरी १९१० को माण्टगुमरी के 'यायालय' में भगाड़े अपराधी नियम १८८१, के अन्तर्गत एक अभियोग दज करा कर बम्बई सरकार द्वारा सावरकर के विरुद्ध एक तार-वारण्ट लन्दन भेजा गया। यह वारण्ट २२ जनवरी १९१०

लंदन के बो स्ट्रीट न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया। इसमें सावरकर के विभिन्नलिखित पाँच अभियोग लगाए गए थे—

- १ भारत के अंग्रेजी शासन के विरुद्ध पड़यंत्र,
- २ ब्रिटिश सम्राट को प्रभुमत्ता से वंचित करने का प्रयास करना,
- ३ अवध शास्त्रास्त्रों का संग्रह तथा वितरण करना और जक्सन बकश वाइली की हत्या की प्रेरणा देना,
- ४ लंदन में शास्त्रा का संग्रह तथा उन्हें भारत का निर्यात करना, और
- ५ भारत में जनवरी १९०६ से मार्च १९०६ तक तथा लंदन में १९०६-१९०६ तक राजद्रोहात्मक भाषण देना।

सावरकर के लिए यह सब अनपेक्षित नहीं था। वे जानते थे कि कभी न कभी उनको सरकारी अतिथि बनना ही पड़ेगा। जब सावरकर पर अभियोग लगाए गए, बी० एस० ज्यूयर उन दिनों लंदन में ही थे। उन्होंने इसकी सूचना सावरकर को देकर उन्हें सावधान रहने के लिए कहा। किंतु सावरकर के मन में कुछ और ही था। यह भली भाँति जानते थे कि वे सावधान रहकर सरकार के शिकंसे में बचत करिँगे और सरकार उनके साथियों को बंदी बनायगी और उनको परेशान करेगी। ऐसी स्थिति में श्रान्तिकारी दल के सदस्यों में हीनता की भावना उत्पन्न होगी जिससे न केवल दल के अपितु देश को भी हानि होगी। सावरकर के परिस के मित्रों को जब विदित हुआ कि सावरकर के बंदी बनाया जाना चाहिए, तो उन्होंने भी सावरकर को लंदन न जाने के लिए सावधान किया।

तब सावरकर का कहना ही पड़ा “नहीं, यह असम्भव है। इंग्लैंड में मेरे साथियों और भारत में मेरे सगे सम्बन्धियों तथा साथियों पर सबूत के पहाड़ गिर रहे हैं और मैं यहाँ पेरिस में मौन मस्ती कर रहा हूँ। यह मेरे लिए अगहनीय होना कसब साय लज्जा की भी बात है। मुझे इसका सामना करना ही होगा।”

सावरकर ने निश्चय किया कि अपनी जात्मा की सुरक्षा के लिए अपने शरीर को खोना ही उपयुक्त है। उसका निर्माण ही बलिदानियों की मिट्टी से हुआ था। इस प्रकार उन्होंने लंदन के लिए यात्रा आरम्भ की। पेरिस स्टेशन पर उन्हें उनका भक्त साथियों के अतिरिक्त मादाम कामा और लाला हरदयाल ने भारी मन से दिवाइयाँ सावरकर के लिए लाता हरदयाल के यह अंतिम दक्षन थे। इसका उल्लेख सावरकर बाद में किया है। सावरकर स्वच्छा में लंदन के लिए चले थे किंतु फिर भी स्काटलैण्ड याद ने एक मनगढ़ंत कहानी बना दी कि किसी जुमारी के नाम से उन्होंने सावरकर का झूठा पत्र लिखकर लंदन बुलवाया और इस प्रकार उन्हें अपने जाल में फँसाया।

१३ मार्च १९१० के दिन सावरकर की रेलगाड़ी लंदन के विकटोरिया स्टेशन पर रूकी। लंदन की पुलिस ने मुख का साँस सी ‘आखिर उनका शिकार आ ही गया।’ जैसा ही उन्होंने रेल के डिब्बे में बाहर पग रखा कि स्काटलैंड याद के इन्स्पेक्टर ई० ए० के मुख से निकल गया, “वह देखो वह सावरकर है।” तुरंत सावरकर

को उनका बारण्ट दिखाया गया और उह बंदी बना लिया गया।

सावरकर के साथ दादाभाई नौरोजी की पौत्री कु० पेरीनबन कैप्टेन भी थी। पर उहे पुलिस न कुछ नहीं कहा। सावरकर को निक्टवर्नी बो स्ट्रीट के पुलिस घाने ले जाया गया और वहाँ उनके सामान की तलाशी ली गई। उसमे कुछ वस्तुओ के अतिरिक्त दो प्रतिया 'भारतीय स्वातंत्र्य समर '१८५७', सात प्रतियाँ 'चूज ओ इंडियन प्रिंसज' तथा एक प्रति मैजिनी की जीवनी एव समाचार पत्रो की कतरनें पाइ गई।

## अतीत कृत्यो पर दण्ड

सावरकर की इस गिरफ्तारी पर डेविड गारनट न लंदन के 'डेली 'यूज' म एक पत्र प्रकाशित किया। जिसका शीर्षक था 'पास्ट औफ़ेसेज' अर्थात् अतीत के कृत्य। जिसम उहान लिखा, 'सन १६०६ मे भारत म दिय गए भाषणो के लिए सन १६१० म उनका इंग्लैंड म बन्दी बनाया गया। यह ब्रिटिश विधि विधान का क्या ही सुंदर उदाहरण है।'।

अगले दिन १४-३ १६१० को उनको बो स्ट्रीट पुलिस 'यायालय' लाया गया। यायालय उस दिन दशका स खचाखच भरा हुआ था। बीच बीच म सावरकर का जय-जयकार भी होता रहा। 'यायाधीश' का नाम था सर एलबर्ट डिरटजन। सरकारी अधिकारी विलियम ह्यूडस के निर्देश के पर ए एच बोडकिन सरकारी वकील था और एम ए टी रोलट उसका सहायक वकील था। यही रोलट बाद में भारत म अपनी ज्यादातियो के कारण बड़ा कुख्यात हुआ था। 'रोलट एक्ट' उसी नाम पर पारित हुआ था। सावरकर की जोर स लंदन के विख्यात वकील रजिनेल्ड वान न जमानत का आवेदन प्रस्तुत किया, किंतु 'यायाधीश' न उस जस्वीकार कर दिया। 'यायाधीश' न २३ अप्रैल की अगली तिथि की घोषणा कर सावरकर को ब्रिक्स्टन बन्दीगृह भिजवा दिया।

सावरकर के ब्रिक्स्टन जेल जान स पूर्व १५ मार्च का अय्यर ने बो स्ट्रीट थान में सावरकर म भेंट की थी और विचार विमर्श के उपरान्त उहोने वकील के रूप में वान का निर्वाचा किया था इसके लिए अय्यर का बहुत दौड रूप करनी पडी थी। इसके साथ ही अय्यर न अपन तथा सावरकर के अनक परिचिता का पत्र लिखकर आर्थिक सहायता क लिए कहा था। सार मुकदमे का खच लगभग २०० पौड आना गया था। श्यामजी कृष्ण वर्मा न पत्र मिलते ही दस पौड का चैक भेज दिया था।

सावरकर जब ब्रिक्स्टन कारागार म पहुच ता उह वहा अपना पत्रकार मित्र गॉय मलहेंड मिल गया। गाय मलहेंड वह प्रथम अभारतीय था जो भारतीय स्वतंत्रता क लिए कारागार की यातना भुगतने वाला था। वह श्यामजी कृष्ण वर्मा क समाचार पत्र 'इण्डियन सोशियोलोजिस्ट' का प्रकाशक था। यद्यपि सरकार ने भरसक प्रयत्न किया कि उन दोना में परस्पर किसी प्रकार भी भेंट न हो। इसके लिए बड़ी सुरक्षा व्यवस्था की गई। तदपि मलहेंड ने अपने सस्मरणो म लिखा है कि 'हम दोना नित्य-ही स्वप्ना, अनुभूतियो और कल्पनाओ मे मिलते रहत थे।'।

## “मृत्यु-पत्र”

सावरकर को ब्रिक्स्टन जेल में रहते हुए अपने घर का स्मरण हो जाता था भाविक था। घर पर उनकी पत्नी और भाभी दो ऐसी महिलाएँ थीं जिनके प्रति वाराणसी का वास भोग रह था। इससे पूर्व सावरकर का छोटा सा बच्चा फरवरी १९०६ में चल बसा था। सावरकर के छोटे भाई नारायण गव की भी नासिक पठयत्र में फसातिग गया था। इस सब पर विचार करते हुए सावरकर ने अपनी भाभी को सात्त्वनात्मक पत्र लिखना चाहा। क्योंकि अन्य कोई साधन अब उनसे मिलन का हो ही नहीं सकता था।

सावरकर का यह पत्र मराठी में कवितावद्ध था। उसका शीपक उन्होंने ‘मृत्यु पत्र’ दिया था। हम यहाँ पर उसका हिन्दी गद्यानुवाद प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसमें कि पाठक को न केवल सावरकर की काव्यात्मक प्रतिभा का ज्ञान हो सके अपितु उनके मन में कसी ज्वाला धधक रही थी इसका भी ज्ञान हो सके—

“आकाश पर वैशाख मास का चन्द्रमा हास्य कर रहा था। उसकी चट्टिका चारों ओर बिखरी हुई थी। जिस माँ की सत्ता को बाल ने जलसिंचन किया था वह अपने छोटे फूलों की महक से फूल रही थी। गोकुल की भाँति घर में आनन्द मग्न हो रहा था क्योंकि सभी आदरणीय सम्बन्धी आये हुए थे। उन नवयुवकों की आत्मा दीप्ति, तज और धैर्य दृष्टकर स्वयं कीर्ति भी नाचती थी। नवयौवन के प्रेम में हल लोगों के हृदय पुष्प खिल रहे थे और सच्चरित्रता की सुगन्ध में सुगन्धित हो रहे थे। जिस सत्ता और तज में हमारा घर उद्यान की भाँति शोभायमान रहता था।

“ऐसे समय, प्रिय भाभी! तुम्हारी कुशलता का कारण भोजन और भी स्वादिष्ट बनता था। हम लोग वार्तालाप करते हुए चादनी में भोजन करने बैठते थे। उन समय सभी-सभी श्रीगमचन्द्र के वनवास की कथा, इटली देश का स्वतंत्र हान का इतिहास कोर्ब वहन लगता। हम लोग वीरवर ताताजी का वीरगीत गाने लगते। कभी कभी चित्तौड़गढ़ और पून के शनिवार बाड़े का वार्तालाप होने लगता। एन सम— उस अनाथ माता का स्मरण आता तो शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने हेतु अत्यंत द्रवित हार में रोमांचित हो उठता।

‘प्यारी भाभी! वह रमणीय जवमर, वह प्रियजना का मधुर महवात वह चन्द्र प्रकाश, वह नवकथाएँ व रमणीय रात राष्ट्र को बचनमुक्त करने का दृष्टिगत लगने उसी प्रति के लिए किए गए वह सक्त्प और घत, तुम्हें याद दूँ।

हो वह बहिनी! तुम्हें यह स्मरण होगा, उस समय जब युवन सम में कहा था— हम बाजी प्रभु चर्नेंगे। ता युवाियाँ भी उसी गव में बह उठी थी— हम भी चित्तौड़ की वीरगताएँ चर्नेंगे। ‘बहिनी! यथा यह घन हिमो—यथा—म नहीं लिपा दा। जान तब का निहाय निम प्रकट रूप में दिव्य दाहर रहता है, उमी साधन का निम भाभी! हमने गूँज मोच गमल कर हो धारण किया है।

‘अब बहिनी! उस समय प्रिय जना का साथ की हुई प्रतिज्ञाओं का पालन करो और फिर भाव की अवस्था को लो। तब तुम लगेगी कि अभी पूरे अन्धकार

भी नहीं होने पाये कि हमारा उद्देश्य इतना अधिक सफल हो गया है। तब, ऐसे समय वताओ, मन में उत्साह क्यों न उत्पन्न हो। देखो, क्याकुमारी से लेकर हिमालय तक देश में हलचल सी मच गई है और यह राष्ट्र दीनता को त्याग कर वीरता का वरण कर रहा है। रघुवीर के चरणों में भक्ता की अपार भीड़ लगी है। उधर यज्ञ कुण्ड में बलिदान की सामग्री भी प्रज्वलित हो उठी है। इस यज्ञ में आहुति हेतु जा लोग दीक्षा ले चुके हैं उनमें पूछा जा रहा है—‘समग्र विश्व की भगल कामना हेतु कौन अपनी आहुति देने के लिए सन्नद्ध है?’

‘साध्वी भाभी! इस दिव्याय निमंत्रण को पाकर हमने गज कर कहा था—‘लो हमारा सम्पूर्ण कुल प्रस्तुत है।’ यह कहकर हमने ईश्वरीय सम्मान प्राप्त किया है, हमारा जीवन घम पर योछावर होन के लिए ही है, यह कहना अथहीन नहीं है। भाभी! अनन्त दातनाओं को सहकर भी हमारा धर्म नहीं टूटा और न ही खण्डित हो पाया है हमारा निष्काम कर्मयोग। उस समय प्रियजनो के साथ की गई प्रतिज्ञाएँ आज सत्य हो रही हैं। अपनी माँ को बधनमुक्त करने हेतु इस प्रज्वलित यज्ञकुण्ड में अपना सर्वस्व योछावर कर आज हम कृताय हो गए हैं।

‘मातृभूमि! तर चरणों में पहले ही मैं अपना मन अर्पित कर चुका हूँ अब मेरा वक्तव्य वाग्वैभव, मेरी नई कविता, सभी कुछ तेरे चरणा में समर्पित है। मेरे लेखा में कोई अर्थ विषय नहीं है। तर स्थंडिल पर मैं अपने प्यारे मित्र संध को डाल चुका हूँ। अपना तन, मन, धन, यौवन सभी तुझ पर वार चुका हूँ। देश सेवा में ही देश सेवा है, यह मान कर मैंने तारी सेवा के माध्यम में भगवान की सेवा की है। इसी पवित्र अग्नि में मैं अपनी भाभी, पुत्र पत्नी और बड़े भाई को भी भेंट कर चुका हूँ और अब स्वयं मम पण के लिए प्रस्तुत हूँ। किंतु, यह तो कुछ भी नहीं। हम यदि सात भाई भी हात तो उन सबका बलिदान तेरे ही चरणों में होता। किंतु इससे क्या, इस भारत भूमि की तो तीन कोटि सन्तान हैं। इनमें से जो मातृभक्ति में रत है वे ही धन्य हैं। हमारा कुल भी उनमें ईश्वरीय अंश के समान है। इसलिए निवश होकर भी हमारा वश अखंड हो गया है।

‘वश चाहे अखण्ड हो अथवा न हो। पर है मातृभूमि! हमारे उद्देश्य पूर्ण हो। तुझे बधनमुक्त करने हेतु इस पावन अग्नि में अपना सर्वस्व होमकर हम कृताय हो गए। प्रिय भाभी! यही समन कर अपने कुल को सफल मानिये। श्री पावती जी न हिमगिरि की चोटिया पर तप किया है और अनन्त राजपूतनिया भी हँसत हँसत प्राणों की जाहुति दे चुकी हैं। भारतीय चलनामा का—हूँ तज, तप और बल आज भी नष्ट नहीं हुआ है, इस बात को प्रमाणित करने के लिए, प्रिय भाभी! तुम्हारा समस्त व्यवहार भी वीरागना की भाँति होना चाहिए।

‘हे देवि! यहाँ से तुम्हारे लिये मेरा यही सन्देश है। तुम्हारे वत्सल चरणा में मेरा प्रमद्वक प्रणाम। मेरी प्रिय पत्नी को जालिगा कहना। आज तक का इतिहास जिसे प्रकट रूप में दिव्य दाहक कहता है, उसी ‘सतीव्रत’ को प्रिय भाभी! हमन सोच

समझकर बरण किया है।”

इस पत्र ने सावरकर महिलाओं को सात्वना प्रदान की अथवा स्वयं सावरकर का चित्त स्थिर हुआ, यह अनुमान करने की ही बात है।

## एक और नाटक

२३ अप्रैल १९१० को जज न्यायाधीश बोडकिन ने सावरकर के अभियोगों की जांचवाही आरम्भ की तो सावरकर के वकील वान ने यथाशक्ति प्रयास किया कि सावरकर का यह अभियोग इंग्लैंड में ही चलाया जाय। इस विषय पर विवाद हुआ किन्तु १२ मई १९१० को न्यायाधीश ने निणय दे दिया कि सावरकर का अभियोग भारत में ही चलाया जाना चाहिए। सावरकर के वकील श्री वान ने ह्वियस कौपस के लिए याचिका दापर की। इस पर २ और ३ जून को बहस हुई। सावरकर की ओर से ह्वियस कौपस याचिका पर श्री ए पावल के सी और श्री जे एम पारीख ने बहस की। किन्तु मुट्ठ न्यायाधीश लाड एलवट स्टोन ने निचली न्यायालय के निणय को बरकरार रखा। तीन अन्य न्यायाधीश भी वे उनमें से याचिका को बोलरिज ने सावरकर को भारत भेज जाय के विरुद्ध अपना मत दिया था किन्तु उनके मत का अल्पमत मानकर उस अस्वीकार कर दिया गया।

इस निणय के विरुद्ध कोर्ट ऑफ सिविल अपील में पुनः अपील की गई। श्री वान के तर्कों से न्यायाधीश यद्यपि पर्याप्त प्रभावित दिखाई दिए किन्तु सोलिसिटर जनरल के वातन की बारी आई तो उन्होंने सारे किये कराये पर पानी फेर दिया। य सोलिसिटर जनरल कोई जय नहीं अपितु रफाक ईसाक, जो कात्ता तर में लाड रीडिंग के नाम से भारत के जनरल जनरल बनकर जाय थे, वही थे। इस प्रकार सावरकर का भारत भेजना का निणय हो गया।

तब सावरकर के अभियोग के लिए विशेष अनुमति के द्वारा एक विशेष टिबल नल की नियुक्ति की गई।

इस निणय के विरोध में सावरकर के वकील ने एक अय प्रार्थना पत्र दिया जिसमें कहा गया कि लाड चांसलर के सम्मुख अपील करने के लिए उनको कुछ समय दिया जाय। इसका उत्तर में उनको १५ दिन का समय दिया गया। इसका लिय बहुत धन की आवश्यकता थी। सावरकर ने पेरिस में अपने मित्रों को लिखा और उहां धन की व्यवस्था भी कर दी किन्तु जो यकिन धन लेकर आ रहा था उसका मन में बर्बादी जा गई और वह सारा धन स्वयं ही पचा गया। एक प्रकार से सावरकर के लिए तो यही हुआ कि उता गेसि में कोई सन्देशवाहक जाया और न धन ही आया। जन धन से अभाव में प्रार्थनापत्र भी नहीं दिया गया। कदाचित् नियति का यही स्वीकार होगा।

## सहयोगियों की छटपटाहट

जब यह निश्चय हो गया कि लंदन के 'यायालयों' में अब उनकी मुक्ति के लिए कुछ नहीं हो सकता है तो क्रांतिकारियों के मस्तिष्क में अनेक प्रकार के विचार आने लगे। वह अब यह विचार करने लगे कि किसी प्रकार सावरकर को बंदीगृह से मुक्त किया जाय। इसके लिए अनेक प्रकार की युक्तियाँ की गईं अनेक प्रकार की योजनाएँ बनने लगी।

अन्त में दो योजनाएँ, निश्चित की गईं। एक योजना यह थी कि सावरकर की शकल मूर्त का कोई व्यक्ति अपनी विशेष पारम्परिक वेषभूषा में जेल में उनसे मिलने के लिए जाय। वहाँ किसी प्रकार सावरकर उसके वस्त्र पहन लें और बाहर जा जायें और वह व्यक्ति सावरकर के ध्यान पर जेल में रह जाय। इसके अतिरिक्त एक अन्य योजना यह थी कि सावरकर का जिस समय बंदीगृह से 'यायालय' को ले जाया जाता है उस समय उनको बलात् छुड़ा लिया जाय। तदनंतर उनको महिला के वस्त्र पहना कर छिपा दिया जाय। इसके लिए डेविड गार्नेट अपनी माँ के वस्त्र लेकर गयी थी, किंतु उनकी यह योजना भी सफल नहीं हो पाई।

अपनी पुस्तक 'गोल्डन इवो' के पृष्ठ १५८-१६ में डेविड गार्नेट लिखा है कि श्रीमती ड्राइहस्ट जो कि बहुत ही प्रभावशाली महिला थी, उनके तथा सिनफीन नेता मौड गौन ने सावरकर को जेल से 'यायालय' जाते हुए छुड़ाने का यत्न किया था। वे एक निर्धारित स्थान पर उस गाड़ी की प्रतीक्षा करत रहे जिसमें सावरकर को 'यायालय' ले जाया जाना वाला था। किंतु उनका प्रयत्न विफल हो गया, क्योंकि पुलिस को उसकी भन्क मिल गई और उसने 'यायालय' जाने का मार्ग ही बदल दिया। उस मार्ग से जा बाहर आया उसको जब रोका गया तो विमुक्तिकारियों ने देखा कि सावरकर उसमें नहीं है। सावरकर के जय अनेक मित्र भी इस प्रकार की योजनाएँ बनात रहे किंतु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ।

सम्भवतया जानबूझ ने गार्नेट को बताया था कि पेरिस के दो व्यक्ति सावरकर को छुड़ा कर उनके स्थान पर स्वयं अनाथ कारावास भुगतने के लिए तयार थे। किंतु 'ए ए' ने धोखा दे दिया। वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय थ्रिस्टन जेल में अनेक बार सावरकर से मिलने के लिए पेरिस से लंदन आते रहे। वे चौदह बार उनसे मिले। इसका उद्देश्य जय कुछ नहीं उनका वहाँ से भगाना ही चट्टोपाध्याय का प्रेय था। किंतु सफलता नहीं मिली। गार्नेट की पुस्तक में 'ए ए' से अभिप्राय आसफअली से है जयवा किसी जय से, यह नहीं जाना जा सका। उसने यह भी लिखा है कि किसी ने सावरकर की नकल बनकर उन्हें भगाने की योजना बनाई थी, किंतु असफल रही।

यद्यपि उनको छुड़ाने का प्रत्येक प्रयत्न असफल रहा था फिर भी उनके साथी निराश नहीं हुए थे।



## मार्सेलस मे मिलूंगा

बी बी गस अय्यर, जिसे पुलिस सावरकर का दाया हाथ बताया करती थी, क्रिस्टन जेल में जब उनसे मिलने के लिए गए तब उनके साथ अपनी अन्तिम भेंट में सावरकर ने उनसे हिन्दी में कहा था 'यदि परिस्थिति ने साथ दिया तो मैं मार्सेलस में अपने साथियों से भेंट करना चाहूँगा।' अय्यर को संकेत मिल गया कि वह मार्सेलस में कार लेकर तयार रहे। ठीक उसी समय वाडर ने आकर कहा, भेंट का समय समाप्त हो गया है।' बात आगे नहीं बढ़ी सकी और दोनों न भरे मन से एक दूसरे को विदा दी। अय्यर समझते थे कि कदाचित्त यह उनके परस्पर मिलने का अन्तिम अवसर था। जब अय्यर की आँखा में आसू निकलने लगे तो सावरकर ने उसको सान्त्वना देते हुए कहा, "नहीं, नहीं। हम सो हिंदू हैं और गीता का अध्ययन करते हैं। हमें इन क्रूर जनों के सम्मुख अश्रुपात नहीं करना चाहिए।"

डेविड गारनेट भी सावरकर को क्रिस्टन जेल में मिला था। उसने सावरकर की साफ कालर और रुमात दिये थे। किंतु सावरकर का गला बहुत ही पतला हान के कारण कालर फिट नहीं बैठे। गारनेट ने सावरकर की वैधानिक रीति से छुड़ाने के यत्न में तो सहायता की ही थी उनके भाग निकलने का भी मार्ग बनाना चाहता था किन्तु बेचारा असफल रहा था। उसके प्रयत्नों और सहायता पर सावरकर ने आभार व्यक्त करते हुए अपनी अन्तिम भेंट में उससे कहा था यह बात महत्वपूर्ण नहीं है कि अपने प्रयत्न में कोई सफल होता है अथवा असफल होता है। जब तक आप सघप करने की स्थिति में हैं, परिणाम की चिन्ता मत करो। जिस चीज का महत्व है, वह है भावना का। मनुष्य में सघप की भावना होनी चाहिए। आपने जो कुछ किया वह आश्चर्यकारक था फिर आप इस बात की चिन्ता क्यों करते हैं कि आपने यह क्यों नहीं किया अथवा वह क्यों नहीं किया। मेरी चिन्ता छोड़ दो। मैं किसी न किसी प्रकार निकल भागूंगा। यदि आप लोग के प्रयत्न और योजना असफल होती है तो मैं भी भागने की एक योजना बना ली है।

इस भेंट का उल्लेख डेविड गारनेट ने अपनी पुस्तक 'द गोल्डन इको' के पृष्ठ १६० में किया है।

## भारत की ओर

सावरकर का जब निश्चय हो गया कि अब उनका लदन में विदा होना है अपने यहाँ के साथियों से विदा होना है तो उनके मन में उनसे विदा लेने की जो भावना प्रसूतित हुई उसको उन्होंने छद्मोद्बुद्ध किया। उनके य मराठी छद्म काव्य-ज्ञान में अनुपमेय <sup>४</sup>। उनमें ग केरन दा छद्म का हिन्दी भाषानुवाद यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

जिम प्रकार किसी पुराने नाटक के  
मन और जीवित सभी पात्र

मिल जाते हैं अंतिम दृश्य में,  
 इस स्वतंत्रता सघष के भी हम  
 सभी असह्य पात्र  
 उसी प्रकार इतिहास के  
 रगमच पर अवश्य मिलेंगे कभी  
 और मानवतारूपी दशक  
 करेंगे तृण म जयजयकार हमारा  
 तब तक के लिए  
 मित्रो ! विदा ! विदा !  
 मेरा यह तुच्छ शरीर गिर जहाँ कहीं,  
 चाहे अण्डमान की क्रूर काल काठरी में  
 जहाँ सहानुभूति का कोई स्वर न हो  
 अथवा जिसका समेटा हो  
 गया की पवित्र धारा ने  
 जिसमें रानि के उज्ज्वल प्रकाश में  
 नतन करत हो अगणित नक्षत्र  
 वे अपने मुखर उत्साहित स्वर से  
 गान करेंगे उस विजय का  
 और कहेंगे उत्साहित मन से  
 श्री राम ने पूरा किया  
 अपना वचन और परामृत किया  
 दुष्ट रावण की  
 स्थापित करने राम राज्य  
 यह मातृभूमि के प्रति प्रेम भावना  
 हमारे बलिदानी वीर सनिक  
 उठो, जागो ! जो युद्ध तुमन सदा और बलिदान हुए  
 उसमें हम विजयी हुए  
 तब तक के लिए मेरे प्रिय मित्रो !  
 विदा ! विदा !!

२६ जून १९१० को, अंग्रेजी साम्राज्य का तत्कालीन मह राज्प सचिव विंस्टन  
 चर्चिल, जो कालांतर में वहाँ का प्रधानमंत्री बना और भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन  
 को निरन्तर क्षति पहुँचाने का काय करता रहा, उसने सावरकर को ब्रिटिश भारत  
 भेजने का आदेश जारी किया और जिस प्रकार औरंगजेब ने शिवाजी को बन्दी बना कर  
 सुख का साँस लिया था उसी प्रकार ब्रिटिश सरकार ने सावरकर को जहाज में बँठाकर  
 सुख का साँस लिया ।

## समुद्र में छलांग

अतंत वह दिन भी आया। शुक्रवार प्रथम जुलाई १९१० 'एस एस मारिया' नामक जलपोत सावरकर को लंदन में भारत में जाने के लिए अपनी ऐतिहासिक यात्रा पर चल पड़ा। मार्ग पर आने वाली बाधाओं को टालने के विचार से वह जलपोत फ्रांस के प्रचलित मार्ग से न जाकर ब्रिस्के की खाड़ी से निकला। अपने शिकार को बर्ग कर रूप में ले जात हुए कदाचित्त 'मोरिया' जलपोत गव अनुभव करता हुआ समुद्र की तहों में खेचता आग बद रहा था कि महमा उसके गव को ठेस लगी। इजिन में कुछ गड़बड़ हो गई और फ्रांस के मार्सेल्स बंदरगाह के निक्ट उसकी मरम्मत करने की आवश्यकता पड़ गई तो जहाज को सीधा न जाकर मार्सेल्स की ओर मुड़ना पड़ गया। आखिरकार २२ जुलाई १९१० को वह मार्सेल्स बंदरगाह पर जा लगा।

२६ जून का जब चर्चिल न सावरकर को भारत भेजने का आदेश दिया था तो उसके साथ ही तार द्वारा फ्रांस सरकार के गुप्तचर विभाग को जलपोत के उस मार्ग में जान की पूर्व सूचना दे दी गई। इसके साथ ही उनको सावधान भी कर दिया गया कि 'इस जलपोत में एक 'बहुत ही महत्वपूर्ण बन्दी भारत से जाया जा रहा है जिसके अनेक क्रांतिकारी साथी फ्रांस में रह रहे हैं और वे उसको छुड़ाने का यत्न कर सकते हैं।' सम्भवतया ब्रिटिश सरकार को किसी प्रकार की भनक लगी होगी तभी तो उसने फ्रांस की सरकार को सावधान किया।

बंदी सावरकर के साथ इस जलपोत में स्काटलैंड याद का इस्पक्टर ई जॉन पारकर और बम्बई का महायुक्त पुलिस सुपरिंटेंडेंट पावर अपन दस अग्र सुरक्षा अधिकारियों के साथ चल रहे थे। जलपोत जब मार्सेल्स पहुँचा तो मार्सेल्स के पुलिस कमिश्नर हेनरी लेबालियास ने जॉन पारकर से भेंट की और उसको लंदन के पुलिस कमिश्नर का पेरिस के पुलिस प्रमुख को पत्र दिखाया। दोनों में परस्पर कुशल समाचार का आदान प्रदान हुआ पुलिस कमिश्नर ने पारकर को हर सम्भव सहायता देने का वचन दिया।

क्या कोई कल्पना कर सकता है कि बंदी के रूप में हथकड़ी बेड़ी से बन्ना और चम्बे से बंधा हुआ व्यक्ति कुछ बोल भी सकता है? किन्तु सावरकर थे कि न केवल साधारण बातचीत में भाग ले रहे थे अपितु चुटकले सुना-सुनावर अपन साथियों को हँसा भी रह थे, अपने सम्मरण सुनावर उन्हें रोमांचित कर रहे थे और इस अवसर पर भी वे विश्व में हुई विगत क्रांतियों तथा स्वतंत्रता सघर्षों की कहानियाँ ही सुना रहे थे। अपन सहयात्रियों के मन में सावरकर एक प्रकार से यह बैठाने का यत्न कर रहे थे कि स्वतंत्रता सैनानियों के साथ क्रूरता का नहीं अपितु महानुभूति का व्यवहार किया जाना चाहिए।

एक महीना जुलाई तक सावरकर का यही क्रम चलता रहा। जलपोत तो रुक गया किन्तु सावरकर का धिन्न नहीं रहा। वे किसी प्रकार वहाँ से भागने का विचार ले लगे। उन्होंने पोत के छिद्र से नीचे समुद्र को देखा। वे विचार करने लग कि क्या

उनके साथिया को उनका सकेत भिल गया होगा ? क्या उ'होने मुझे मुक्त करन के लिए योजना बना ली होगी ? क्या वे मुझे मुक्त कर पायेंगे ? इसी चिन्तन मे मावरकर का समय बीत रहा था ।

मार्सेलस वह स्थान है जिसके नाम पर रचित गीत मे फास मे क्रांति हुई थी । वही गीत आज वहाँ का राष्ट्रगीत है । उस गीत का अनेक भाषाओ मे अनुवाद हो चुका है और श्यामजी कृष्ण वर्मा ने भी सदन मे पेरिस जाने से पूर्व इस गीत का अंग्रेजी भावानुवाद अपने पत्र 'इंडियन सोशियोलोजिस्ट' के प्रथम पष्ठ पर प्रकाशित किया था ।

द्वयोयोग से आज उसी स्थान पर सावरकर को ले जाने वाला वह युद्धपोत आ कर लगा था । उनको लगा कि कहीं प्रकृति अथवा सागर उनको मुक्त करने के लिए ही तो यह सब कुछ नहीं करवा रहा है । रात्रि का समय था, लेटे लेटे अनेक प्रकार के प्रश्न सावरकर के मन मे उठ रहे थे । अनेक विचारो की तरफें आलोडित विलोडित हो रही थी । सह्याश्री सो रहे थे, किन्तु सावरकर को नींद कहीं । सावरकर के मन मे कम के कारागार से कृष्ण की मुक्ति, औरगजेव के कारागार से शिवाजी की मुक्ति आदि ऐसी अनेक घटनाएँ उभर कर आ रही थी । ऊपर उ'मुक्त आकाश और नीचे विशाल सागर को देखत हुए सावरकर सोच रहे थे कि इन दोनों के मध्य मे कोई बन्दी क्यों ?

यो सोचते-सोचते प्रभात हो गया । उनके विचार के द्वाभूत होने लगे । मानो भारतमाता उनसे कह रही हो, "भागो, भागो, अभी समय है । ओ मेरे लाल ! मैं नहीं चाहती कि तुम्हारी गदन मे फाँसी का फटा फटे । मेरे साल ! कृष्ण शिवा, नेपोलियन और एल्बा का स्मरण करो । भागो, भागो ! यही समय है । तुम कोई ऐसे चूहे नहीं हो जिसको सरलता से फसाया जा सके । तुम श्रान्तिकारी दल के दलपति हो । भागो, भागो । अब नहीं तो फिर कभी नहीं ।"

प्रात काल हो गया था । पारकर अभी पूरी तरह जागा नहीं था । सावरकर ने पारकर से कहा कि वे शीघ्र जाना चाहत है । पारकर ने साथ मे बैठे सुरक्षा कमचारी से कहा कि वह उनको शीघ्रालय ले जाय । मोहम्मद सिद्दीक और सिद्द नाम के दो हड कास्टेबल उनको देखते रहे । सिद्द दरवाजे के भीतर झाक रहा था । सावरकर ने भीतर से कुडी लगा दी । फिर भी शीघे से भीतर दखा जा सकता था । यह शीघा सावरकर के लिए विशेष प्रबन्ध के रूप मे लगाया गया था ।

सावरकर के लिए समय खोने का अवसर नहीं था । इस समय तो उनके विचारा की अपेक्षा उनका काम अधिक तीव्रगति मे चल रहा था । उन्होंने अपना नाइट-गाउन उतारकर उस शीघे पर डाल दिया जिससे कि बाहर का व्यक्ति उनको देख न सके । अपना जनऊ उतारकर उससे अपन शरीर की गोलाई नापी और फिर उसमे उस छिद्र की गोलाई नापी जिसस कि उनकी समुद्र पर उतरना था । दोना को नाप कर और यह अनुमान लगाकर कि शरीर को कितना सिकोड कर उस छिद्र मे समाया जा सकता है, उ'होने पलक क्षपकने जितने समय मे शरीर पर साबुन लगाया और फिर उस छिद्र मे छलाग लगा दो । पोर्टे-होल मे घुसते ही छपाक से वे समुद्र मे जा गिरे और उच्च

में निनाद किया, 'स्वात त्र्य की दवी ! तुम्हारी जय हो !'

हा ! दुदव ! !

सावरकर के दुर्भाग्य से एक पुलिस अधिकारी ने उनको देख लिया था। उस शौचालय का द्वार खोलना चाहा किंतु वह भीतर से बंद था। उसने चिल्लाकर कहा "भाग गया, भाग गया।" जलपोत में एक प्रकार से कोहराम सा मच गया। चारा-म पकड़ो, मारो की आवाजें सी सुनाई देने लगी। कोई इधर भाग रहा था, कोई उधर दौड़ रहा था। सावरकर को गोलिया की बौछार सुनाई दे रही थी। कुछ लोग पदम भाग रहे थे। सावरकर की तैराकी और बूद के प्रशिक्षण की यह परीक्षा की घंटी थी। सावरकर गोलियों में बचने के लिए पानी में डुबकी लगा जाते। इस प्रकार डुबकी लगाते-तैरते किसी प्रकार वे तैरकर सागर तट पर पहुँच ही गए।

यह सागर तट इंग्लैंड की नही फ्रांस की सीमा पर था। तट पर पहुँचकर सावरकर भागने लगे कि सामने उनको फ्रैंच सिपाही दिखाई दिया। उधर जलपोत की आवाजें पकड़ो पकड़ो चोर चोर का स्वर और तीव्र होता जा रहा था। सावरकर भागते-उस सिपाही के पास पहुँचे और उससे कहा कि वह उनको किसी 'यायाघीश' के पास चले। सावरकर फ्रैंच नहीं जानते थे, सिपाही इंग्लिश नहीं जानता था। सावरकर ने टूटी फ्रैंच भाषा में उसको समझाना चाहा। कदाचित्त वह समझ भी गया कि सावरकर को ले भी जाता कि तभी उनका पीछा करने वाले अंग्रेज सिपाही उन पर पहुँच गए। सावरकर ने वहाँ से भाग कर कोई सवारी करनी चाही, किन्तु उनके पास पैसा तो था ही नहीं। तब तक सिपाही उनके समीप पहुँच गए और उनको पकड़ लिया। लदन से खींचत हुए वे उनको जलपोत की ओर ले चले।

यह स्पष्टतया अंग्रेज सिपाहियों द्वारा नियमों का उल्लंघन था। किंतु वहाँ सुनने वाला कौन था। सावरकर यद्यपि फ्रांस की धरती पर थे, वहाँ से इंग्लैंड के सिपाहियों को बंदी नहीं बना सकते थे। किंतु सावरकर का कोई सहायक वहाँ पर था नहीं। ब्रिटिश सुरक्षा अधिकारियों ने सावरकर को विदेशी भूमि पर पुनः बंदी बना लिया।

### साथियों का असफल प्रयत्न

इस देश और सावरकर के भाग्य की विडम्बना ही कहना चाहिए कि जिस समय सावरकर को फ्रैंच पुलिस के समीप से पकड़कर अंग्रेज पुलिस द्वारा उनको जलपोत पर लाया जा रहा था, ठीक उसी समय दूसरी ओर दो-तीन अन्य सरदारसिंह राणा और मादाम कामा आदि सावरकर के अनेक साथी उनको छाने-निगमने सब प्रकार से सन्नद्ध होकर बंदरगाह के तट पर पहुँचने ही चाहते थे कि तभी उन्हीं के समीप का रेल का पाटक सहमा बंद हो गया और उन्हें लगभग आधे घण्टे तक वहाँ पर प्रतीक्षा करनी पड़ गई। यही आधे घण्टे का विलम्ब अनपेक्षित सिद्ध हुआ। एक प्रकार से यही आधे घण्टे का विलम्ब सावरकर को आधी शताब्दी का कारावास का

दण्ड भोगन का कारण बन गया ।

■ जुलाई की प्रातःकाल सावरकर के इस अदम्य माहस एव रोमांच की कहानी गभीर मुद्रों को पार करके दश विदेश में प्रसारित हो गई । इस प्रकार समस्त विश्व के समाचार पत्रों में एक साथ भारत की स्वतंत्रता का उत्तेजक किया गया । एक प्रकार में सावरकर के जलपोत के पीट होना, बूढ़न, भागन और पुनः पकड़े जान का समाचार जंगल की आग की भांति ऐसा फैला कि अत्रिजि वृहस्पति में इसकी ज्वालामय दिशाई दल लगी । जिन लोगों ने भारत को सपेरा और साधु सन्तो का देश कहा था आज उनका कान खड़े हो गए, जाँचे चौधिया गई और समस्त विश्व इस हिंदू युवक की वीरता का कृत्य देखकर स्तब्ध रह गया ।

न केवल इंग्लैंड के अपिपु फ्रांस जर्मनी, रूस तथा अमेरिका के छोटे बड़े सभी समाचारपत्रों ने इस घटना को अपने मुख्य पृष्ठ पर प्रकाशित कर के साथ साथ अधिकांश नगरों पर अपने अग्रलख भी लिखे । जनक पत्र ने ब्रिटिश सरकार के प्रति आक्रोश भी व्यक्त किया । समाचार पत्रों ने सावरकर की तुलना मैजिजी, गरीबाइटी आदि के साथ करते हुए उनके माहस, त्याग और बलिदान की भूरि-भूरि प्रशंसा की । सावरकर द्वारा भागन के लिए किया जाना वाला यह प्रयत्न उस समय तक के ही नहीं अपितु कालांतर में चर्चित डिबेनरा और मुगाय द्वारा किए गए प्रयत्नों से सचचा अनुपम और अत्यंत माहमपूर्ण था । क्रांति के इतिहास में यह आज भी अनुपम है ।

समस्त विश्व में जहाँ सावरकर की वीरता की कहानियाँ प्रसारित हो रही थी वहाँ इंग्लैंड के शासकों की आँखें उज्जा से नत थी । जलपोत के पुलिस अधिकारी तो बाँझना उठे थे । उन्होंने पुनः जलपोत पर लाए गए सावरकर का नजान कभी कभी भेदी गालियाँ देने की छान से स्वागत किया । धमकी दी, तो अंत में यह भी उनके मुख से निकल ही गया — 'ये सावरकर बहुत न जाने किस प्रकार के बीज से उत्पन्न हुए हैं ।' उस समय से एक सिपाही, भरा हुआ रिवाल्वर लिए सदा सिद्धावस्था में, सावरकर के सामने खड़ा रहने लगा । किंतु सावरकर जब घराने वाले थे । उन अवसर पर भी उन्होंने बड़े वीरतापूर्ण शब्दों में उन पुलिस अधिकारियों को कहा, "देखो, तुम मुझको कारागार में न जा रहे हो, किन्तु ध्यान रखना मैं अभी भी अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्न अवश्य करूँगा । यदि तुम लोग अपनी सतति तथा पत्नियों के साथ सुख चैन का जीवन बिताना चाहते हो तो तुम्हारे लिए अच्छा यह होगा कि न तो मेरा किसी प्रकार का अपमान करना न ही मेरे शरीर का स्पर्श करना । क्योंकि मैं तो अपने घर को पहले ही जला चुना हूँ और अपने अपमान का बदला लिए बिना मैं रहूँगा नहीं चाहूँ मुझे कुछ भी करना पड़ जाय । इसलिए तुम लोग भागी के लिए तयार हो जाओ ।"

सुरक्षा अधिकारियों ने स्थिति की गम्भीरता को भापा और उनके बाद के और अधिक सावधान हो गए ।

## फ्रांस में प्रयत्न

अय्यर, राणा, कामा आदि ने जब देखा कि यह प्रयत्न तो अमफल रहा तब श्यामजी कृष्ण वर्मा को साथ लेकर फ्रांस के प्रख्यात समाजवादी नेता तथा उम मण्डले मार्सेल्स व महापौर एम जारेस से मिलन के लिए गए और उनसे सम्पूर्ण विधि सरकार के अधिकार से सावरकर को वापस लेने की मांग की।

उनके इस प्रयत्न के परिणाम में सावरकर को ता वापस नहीं मिला गया।  
 हाँ फ्रांसीसी सरकार ने १६ जुलाई, १९१० के समाचार पत्रों के माध्यम से अपना स्वीकृति प्रसारित करवाया—“सावरकर को फ्रांस की राज्य भीमा में पकड़ा गया यह देखते हुए फ्रांसीसी सरकार ने ब्रिटिश सरकार से वापस किया है कि जब तक इस सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त न कर ली जाय, तब तक सावरकर के मुक्त होने से रोक रखा जाय।”

स्यागित रखा जाय।”

फॉम सरकार इसमें अधिक कुछ नहीं कर पाई। तदपि विश्व भर में अनेक स्थानों पर मावरकर का मुक्त विजय जाने अथवा फॉम सरकार को सौंपने का स्वर सुनाई दे लगा। मध्य इंग्लैंड में मावरकर के सोटाए जाने का अभियान चल पड़ा। इनके अनेक सम्मेलन, समाचार पत्र तथा विधि विशेषज्ञ इस प्रकार की बात कर रहे थे। ब्रिटिश मॉमद श्री हार्डी ने दो मास बाद १० सितम्बर को कोपनहगेन में सम्मेलन का राष्ट्रीय समारोहवादी सम्मेलन में मावरकर को फॉम के हवाले करने की जोरदार चर्चा की। लन्दन के अनेक महत्वपूर्ण पत्र 'डेनियमल', 'लन्दन टाइम्स', 'मोनिंग पोस्ट' पत्रों ने इस सम्मेलन का जोरदार शब्दों में समर्थन किया। लन्दन में ही गांधी जी अपना माधिया को लेकर मावरकर मुक्ति आन्दोलन समिति का गठन कर उसे माध्यम राय लन्दन की सहका पर पट्टियाँ, तस्वियाँ आदि लगाकर प्रसारित करवा गांधीजी की मुक्ति की माँग करने लगे। इसके साथ ही वे घर पर जाकर मावरकर गहायता काय भी एकत्रित करने लगे। उनका इस प्रयत्न के परिणामस्वरूप स्थिति बिना ही दूनावागों ने विगपनया म्मा, परागुआ और पुतगाल आदि ने मन्त्र

म उनकी गहायता की।

म उनकी गहायता को ।  
गायकवर का माँग व ह्यान वरा की माँग की गूज शती प्रभावशाली को  
वह मन्त्र व हाउम और कोमम ग जाकर टकराई और २६ जुलाई, १९९१  
तत्कालीन प्रिन्सिप्र प्रधानमंत्री श्री एम. वकीय न मन्त्र का बताना कि माँग गहाय  
गायकवर को डाक ह्यान वरा व विषय म पत्र भेजा है ।

गोबरधर को उाह स्थापन करने का विषय म पत्र भेजा है।  
 दृष्टा मह उपाध्यक्षनीय है कि दमग पूव २२ जुना को गोबरधर का महान  
 जयान्त सम्यह पर्व भी स्थापना।

### हेम म्यायातप का माटन

[illegible]

ग। २५ अक्टूबर का लन्दन में ब्रिटेन के विदेश मन्त्रि सचिव सर हेडवुड को ~~अन्तराष्ट्रीय~~ स्थित  
 सिस के राजदूत एम पाल वेमबो के मध्य वार्तालाप हुआ और ~~एक सन्धि~~ सन्धि  
 गई। जिससे अन्तर्गत यह निश्चय किया कि हंग 'अन्तराष्ट्रीय' अन्तराष्ट्रीय  
 के पक्ष परिपक्व व माध्यम में यह निणय प्राप्त किया जाये कि अन्तराष्ट्रीय  
 समय व अनुसार ब्रिटेन को सावरकर को फ्रांस सरकार के हवाने कर देना चाहिए  
 यदा कि नहीं। उस समय उस अन्तराष्ट्रीय 'यायाधिकरण' के अध्यक्ष वेलजियम के  
 नपूव प्रधानमन्त्री श्री वनट थे। उनके अतिरिक्त अन्य चार सदस्यों में नीर्वे के भूतपूर्व  
 मंत्री एम घाहम, नीदरलैंड के जाकियर लोमन, इंग्लैंड के अल ओफ डिजिट तथा फ्रांस  
 एम लुई रेनाल्ड थे।

य पाँचा महान विधि विशपन माने जाते थे। एम पाँच दिग्गज 'यायाशास्त्रियों'  
 सम्मुख सावरकर के एक वाय का इना जानाइन बिरोडन अन्तराष्ट्रीय 'यामा'  
 करण के इतिहास में अभूतपूर्व था और सावरकर के प्रथम भारतीय थे जिनका  
 मला अन्तराष्ट्रीय 'यायाधिकरण' में चर्चा का विषय बना। यह सब कुछ होने के  
 परान्त भी 'यायाधिकरण' की वह सारी वायवाही एक प्रकार से नाटक ही सिद्ध हुई।  
 स अभियोग की सुनवाई उस न्यायाधिकरण में १४ फरवरी १९११ को आरम्भ हुई।  
 यद्यपि छ सून के अनुसार इसके लिए केवल एक मास की ही अवधि निर्धारित की गई  
 थी। किंतु कहना पड़गा कि उस न्यायाधिकरण में सभी तो एक प्रकार से एक ही थले  
 चट्टे-वटटे थे। अतः उन्होंने केवल आठ दिन में इस मामले पर अपना निणय दे दिया।  
 आठ दिन तक सुनवाई का नाटक किया गया और फिर उस सुनवाई पर बिना किसी  
 कारण का विचार विनिमय किए नौवें दिन उसका निणय दे दिया गया। इसमें यही  
 पड़ होता था कि सब कुछ तो पूर्व निर्धारित ही था केवल एक औपचारिकता पूर्ण  
 रानी थी, जो नौ दिन के नाटक में पूर्ण कर ली गई।

२४ फरवरी १९११ को जो निणय दिया गया उसमें आरम्भ में सारी घटना का  
 ववरण बहुत तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया था और निणय के अंत में केवल यह  
 बात स्वीकार की गई थी कि—'यद्यपि सावरकर को मार्सेल्स में पकड़ने में थोड़ी सी  
 अनियमितता अवश्य बरती गई थी तदपि उन्हें फ्रान्स को सोपन की कोई आवश्यकता  
 आती नहीं होती।'।

हंग के 'यायाधिकरण' के इस अन्यायपूर्ण निणय पर सत्तार भर में 'याया-  
 धिकरण' और 'यायाधिकारिया' की खब भत्सना हुई। इंग्लैंड के डेली 'यूज' ने इस 'याय'  
 को 'प्रहसन' कहकर इस पर व्यंग्य किया था। एक अन्य समाचार पत्र 'मार्निंग 'यूज'  
 ने इस निणय को पूर्व नियोजित प्रपंच की मन्ता दी। किन्तु एक जर्मन पत्र 'वेस्ट  
 गेत्स' ने तो इस निणय की घृज्जियाँ ही उड़ा दी थी। २४ फरवरी, १९११ के अपना  
 प्रलेख में उसने जो लिखा उसका एक अंश यहाँ हि दी में उद्धृत किया जा रहा है—

"हमने हंग 'याया' में उचित याय की कमी अपना नहीं की थी। 'याया' में  
 जो निणय दिया है उसमें हमारी धारणा की पुष्टि हो गई है। सावरकर के अभियोग



के विषय म निणय देने के लिए यायाधीशो ने जिस त्वरा, निलज्जता और प्रदर्शन किया है वह न केवल सज्जाजनक है अपितु वह अंतर्राष्ट्रीय धरण 174 सरासर अपमान भी है।"

इसी प्रकार की प्रतिक्रियाएँ बेलजियम, स्विटजरलैंड आदि के उनक समान पत्रा न अपने अपा अग्रलेखा के माध्यम ने व्यक्त की थी। विशेष के ध्यान म जहाँ इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की जा रही थी वहाँ भारत म प्रकाशित वाल अग्रेज भवन टाइम्स ऑफ इंडिया' न इस निणय की सराहना करते हुए था—

" अच्छा हुआ एक बदमाश को अपनी करनी का फल मिल गया है। "

## फ्रेंच प्रधानमंत्री का त्यागपत्र

उस समय फ्रांस के प्रधानमंत्री एम बायरन थे। उन पर प्रतिक्रिया का तत्काल प्रभाव पड़ा। फ्रांस म इस निणय पर सावजनिक कानाफूसी हो ही रही थी किंतु सरकारी क्षम भी उससे अछूते नहीं रहे। सावरकर वापसी के सम्बन्ध म बायरन के दुसमुख रवैये और ब्रिटेन की तुष्टीकरण की नीति लेकर उनकी इतनी तीव्र आलोचना होने लगी कि बायरन को स्थिर रहना पड़ा गया। उही दिनों 'चैवर ऑफ डिप्युटीज' की बैठक होन वाली थी, किन्तु इतन घबरा गये कि उस बैठक से तीन दिन पूर्व ही उन्होंने अपने प्रधानमंत्री पर त्यागपत्र दे दिया, अथवा यो कहना चाहिये कि उनको त्यागपत्र देना पड़ गया। व्यक्ति के कारण, जो कि उस देश का निवासी अथवा नागरिक भी नहीं था की प्रमुखतम कुर्सी के लडखड़ा कर गिर जाने का कदाचित ससार के इतिहास में अनुपम उदाहरण माना जाता है।

## जलपोत मे सावरकर

अब हम वापस जलपोत एस एस मोरिया की ओर मुड़ते हैं।

जलपोत मोरिया मार्सेल्स स चलकर अदन पहुँचा। अदन मे एक अन्य जलपोत एस एस पट्टी खड़ा था। जलपोत मोरिया के सभी यात्री अधिकारियों समेत सावरकर को भी एस एस पट्टी ने अपने म समेट लिया।

मार्सेल्स स अदन के बदरगाह तक आत-आते सावरकर को अनेक प्रकार की यातनायें दी गईं। यद्यपि उनको स्पष्ट करन का साहस किसी को नहीं होता था, कि बिना स्पष्ट किये भी तो शारीरिक और मानसिक यातनायें दी ही जा सकती थी। उन्हें एक छोटे स चार फुट लम्बे चाँड़े ब्यास के बेबिन म कद कर दिया गया, उसमें उनको केवल खड़े रहने का आदेश था। चाहे तो उस चार फीट म वे चहल कूची कर सकते थे। सूय की किरणें उनके लिये स्वप्न की बात हो गई थी। इस तरह यात्रा को सहते हुए कभी कभी तो सावरकर के मन म आता था कि इसमे तो मर जाना बे

रहित होगा। किन्तु नहीं। वीर सावरकर तुरन्त सम्भलते और फिर तनकर खड़े होते।

इन कठिनाइयों में स्वयं को ढालने के लिये उन्होंने मन ही मन एक कविता की रचना करनी आरम्भ की। 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि' गीता का यह श्लोक उन्हें स्मरण हो आया और उसी को आधार बनाकर उन्होंने मराठी पद्य रचना की। जिसके आरम्भ में बोल थे—

‘अनादि भी अनन्त भी,  
अवध्य भी भला।’

मराठी के उस पद्य का जो हिन्दी अनुवाद सौ० वसुध ताम्बे ने किया है हम उसे यहां प्रस्तुत करना प्रासंगिक समझकर उद्धृत कर रहे हैं—

अनादि मैं, अनन्त मैं महान,  
मार मके कौन मुझे शत्रु शक्तिवान् ॥  
धम धारणाय अट्टहास कर लडा।  
मृत्यु के समक्ष में डटा रहा खडा ॥  
छद्म में मरा न मैं, न अग्नि से जला।  
भीरु मृत्यु छाड़ युद्ध भागता चला ॥  
शत्रु भी बडा विचित्र मूर्ख है महा।  
मृत्यु वण्ड से मुझे, अरे डरा रहा ॥  
हिंस्र सिंह पिंजरे में देख फेंक कर।  
सिंह दास बन जाय पाय चाट कर ॥  
अग्निकुण्ड में प्रदीप्त डाल द मुझे।  
अग्निशीत सुप्रभावली बना मुझे ॥  
हो कराल क्रूर समय राह छक्के।  
अस्त्र शस्त्र तोप बाण जाग फक्के ॥  
शैल कर उह अजय मैं पचा गया।  
कालकूट में त्रिनेत्र सा रिचा गया ॥

## शेर पिजरे में

### बम्बई प्रत्यागमन

जलपोत एस एस पट्टी माग में बिना किसी विघ्न बाधा के बम्बई पहुंच गया २२ जुलाई १९१० को भारतीय नाविकारियों के राजकुमार का बम्बई में तटस्थ स्वागत किया गया। हाथों में हथकड़ी पहना कर दोनों ओर नगी तलवार ७० हिंदुओं के बीच में उसको ले जाया गया और एक बंद गाड़ी में बठा कर रत्ने स्त और फिर उसी प्रकार की बंद रत्नगाड़ी में बैठा कर नासिक व लिए रवाना किया गया। वहाँ उनको नासिक पुलिस के हवाले कर दिया गया। उसके घाट दिनांक उनको यरवदा कारागार में भेज दिया गया।

मादाम कामा की पहल पर विद्युत्त अधिवक्ता जोसेफ वेपटिस्टा न १३ नितम्ब १९१० का यरवदा कारागार में सावरकर से भेंट की। इससे पूर्व मादाम कामा वेपटिस्टा को उनकी फीस आदि अन्याय्य व्यय के लिए धन देते हुए लंदन में सावरकर के वकील श्री वान द्वारा तयार किए मारे कागज भी उनके पास भेज दिए थे।

सावरकर को जब लन्दन से बम्बई भेजा गया तो श्री हिण्डमन ने अपने 'जस्टिस' में लिखा कि क्योंकि सावरकर पर राजनीतिक अभियोग चलाया जा रहा है और यह सम्भव है कि उसको यहाँ पर ठीक प्रकार से न्याय न मिल सके इसलिए भारत भेजा जा रहा है जिसमें कि वह चाहे निरपराध हो अथवा अपराधी कम वहाँ उसको उचित न्याय तो मिल जाएगा। उनकी पार्टी इसमें न तो किसी प्रकार का सहयोग कर सकती है और न ही विरोध कर सकती है। किंतु भारत में ब्रिटिश शासन के प्रति व उनसे सहानुभूति रखते हैं।

इसके अतिरिक्त बम्बई के गवर्नर ज्योज क्लार्क और इंडिया आफिस के मन्त्रियों और पत्रों का इस मात्रा में आदान-प्रदान हुआ कि गवर्नर ज्योज क्लार्क क्लार्क लगा था। वह चाहता था कि सावरकर के विरुद्ध चलाया जान वाला अभियोग पुनः चलाया जाए अथवा विलम्ब होने से इसके परिणाम भयंकर हो सकते हैं। यही एक

किं गवर्नर ने लाड मोरले को अपने त्यागपत्र तक की धमकी ले डाली थी। किंतु सभी लाड मोरले को भारत सचिव के पद से प्रान्त कर दिया गया। नय भारत सचिव न ३१-८-१९१० को बम्बई सरकार को सावरकर के विरुद्ध अभियोग चलान की अनुमति द दी और साथ ही यह भी कह दिया कि यदि अंतर्राष्ट्रीय अभियोग अधिकरण इसकी आवश्यकता समझे तो सावरकर को फ्रांस को सौंप दिया जाए।

अंतर्राष्ट्रीय अभियोग अधिकरण के नाटकीय निणय की बात हम पहले ही लिख आए हैं। भारत सचिव ३१-८-१९१० को सावरकर को फ्रांस सरकार को सौंपने के लिए सहमत होता है और अंतर्राष्ट्रीय यायाधिकरण इसके छ मास बाद २४-२-१९११ को निणय देता है कि इसकी आवश्यकता नहीं। अब दूसरा नाटक दफिए।

इस प्रकार निणय हो जाने पर विशेष सुरक्षा दल, विशेष गाड़ी विशेष नियम, विशेष वारंट, विशेष यायाधीश तथा विशेष यायालय नियम आदि का निमाण कर बम्बई में एक अत्यन्त विशेष यायाधिकरण का गठन किया गया। एक विशेषता यह भी थी कि कथित अभियुक्त का इमम अपील करने का अधिकार भी नहीं था। इस यायाधिकरण में बम्बई के मुख्य यायाधीश सर वजिल स्काट, सर एन जी चंद्रावरकर तथा जस्टिस हीटन नियुक्त निय गये। मि० जारडिन, बम्बई व एडवोकेट जनरल, मि० बेरडन मि० वॉलकर और पब्लिक प्रोसिक्यूटर, मि० निकल्सन सरकारी वकील व नान नियुक्त किए गए थे। सावरकर के अभाव के लिए इन वकीलों की व्यवस्था की गई थी उनमें थे—श्री जामफ वेपटिस्टा, श्री चित्रे श्री गानिंदराव गाडगिल और श्री रागनकर। इन सब भारतीय विधिवेत्ताओं ने बय अपनी सवायें समर्पित की थी। वेपटिस्टा के अतिरिक्त अन्य भी तीन वकील अपने व्यवसाय में प्रद्यता थे। वेपटिस्टा ने भी स्वयं की एक प्रकार में र्जित ही किया था। यद्यपि मादाम कामा की पहल पर वे जाग आए थे किंतु उसकी पछभूमि में तिलक का उनका सहयोगी होना मुख्य था।

सावरकर तथा उनके साथियों पर तीन अभियोग एक साथ चलाए गए। पहला अभियोग 'नामिक नेम' के नाम से दयात सावरकर महित ३८ अभियुक्तों पर चलाया जा रहा था। दूसरे अभियोग में दो अभियुक्त थे—सावरकर और गोपाल राव पाटणकर। य दोनों अभियुक्त पहले अभियोग में भी सह अभियुक्त थे ही। तृतीय अभियोग में सावरकर अकेले अभियुक्त थे। इन सब पर आठ विभिन्न आरोपों में अभियोग चलाया जा रहा था। उनमें मुख्य अभियोग थे—सम्राट के विरुद्ध राजद्रोह का पड़ना और नामिक के जिलाधीश जेकमन की हत्या के लिए प्रोत्साहित करना।

इस अभियोग में जो सरकारी गवाह बनाए गए थे वे किसी समय में सावरकर के परमभक्त और कायकता के समान थे। किन्तु सरकार ने जिस साम और दाम तथा दण्ड की नीति से काम लिया उसके सम्मुख वे स्थिर नहीं रहे मके। य गवाह थे—काशीनाथ जगुशकर, दत्तात्रेय जाशी व०२० कुलकर्णी और चतुर्भुज अमीन। चतुर्भुज अमीन सदन में इडिया हाउस का रसादया था, जिसका उल्लेख हम पूर्व पृष्ठों में कर चुके हैं कि किस प्रकार सावरकर ने उस पर विश्वास करके उसके माध्यम से भारत में २० ब्राउनिंग

पिस्तौनें भिजवाई थी और उसने पहुँचाई भी थी।

इस अभियोग के दौरान मावरकर को यरवदा जेल से बम्बई का डोगा जेल म्यानांतरित किया गया। १५ मितम्बर १९१० को अभियोग म्यो यह नाटक आरम्भ किया गया। उस हाईकोर्ट की सुरक्षा के लिए ५० सशस्त्र पुलिस कमचारियों को घाँ आर नियुक्त किया गया। 'यायालय' में किए जाने वाले सुरक्षा कार्यों की जाँच का बम्बई के पुलिस कमिश्नर करते रहे थे। 'यायालय' में केवल कुछ ही विश्वस्त समाज सवादशाताओं को प्रवेश की अनुमति प्रदान की गई थी। सरकार न श्रव्य को सब प्रकाश में सुरक्षित करके ही यह नाटक आरम्भ किया था।

### भारत में न्याय का नाटक

सावरकर न ज्योही 'यायालय' में प्रवेश किया तो उन्हें अपनी जयजयकारें नारे लगात सुनाई दिए। उनके स्वागत में तालियाँ बज रही थी। सावरकर का यह श्रव्य देख सुनकर बड़ा आश्चर्य हो रहा था। सावरकर न जब इधर उधर दृष्टिपात किया तो उन्हें 'यायालय' की दीर्घायें और बैंचें, सभी तो पाली दिखाई दी। फिर कौन पर लोग जिन्होंने तालियों और जयघोष में उनका स्वागत किया था? व कोई अन्य नहीं उनके अपने ही सहअभियुक्त थे, जो नीचे के कटघर में खड़े थे। अपने इस अन्तर्द्वार उपाति के नेता को उ हान लगातार तालियाँ तथा जयघोष से आल्हादित कर दिया था। तसार की राजनीति व इतिहास में यह अपनी प्रकार का एक अनुपम स्वागत था। मरे लाग थे जो जानते थे कि वे तथा उनका नेता इस समय मृत्यु की दहरी पर खड़े हैं फिर भी उनके मन में किसी प्रकार की ग्लानि अथवा भय नहीं, अपितु 'माह' उत्साह था।

सावरकर ने अपने सहअभियुक्तों पर धीरे धीरे दृष्टि डाली तो उनको यह दृष्ट कर सुखल आश्चर्य हुआ कि उनमें उनका स्वयं का छोटा भाई नारायण मावरकर भी विद्यमान है। इन पाँच व्यक्तियों में बहू विशोर से तरण हो गया था। मावरकर के मुख पर मुस्कान दिखाई दी।

'यायालय' का नाटक आरम्भ हुआ। सरकार के प्रमुख वकील चीफ प्रोसेक्यूटिग जीफिसर जाडाइन अपनी कुर्सी पर से उठा और उसने अपना प्रारम्भिक वक्तव्य कहा। बताया कि क्या इन अभियुक्तों को यहाँ लाया गया है और किन किन धाराओं के आधार पर इन पर अभियोग चलाया जा रहा है।

इस प्रकार वह सारा दिन चीफ प्रोसेक्यूटिग जीफिसर के भाषण में ही गुप हो गया और 'यायालय' को अगली सुनवाई के लिए स्थगित कर दिया गया। अगला सुनवाई २६ मितम्बर की रखी गई और उस दिन जब कायवाही आरम्भ हुई तो सावरकर व वकील जीन वैपटिस्टा व ट्रिब्युनल व सम्मुख सब प्रस्तुत किया—'१८६८ के अधिनियम' के धारा १८८ के, जिसके अन्तर्गत अभियुक्त सावरकर पर अभियोग चलाया जा रहा है तो अभियुक्त की गिरफ्तारी ब्रिटिश राज्य की सीमा के भीतर हो रही

चाहिए। किंतु सावरकर को तो फ़ाग की भूमि पर अवैध रूप से बंदी बना कर भारत लाया गया है। इस अवैध रूप में बंदी बनाए जाने के विरोध में सावरकर न्यायालय में प्रार्थना की हुई है। अतः जब तक सावरकर का हेग न्यायालय का अभियोग पूर्ण नहीं हो जाता तब तक भारत में मुकदमे की गायवाही को स्थगित रखा जाना चाहिए।" किन्तु ब्रिटिश सरकार के वकील और न्यायालय में इस तक अब तथ्य को अमान्य कर दिया।

उस दिन की कायवाही स्थगित हुई और अगले दिन अर्थात् २७ सितम्बर की तारीख तय कर दी गई। इस प्रकार २७ और २८ सितम्बर को भी सरकारी वकील का बक्तव्य जारी रहा। उस दिन सरकारी वकील की ओर से दो सरकारी गवाहों से जिरह भी की गई। तदनन्तर जब सावरकर से उन गवाहों से जिरह करने के लिए कहा गया तो उनके वकील श्री वपटिस्टा ने पुनः आपत्ति उठाई कि हेग न्यायालय के नियम तब इस न्यायालय की समस्त कायवाही असंवैधानिक होगी। किन्तु न्यायालय ने उनकी आपत्ति को निरस्त कर दिया और सावरकर में जिरह करने का आग्रह किया।

सावरकर उठे, किंतु जिरह करने के लिए नहीं अपितु उस सारी प्रक्रिया पर आपत्ति करने के लिए। उन्होंने न्यायाधिकारण की अधिकार सीमा को चुनौती देते हुए कहा—“मुझ पर जो अभियोग लगाए गए हैं, उनके विषय में तो मुझे कुछ कहना ही नहीं है। आप कहेंगे कि फिर मैंने लंदन के अभियोगों में क्यों भाग लिया था। वह इसलिए कि वहाँ के न्यायालय जनतांत्रिक पद्धति पर गठित हैं। अब उनसे न्याय की आशा की जा सकती है। इसके विपरीत भारत के न्यायालयों में तो जनतंत्र और ‘न्याय’ कही नाम मात्र को भी दिखाई नहीं देता। ऐसे अविवशसनीय और मारहीन, निरर्थक न्यायालय के समक्ष किसी प्रकार की जिरह करना, बक्तव्य देना अथवा अपना पक्ष प्रस्तुत करना सवधा व्यर्थ है।”

इसके उपरान्त ८ अक्टूबर को पुनः न्यायालय में सुनावई आरम्भ हुई। उस दिन विदेशी सीमा पर बंदी बनाए जाने के एकट, कानून, धारा जादि-आदि पर पुनः वाद विवाद उठा और सावरकर को इस विषय में कुछ कहने के लिए कहा गया तो उन्होंने पुनः इस विषय में कुछ कहना अमान्य कर दिया। न्यायालय ने इस विषय में अपना निणय दे दिया कि सावरकर का मार्सेल्स की भूमि पर तथा कथित अवैध रूप में बंदी बनाया जाना इस न्यायालय की अधिकार सीमा को किसी प्रकार भी प्रभावित नहीं करता।

यों मुकदमे का यह नाटक चलता रहा। इसी दौरान अभियोग पक्ष की ओर से सावरकर पर ‘महामाया सम्राट के विरुद्ध युद्ध भड़काने’ का आरोप वापस ले लिया गया। इस प्रकार न्यायप्रक्रिया आरम्भ होने सपहले ही उन पर लगाया गया दूसरा अभियोग भी मृत्यु के मुख में चला गया। लगभग १०० गवाहों को सरकार की ओर से प्रस्तुत किया गया। उनमें से अधिकांश ने न्यायालय के सम्मुख यह स्वीकार किया कि मजिस्ट्रेट के सम्मुख उन्होंने जो बक्तव्य दिए थे वे उनको डरा घमका कर दिलवाए गए

थे। उनको तथा उनके नाने रिश्तेदारों को सख्तार तथा उसकी क्रूर, निमम पुनिन के अत्याचारों से किसी प्रकार की क्षति न पहुँच, इस कारण उन्होंने वे सूठे वक्तव्य दिए। अतः उनको सत्य न माना जाय।

गवाही की प्रक्रिया पूर्ण होने पर अब सावरकर की बारी आई। जब मुग़ल 'यायाधीश ने सावरकर से अपनी बात कहने के लिए कहा तो उन्होंने कहा, 'मेरे विरुद्ध जो-जो भी अभियोग लगाए गए हैं उनका विषय मैं नितांत रूपेण अनभिज्ञ हूँ। मैं लन्दन में 'यायालय में इम्तिनान प्राप्त किया था क्योंकि वहाँ के 'यायालय जनता के प्रणाली के आधार पर गठित हैं। ऐसे 'यायालयों से तो किसी प्रकार के 'याय की भाँति की भी जा सकती है क्योंकि वहाँ 'यायाधीश और पुलिस कमचारियों के वक्तव्यों के आधार पर ही अपना निर्णय नहीं दे दत्त। किन्तु भारत के 'यायालयों की उमर सदा विपरीत है। मैं स्वयं को भारतीय दण्ड विधान तथा 'यायाधिकरण की सीमा में बाहर मानता हूँ। इसलिए अपने वक्तव्य के लिए मैं कोई वक्तव्य अथवा कोई गवाही प्रस्तुत करने में साक्षर करता हूँ।"

इसके बाद वकीलानी की बहुत आरम्भ हुआ। एक सप्ताह तक तो सरकार के एडवोकेट जनरल ही अपना वक्तव्य देते रहे। यद्यपि अभियुक्तों की सूची में भी विनायक दामोदर सावरकर का नाम अंतिम था, किन्तु उसने पहले इनका नाम नहीं अपनी दलील प्रस्तुत करने आरम्भ की। वक्तव्य पक्ष को अपनी बात रखने के लिए एक सप्ताह में कुछ अधिक समय लग गया। अभियुक्त गंगाराम रूपचंद ने अपने वक्तव्य में अपना वक्तव्य स्वयं पढ़ कर सुनाया। इस सारी अवधि में सावरकर शांत और स्थिर दिखाई देते थे। वे नित्य ही अच्छे अच्छे वस्त्र पहनकर जाता करते थे। इस सात अवधि में वे अपना अर्थ माधिया का उत्साह बढ़ाते रहे।

६८ दिन तक इस नाटक के चलते के उपरांत आखिर में निर्णय का भी एक दिन आ ही गया। शनिवार २३ १२ १९१० को निर्णय की तिथि घोषित की गई। उन दिन शमशान की तीरी शांति के वातावरण में 'यायाधीशों ने अपना-अपना स्थान ग्रहण किया। मुग़ल यायाधीश ने अपना निर्णय सुनाया और फिर दण्ड सुनाते हुए सावरकर को ही आरम्भ किया—'विनायक दामोदर सावरकर! इस 'यायाधिकरण द्वारा आपको आज में कारावास और आपकी सम्पत्ति की जब्ती का दण्ड दिया जाता है।' इसके बाद 'यायाधीश अभियुक्तों को दिए गए दण्ड सुनाए जाते रहे।

सावरकर को दण्ड दत्त हुए 'यायाधीश ने यह भी कहा, 'हमने सावरकर को, जनता की सरकार और सम्राट के विरुद्ध भड़काने का दोषी पाया है। उनमें यह बात अपने वक्तव्यों, भाषणों पत्रों तथा शस्त्रों के वितरण एवं विस्फोटक द्रव्यों के लिए प्रेरित करने के माध्यम से किया है। इस प्रकार वह भारतीय दण्ड संहिता की धारा १२१ अ के अन्तर्गत अपराधी सिद्ध होता है। हमने उसको अय्याम अभियुक्तों के साथ पड़ोस में सम्मिलित होने तथा भारत सरकार एवं स्थानीय सरकार के विरुद्ध

अधिक धन्य करने का दोषी पाया है।

इस प्रसिद्ध नासिक पट्टयत्र अभियोग म शकर वर, विनायक वरवे तथा विनायक फुलम्बिकर को अभियोग आरम्भ होने के तुरन्त बाद मुक्त कर दिया गया था। विनायक गधानी, रामचन्द्र कोठे, गोविन्द बापट, हरि बाट, श्याम्बक जोग, शकर महाजन, मुकुन्द मोघे तथा केशव पराँजपे को बाद म दोषमुक्त घोषित कर दिया गया। शेष २६ अभियुक्तों मे म किसी को ६ मास स आरम्भ कर किसी को १५ वष तक का कारावास का दण्ड घोषित किया गया।

निणय सुनाने के उपरांत जब यायाधीश उठे तो तुरन्त ही सावरकर के साथ आय अभियुक्त भी उठे और उनके मुख स 'स्वातन्त्र्य लक्ष्मी की जय' का निनाद घोषित हुआ। 'वन्द मातरम्' 'भारत माता की जय' के घोषा से सारा वातावरण निनादित हान लगा। यायाधीश यह सब सुनकर एक बार ता डर गए। सबन पीछे मुडकर देखा। तुरन्त ही पुलिसकर्मी भीतर घुस आए। कठघरे पर खडे सावरकर न अपन छाट भाई नारायण सावरकर की हाथ हिलाकर विदा करना चाहा किन्तु पुलिस न नही करने दिया।

६८ दिन तक चलन वाल इस नाटक क अन्तिम दिन जब अगले दिन के लिए निणय की तिथि घोषित की गई थी। ता उसी रात्रि का सावरकर ने अपने कारागृह म एक कविता की रचना की। उनका स्पष्ट आभास हो गया था कि इस यात्रप्रक्रिया म क्या हान वाला है और उनको किम प्रकार का दण्ड दिया जायेगा।

'पहिला हफ्ता' शीपक से उस रात्रि म उठोने जो कविता रची उसका मराठी का एक अंश था—

सारथी जिन्ना अभिमानी,  
कृष्ण जी आणि राम सनानी।  
अशि तीम काटि तब साा,  
ती अह्या विना थावना।  
परि करनि दुष्ट दलदलना।  
रोविलची स्वकरी,  
स्वतन्त्रता हिमालयावरि,  
बडा जरतारी ॥ जननी० ॥

इसका हिन्दी भावाय है—'जिस गष्ट क रथ क सारथी भगवान कृष्ण हो, जिस राष्ट्र क पास राम जंसा सेनानी हो, जिसकी तीस कोटि सना हा, उस राष्ट्र की प्रगति हमारे विना नही रुक सकती। वहाँ निश्चय ही रिपुओं का दमन करवे हिमालय के शिखर पर स्वतन्त्रता की पताका लहरायेगी।'।

**एक जन्म दो आजन्म कारावास**

जीवन की यह त्रासदी और यायालय का नाटक यहीं पर पूरा नही हो गया। लीड हार्डिंग की भारत सरकार और लीड मिडनीहम की ब्रम्बई सरकार सावरकर को



एक आजम कारावास का दण्ड देकर ही सतुष्ट नहीं रह पाई। उसने साबरकर पर दूसरा अभियोग आरम्भ कर दिया। २३ जनवरी १९११ को पुन उसी 'यायाधिकरण' में 'जकमन की हत्या व 'निए प्रोत्साहन' के आरोप में अभियोग आरम्भ हुआ।

सबप्रथम एडवोकेट जनरल ने अपना पक्ष प्रस्तुत किया। उसके अनन्तर साबरकर का बठघर से चार' पर लाया गया जिससे कि वे अपना पक्ष प्रस्तुत कर सकें। साबरकर ने पुन उसी प्रकार कहा कि व इन सब विषयो से अनजान हैं और इस अपराध से उनका सीधा अथवा अथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। उन्होंने कहा कि न्यायालय के पास मेरे विरुद्ध जो एकमात्र प्रमाण प्राप्त है वह है मेरा पत्रक 'बंद मानरम'। जिसे बेगिरिराव के पास पाया गया बताया जाता है। किंतु उसका भी तो जकमन की हत्या से कोई सम्बन्ध है ही नहीं। क्योंकि प्रमाणों से यह पुष्ट हो गया है कि वह पत्रक जैयमन की हत्या के उपरांत लंदन से डाक द्वारा भारत भेजा गया था। नही कोई इस बात का प्रमाण उपलब्ध हुआ कि जिस पिस्तौल से जकमन की हत्या कागध थी उसे मेरे द्वारा अपन रसोइए चतुभुज के माध्यम से भारत भेजा गया था।

इन सब विसंगतियों के होते हुए भी 'यायाधिकरण' न केवल आठ दिन तक न्यायालय की कार्यवाही चला कर ३० जनवरी १९११ को साबरकर को पुन एक अन्य आजम कारावास का दण्ड दे ही दिया। अभिप्राय यह है कि एक व्यक्ति को एक ही जन्म से दो आजम कारावास का दण्ड। साबरकर ने यह निणय सुना ता व उठे और गज कर घोषणा की— यह निश्चय है कि कष्ट और त्याग तथा बलिदान से ही मेरी मातृभूमि विजय की ओर अग्रसर होगी। भले ही इसमें थोड़ा समय लग जायगा। इसलिए मैं यह सब सहने के लिए उद्यत हूँ।'

उन्होंने अपना साथी के कान में भी इससे पहले कुछ इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग करत हुए कहा था— मैं इस अनय दण्ड को भी केवल इसलिए भुगतन को तैयार हूँ क्योंकि स्वर्ण लक्ष्मी की प्राप्ति के माग में तप, त्याग और बलिदान नितान आवश्यक होता है।

एक जीवन में दो आजम कारावास। आवश्यक ! किंतु यह बात तत्कालीन ली रिपाटर में प्रकाशित नहीं की गई। कदाचित सरकार, 'यायाधीश' आदि अपनी मूर्खता की भलीभांति समझत होग।

ब्रिटिश सरकार ने साबरकर के विषय में निणय करने में 'यायाधिकरण' की शीघ्रता करने का आग्रह किया था क्योंकि 'यायाधिकरण' की कार्यवाही कम से कम २५ अक्टूबर १९१० तक तो स्थगित की ही जा सकती थी। क्योंकि उस दिन ब्रिटिश सरकार के विदेश सचिव एडवड नेफ च जनता के राजदूत एम० पोल के साथ एक समझौता म हस्ताक्षर किए थे जिसमें उसने यह स्वीकार किया था कि साबरकर का अभियो जनराष्ट्रीय न्यायालय हंग को सौंप दिया जायगा। विदेश सचिव ने यह समझौता किया नहीं था किंतु उसको करना पडा था। क्योंकि फ्रांस की सरकार ने १८९८ पर दबाव डाल रही थी। उधर ब्रिटिश प्रेम और फ्रांस की जनता में भी

ब्रिटिश सरकार की खूब आलोचना हो रही थी। इस समयों का उल्लेख हम यथास्थान कर आए हैं।

न केवल इतना सभी देशों के राजदूत भी ब्रिटिश सरकार के रवैये से अप्रसन्न थे। रण के सहायक राजदूत पैरागुवे के सहायक राजदूत बनवता में पातगाल के राजदूत आदि सभी ने फ्रांस सरकार की सावरकर की भाग को उचित और न्यायिक बताया था। अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के आधार पर इस विषय में स्थानीय नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का ही पालन किया जाना चाहिये था, यह बात भी फ्रांस के पत्रों में खूब उजाली गई थी। यहाँ तक कि थोरोपियन प्रेस ने भी फ्रांस के प्रेम के अनुरूप ही कार्य किया था। अतः फ्रांस सरकार को भी विवश होकर सावरकर की भाग प्रस्तुत करनी पड़ी थी।

जब यह मामला ब्रिटिश पार्लियामेंट में उठा तो ब्रिटिश प्रीमियर एस क्विन्स ने २६ जुलाई, १९१० का घोषणा की कि इस विषय में अन्तर्राष्ट्रीय विधि विधान कुछ स्पष्ट नहीं है। सावरकर की जब बरबदा बारागार में इस विषय में बात हुआ तो उन्होंने किसी प्रकार अपने माधिया के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय विधि विधान की स्पष्टता का प्रमाण जुटवा कर अपने मित्रों को फ्रांस में भिजवा दिया। उनका वह वक्तव्य समस्त सत्तार के पत्रों में प्रकाशित भी हो गया। इससे सावरकर के फ्रांस सरकार को वापस करने की भाग ने बड़ा जोर पकड़ लिया था। फ्रांस के तो सभी पत्रों ने सावरकर की वापसी की भाग कर दी थी। सितम्बर १९१० में कोपेनहागन में जो सोशलिस्ट काफेस हुई थी, उसने भी जोरदार शब्दों में सावरकर की फ्रांस को सौंपने की भाग को दोहराया था। इन सब बातों के कारण ही ब्रिटिश सरकार को वह समझौता करना पड़ा था। यहाँ तक कि इस विषय में इंग्लैंड में भी सब कुछ सरकार के पक्ष में ही नहीं था। किन्तु जैसा कि हम पहले ही लिख आए हैं तत्कालीन फ्रीष प्रधानमंत्री इस सबको देखकर डर गया। वह ब्रिटिश सरकार से मित्रता को अधिक महत्व देता था। परिणामस्वरूप वह यदि सावरकर को वापस नहीं भाग सका तो स्वयं भी प्रधानमंत्री के पद पर नहीं रह सका। उसे विवश होकर प्रधानमन्त्रित्व से त्यागपत्र देना पड़ गया।

हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में सावरकर का अभियोग १६ फरवरी, १९११ का आरम्भ हुआ। फ्रांस के राजदूत और ब्रिटिश विदेश सचिव के मध्य हुए समझौते की धारा ६ के अनुसार यह अपेक्षा की जा रही थी कि कम से कम इसके निणय में एक मास का समय तो लगना ही, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने भी कुछ ही बैठकों में इस अभियोग को समाप्त करने की त्वरा दियी।

हेग न्यायालय ने २४ २-१९११ को अपना निणय दे दिया। यद्यपि उसने अपने निणय में यह भी स्वीकार किया कि— सावरकर को बंदी बनाने और उसको ब्रिटिश पुलिस का सौंपने में अनियमितता बरती गई है, इसे स्वीकार किया जाता है।” इससे अतिरिक्त शेष सारा निणय ब्रिटिश सरकार के पक्ष में ही दिया गया था। क्योंकि न दे, आखिर ये तो वे सभी एक ही पैली के चटटे-बटटे।

हम 'यायालय' के नियम को सुनकर स्वतन्त्रता प्रिय समाचार जगत् में हलचल मच गई। विश्व के विभिन्न भागों में ही नहीं अपितु स्वयं लन्दन के पत्रों में इस नियम की बहुत आलोचना हुई और कहा कि 'यायालय' ने शरणार्थियों के अधिकार को काटकर रख दिया है। केवल भारत के एक 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने ही प्रशंसा व्यक्त करत हुए कहा था 'जाग्रित अन्तर्राष्ट्रीय 'यायालय' ने ब्रिटिश सरकार का मान रक्षित हा लिया।' इस प्रसंग में उसने सावरकर पर भी निम्न प्रकार की भाषा का प्रयोग करत हुए उनके आरोप लगा दिये थे।

यद्यपि ब्रिटिश 'यायालय' और अन्तर्राष्ट्रीय 'यायालय' में सावरकर के अभियोग का अन्तिम रूप दे दिया गया था किन्तु उनके मापी इसका अभी अन्त नहीं मानत थे। सावरकर के मित्र श्यामजी कृष्ण वर्मा और पत्रकार गोंय ए अलड्रेड अभी भी उनकी मुक्ति के लिये प्रयत्नशील थे। किन्तु यह प्रयत्न उस समय टूट गया जब प्रथम विश्व युद्ध के आरम्भ होने पर अलड्रेड का सौ युद्ध के विरुद्ध प्रचार के आरोप में बंदा बना लिया गया और श्यामजी कृष्ण वर्मा को फात में भागकर जितेबा में शरण लेनी पड़ा। किन्तु उस सारी अवधि में भी श्यामजी ने मार द्योरोप में सावरकर की मुक्ति के लिये प्रयत्न का वातावरण तयार कर लिया था। उसी का यह परिणाम था कि इटालियन रिपब्लिकन पार्टी ने श्यामजी कृष्ण वर्मा को यह आश्वासन दिया था कि वे सावरकर की मुक्ति के लिये प्रयत्न करने रहेंगे और उन्होंने अपनी अप्रैल १९१२ की विधान सभा में इस प्रकार का प्रस्ताव भी पारित करवा लिया था।

जो श्रेष्ठ, सावरकर का ही वह व्यक्ति था जिसने अन्तर्राष्ट्रीय 'यायालय' में भी तहलका मचवा दिया था। उनका यह अभियोग अपनी प्रकार का एक अप्रतिम, चमक तथा ऐतिहासिक अभियोग था। जो न आज तक लड़ा गया और कदाचित् भविष्य में भी न लड़ा जा सके। अन्तर्राष्ट्रीय 'यायालय' में प्रथम बार तभी भारत के विषय में विचार विमर्श हुआ था। सावरकर के लिये ही फ्रांस के प्रधानमंत्री को अपना पद छोड़ना पड़ा था यह भी स्वयं में एक अनूठा उदाहरण था।

## सावरकर की प्रतिक्रिया

हम 'यायालय' के नियम के अवसर पर सावरकर बम्बई के डोगरी कारागार में ही थे। उन्हें किस प्रकार यह सूचना मिली और उस समय उन्होंने क्या प्रतिक्रिया व्यक्त की आदि विषयों पर स्वयं श्री सावरकर ने अपनी पुस्तक 'मेरा आज में बागबास' में जो लिखा है उसके अंश महा उद्धृत किये जा रहे हैं—

मुझे जेल के एक सरकारी अधिकारी ने आकर बताया 'आपको पंचम वष के काले पानी का दण्ड दिया गया है। हेम के अन्तर्राष्ट्रीय 'यायालय' ने यही नियम दिया है कि अप्रैजों को बाध्य नहीं किया जा सकता कि वे आपको फ्रांस के हाथों सौ दें।'।

'ठीक है। मैं भी स्वयं हम 'यायालय' में कोई बहुत आशय नहीं रखता था।

रन्तु क्या मुझको इस निणय की प्रति देखने को किसी प्रकार उपलब्ध हो सकती है ?”

मेरे ऐसा पूछने पर उसने कहा, “यह बात यद्यपि मेरे वश में नहीं है। तदपि आपके लिये मुझसे जा कुछ भी बन पड़ेगा वह मैं अवश्य करन का यत्न करूंगा। फिर भी इतनी लम्बी सजा का समाचार, जो मुझ जैसे सरकारी व्यक्ति के भी हृदय को वेदीन करने वाला है, आपन जिस धर्म से सुना उम दखकर मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता कि आप किसी सहायता और सहानुभूति की अपेक्षा रखत हों।”

“मैंने कहा, मेरे लिये इतनी लम्बी सजा का यह समाचार इमलिय आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि पहले से ही सोच समझ कर और इस सब परिणामों एवं संकटों का अनुमान लगाकर ही तो हम इस काय क्षेत्र में उतरे थे। इसलिये मेरा दुःख रहना स्वाभाविक ही है। यदि आप भी मेरी जैसी परिस्थिति में होते तो उस समय आप भी इसी प्रकार धैर्य धारण कर लेते। आपको सहानुभूति और सहायता के लिए मैं आपका आभारी हूँ।

‘हमारा वार्तालाप समाप्त भी नहीं हुआ था कि तभी किसी ने उस ओर आन की आहट सुनाई दी। आहट सुनकर वह अधिकारी वहाँ सड़मरी दिशा की ओर चग दिया और मैं अपनी कोठरी के भीतर कुछ पीछे की हटकर खड़ा हो गया। जिनकी आहट सुनाई दी थी वे कुछ ही क्षणों में मेरी कोठरी के द्वार तक पहुँच गये। उनके साथ आये अधिकारी ने द्वार खोला और मेरे सामने भोजन परसवा दिया।”

सावरकर की अब तक की स्थिति आज से भिन्न थी। जब तक उनका विषय न्यायालय के निणयाधीन था इस कारण न तो उनको तब तक बन्दी की पोशाक दी गई थी और न उनको दिया जाने वाला भोजन ही दिया जाता था। इस कारण उस दिन भी वही भोजन आया था जो अब तक नित्य आता रहता था। किन्तु सावरकर समझते थे कि अब जब हेग न्यायालय का निणय आ गया है तो उनके वस्त्र और भोजन दोनों ही बदले जाने चाहिये थे। किन्तु सम्भवतया शासकीय आदेश अभी तक कारागार में नहीं पहुँच पाया था, इस कारण सब कुछ पूर्ववत् चल रहा था।

सावरकर जब भोजन करने बैठे तो उन्होंने उसमें से किसी भी विशिष्ट पदार्थ का नहीं छुआ केवल माधारण दाल रोटी ही खाई। अधिकारी ने जब यह देखा तो उसने कहा, “आप ये विशिष्ट व्यंजन क्यों नहीं खा रहे हैं ?”

उसे उत्तर देते हुए सावरकर ने हसकर कहा, “मैं वही पदार्थ खा रहा हूँ जो सामान्य बन्दी का मिला करते हैं। बस से जब मुझे बन्दियों की ही भाँति खाना और काम आदि करना है तो फिर आज ही इन विशिष्ट पदार्थों को क्यों खाऊँ ? कदिया वाले भोजन का अभ्यास आज से ही कर लेना उपयुक्त होगा।”

उसी समय कारागार का अधीक्षक आ गया और उसने बड़ी ही सहानुभूति के स्वर में सावरकर से कहा, “अब आपको पचास वर्ष का दण्ड सुना दिया गया है इस लिए अब आपका बन्दियों के वस्त्र और भोजन दिया जायगा।”

यह कहकर उसने उनको बन्दिया के वस्त्र दे दिए और उनके निजी वस्त्र उतरवा

लिए। उस समय सावरकर के मन में विचारों की तरंगें उठने लगीं। वह सोचने लगे कि कदाचित्त ये वस्त्र शायद जब उनका शरीर में बन्नी नही उतरेंगे। पचास वर्ष कोई छाती अवधि नहीं होती। जब तो इन्ही वस्त्रों में जाको मृत्यु का वरण करना होगा। तथा उनकी विचारशक्ति को सक्रिय करते हुए एक मिपाही न आग बढकर उन्हें एक लाहे का बिल्ला पकड़ा दिया।

वह बिल्ला प्रत्यक्ष बन्दी का अपन सीन पर लगाकर रखना होता है। उममे बन्दी का नमाक दण्ड दिया जाता की तिथि के साथ साथ मुक्ति की तिथि भी अंकित होती है। सावरकर के बिल्ले पर नमाक ३२७७८—डी अंकित था। 'डी स अनिग्रह था डेन्जरस, अर्थात् भयावह। सावरकर अपनी मुक्ति की तिथि देखकर सोचने लगा कि क्या उनकी मुक्ति की तिथि भी आयगी? उनके लिये तो मृत्यु ही मुक्ति होगी।

कारागार अधीक्षक कदाचित्त उनकी भावना को भाप गया था। उसने कहा 'चिन्ता की बात नहीं है। दयालु सरकार आपको १९६० में अवश्य मुक्त कर दगी।

सावरकर ने उसके कथन का उपहास करते हुए कहा था "किन्तु सरकार से अधिक दयालु मृत्यु है। वह यदि मुझे उससे पहले ही मुक्त कर दे तो?"

अधीक्षक मुख देखता रह गया। सावरकर ने फिर कहा, 'मैं दयाधीन महोदय को कम से कम इस बात के लिये तो बधाई देता हूँ कि उन्होंने एक जीवन्त में ही जीवनों के कारावास का दण्ड देकर हिंदुओं के पुनर्जन्म के सिद्धांत को मान लिया है।

## बन्दी जीवन

अब सावरकर अभियुक्त नहीं, बन्दी घोषित कर दिए गए थे। उस दिन से उनका बन्दी का जीवन आरम्भ हो गया। दूसरे दिन प्रातः काल जमादार न आया कहा 'यद्यपि आपका दण्ड आरम्भ हो गया है तदपि साहब ने कहा है कि मैं आपको नित्य की भक्ति भ्रमण और व्यायाम के लिये ले जाऊँ।'

यह भ्रमण और व्यायाम तो एक बहाना मात्र था। वास्तव में सावरकर को कोठरी से बाहर जाते ही उनका सब व्यक्तिगत सामान वहाँ से निकाल लिया गया। कमर का भली प्रकार छानबीन कर पुलिस उनका वस्त्र और पुस्तकें तथा अन्नाद्य वस्तुएँ वहाँ से ले गईं।

बाद में उन सब वस्तुओं को नीलाम कर दिया गया। सावरकर की सारी चीजें अचल सम्पत्ति जिसे सत्ताईस हजार रुपये की जाका गया था जप्त कर ली गई। उनकी ही सम्पत्ति नहीं यहाँ तक कि उनके श्वशुर की भी सम्पत्ति जोर राज्य के नवाब के आदेश में जप्त कर ली गई थी। सावरकर के नास्तिक वाल घर के छाता पतान के चलते तब जप्त कर लिए गए और उनकी भाभी को घर से बाहर निकाल दिया गया। हाँ सावरकर का घरमा अवश्य उनको कुछ दिन बाद लौटा दिया गया था। शायद सब कुछ नीलाम कर लिया गया।

यदिपों का जीवन आरम्भ होने ही सावरकर को रस्मी घटन का काम मिला

दिया गया। आरम्भ में तो यही कहा गया कि जितनी वट सके वे वटें।

डोंगरे कारावास में सावरकर को, उसी कमरे में रखा गया था जिसमें कभी लोकमान्य तिलक रहे थे। यह बात सावरकर को दण्ड का निष्पत्ति होने के बाद हवलदार न बताई थी। उन दिनों सावरकर को जेल के कमचारी 'राव साहब' कह कर सम्बोधित किया करते थे।

अभियुक्त और बन्दी इन दोनों के ही बाहरी और भीतरी वातावरण में अंतर होना है। सावरकर के लिए भी यह स्वाभाविक ही था। बन्दी बनने के उपरांत वे अब एकाकी सा अनुभव करने लगे थे। किन्तु उस एकाकीपन को दूर करने के लिए उनके मन में भाँति भाँति की योजनाएँ बनने लगीं। उस योजना में वे सोचने लग कि कुछ ऐसा किया जाय जिससे जीवन साथ ही सबके मातृभूमि का कुछ तो ऋण उतरे और कुछ मानदत्ता की भी सेवा हो जाय।

किन्तु किया क्या जा सकता है ? सावरकर ने क्रांतिकारी रास्ते से लेकर व्यूरापीटमिन पर्यन्त जनक आजीवन कारावास का दण्ड भोगने वाले महान क्रांतिकारियों के चरित्र का स्मरण किया। पिलग्रिम्स प्रोग्रेस के लेखक के लिए तो जेल में सभी प्रकार की लेखन सामग्री आदि उपलब्ध थी। किन्तु सावरकर तो पसिल कागज के नाम पर कुछ भी नहीं रख सकते थे, आखिर वह 'भयावह' बन्दी थे।

अपने बाल्यकाल में ही सावरकर की इच्छा थी कि मराठी में कोई 'महाकाव्य' रचा जाय। क्या और कैसे लिखा जाय यह कल्पना तब उनके मन में नहीं थी। आज भी वह 'महाकाव्य' नाम के अतिथिन अर्थ कुछ नहीं जानते थे। फिर भी अब लिखना तो निश्चित कर ही लिया था। मन ही मन कविता रच कर उसे कठस्थ करने का विचार आत ही उन्होंने अपने कारावास के दिनों की गणना की और फिर निश्चय किया कि प्रति दिन दस-बीस कविताएँ रच कर उन्हें कठस्थ करके इस अवधि में एकाग्र साधक कविताएँ तो रची ही जा सकती हैं।

इतना निश्चय कर लेने पर उन्होंने सर्वप्रथम गुरुगोविन्दसिंह के जीवन पर कविता रचना आरम्भ किया। गोविन्दसिंह के प्रति उनके मन में विशेष श्रद्धा थी। वह उन्हें हुतात्माओं के मुकुटमणि मानते थे। सावरकर के हाथ तो रस्सी पर बाम करत थे और मन कविता की रचना करता था। इस प्रकार पहले ही दिन उन्होंने दस बारह कविताएँ रच कर कठस्थ कर लीं। कातातर में वे सक्षेप में दीवार पर कविता लिखत और उन कठस्थ कर लेते।

एक दिन सावरकर अपनी कोठरी में बैठे थे कि दरवाज के सीकचे से अन्दर आकर हुए किमी ने उनसे कहा,—“क्या बैरिस्टर ! सब ठीक है न ?”

“जी हाँ, आपके आशीर्वाद से सब ठीक है।”

‘आपके आशीर्वाद से’ मुनन पर वह बोला, “अर महाराज ! कहीं आप जमी विभूति और कहा मैं तुच्छ व्यक्ति।”

उसने सावरकर को बताया कि यारोप में उसका एक मित्र लोटकर आया है

और यह कहता है कि यहाँ तो सावरकर के नाम की बड़ी धूम है। मय लोग उनको निंदा दण्ड या बिग्राह करते हैं। सावरकर को यहाँ शोभात, बलिदानों आदि सम्मानजनक शब्दों में सम्बोधित किया जाता है। अबल भारत के एंग्लोइंडियन समाचार पर ही उनका लिए अपमानजनक भाषा का प्रयोग करते हैं। उसी यह भी कहा कि उनका वह मित्र सावरकर में मिलना चाहता है। किंतु यह तो सम्भव नहीं है। अतः उनको बताया गया कि सावरकर के प्रातः काल व्यायाम करते समय वह सामन व मकान पर जाकर दूर से ही उनका दशन कर सकता है।

उस अधिकारी के उन मित्रों के साथ सावरकर के दशन किए यह उनको ही मालूम होगा। प्रातः व्यायाम करने के उपरान्त उनकी कोठरी का द्वार बन्द होता और दस बजे काम पर जाने के लिए वह घुलता। इस नियम का कठोरता से पालन किया जाता था।

## पत्नी से भेंट

सावरकर अपनी कोठरी में एकत्री बैठे कविता रचते रहते थे। उस एकत्री कोठरी के छप्पर में एक छिद्र हो गया था। चिड़िया उसमें से तिनक निकाल निकाल कर अपने घासल बनाने लगी तो वह छिद्र धीरे धीरे बड़ा होता गया। तभी एक दिन सूर्या उम छिद्र के माध्यम से एक कपोत युगल सावरकर की कोठरी में प्रविष्ट हो गया। उस प्रकार उस कोठरी में कभी कभी एक एक स तीन हो जाते। यद्यपि जब जब भी वह कपोत युगल भीतर आता उस समय सावरकर की विचारतन्त्री टूट जाती कविता में व्यवधान पड़ता, किंतु सावरकर को यह भी अच्छा लगता। इससे एकल यातावरण में कुछ तो परिवर्तन हो जाता।

इस प्रकार एक दिन सावरकर उस कपोत युगल को देख रहे थे कि सहमा उनकी जाड़नी की द्वार खुला। सावरकर समझ गए कि कुछ न कुछ विशेष बात होगी, जो यह अवसर में उनका द्वार खुल रहा है। सावरकर उत्सुकता से द्वार की ओर दख रहे थे कि हवलदार ने भीतर प्रविष्ट होकर कहा, 'बलो तुम्हें साहब ने बुलाया है।'

निमित्त चाहे जा भी हो, किंतु उस काल कोठरी से बाहर जान का अवसर तो उनका मिल गया था। उन्होंने तुरन्त उत्तर में कहा, "बलो।" यद्यपि उनके मन में प्रश्न उठा होगा कि साहब ने क्या बुलाया है। उनकी इच्छा हवलदार से भी यह प्रश्न करने की हुई होगी, किंतु तदपि उन्होंने कुछ नहीं पूछा और कुछ क्षण उपरान्त स्वयं ही हवलदार ने कहा 'शायद आपकी मिलाई आई है।'

सावरकर हवलदार के साथ जेठ मार्गान्त पहुँच तो उन्होंने देखा कि बराबर में मिलाई के स्थान पर ओ खिड़की बनी है उसके बाहर उनकी पत्नी और उसका भाई खड़े हैं। सावरकर तो उनको दपते ही पहचान गए थे। चार बप पूर्व जब वे बरिस्टी पद के लिए लखनऊ के लिए प्रस्थान कर रहे थे तो उस समय भी उनकी पत्नी उनको बरिस्टी के लिए आई थी। उस समय कदाचित् सावरकर के मन में होता कि

रिस्टरी उतीण कर लन क उपरान्त वे शानदार वेशभूषा में बड़े गव स बम्बई की रती पर आकर अपनी पत्नी स सोल्लास मिलेंगे। कदाचित्त उनकी पत्नी के मन में उस समय कुछ इसी प्रकार की कल्पनाएँ उड़ान भर रही होंगी कि लन्दन स लौटने उपरान्त उनके पति खूब धन कमायेंगे और उनका जीवन सुख-चैन से बीतगा।

चिन्तु आज 'कारागार के वस्त्रो में, पैरो में मोटी मोटी लोहे की बड़ियाँ डाले भस्म रूप में वे मामने छड़े थे। वे दोनों सीखचा के पाम होन पर भी सावरकर का तब तक नहीं कर सकते थे। भाँति भाँति के विचार सावरकर के मन में उठे होंगे। और वही दशा उनको दब कर उनकी पत्नी की हुई होगी। रामायण में तुलसीदास ने 'प वाटिका में राम जानकी के प्रथम दर्शन के अवसर का वर्णन करने का यत्न किया है और जब वे उनका समुचित वर्णन करने में असमर्थ रह तो उनके मुख से सहसा एक पड़ा—

'गिरा अनयन नयन विनु बाणी।'

अर्थात् जो आँखें दृश्यती हैं व वर्णन नहीं कर सकती और जो बाणी बोल सकती वह देख नहीं सकती।

ठीक यही दशा उस समय सावरकर और उनकी पत्नी की हुई होगी। इस दारुण त्रास का वर्णन या तो कोई तुलसीदास ही कर सकता है या फिर स्वयं सावरकर कर सकते थे। अतः अपनी पुस्तक 'माझी जमठेप' में जो कुछ उन्होंने उस घेंट का वर्णन किया है उनका हिन्दी सारांश यहाँ प्रस्तुत करना उपयुक्त समझ कर हम उस उद्धृत कर रहे हैं—

"वे दोनों सीखचों के पीछे खड़े थे मरा स्पष्ट भी नहीं कर सकते थे। जेल डरो का मखत पहरा था। मन में भाँति भाँति के विचार उमड़ पड़े। लगन लगा, तास बप अर्थात् आज्ञा विद्या के पूव की यह अन्तिम विदाई है वह भी बिन्शी, स चूर मिष्टुर अग्रेजी शासक के कारागार के कक्ष में। ऐसी घेंट तो सम्भवतया न हो सके। आकाश का बादलों के समान क्षणभर में ही मेरा हृदय विचारों में भर गया। चिन्तु दूसरे ही क्षण जब उन लोगों ने आँखें मिली तो मेरे विचारों के बादल टूट गए। उनकी धृष्टा को कम करने के लिए मैं हँसा और नीच बैठ गया। मैं बोला—

'क्या आप लोगों ने मुझे पहचान लिया?' यवस्थ दूसरी है चिन्तु मैं तो वही। मैं भी यह कारागार के वस्त्र पहना की आवश्यकता की प्रति और ठण्ड से बचाव के लिए अच्छे होते हैं। इसपर ने चाहा तो हमारी पुन भट होगी। यदि कभी बिछोड़ सताने में तो एक क्षण ने लिए विचार करना कि बच्च उत्पन्न कर उनका पालन पोषण करना, घर बनाना आदि आदि ही यदि जीवन है तो यह तो नीव और चिड़िया भी रती रहती है। चिन्तु यदि तुम परिवार का 'यापक' न रह सको तो हम भी तो बाह्य मूल में बँध कर परिवार तो बसा चुके हैं। हमन यदि अपने दो चार परिवारों को टूट में डालकर उन्हें नष्ट भी कर डाला है तो उनका एकमात्र उद्देश्य तो यही था कि निष्पक्ष में कदाचित्त महत्ता सहस्रो परिवारों को उसका सुफल प्राप्त होगा।



“धैर्य से सबटो का सामना करना ही जीवन है। सुना है कि अष्टमान मनुष्य दिनो बाद वही पर परिवार बुला लेने की अनुमति मिल जाती है। यदि यह सम्भव है पाया तो बहुत ही उत्तम हागा अथवा ऐसी धारणा करनी चाहिए कि जिस सब कुछ सहन करने की शक्ति प्राप्त हो सके।”

‘पत्नी और साला कहन लग, ‘इन कष्टों को सहन करने के लिए प्रयत्न कर ही रह है। हम तो परस्पर मिलकर इन कष्टों को किसी न किसी प्रकार झन लेग आप हमारी चिन्ता न करें। स्वयं क विषय में चिन्ता करें, अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखे आपसे निश्चित होने पर ही हम निश्चित हो पायेंगे।’

“हम बातचीत कर ही रह थे कि सुपरिटेण्डेंट ने आकर बताया कि बहुत समय समाप्त हो गया है। तब मन की बात मन में और मुख का वाक्य मुख से हाए गया। जाते जाते साल न मुझसे भगवान का नित्य स्मरण करने का आग्रह किया। उस उह आश्वस्त किया। उहाने घर की ओर मुख फेरा तो मैंने जेल की ओर। नर बाद मैंने उनकी ओर मुड़कर नहीं दखा। विपरीत इसके मैं अपनी बड़ियाँ खनका हुआ इस प्रकार चलने लगा मानो उन बेडियों का भार मेरे लिए कुछ नहीं है, यह सब वे समझ जायें।”

इस प्रकार भेंट समाप्त हुई और हवालदार उनकी लेकर उनकी कोठरी में आ और द्वार बंद करके चल दिया। सावरकर की शक्ति आज बहुत क्षीण हो गई थी। भीतर पहुँचते ही वे लट गए। ऊपर मुंडेर पर कबूतर के दो बच्चे आपस में कुछ तर्क सी कर रह थे। प्रातः काल उनकी माँ को साहब ने अपनी गोली का निशाना बना दिया था और बच्चे माँ को चाँच म खाना लेकर लौटने की प्रतीक्षा में तड़क रहे थे। उहे माँ का वियोग सता रहा था तो इधर सावरकर भी वियोग में खिन्न मन लट रहा। कदाचित् उस तनाव को उनका मन सहन नहीं कर सका होगा उन्हें सत्य नीड जा गई। तभी गश्त लगाने वाला सिपाही उधर से निकला और उसने उनकी ओर दखा तो दरवाजे के सीखचा में अपना डंडा जोर से बजाता हुआ वह कहने लगा, ‘उने साहब ने यदि काम के समय आपको सोता देव लिया तो हमारी क्या गति करेगा, ब नही समझ सकते।’

सावरकर उठे और काम में लग गए। उनको कोठरी में ही काम दिना था। मूज कूटना रस्सी बँटना।

**भायखला कारागार में**

मूज कूटत और रस्सी बटत जेल जीवन का एक मास बीत गया था। साजरा बन्नी को जो भोजन दिया जाता था वही सावरकर को भी मिलता था। उनकी दो मा दूध भी मिल जाया करता था। या दिन बीत रह थे कि एक दिन व साय का मय समाप्त कर गुस्तान का विचार कर रह थे कि तभी द्वार छटका और हवालदार कन्फ सुपरिटेण्डेंट भी भीतर आकर बोला ‘बिछीना साय से ला और चलो।’

सावरकर का मन तो कर रहा था कि पूछें, कहाँ जाना है। कभी सोचते शायद अण्डमान के लिए प्रस्थान कर रहे हैं। किन्तु किसी से कुछ नहीं पूछा। कोठरी के बाहर निकलत ही देखा बाहर कारागार की गाड़ी खड़ी है। उन्हें उसमें बैठाया गया और द्वार बन्द हो गया। अब बाहर का कुछ भी देख पाना सम्भव नहीं था। वैसे भी बाहर घुप्प अध-कार था। गाड़ी दौड़ती गई। किस दिशा को और किस माग से जा रही है, यह जान पाना सम्भव नहीं था। मुनन के लिए भी केवल गाड़ी की खड़खड़ाहट ही सुनाई देनी थी और कुछ नहीं।

यो चलत हुए कितना समय बीता होगा पता नहीं, फिर भी गाड़ी रुकी, द्वार खुला और सावरकर गाड़ी से उतरे तो पाया कि किसी अय जेल में पहुँच गए हैं। नए जेल के कारागार में प्रविष्ट होते समय जो जो प्रक्रिया पूर्ण करनी होती है वह सब पूर्ण करने के उपरान्त सावरकर को एक कोठरी में भेज दिया गया। सावरकर ने अनुभव किया कि यह स्थान डोंगरे कारागार से भी अधिक निजन और एकांत है।

सावरकर यो विचार मग्न थे कि प्रातः का भोजन आ गया। यहाँ पर भारतीय नहीं अंग्रेज वाडर उन के लिए नियुक्त किया गया था। द्वार खुला, साजेंट भीतर आया और उसने अभिवादन किया तो सावरकर ने उसमें कुछ पूछने का साहस करके पूछा, 'यह कौन सी जेल है?' अंग्रेज साजेंट धवराया। फिर भी उसने तोड़ फोड़कर बता दिया कि वह इस समय 'भायखला' कारागार में है। यद्यपि इस प्रकार की कोई सूचना देना अपराध माना जाता था।

जैसा कि हम ऊपर वर्णन कर आए हैं डोंगरे जेल की अपेक्षा भायखला बड़ा उन्मासी भरा स्थान था। डोंगरे में भले ही मनुष्य देखने को न मिले किन्तु उसका वहाँ होना का आभास उनकी बातचीत से मिल जाया करता था। यहाँ तो कहीं से कोई मानव स्वर सुनाई ही नहीं दे रहा था।

वह दिन उस कोठरी में यो ही बीता। न कुछ सोच पाए न कर पाए। ऐम में कविता की रचना भी किस प्रकार हो सकती थी। बस, दिन भर अपनी कोठरी का ही निरीक्षण परीक्षण करते रहे। कभी सोचत कि उनसे घड़ी बना लिए जाने के उपरान्त उनकी आन्तिमकारी सस्था का क्या हुआ होगा। महमा उनसे मन में अपनी सस्था में जुड़े अपन साथी साथ एक एक कर स्मृति पटल पर उभरन लग। यो दिन बीता, शाम हो गई। शाम का भोजन आया। भोजन किया, बरतन माजे और फिर सोयचा में बन्द द्वार के पास आकर खड़े हो गए। अब विचार-तन्त्री मिगी अन्ध दिशा में विचरण करने लगी तो कविता का उदभव हुआ और उस शाम उनकी सप्तमि कविता का उत्तराद्ध उदभूत हो गया।

भायखला जेल में आन पर सावरकर को एक तो दूध मिलना बन्द हो गया था और दूसरे वहाँ ज्वार की रोटी मिलने लगी थी। इस कारण सदर पीड़ा रहन लगी थी। सावरकर ने कारागार अधीक्षक का दूध दिए जाने के लिए आवदन किया। डोंगर कारागार में उनकी पुस्तकें मिल जाया करती थीं, भायखला में वे नहीं मिली। म

इसके लिए भी आवेदन किया। उनका कहना था कि भले ही वे बाइबल हाइस्कूल पुस्तक के नाम पर कुछ अवश्य दें।

जेल अधीक्षक ने उनके इन आवेदनों के उत्तर में एक ही उत्तर दिया—'इस आवश्यकता नहीं है। बाइबल दिए जाने के विषय में देखा जाएगा।'

कुछ दिन बाद बाइबल मिल गई। बहुत दिनों से पुस्तक नाम की कोई बात ही दायी थी। सावरकर उसको छोल कर पढ़ने लगें कि तभी पहरेदार ने कहा, 'क्या कोठरी में नहीं रहती। शाम तक काम पूरा करने के उपरांत केवल घंट दो घंट का मिल पाया करेगी।' विवश सावरकर ने उसे वापस कर दिया और जो काम मिला हुआ था उस काम में जुट गए।

शाम को कार्य समाप्त होने पर उनको बाइबल मिल गई और उसका अध्ययन करते हुए अनेक विचार उनके मन में उठे। गुरुगोविन्दसिंह का चरित्र व काव्यबद्ध चर्चें पढ़ चुके थे। सन्तों भी अब तक पूरा हो चुकी थी। सावरकर काम में रहते हुए 'पूजा' का अध्ययन करते रहे थे। अब बाइबल मिलने पर उनके मन में ईसा पर कार्य करने का विचार उठने लगा था।

सावरकर ने अपने दो आज्ञाकारी बंधुओं की अवधि के विषय में कुछ सटीक रण के विचारों से जावदनपत्र दिए थे कि दण्ड संहिता में आज्ञाकारी कारावास का प्रायः ही मनुष्य जीवन का सामान्यकाल। जो भारत में २०-२५ वर्ष का माना जाता है। यदि दो आज्ञाकारी कारावास एक कालिक न किए जाय और एक के पूरा होने पर दूसरा आरम्भ किया जाय तो दण्ड संहिता की भाषा में इस नाम के उपरांत दूसरा जनम ही उस दूसरे कारावास की अवधि पूरी होगी। अतः मेरी मुक्ति का वर्ष १९६० बत कर २५ वर्ष, जो आज्ञाकारी कारावास का अधिक से अधिक दण्ड माना जाता है, जाय।

सरदार ने इसमें उत्तर में लिखा कि सावरकर को आज्ञाकारी कारावास एक ही नहीं मानकर पूरा ही भोगना होगा। जो न्यायालय का निर्णय था उसी के अनुसार दण्ड ४६ वर्ष का और उनका मुक्ति का वर्ष १९६० ही है। इस उत्तर को लेकर अग्रज अधिकारी सावरकर के पास आया था। उस सुनकर सावरकर ने पुनः दोहराया मुझ इममें भी एक बात का सन्ताप है कि हिंदुओं का पुनर्जन्म का सिद्धान्त सरकारी मान लिया और ईसाई मत के पुरस्चान की कल्पना को अमान्य कर दिया है।

तभी एक दिन सहसा समय में पूरा भोजन आ गया। सावरकर आनंद से खा रहे थे। कारागार के कार्यप्रणाली में अभी इस प्रकार का कोई परिवर्तन हो रहा नहीं था। फिर यह समय पूरा भोजन कसा। निश्चय ही कोई मरीज बात हो रही है। सावरकर ने अपने इस आश्चर्य और उत्सुकता के विषय में पहरेदार से स्थिति की अधिकारी में पूछा तो उसने मुझे से कुछ न बोलकर गुना की भाषा में अपना हाथ मसत में जो दण्डित किया उसका यही भाव होता था कि उन्हें दूर से जाया जा रहा है।

सावरकर की जब कारागार से भाग्यशाली में ले जाया जा रहा था तब

उनके मन में आया था कि कदाचित्त यह जण्डमान के लिए प्रस्थान है। आज भी कुछ उसी प्रकार के विचार उनके मन में उठने लगें थे। एक ओर तो अपनी मातृभूमि से दूर जाने का विचार किंतु दूसरी ओर शीघ्र ही आज्ञाकारिता के प्रारम्भ होने की प्रसन्नता भी। क्योंकि उन दिनों का नियम था कि जण्डमान पहुँचने के उपरान्त ही आज्ञाकारिता की अवधि आरम्भ होती थी, भारत की कारावासी में बिताए दिन मास-वष की गणना उसमें नहीं की जाती थी।

सावरकर ने भोजन किया। दीवारों पर लिखी कविताओं को घुरा कि तभी बाहर से सुनाई दिया, 'चलो' और द्वार खुल गया। सावरकर ने अपनी सीमित मामूली उठाई और बाहर निकल आया। कुछ क्षणों के लिए बाहर के खुले बानावरण में किंतु सुरत ही मोटर में बैठने को कहा गया। उसका बाइक स्टेशन, फिर रेलगाड़ी फिर स्टेशन और फिर मोटर में बैठकर चला जिस स्थान पर ले जाया गया वह स्थान 'ठाणे' का कारागार था। जहाँ पुनः कारागार, कालापानी जमा हुआ था।

## ठाणे कारागार में

ठाणे कारागार में अंग्रेज अधिकारी ने समस्त जेल कर्मचारियों को यह आदेश दे दिया था कि कोई भी व्यक्ति सावरकर से मिलना तो दूर उस देखने भी न पाए। वहाँ सावरकर के लिए जेल के एक कोश को खाली करा दिया गया था उसमें सभी वस्तुओं का अद्यतन भेज दिया गया था। उस आदेश का ही यह परिणाम था कि कारागार का प्रत्येक कर्मचारी और बन्दी सावरकर को देखने के लिए उत्सुक दीखता था। वह समझ नहीं पा रहा था कि ऐसा कौन सा खूबार बंदी जा गया है कि जिन देखना भी मना नहीं है।

अंग्रेज अधिकारियों को इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुई। सावरकर जिस कोठरी में रखे गए थे उसके बाहर उनकी निगरानी के लिए बन्दीगृह के सबसे अधिक कुत्तावाला मुसलमान बन्दी का सावरकर को रखा गया था। और जब भोजन आया तो वह तो बस। बाज़र की जड़पकी रोटी और साग के नाम पर कुछ खट्टा सा। किसी प्रकार रोटी का टुकड़ा दाता से बाहर पानी की घूट के साथ निगल कर कुछ घास सावरकर ने पेट में डाले।

समय कहिए, समय कहिए अथवा निःसौभाग्य। जिस प्रकार मरुस्थल में तभी कहीं कुछ हरियाली सी दिखाई देती है, उसी प्रकार ठाणे कारागार में उस सख्त पहरे और निगरानी के वातावरण में भी सावरकर को सहानुभूति रखने वाला कोई था। पहले दिन ही जब सावरकर वह भोजन कर चुके जिसका कि हमने ऊपर उल्लेख किया है और वे आगम करने के लिए बिछौना बिछा रहे थे कि तभी बाहर शोर मचाई दिया। पहले दरवाज़ा जान कि किस किस को गद्दी गालियाँ दे रहा था। उसके कुछ क्षणों बाद एक बाइक सावरकर की कोठरी के द्वार पर था उपस्थित हुआ और सरेत से उसने सावरकर को द्वार पर बुलवाया। धीरे धीरे सावरकर को देखकर दीर से वह बाइक बोला, 'आपकी दीर'।

की वहानी हम लोगों ने सुनी है। मैं आप जैसा महार्थ व्यक्ति और वीर पुरुष का दास हूँ। मुझमें आपकी जितनी सेवा बन पड़ेगी, मैं करूँगा।'

यह वह घर फिर वह सावधान हो गया मानो कोई छटका हो। इस उग्र देशपर फिर वहन लगा, मैं आपका एक सूचना देता हूँ, किमी के सम्मुख उसका उत्तर मत करिए नहीं नो मैं मारा जाऊँगा।'

माना उस सूचना दन की उतावली हो, इस लिए सावरकर की ओर से किसी मन्त्र का आश्रयमन दिए जा की प्रतीक्षा लिए बिना उसने कहा, 'आपका भाई भी यही पर है।'

सावरकर ने हड़बड़ा कर पूछा 'कौन सा भाई?'

'छोटा।'

तभी कदाचित् वाडर को काई जाहट सुनाई दी तो वह वहाँ से टल गया और सावरकर भी कोठरी के भीतर हो गए।

सावरकर का छोटा भाई नारायण सावरकर अहमदाबाद में लाड मित्र पर बरसाए गए बम काण्ड में पड़्यंत्रकारी के रूप में पकड़ा गया था और ठाणे कारागार में कष्टमय जीवन बिता रहा था। उस समय नारायण की आयु मात्र बीस वर्ष की थी। नारायण के विषय में अनन्त विचार सावरकर के मन को फँसोटन लगे। बड़ा भाई पहन ही जाजम कारावास का दण्ड पाकर अण्डमान भेजा जा चुका था, सावरकर स्वयं उस माग पर अग्रसर थे। छोटे भाई का जब यह विदित होगा तो उस पर क्या बीनगी इन्हीं विचारा में सावरकर खो स गए थे।

सावरकर की यह विचारतन्त्री वाडर के उनके द्वार के समीप आन पर टटी। सावरकर सुरत द्वार पर जा पहुँच। वाडर ने बाहर से दादा। यह लो।' यह कहकर एक पत्र सा सावरकर के हाथ में पकड़ा दिया। इसके साथ ही वह कहने लगा 'अब अधीश्वर ने सभी वाडरों को सचेत कर दिया है कि आपके छोटे भाई के भी इसी कारागार में होने की सूचना आपको किसी भी प्रकार विदित न होने पाए। दादा। इस बात का ध्यान रखना। यदि आपके मुख से एक भी अक्षर निकला तो मैं मारा जाऊँगा।'

इतना कहकर वह दूर चला गया और फिर उसी प्रकार अपनी कड़कड़ाती आवाज में गालियाँ बकता हुआ पहरा दन लगा। सावरकर को दिया गया पत्र उनके छोटे भाई नारायण सावरकर का था। लालटेन दूर थी, फिर भी किसी प्रकार द्वार के पाम छट हाकर सावरकर ने उस पत्र को पढ़ ही डाला। भाई न लिया था—

'जो निव्य सत्त्व सत्या है उसकी पूर्ति के लिए यदि इससे भी कठिन तपस्या करनी पड़ जाय तो अवश्य करिए चिन्ता करना उचित नहीं।

कितना विश्वास था इन शब्दों में। पत्र में न तो दुःख का कोई शब्द था और न निराशा का ही। एक प्रकार से छोटे भाई ने बड़े भाई को सन्तुष्ट ही दिया था। सावरकर ने उस पत्र का उत्तर देने का निश्चय किया। वे सोचते थे कि कदाचित् अपने छोटे भाई यही उनका अन्तिम पत्र हो। क्योंकि अण्डमान जाँ पर मास में एक बार पत्र लिखने

की सुविधा प्राप्त होती थी किंतु वह भी कभी किसी न किसी बहाने छीन ली जाती थी। पत्र लिखने के निश्चय से उन्होंने उसी वाडर को सकेत से अपन पास बुलाया और उसको अपनी कामना बताई तो उसने कहा, 'अभी रात है, अबसर मिला तो देखूंगा।' यह कह कर वह तुरन्त वहाँ से हट कर दूर जाकर उसी प्रकार चिल्लाता हुआ पहरा देने लगा।

सावरकर अपन बिछौने पर आकर लेट गए। सोचते-सोचते सो भी गए। सम्भव-तया लगभग आधी रात बीती होगी कि द्वार पर घटका सुनकर उनकी आँख खुल गई। द्वार पर वाडर खड़ा सकेत से उनकी अपने पास बुला रहा था। उसने कागज क्लम दकर सकेत किया 'लिखो' और सासटें उनके समीप की कर दी। सावरकर उसकी कृपा पर अभिभूत हो गए और उसके प्रति आभार व्यक्त करने लगे तो उसने तुरन्त रोक कर कहा 'दाश! पहले लिखो।'।

एक बार को तो सावरकर के मन में शका हुई कि कहीं वह उस पत्र को ले जाकर नारायण को देने की अपेक्षा किसी जेल अधिकारी का न पकड़ा दे। तब भी सावरकर के मन में पत्र लिखने की लालसा तो मिटी नहीं। अतः उन्होंने चतुराई से काम लिया। क्योंकि गुप्तचरों के कारनामों से वे भली भाँति परिचित थे और आज तक के जीवन में उनके छक्के छुड़ाते आए थे। अतः उन्होंने जो पत्र लिखना आरम्भ किया, उसमें किसी को सम्बोधन नहीं किया गया था। उन्होंने सामान्य सी बात की भाँति लिखा (मेरा आज का कारावास से उद्धत) —

'यदि आगामी पाँच सात वर्षों में मुझे अण्डमान में अपने परिजनों को बुला लेने की अनुमति मिल गई तो मैं उन्हें साथ रख कर अध्ययन आदि करता हुआ समय व्यतीत करने लगूंगा। यदि मैं अपनी 'पुण्य भू भारत' के तट पर पग न भी रख सका तो भी मैं जिस वाक्य की रचना कर रहा हूँ उसे नारायण की भाँति उन अभिनव कुमारों के कठ स देश भर में प्रख्यात कराऊंगा। जीवन की सफलता के लिए यह काय ही पर्याप्त होगा। इस काय की सफलता का आश्रय ही मैं अण्डमान में अपनी कारावास की २५ वर्ष की अवधि काट सकूंगा। और यदि एक जन्म का कारावास पूरा करने पर भी मुझे मुक्त न किया गया तो मुक्ति या मृत्यु मेरा आधार होगा।

'तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करना और न यह सोच कर अपने मन का जिन मत करना कि जीवन विफल गया। राष्ट्रभक्ति की प्रेरणा देने के लिए अपनी दह का इधन बना कर यदि किसी का जलता ही रहना है तो वह सुयश का स्थान हम ही कभी न लें। जलते रहना भी तो एक कम है। बल कम नहीं, जपितु यह महत्त्वपूर्ण कम है।'

सावरकर इतना ही लिख पाए थे कि वाडर न घास कर पत्र समाप्त करने का सकेत किया। उन्होंने भी बिना विलम्ब किए पत्र को दरवाजे में मटा दिया और स्वयं पीछे हट गए। सावरकर ने धीरे से कहा, ईश्वर से प्रार्थना है कि मेरे कारण तुम पर कोई आंच न आए। मेरे लिए तुम कितने शाहस का काम कर रहे हो।'

वाडर भावुक हृदय था। कहने लगा, 'दादा ! यह भी कोई साहस का काम है मैं चोर नहीं हूँ। भटमाव जाकर मैंने डाका डाला था। मैं शूर हूँ, इसलिए महापुरुषों का स्वयं को सबकुछ समझता हूँ। मैं तो आगामी दो मास में जेल में गिरा जाऊंगा। वास्तव में शूर और साहसी तो आप हैं जो इतना लम्बा दण्ड पान के सदा हँसते मुस्कराते रहते हैं।'।

वाडर चला गया। उसने बाल को पत्र पहुँचा भी दिया। किंतु उसका दोषवाद ही बाल को ठाणें से बदलकर अजय कारागार में भेज दिया गया। वह कहाँ कब मुक्त हुआ जादि समाचार सावरकर तक कभी पहुँचने ही नहीं दिया गया।

कारागार में शारीरिक यातनायें ना मिलती थी किंतु अजय सावरकर को मानसिक यातना देने में भी कोई कौर कसर नहीं छोड़ती थी। ठाणें कारागार में ही एक लम्बा लडगा, मुमटडा सिपाहियों का मुखिया था जो मजदूर समय पर उनकी ओर सकेत कर अपने साथी सिपाहियों को न जान क्या क्या तो बरत रहा था। उसका उद्देश्य नाशिकारिया के कृत्यों की खिल्ली उड़ाना और उन्हें नाशिकारिणा होता था। हवा में लाठी घुमाकर वह कहता, 'क्यों हवा मरी?' 'उमक नाशिकारिणा खिलाकर हस पड़ते। फिर वह सावरकर की ओर सकेत कर कहता 'यह देखो पहलवान, कचन सी काया लेकर ला थे अग्नेय सरकार को उखाड़न।' कभी-कभी सावरकर से भी कुछ पूछता रहता था। यो उसमें स्वयं का बचा पाना सावरकर के लिये बड़ा कठिन होता था। कभी कभी वह गाकर सुनाता—

अजब तरी कुदरत, अजब तरा खेल।

मकड़ी के जाले में फसाया शेर॥

सावरकर का उस समय उसका गाना भी अच्छा ही लगता था। गाना यातावरण में कुछ परिवर्तन ला होता था। रही मनोबल मिरान की बात। सावरकर उस मिटठी के पन ही कम थे।

## मद्रास में कलक्टर वध

किंतु कभी कभी वह हंगलदार सावरकर का कुछ खबरें भी सुना दिया करता था। उनमें ही सावरकर को बताया था कि इंग्लैंड के राजा का राज्याभिषेक समारोह धूमधाम में सम्पन्न हो गया है।

कभी कभी एक जय जल अधिकारी भी सावरकर के पास आकर बातचीत किया करता था। यद्यपि समाचार पत्र पढ़ने का उस अधिकारी को आनंद नहीं था और न ही उसकी समाचारा में कोई रुचि थी किंतु किसी कारण विशेष में सावरकर का निष्ठता पान रखने के लिये अब समाचार पत्र पढ़कर कुछ समाचार सावरकर को सुना दिया करता था।

एक दिन आकर उसका कहना, "आज के समाचार पत्र में मद्रास में मि० डॉ० सावरकर कलक्टर की विगा शासन व्यवस्था द्वारा वध किये जाने का समाचार प्रकाशित

हुआ है। सुना जाता है कि विदम्बर पिल्लई के मामले से उसका कोई सम्बन्ध था। उसने सावरकर से पूछा—

“इस विषय में आपका क्या मत है?”

सावरकर न चुप रहना ही उचित समझा। किन्तु दोपहर को वही हवलदार पुन आकर पूछने लगा, “क्यों महाराज! मद्रास में भी आपके कुछ साथी हैं?”

सावरकर ने उस टालते हुए कहा, “कौन कहा है, यह मैं इतनी दूर एकांत कोठरी में बठा किस प्रकार बता सकता हूँ।”

तब उसने अपन सिपाहियों की ओर देखा जिससे कि वह उनका ध्यान सावरकर की ओर आकृष्ट कर सके। और बोला, “अक है अक!” उस ‘अक’ शब्द से उसका क्या अभिप्राय था, यह सावरकर को अब तक पता नहीं लग पाया।

उसके इस प्रकार छानबीन करने में तो यही अनुमान लगाया जा सकता था कि वह मद्रास फण्ड के विषय में सावरकर में कुछ उगलवाना चाहता था।

ठाणे कारागार में सावरकर के पास अपनी वस्तुयें कहने के नाम पर उनका चश्मा और गीता का छोटा सा गुटका ही था। किन्तु अंग्रेज सरकार का यह भी ‘बम’ के समान भयकर वस्तुयें दिखाई देने लगी थी। एक दिन हवलदार ने जाकर कहा, ‘साहब ये दोना चीजें मांगता है।’

सावरकर को ये वस्तुयें दनी पड़ी। किन्तु वे सावधान रह कि गीता के विषय में तो सोचा जा सकता है किन्तु चश्मा ले लेने का क्या अभिप्राय हो सकता है? कुछ समय बाद जब अधीनस्थ उनके पास आया तो उन्होंने उससे पूछा, ‘मरा चश्मा क्या न लिया गया है?’

वह बोला, “आपकी राजद्रोह का जा दण्ड दिया गया है तदनुसार आपकी सब सामग्री अपने अधिकार में ले लेने का आदेश है। निदेश में भी जब आगो पकड़ा गया था, उस समय जो वस्तुयें मिली थी उस—टुक, बन्ध तथा पुस्तकें आदि, व सब आज नीलाम की जा रही हैं। उसमें जा घन मिलेगा वह सब सरकारी फण्ड में जमा कर दिया जाएगा।”

जगता है सावरकर के गीता और चश्मा जलाने किये जा रहे हैं। कुछ सिपाहियों के मन को ठेस लगी होगी। कुछ सिपाहियां ने उन वस्तुओं की नीलामी बोली में न देने का निश्चय कर लिया। यह सूचना किसी प्रकार सावरकर को मिली तो उन्होंने उनको समझाया। सावरकर ने उनसे कहा कि उनकी वस्तुओं में उनके कुछ मूल्यवान वस्त्र भी हैं। नीलामी में वे सब मिट्टी के भाव बिक जायेंगे। इसलिए अच्छा यही है वे लोग उन वस्तुओं की नीलामी में खरीद लें। यदि उन जन सहृदय लोग उनकी वस्तुओं को खरीद लें तो सावरकर को इससे प्रसन्नता होगी। किन्तु यदि क्रूर हृदय अथवा लोगो ने उनकी खरीदा तो इसमें उनका मन को ठेस लगगी।

सावरकर की यह बात बदाशित उन लोगों के मन में किसी प्रकार पड़ ही गई। जिसने क्या खरीदा, क्या नहीं खरीदा, इसका तो सावरकर का पता नहीं लगा। किन्तु



उन्होंने देखा कि दूसरे दिन उनकी उनका चश्मा और गीता वापस मिल गये थे।

चश्मा और गीता पाकर सावरकर प्रसन्न हुए। अथवा चश्मे के अभाव में उनकी बहुत कठिनाई होती।

## ठाणे कारागार का महत्त्व

ठाणे कारागार अनेक कारणों से ख्यात अथवा कुख्यात था। वहाँ सामान्यतया उन बंदियों को रखा जाता था जो अण्डमान जाने की प्रक्रिया में होते थे। कालापानी का दण्ड तो उसी को दिया जाता था जो जघन्य अपराध में बंदी बनाया जाता था और उसमें भी जघन्यतम अपराध के लिये आजम कारावास का दण्ड दिया जाता था। इससे ही अनुमान लगाया जा सकता है कि सावरकर को कितना भयंकर अथवा खूबार बंदी समझा गया था। समझा भी क्यों न जाय? जो व्यक्ति पोट-होल के माध्यम से जहाज में निकल सकता था, जो व्यक्ति समुद्र तरण कर विदेशी भूमि में पैर रख सकता था, जो व्यक्ति अपने सहयोगियों के माध्यम से ब्रिटिश सरकार के वरिष्ठतम अधिकारियों को यमलोक पहुँचवा सकता था, उसको क्या न इतना भयंकर मानकर कठोरतम दण्ड दिया जाय। दण्ड संहिता में कालापानी और आजम कारावास से बढ़कर प्राण दण्ड ही होता है, वह सावरकर पर लागू नहीं होता और न उसमें उतनी यातना ही सहन करनी पड़ती है जो कालापानी और आजम कारावास में सहन करनी पड़ती है। सावरकर उनकी दृष्टि में इसी के योग्य थे।

जिन बंदियों को आजम कारावास का दण्ड दिया जाता है, उन्हें अण्डमान भेजने में पूर्व कुछ जगह पर कारावासों में रखा जाता है और वहाँ उनकी शारीरिक परीक्षा आदि की जाती है। इस परीक्षण के उपरान्त जो जो बंदी अपने दशावासियों तथा स्थानीय जनों के साथ रहे जाने के अनुपयुक्त पाये जाते हैं उन्हें ठाणे के कारागार में रखा जाता है। इस प्रकार समस्त देश विदेश के भयंकरतम बंदियों को वहाँ पर एकत्रित किया जाता था। यह अण्डमान भेजे जाने में पूर्व का अंतिम पड़ाव होता था।

बंदियों को वहाँ लाने की जो प्रक्रिया होती थी, उसे बंदियों की भाषा में 'चालान' कहा जाता था।

यद्यपि वहाँ एकत्रित किये जाने वाले सभी बंदी एक प्रकार से बड़े खूबार माने जाते थे किन्तु होवता थे भी मनुष्य ही थे। मनुष्य कितना ही भयंकरतम अथवा जघन्यतम क्यों न हो, किन्तु मनोरंजन भी उसके जीवन का एक अंग होता ही है। कारागार में ऊँचे बंदी किसी भी प्रकार के मनोरंजन के लिये छटपटाते रहते हैं। जो बंदी माधारण से बौआ और चिड़ियों की फड़फड़ाहट और नोक झोंक में भी अपने लिये मनोरंजन ढूँढ लिया करते थे वे 'चालान' की इस चहल-पहल में क्यों न प्रमत्त रहते। जमादार में लेकर अन्य सभी प्रसन्न दाखले थे। नये जाने वाले बंदियों के लिये कर्मचारी किये जाते थे तो भी जेल में ऊँचे बंदीजन किसी भी प्रकार के मनोरंजन के

लिये नालायित रहते हैं। इस प्रकार के कामों में भी उनको उत्साह रहता है, वहाँ यह भी एक प्रकार का मनोरंजन ही होता है।

सब बन्दीजन उत्सुकता से इधर उधर देखकर परस्पर बातें करते हैं अथवा 'चालान' आया क्यों नहीं। बन्दीगृह का द्वार खुलता तो सब उधर देखने लगते मानो चालान आ गया हो। मानो चालान कोई हाथी या इसी प्रकार का कोई विशेष जन्तु हो। वहाँ 'चालान' भी एक तहलका ही होता था।

उस दिन तीन बजे मध्याह्नोत्तर के लगभग खन खन की तालवद्ध पदध्वनि सुनाई दी तो सारे अर्थ बन्दी एक प्रकार से पक्तिवद्ध में उस माग की ओर दखन लगे जिधर में खन खन की ध्वनि आ रही थी। उन जाने वालों में भानि भाति के जाकार और मुखाकृति के बन्दीजन थे। सुरक्षा कर्मचारी उनके साथ साथ चल रहे थे। जेल कर्मचारियों तथा साधारण बन्दियों के लिये यह दृश्य किसी भी मनोरंजक कार्यक्रम से कम नहीं था।

ठाणे कारागार में अण्डमान जान गले बन्दियों के लिये जिनमें सावरकर जैसे लोग होने हैं, एक विशेष स्वतंत्र विभाग बनाया गया है। सावरकर को उस विभाग में एक कोठरी में बंद कर दिया गया। वह कोठरी बहुत ही गंदी और दुर्गन्ध भरी हुई थी। उनके साथ लगी अन्य कोठरियाँ भी वैसी होंगी इसका अनुमान लगाना सावरकर के लिये सहज ही था।

इतना सब कुछ होने पर भी इतने दिन तक जो सावरकर डोगरे और भायखला के कारागार में एकान्त कोठरी में रहे उसकी अपेक्षा यहाँ का यह चहल पहल भरा वातावरण उनके लिये भी एक प्रकार से मनोरंजक ही सिद्ध हुआ था। इस समय उनकी दृष्टि सीमित कोठरी की परिमीमा तक सीमित न होकर बाहर का दृश्य देख सकती थी, उनके कान बेड़ियों की तालवद्ध खनखनाहट सुन सकते थे। दुःख और माननाओं से भरे उन स्थानों पर कभी-कभी मानव हँस भी सकता था। यही कारण था कि प्रान्त-प्रान्त से लाये गये ये सारे बन्दी आनन्दित होकर मस्ती में गाने बजाने लग। जो उसमें सम्मिलित नहीं हुआ उसे बलात् पसीट कर सम्मिलित करने का यत्न किया गया। इस प्रयोग में किस किस प्रकार की गालियों का प्रयोग हुआ यह लिखन का विषय नहीं है।

चालान आते ही साधारण सिपाही, हवलदार, कारागार अधीक्षक आदि सब इधर उधर आते जात दिखाई देने लगते हैं। क्योंकि उस स्थिति में जो सामाजिक अपराधी बन्दी होते हैं वे भाति-भाति की उद्दण्डता करने लगते हैं। उससे कारागार को अनेक प्रकार की हानि होने की सम्भावना के साथ साथ प्रशासन की अनुशासन हीनता पर भी आघात आती है। इतना होने पर चार छ बन्दियों को चोटें लगने के साथ साथ एक-दो सिपाहियों के सिर फूट जाना भी स्वाभाविक सी बात थी।

'चालान' के बन्दियों के इस कार्यक्रम के सामने सिपाही हो या अधीक्षक, वे सभी अपने सम्मान की रक्षा करने तथा अपना प्रभुत्व भी बनाए रखने के लिए, चालान

के उन सरगनाओ को तमाखू, बीड़ी, सिगरेट आदि की रिश्कत देकर प्रसन्न करने का यत्न किया करते थे। उनका यथाशक्ति प्रयत्न होता कि जिस प्रकार शांति स ये ठाणे बारा गार म आए थे उसी प्रकार शांति म यहाँ म बिदा हो ता उनकी नौकरी पर किस प्रकार की आच नही आएगी।

सावरकर का भी उसी हुडदग म सम्मिलित कर लिया जाता यदि उनके नाम म आगे जयवा पीछे श्रद्धा म जयवा सम्मान स या फिर व्यंग्य मे ही क्यों न हो, 'वैरिस्टर' शब्द न जुड़ गया होता। 'वैरिस्टर' साहब की क्या सावरकर के उम स्थान पर पहुँचने से पहले न सालम किम प्रकार पहुँच जाती थी कि मभी आश्चर्य म उनके आने की एक प्रकार से प्रतीक्षा सी करते। अरे 'वैरिस्टर' बंदी बनाकर लाया जा रहा है। सावरकर न भी यह स्वयं अनुभव किया कि जय-यत्नम अपराध म बंदी बनाया गया मयकरतम अपराधी भी 'वैरिस्टर साहब' को श्रद्धा की दृष्टि म देखता है। 'वैरिस्टर' अर्थात् वकील ही वह व्यक्ति होता है जो उसे 'उसके अपराध से मुक्ति' प्लान का यत्न करता है। वे सभी अपराधी न्यायालय मे उपस्थित रहते हुए अपन वकील की जिरह सुनत रहन उसके प्रति श्रद्धावान हो जाते हैं।

इनना ही नहीं जिस प्रकार मामान्य जगत मे अकबर-बीरबल की कहानियाँ मनोरंजन क लिए सुनाई जाती है उसी प्रकार बन्धिया म वकील और गवाहा की कहानियाँ का बड़ा महत्व होता है। वहाँ हर कोई बंदी इस प्रकार का कोई न कोई किस्सा सुनाता ही है। न सही किसी और का, अपन वकील और गवाहो का ही किस्सा सुना दगा।

सावरकर ने वैरिस्टरों तो की नहीं किन्तु ठाणे जैसे कारागार में उनकी वैरिस्टरों काम आई और खूबार स खूबार अपराधी भी उनके प्रति श्रद्धा होने से उनके साथ बर्दिया द्वारा किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया गया। यही क्या उनके लिए कम था? सावरकर यह सारी हलचल अपनी बंद कोठरी की छिड़की स बहुत रात गण तक देखत रह। बहुत दिना के बाद इतन लोगों की ऐसी कानाहल भरी ध्वनि उनकी सुनने और देखने को मिली थी।

न जान क्यों वहाँ क कुछ अधिकारियाँ की भी सावरकर के प्रति महानुभूति सी थी। सभी तो 'चालान' के नेता न एक्कार वहाँ था, 'देखो वैरिस्टर साहब को तग मत करना।' और बहुत रात बीतते पर वहाँ के मिपाहियों न हुडदग मचा- बाल बर्दिया को तमजान हुए रहा, 'देखो वैरिस्टर की नींद आ रही है, उसे सोने दो और तुम लोग भी सो जाओ।' मिपाही के वचन का प्रभाव हुआ और वे लोग हुडदग बंद करके सोने लगे।

रात किसी प्रकार नींद आ ही गइ। प्रातःकाल ज्ञान पर सावरकर की जब अपा 'उठे भाई का स्मरण हुआ आया कि व भी एक दिन इसी प्रकार इस कारागार म चानान के साथ आगे हमें तो उहाँन की के एक मिपाही म इस विषय म पूछनाछ की। उग मिपाही न बनाया कि वह नया-नया ही आया है, तदपि वैरिस्टर के नाम से वह भी

प्रभावित था। उसने किसी पुरान सिपाही से पूछा और आकर सावरकर को बताया कि जिस कोठरी में सावरकर को रखा गया है, उसी कोठरी में उनके बड़े भाई को भी रखा गया था।

‘दादा’ अर्थात् बड़े भाई का स्मरण आत ही सावरकर का मन उदाम हो गया। सोचने लगे उन्हें तो यहाँ बहुत सताया गया होगा। वे तो ‘वरिस्टर’ नहीं थे। वे अपने मन की भावना को जब किसी भी प्रकार नहीं रोक सके तो उन्होंने एक सज्जन में दीखने वाले अधिकारी से पूछा कि क्या यहाँ पर उनके भाई को भी इसी प्रकार बंदियों में अथवा जेल अधिकारियों ने यातनायें दी थी? उस अधिकारी ने कहा “नहीं, यहाँ तो यह सब सम्भव नहीं था। किन्तु अब अभियुक्तों के मुख से सुना अवश्य गया था कि दरबदा कारागार में उनको सताया गया था।”

सावरकर का भावुक मन इससे आश्चर्य हो गया और उन्होंने स्वयं ही यह सोच लिया कि कम से कम इस कोठरी में तो वे सुख में साये होंगे। उस अधिकारी का शिष्ट व्यवहार देखकर सावरकर ने समय समय पर उससे वामनराय जोशी, सामेण आदि अत्याय न्यातिकारियों के विषय में भी पूछताछ की। क्योंकि सावरकर को पता चला था कि उन बंदियों को भी उस कारागार में रखा गया था। अधिकारी ने जो कुछ बताया वह कहाँ तक सत्य था यह तो बन्दी ही बता सकते थे, किन्तु उसमें सावरकर को अवश्य सात्वता मिली थी।

## अण्डमान की प्रस्थान

इस प्रकार दो चार दिन बीते थे कि फिर चलने की पुकार सुनाई देने लगी। सावरकर को कहा गया चलने का तयार रहना, तो सावरकर ने एक हाथ में पुराना शोरा और कम्बल का बिछौना उठाया और दूसरे हाथ में टीन की थाली तथा दो बत्तन। इनको उठाए वे द्वार पर आकर खड़े हो गए। उनके सामने से वेडियाँ और हथकड़ियाँ खनखनाता हुआ वही झुण्ड जाने लगा। जो मिलता उनको राम राम, सलाम करता वह दल भागे बढ़ता गया।

उनके वहाँ से गुजरते ही सावरकर को कोठरी में निकाता और कारागार के द्वार के पास खड़ा कर दिया। सावरकर देख रहे थे कि बंदीजनों का समूह भाग पर पैदल ही आगे बढ़ता जा रहा है। उनके चारों ओर सुरक्षा कर्मचारियों का गहरा प्रवध है। सावरकर सोचने लगे कि यदि उन्हें भी इसी प्रकार जाना पड़ा तो कठिनाई होगी। तभी द्वार के बाहर एक मोटर आकर रकी। दो लम्बे तडंगे गोरे अधिकारी कार से बाहर उतर। उनकी उपस्थिति में सावरकर को मोटर में बठाया गया और फिर वह दाना भी उसमें बैठ गए। मोटर आगे चल दी।

न जाने कब, यह समाचार प्रसारित हो गया होगा कि सावरकर को आज अण्डमान भेजा जा रहा है। क्योंकि सावरकर ने देखा कि जिस भाग में उनकी मोटर जा रही थी उस भाग पर अनेक लोग उनके दशना के लिए खड़े पाए गए। सम्भवतया

एक तो इस कारण भी सावरकर को भय बंदियों के साथ पैदल नहीं भेजा गया होगा कि वही वे दशक कुछ कर न बैठें अथवा सावरकर व प्रति उनके मा की श्रद्धा और न बढ़ जाय। दूसरे सरकार को भय भी होगा कि जा व्यक्ति जलपान में समुद्र में कूदकर भागने का साहस कर सकता है वह पैदल ले जाने पर यहाँ पर भी कुछ भी कर सकता है अथवा सम्भव है कि उसके गिराह के लाग उसको छुड़ाने का यत्न करें। इस जाशका में भी उन्होंने सावरकर को मोटर में ले जाना ही उचित समझा। सरकार की ओर से सावरकर पर इन प्रकार यह अहतुक कृपा हो गई सावरकर पैदल चलने से बच गए।

सावरकर को मोटर से ले जाए जान पर उन पदम चलने वाल बंदियों में सावरकर के प्रति श्रद्धा और भी बढ़ गई। उनको यह तो पता नहीं था कि सावरकर उनसे भी अधिक घतरनाक बंदी है, इसलिए उसको मोटर में ले जाया जा रहा है। वे तो यही समझने लगे कि सावरकर बरिस्टर है बड़ा आदमी है इसलिए उसको मोटर में ले जाया जा रहा है। बंदी भानि भाति की बातें करने लग। कोई कहता, वह तो राजा है, बड़ा आदमी है वह हम जसा साधारण अपराधी नहीं है। कोई कहता, नहीं सरकार उससे डरती है, इसलिए उसको मोटर में ले जा रही है। या सरकार को न चाहने पर भी उन बंदियों की सावरकर के प्रति श्रद्धा हो गई।

रेलवे स्टेशन पर पहुँचने पर भी सावरकर को सबके साथ न रखकर किसी अलग ही डिब्बे में बठाया गया। सावरकर की हथकड़ी का एक छोर एक अग्रेज अधिकारी के हाथ में बाँध दिया गया। इस प्रकार बिना अपराध के ही उस अधिकारी के हाथ में हथकड़ी पड़ गई थी। उसकी बड़ी बठिनाई होती थी। क्योंकि सावरकर की किसी भी क्रिया पर उसको भी हाथ उठाना पड़ता अथवा लघुशका आदि के लिए उनके साथ ही बराबर जाना पड़ता और सावधानी से, सतकता से खड़ा भी रहना पड़ता। न केवल इतना अपितु उसको भी सावरकर के साथ ही सोना भी पड़ता।

गाड़ी जब तक चली नहीं तब तक स्टेशन पर लोग आ आ कर उस डिब्बे के सामने खड़े होकर सावरकर को देखते। किन्तु पुलिस कर्मचारी उनको वहाँ पर खड़ा नहीं होने देते थे। सुरत वहाँ से हटा दिया जाता। यदि कोई अग्रेज इस प्रकार आकर खड़ा हो जाता तो उसको वहाँ से हटाना भारतीय सिपाहियों के लिए सरल नहीं होता था।

वहाँ पर यह स्थिति देखकर पुलिस ने आगे के भाग पर सतकता बग्तना आरम्भ कर दिया। जहाँ जहाँ और जिस जिस स्टेशन पर गाड़ी रुकने की सम्भावना होनी, वह स्टेशन आने से पूर्व ही सावरकर के डिब्बे की छिड़कियाँ और द्वार अंदर से बंद कर दिए जाने लगे। वहाँ की परिस्थिति को देखकर सावरकर को खदन में अपने बंदी बनाए जाने का स्मरण हो आया। मायी जमठप' ने सावरकर ने लिखा—

“मुझे इंग्लैंड का वह दृश्य स्मरण हो आया, जब मुझे लन्दन में बंदी बनाकर रेल से ले जाया जाने लगा था तो उस समय रेल के डिब्बे की सब छिड़कियाँ खनी थीं। प्लेटफार्म पर खड़े मारे लोग मुझको घूर घूर कर देख रहे थे। यहाँ तक कि कुछ लोग

ने तो अपनी पत्नियाँ को बंधो पर बैठा कर मृते दिखाया था। उनमें से एक ने मुझे खिड़की के पास ही खड़ा रहने को कहा था। उस समय मुझे किसी का यह स्वर सुनाई दिया, "देखो, देखो वह वहाँ पर है। देखो, वह है सावरकर।" हा, उन गोरों को मेरे समीप नहीं आने दिया जाता था। जो चार पाँच लोग मेरे समीप तक पहुँच गए थे, उनका व्यवहार मेरे मुझे शिष्टाचार और जागरूकता ही दिखा दिया था।"

किन्तु भारत में स्थिति भिन्न थी। भीषण गर्मी में भी खिड़कियाँ बन्द कर दी जाती। उधर दूसरी ओर बैठ बन्दी बड़ा ही शोर मचा करत थे। उस समय सावरकर अपने मन को, रूसी तानाशाहों द्वारा साइबेरिया ल जाते हुए बंदियों का स्मरण कर, साबना दत्त कि मैं तो अभी तक वैसा कुछ भी नहीं भोगा हूँ। इस प्रकार एक के बाद एक गान, स्टेशन और नगर पीछे छूट जा रहे थे, गाड़ी आगे बढ़ती जा रही थी। मद्रास आकर उनकी गाड़ी रुक गई।

स्टेशन पर गाड़ी रुकने पर सावरकर को गाड़ी से उतारा गया किन्तु यहाँ पर भी उनको अथवा बंदियों में पथक जार दूर रखा गया। गाड़ी के साथ टांगे से ही एक गौरा पुलिस अधिकारी आया था। वह शायद किसी प्रथम श्रेणी के डिब्बे में आया होगा क्योंकि दो चार स्टेशन के बाद वह सावरकर के डिब्बे में आता, पुलिस अधिकारी से बात करता और फिर चला जाता।

मद्रास स्टेशन पर उतारे जाने पर वह अधिकारी सावरकर के पास गया और बोला, "गुड बाइ फ्रैंड ! ई वर की कृपा बनी रही तो मैं सम्प्रति हूँ कि आगामी दिग्म्वर में राज्यारोहण समारोह के अवसर पर आपको रिहा कर दिया जाएगा।"

सावरकर को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कहते हुए उसका गला भर आया था। उसको शायद वहाँ से वापस जाना था, इसलिए वह सावरकर से बिदा लेने के लिए आया था।

सावरकर ने उसके उत्तर में कहा, "आपकी इस सहानुभूति के लिए मैं आपका आभारी हूँ। किन्तु मैं समझता हूँ कि घाव इतने ताजे और गहरे हैं कि इतनी जल्पावधि में उनका भर जाना सम्भव नहीं दीखता। मैं यदि इस प्रकार की भाँति अपने मन में रखूँगा तो यह मेरी मूर्खता ही होगी।"

न जाने क्यों उस अधिकारी ने और अधिक विश्वास के स्वर में कहा 'मुझ पर विश्वास करिए। आप अवश्य ही मुक्त हो जायेंगे। आपके धर्म तथा व्यवहार से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ।

"अच्छा, अब मैं जाता हूँ।" यह कह, हाथ हिलाता हुआ वह वहाँ से चला गया।

कदाचित्त अंग्रेज अधिकारियों के मन में यह डर बैठ गया होगा कि रेल यात्रा में सावरकर उनको परेशान कर सकत है। भासैलम वाली घटना की पुनरावृत्ति भी हो सकती है। यदि ऐसा कुछ हो जाता तो उन सबकी नीकरी का खतरा हो जाता। किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ था और सावरकर का व्यवहार शिष्ट और शांत रहा था, कदाचित्त

इसीलिए उस अधिकारी ने यह वृत्तज्ञता स्थापित की होगी। अब अधिकारियों ने भी सावरकर को मद्रास पुलिस की सौंपा और अपने सिर के टोप उतार उनकी हिलाकर सावरकर से बिदा हो गए। उन्होंने चैन की सांस ली।

इससे पूर्व सावरकर को पता चल चुका था कि मद्रास के कलक्टर जश का घब किया जा चुका है। डायर जेल में उनसे पूछा भी गया था कि मद्रास में अभिनव भारत के कौन कौन लोग हैं। इस बात का स्मरण कर सावरकर सोचते थे कि मद्रास पहुँचने पर उनको वहाँ रखा जाएगा और वदाचित्त कलक्टर की हत्या की छानबीन के लिए उनसे पूछनाछ होगी। जबकि सावरकर को उस घटना की सूचना मात्र थी और यह भी पता नहीं था कि उनका साथी जय्यर भारत पहुँच चुके हैं और उन्होंने ही किसी प्रकार योजना बनाकर किसी एक शाकन ग्राह्य के हाथों कलक्टर का वध करवा दिया था। कुछ इसी प्रकार हुआ भी।

## पुनः जलपोत पर

मद्रास से जण्डमान जान के लिए समुद्र में 'महाराजा' नामक स्टीमर खड़ा था। कालापानी के लिए दृष्टि सभी बंदी उस स्टीमर में बैठाय गए। किंतु सावरकर को उसमें न बठा कर एक छोटी अग्निबोट में बैठाय गया। उनके साथ मद्रासी अधिकारी बैठ गए। एक बरिष्ठ अधिकारी ने वातावरण निर्माण की दृष्टि से सावरकर से उनका कुशल क्षेम पूछा। फिर वह उनके साथ इधर-उधर की बातें करता हुआ इंग्लैंड में सक्रिय भारतीय नातिकारियों के विषय में पूछने लगा।

सावरकर ने उस उत्तर देते हुए कहा, 'दिये, मैं तो काफी समय से भारत के कारणों में बंद रहा हूँ। वहाँ की ताजा गतिविधियों के विषय में तो आप ही मुझे जानकारी दे सकते हैं। मेरे जसा जेल में रहने वाला व्यक्ति क्या जान सकता है और क्या बता सकता है।'

अधिकारी कहने लगा, "मद्रास में कलक्टर की हत्या का भी भला कोई पड़मंत्र था। उसमें तो चार लोग भी नहीं रहे हागे।"

सावरकर को यह सुन कर हसी आ गई। उन्होंने उसी तरह वह दिया, 'फिर तो आपको चाहिए था कि आप उसमें कुछ और लोगों को सम्मिलित करा दें।'

वह बोला 'यहाँ मद्रास के लोग बड़े ही समझदार और शांत स्वभाव के हैं। तुम्हारे वहाँ के युवकों की भाँति भावावेशी अथवा उच्छल नहीं हैं। यहाँ यदि उत्तेजना फैलाने वाला प्रचारक आया तो उस यहाँ कोई भी अनुयायी नहीं मिलेगा।'

वह अधिकारी शायद सावरकर को उत्तेजित कर उनके मुख से कुछ कहलवाना चाहता होगा। क्योंकि अपनी बात कहते हुए वह सावरकर के मुख पर उभरने वाले भाव का निरीक्षण करता जाता था। जब उसको कुछ पता नहीं चला तो उसने पूछा, 'मद्रास की घटना के बारे में आपकी क्या राय है?'

'मैं तो जेल में बंद रहा हूँ आपको ही यह पता होना चाहिए।'

“मद्राम म तो सबत्र शान्ति है।”

उसके साथ वाला एक अग्र अधिकारी उस ममय कहने लगा, “इह मब कुछ मालूम होगा। केवल आप दोनो एक दूसरे को ‘पम्प’ करने का प्रयत्न कर रहे हैं।”

तब तब वह बोट उस स्टीमर के समीप पहुँच गई थी। उसकी स्टीमर से सटा दिया गया। बड़े पहरे में सावरकर को उस स्टीमर की सीढ़ियों पर चढ़ाया गया। जब सावरकर को स्टीमर पर चढ़ाया जा रहा था तो स्टीमर के सभी यात्री, तमबारी तथा बन्दीजन उनको देखन के लिए खड़े हो गए। बड़ी जिज्ञासा भरी दृष्टि से वे सब उनको देख रहे थे।

२७-६ १९११ को स्टीमर के ऊपर चढ़ जान पर सावरकर ने देखा कि उसने निचले तल पर लोहे की छद्म से बना एक पिंजरा म है। साधारणतया उसमें बीस पचीस बन्दी ही रखे जा सकते थे। किंतु सावरकर ने अनुमान लगाया कि उसमें तो लगभग पचास बन्दी बन्द होग। उसमें वे सब थे जिनका उनके साथ ही ठाणे में लाया गया था। सावरकर के दखते देखते ही स्वयं उनको भी उसमें ही ठूस दिया गया। सावरकर के लिए वहाँ रहना कठिन हो गया। क्योंकि इंग्लैंड में रहते हुए उन्हें श्वास रोग ने पकड़ लिया था। इसलिए घुटन में उनका श्वास फूल जाता था।

कुछ लोग ऐसे हात हैं जो किसी भी परिस्थिति में स्वयं को स्थिर रख लते हैं किंतु जिनको हम महा भयकर अथवा खूबार खूनी कह कर उनसे भय खाते हैं, कभी कभी हम उनका भी अपनी दशा पर रोते देखते हैं। सावरकर के साथ उस स्टीमर में भी इसी प्रकार के अनप लोग भरे पड़े थे। कोई रो रहा था तो दूसरा कोई उसको सात्त्वना दे रहा था। उन सात्त्वना देने वाला में, सावरकर ने देखा कि एक व्यक्ति उनकी ओर इंगित कर रोने वाले बन्दी से कह रहा था ‘देखो, वह उधर कोने में देखो, आलिस्टर साहब बैठे हैं। जर्मन अफसर भी टोप उतार कर उनको सत्ताम करते हैं। उनके दुःख के सामन हमारा दुःख किस पेड़ की पत्ती के समान है?’

इन शब्दों को सुनते ही मब बन्दी एकाएक सावरकर की ओर दखने लगे। उनकी पचास वर्ष की सजा की बात सुनकर पन्द्रह वर्ष के दण्ड वाला का दुःख वास्तव में कुछ हलका हो जाना था।

शाम होत होत गर्मी और बढ़ने लगी। अनेक प्रकार के गन्द लोग, न जान नियमने बब से न नहाया होगा, सब उस पिंजरे में भर पड़े थे। किसी के शरीर में बार्ड रोग तो कोई कैसा गदा। फिर भी माना वे अभ्यस्त हो, इस प्रकार अपने अपने बिस्तरे ढाल कर एक पर एक करके नटने लगे। कुछ तागा के पैर सावरकर के मुख पर तो कुछ लोगों के सिर सावरकर के चरणा में। बही जरा म भी उधर उधर किया कि किसी के मुख में मुख का स्पर्श हा जाता, उससे जो दुःख आती मक कारण सावरकर की तबियत बिगड़ जाती।

लेट लेट ही सावरकर ने दखा कि सामने कुछ ऊपर की ओर एक पीपा सा रखा है। उस ओर वो थोड़ा स्थान रिक्त सा था। बदाचित्त इमीलिए सावरकर को उस



और कुछ खुले में बिस्तर बिछाने का अवसर मिला होगा। सावरकर को कुछ पता नहीं था, किन्तु जब वहाँ लेटते ही थोड़ी दूर में दुग्ध आने लगी तो सावरकर ने अपनी नाक बंद कर ली। पड़ोसी बंदी बोला, 'यह पीपा, हम पचास सोगा के शौच के लिए रखा गया है।' सावरकर के उधर दृष्टि ही पीप पर बठा आदमी सफोच से उठन लगा तो सावरकर ने उसको समझाते हुए कहा, "भाद ! यह तो नित्य काम है, इसमें सफोच किस बात का। थोड़ी दूर बाद मुझे भी वही बठना होगा। नाक तो समझी ही है, हाँ पीपा समीप होने से मुझे कुछ अधिक दुग्ध अनुभव हो रही है।"

तभी एक अन्य बंदी आकर सावरकर से कहन लगा कि वह उसका स्थान पर चल जाय और वह यहाँ पर उनके स्थान पर रह सगा। किन्तु सावरकर ने उसको यह कहकर मना कर दिया कि उनका लिए वह कबो दुग्ध सह और फिर सावरकर का वह स्थान खिड़की समीप होने के कारण डाक्टर के परामर्श पर दिया गया था। जिससे कि उनकी श्वास रुके नहीं।

सावरकर के मन में अनेक प्रकार के विचार उठने लग। वह सोचते कि जिस प्रकार मनुष्य के लिए भोजन नितांत अनिवार्य है उसी प्रकार मनुष्य विसर्जन भी ता उतना ही अनिवार्य होता है। तब फिर कुछ चिन्तियों के लिए जो प्रिय है वही कुछ अन्य चिन्तियों के लिए अप्रिय क्या? और फिर यह क्या है? अन्न पेट में जाने पर बिप्ला में परिणत होता है, बिप्ला बाहर निकल कर खाद बन जाती है और फिर वही खाद अन्न के रूप में परिणत हो जाता है। अन्न अन्न और बिप्ला दोनों भिन्न किस प्रकार हुए?

इही विचारों में खोए के बहुत विसमय से सो पाए थे।

स्टीमर अपनी गति से आगे बढ़ रहा था और सावरकर के पिजरे में भी समय-समय पर तरह-तरह की गतिविधियाँ होती रहती थी। कुछ यात्री तथा कुछ भारतीय अधिकारी सावरकर के प्रति सहानुभूति रखते थे और जितना उनसे सम्भव होता था वे उनकी सहायता भी करने के लिए तत्पर रहते थे। आते जाते वे उनसे एक-दो बात भी कर लेते थे। कुछ योरोपियन सैनिक भी एस थे जो सावरकर के साथ सहानुभूति का व्यवहार करते थे। इस प्रकार कभी-कभी उनकी कोई अंग्रेजी पत्र पत्रिका भी मिल जाया करती थी।

स्टीमर में भोजन के नाम पर चने खाने को दिए जाते थे। दो दिन तक यही नम चलता रहा। दो दिन बाद कुछ अधिकारियों ने सावरकर को खाना खाने के लिए कहा तो उन्होंने कह दिया कि अबसे उनके खाने का प्रश्न नहीं है, उनके साथी नहीं खाएंगे तो वे भी नहीं खाएंगे। अधिकारियों ने स्टीमर के कप्तान से परामर्श किया और फिर उन सभी वरिष्ठों के लिए भात, मछली तथा अचार की व्यवस्था कर दी। सावरकर के कारण दो दिन बाद बर्दिया का भी जब भोजन मिला तो इस दुर्लभ भोजन को पाकर वे सब आनंदित होने के साथ-साथ सावरकर के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने लगे।

इसी प्रकार सावरकर के साथ उन लोगों का भी घंटे-आधे घंटे के लिए ऊपर खुली हवा में ले जाया जाता तो वे प्रसन्नता से नाच उठते थे। वे कृतज्ञता व्यक्त

करते हुए कहते कि उनका उनके साथ आना कितना सौभाग्यकारक बना है। सावरकर क्या कहते। कभी-कभी कह देते, "इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि मूझे सजा होना आप लोगों के लिए अच्छा ही हुआ।" यह सुनकर बेचार शैंप जाते। सावरकर उन्हें सान्त्वना देते।

सावरकर के कारण उस स्टीमर में अधिकारियों से लेकर सिपाहियों तक में और बढ़िया से लेकर यात्रियों तक में राजनीति पर तथा भारत की स्वतंत्रता के लिए चर्चा होती थी। जिस किसी ने कभी इस प्रकार की बातें सुनी नहीं होगी अब उसको सुनने के लिए मिलने लगी। जिन्होंने कभी भारत की स्वतंत्रता का विरोध किया होगा आज वे सावरकर के तक सुनकर उसे आवश्यक मानने के लिए विवश हो जाते थे।



## अण्डमान की यातनाएँ

### अण्डमान में

स्टीमर की यात्रा पूर्ण हुई। ४ जुलाई, १९११ का प्रातःकाल। प्रभात के सूर्य की स्वर्णिम किरण उस भारतीय किनारपी बंदीगृह, अण्डमान का, सुरम्य बना रही थी। अण्डमान की राजधानी पोर्ट ब्लेयर में स्टीमर ने सगर डाल लिया था। वह स्टीमर इन बंदियों के मृत्यु और जीवन की दहली थी। सावरकर का चिंतन मन न जान क्या क्या तो सोचता रहा था। अण्डमान का देखकर सावरकर के मन में विचार उठ रहा था कि ये छोटे छोटे द्वीप हमारे स्वतंत्र भारत की बाहरी चौकियाँ का काम कर सकते हैं। इसके लिए जो स्थान आज घटनावश सिंगापुर का प्राप्त है वह स्थान ये द्वीप ग्रहण कर सकते हैं। ये भारत के पूरव द्वार बन सकते हैं। वे सोचते कि यदि यहाँ पर सुदृढ़ जन मेना का गठन कर लिया जाए तो जल मार्ग से भारत पर आक्रमण करने का फिर किसी को साहस तो क्या विचार भी नहीं आ सकता।

सावरकर का वह विचार कितना दूरगामी था। उनकी भविष्य दृष्टि सत्य सिद्ध होने पर आज उसका अनुमान लगाया जा सकता है। अण्डमान द्वीप समूह आज भारत का जन मेना का आधार बनकर पूरव दिशा की ओर से भारत की सुरक्षा के लिए सज्ज है।

स्टीमर रुकने पर सावरकर ने समीपस्थ भू भाग पर नज़रपात किया। दूर उन्हें वह रास द्वीप दिखाई दिया जहाँ अण्डमान का आयुक्त रहता था। वह टापू बड़ा ही सुन्दर दिखाई दे रहा था। अण्डमान के समुद्र तट पर दूर दूर तक नारियल के वृक्षा की वनारें लहरी रही थी। आम सुपारी तथा पीपल के वृक्ष भी वहाँ पर्याप्त संख्या में दिखाई दे रहे थे।

स्टीमर के रुकने के कुछ ही क्षणों में समीप के समुद्र तट बड़ी सख्या में लोग एकत्रित दिखाई देने लगे। न जान वे क्या क्या कानाफूसी कर रहे होंगे। सामने एक बहुत बड़ा सा भवन दिखाई दिया तो सावरकर ने सिपाही से उसके विषय में पूछा।

उसने बताया, यही तो वह कारागार है जहाँ उनको ले जाया जा रहा है।

तभी आदेश हुआ कि सब बंदी अपने विस्तर सिर पर रखें, बतना को हाथ में लें। मक्को पक्तिप्रद खड़ा किया गया और फिर धीरे धीरे स्टीमर से नीचे उतारा। अब सब बंदियों को अंग्रेज अधिकारियों की देख रेख में वहाँ से ले जाया गया किंतु सावरकर को एक जोर को बैठ दिया गया। सावरकर वहाँ पर बैठे-बैठे फिर विचारों में खो गये। तभी कुछ देर बाद सहसा उनके कानों में आवाज आयी, 'चलो, उठाओ अपना बिछौना।'।

सावरकर ने देखा समीप ही कोई गोरा अधिकारी खड़ा था। कदाचित् उसका प्रसन करने के लिए ही सिपाही ने कड़क आवाज में सावरकर का आदेश दिया था।

मिर पर बिछौना, हाथ में बतन और पाँव तथा कमर में बेडिया का बाण डालते हुए सावरकर को समुद्रघाट से ऊपर की ओर ले जाया जाने लगा ता नगे पैर चलने में उनको कष्ट होना लगा। सिपाही बार बार जल्दी चला कहने लगा ता साथ चल रहे गारे अधिकारी ने उससे कहा "आराम से चलने दो।

खड़ाव समाप्त होते ही सेलुलर कारागार का द्वार सामने आ गया। लोह के विशाल द्वारों के बड़े किसी हिंसक प्राणी के तीव्र दाढ़ों की भाँति चरमराने लग और फिर कुछ क्षणों में कंकण ध्वनि के साथ कारागार का द्वार इस प्रकार खुल गया मानो हिंसक जंतु ने अपने जबड़े खोल दिए हों।

ज्योंही सावरकर उस जबड़े नुमा द्वार के भीतर प्रविष्ट हुए और उनके साथी भी भीतर हो गए कि सहसा वह जबड़ा बंद हो गया। उसके बाद वह ग्यारह बय बाद ही खुला था, तब तक या ही उद पड़ा रहा।

### अण्डमान का बारी साहब

द्वार के भीतर पग धरते ही दाबड़े बड़े सार्जेंट ने सावरकर के हाथ पकड़ लिए और उनका वहाँ पर खड़ा कर दिया गया। तब परस्पर कानाफूसी करने लग, 'बारी साहब आ रहा है। किंतु सावरकर उस ओर ध्यान न देकर जेल के भीतरी दृश्य देखने में तन्मय थे। वे अपने विचारों में खोए हुए थे कि तभी सामने एक स्थूल-काय गारा अधिकारी बड़ा सा लट्ठ लिए उनका सामने आकर खड़ा हो गया।

वह बड़ी-बड़ी आँखों से सावरकर का ही ताक रहा था। उसने सप्रयाजन पहल ही सावरकर को यह सूचना भिजवा दी थी, कि वह आ रहा है। सम्भवतया बारी को यह श्रेष्ठा रही होगी कि उनको देखते ही बंदी भय से कांपने लगें। किंतु इधर सावरकर थे कि उनको उसका आन तक का पता नहीं चला था, बस ता भीतरी छटा निहारने में मग्न थे।

सावरकर की ओर से किसी प्रकार की विपरीत प्रतिक्रिया अपवाद जाए कि उसके मन के अनुकूल प्रतिक्रिया जब उसने नहीं पाई तो उसने गुर्ग

“उसको छोड़ दा, यह कोई छुआर जेग रही है।” यह बात उसन अंग्रेजी म कही थी।

सावरकर को उन दो मारजोटा न ता छोड़ दिया कि तु बारी की ओर उठे पकड़े जकड़े रखने का यत्न करने लगी। उसन अंग्रेजी म ही उनस पूछा, “क्या तुम ही वह व्यक्ति हो जिसने मासेल्स मे भाग निकलने का यत्न किया था ?”

‘जी हाँ। क्यों ?’

सावरकर की दृढ़ता देखकर बारी ना स्वर कुछ ढीला सा पड़ गया। उसन फिर पूछा, ‘तुमने ऐसा क्या किया ?’

“कुछ कारणा से, जिनम एक कारण था स्वय को इन चपटा स मुक्त करना।

“पर तु उन झगड़ो म तो तुम स्वय ही फँस थे, क्यों यह ठीक नहीं है ?”

“जी हा। मैंने स्वय को उन चपटा म डाला था। क्योंकि मैंने अपनी मात भूमि की स्वाधीनता के लिए उन झगड़ा म फँसना अपना कर्तव्य समझा था और फिर उन झगड़ो स मुक्त होना भी मैंने अपना कर्तव्य समझा था।”

सहसा बारी के मुख से निकल गया, ‘मैं सत्य बात बताऊँ कि मैं अंग्रेज नहीं हूँ। मैं आयरिश हूँ।’

“हो सकता है। यदि आप अंग्रेज भी होते ता भी आपका अंग्रेज होना मात्र स मेरे मन म आपके प्रति तिरस्कार की भावना नहीं उमड़ती। मैंने अपनी तरुणाई का बहुत बढ़िया भाग इंग्लड मे बिताया है और मैं अंग्रेजा क अनक गुणो का प्रशंसक हूँ।’

“मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि मैं आयरिश जातिकारी था और अपनी मातभूमि को अंग्रेजा स मुक्त करने के लिए मैंने भी सघष किया था। अब मुझे उसकी निरर्थकता का आभास हा गया है। इसलिए एक मित्र के नाते मैं तुम्ह बता रहा हूँ कि तुम अभी युवक हो और मैं अब बूढ़ हा चला हूँ

सावरकर ने उसका बीच मे ही रोकते हुए कहा, क्या आप यह नहीं समझते कि कदाचित आपकी यह बूढ़ती आयु ही आपके विचारो मे परिवर्तन का कारण बनी हा ? आयु बढने के साथ आपकी बुद्धि का ता विकास हुआ नहीं, हा शक्ति अवश्य क्षीण हुई है।’

बारी सरपकाया और बोला ‘देखो, तुम तो बरिस्टर हा और मैं हूँ साधारण जेलर। मेरे परामश को मत ठुकराओ। हत्या ता हत्या है। हत्याएँ स्वाधीनता नहीं ला सकती।

‘यह तो ठीक है, कि तु आपने यह बात अपन आयरलैंड के सिन फिनस को क्यों नहीं कही। और फिर आपको यह किसने बताया कि मैंने कभी हिंसा मे भी भाग लिया था ?

बारी सहसा अपने आधिकारिक स्वर मे बोला, ‘जो कुछ मन कहा है वही म

विरुद्ध था। आप जैसे पढ़ लिखे विद्वान एवं विख्यात तरुण व्यक्ति को इन अपराधियों के बीच में पाकर मुझे दुःख हुआ था। आपसे अतीत से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। देखो, ध्यान रखना, आपको यहाँ के नियमों का पालन करना होगा। उनका भंग करना दण्डनीय हो जाएगा। एक बात और। मैं आपको यह बता देना चाहता हूँ कि यहाँ से भागने के लिए किया गया कोई भी प्रयत्न आपको जंगली हिंसक जंतुओं के मुख में डाल देगा।

“इतना ही नहीं यहाँ जो इन जंगलों में वन मानुष रहते हैं वे भी तुमको गाजर-मूली की भाँति बच्चा ही चबा जाएँगे।

“अरे तुम हँस रहे हो? क्यों जमादार। मैं कुछ गलत तो नहीं कहा न?”

वारी ने जमादार की ओर मुख करके उससे पूछा तो उसने भी वारी की हाँ में हाँ मिलाते हुए कह दिया, “हाँ साहब। आप क्यों गलत कहेंगे।

साबरकर ने कहा, “जी हाँ, मैं जानता हूँ कि पोट ब्लेयर मार्सेल्स नहीं है। क्योंकि जब मुझे आजम कारावास का दण्ड दिया गया तो मैं समझ गया था कि अब अण्डमान जाना होगा। तब मैंने अण्डमान सम्बन्धी सरकारी सूचना पुस्तक मँगाकर पढ़ी थी। मैं यहाँ के विषय में काफी कुछ जान गया था।”

“तब तो ठीक है। आप मेरे बताये माग पर चलिए। इससे आपको लाभ होगा।”

वारी ने जमादार से कहा, “जमादार। इनको अन्दर ले जाकर सात नम्बर की बरेक की ऊपरी कोठरी में ले जाकर बंद कर दो।”

### जेल में पहले दो दिन

सात नम्बर का याड जेल भवन की तीसरी मंजिल पर था। साबरकर के कारण सात नम्बर याड खाली करा दिया गया था और कारागार के खूबार पुराने पठान बंदिमों को पहरेदार के रूप में नियुक्त किया गया था। जमादार साबरकर को लेकर उस याड में गया।

ये बंटी जब से मद्रास सचले थे तब से उन्हें स्नान का अवसर मिला ही नहीं था। समुद्र यात्रा से सारा शरीर मलिन और पसीने से दुग धुक्का हो गया था। स्नान करना आवश्यक था। जब जमादार से स्नान के लिए कहा गया तो वह साबरकर को लेकर एक हाँव के समीप पहुँचा। वह साथ में एक लगाट भी ले आया था। उसने वह लगेट साबरकर को देते हुए कहा, “इसे पहन लो। अब स्नान और काम करते समय इसको ही पहनना होगा, नेकर नहीं।”

यह सब देख सुनकर साबरकर की जो अवस्था हुई वह उन्होंने अपनी पुस्तक ‘माथी जम ठेय’ में इस प्रकार वर्णन की है—

“पहले तो लगेटी पहनते हुए मैं हिचकिचाया किन्तु तुरन्त ही ९

और कहा अरे पगले ! समय स्वामी रामदास भी तो लंगोटी ही धारण करत थे। सब जानत है कि इस कपड़े के भीतर क्या है, फिर किससे क्या छिपाना ? यारोप में एक पथ ऐसा भी था जो बस्त्र धारण करना पाप समझता था। उसकी भावना थी कि आदम और हीवा दाना प्रारम्भिक अवस्था में निवस्त्र और निष्पाप थे। उनके अनुयायी आज भी निवस्त्र ही रहते हैं उन्हें 'अडमाइट' कहते हैं। आज भी योरोप में कई स्थायी पर स्त्री पुरुष निवस्त्र रह कर सूर्य स्नान किया करत हैं। वस्त्रों का माह तो शरीर के कई अंगों को सूर्य की किरणों में बर्चित रखता है। आरोग्य की दृष्टि से वहाँ के डाक्टरों ने लोगों को निवस्त्र रहना लाभकर बताया है।

"मैंने बिना किसी शिक्षक के लंगोटी धारण कर ली। ज्यों ही कटोरी नुमा पाली में होना में पानी निकालकर शरीर पर डालने लगा कि जमादार ने टोक दिया। बोला 'ठहरो यह कालापानी है। पहले खड़े रहना, फिर मैं पानी लेने की आज्ञा दूंगा तो फिर झुक कर एक बटारा पानी भरना और शरीर पर डालना। फिर मैं कहूँगा अंग मला आप अंग मलेंगे। फिर मैं कहूँगा पानी लो, तो आप वा कटोरा पानी लेकर अपने शरीर पर डालेंगे। केवल तीन कटोरे पानी में स्नान करना होगा। समझे।'

"खैर या ही सही। मैंने पानी लिया और ज्यों ही मुख और आँखों में पानी का छपका दिया तो भरी नज़र ज्योति बँध हा गई और आँखों से आग सी निकलने लगी। जाखिर हुआ क्या ? तभी कुछ पानी मुख में गया तो लगा कि पानी तो बहुत कठोर है। मैंने पानी छूक लिया। साहस करके जमादार से पूछा, यह पानी नमकीन क्या है ? तब जमादार ने बताया कि यह समुद्र का पानी है। मीठे पानी की कमी होने के कारण स्नान जादि के लिए समुद्र का पानी नल से लाकर हौद में संचित किया जाता है।

'मैं समझ गया कि जब इसी के साथ रहना होगा। स्नान किया। शरीर पश्मना गया बाल मारे खड़े हो गए थे।

हम ऊपर जाता आए हैं कि सावरकर की निगरानी पर क्रूर पठानों का नियुक्त किया गया था। उनमें से जो सबसे अधिक क्रूर था उसका 'बाडर' यथा 'पेटी अफसर' के रूप में नियुक्त किया गया था। वह अपनी क्रूरता, चुगली तथा हिंदू द्वेष आदि 'गुणों' के कारण जाग बठना हुआ 'पेटी अफसर' तक की पदवी पर पहुँच गया था। इन प्रकार के तीन बाडरों के उत्तरदायित्व में सावरकर का सोपा गया था।

किसी प्रकार एक दिन बीत गया। दूसरा दिन आया। उस दिन प्रातः काल लगभग आठ बजे तीनों पठान बाडर दोड़ें-दोड़ें सावरकर के पास गए और कहने लगे, 'गाह्व जाता है। खड़े रहो।

सावरकर बाठरी के बंद सलाका के पास जा गए। देखा दूर से बारा आ रहा है। उगम साथ कुछ अथ अग्रज अधिकारी भी दिखाने दत्त थे। सावरकर के उस बारागार में आने से बारी को कुछ अधिक ही महत्व मिलने लगा था। क्योंकि अण्डमान में रहने वाले अग्रज अफसर सावरकर के बारा में बहुत कुछ सुन अथवा पढ़

चुके थे। वं सभी स्त्री-पुरुष सावरकर से मिलने अथवा बातें करने के लिए लालायित रहन लगे थे।

वे लोग बारी से खुशामद करते कि किसी प्रकार उन्हें सावरकर से मिला दिया जाए। किंतु बारी सहज पसीजन वाला प्राणी नहीं था। बहुत मिनत खुशामद से वह उनकी बात मानता था। उनमें से कुछ को तो वह उनसे मिलता था किंतु अधिकांश को दूर से ही दिखा देता था। इन पर भी वह उन पर अहसान जताता और कहता कि उन लोगों को सावरकर तक सान के कारण उस पर कोई विपत्ति आ गई तो उसको कौन भुगतेंगा ?

उस दिन बारी का दल जब निकट आ गया तो बाडर के मुख से निकला, 'सरकार' तो सावरकर समय गए कि बारी आ पहुँचा है। काठरी क मीकचो से उन लोगों के अग्रे निकल हुए पेट ही पहले दिखाई दिए। समीप आकर बारी ने सावरकर से कहा, "लाग आपसे बहुत होग कि मैं जेलर हूँ, नया है न ? किंतु मैं तो कहता हूँ कि मैं आपका मित्र हूँ।"

बारी के साथ आए अन्य लोग कुछ बाल नहीं सकते थे। क्याकि बालने की आना उसको ही मिल सकती थी जा बारी का विशिष्ट व्यक्ति हागा।

बारी न फिर कहा, "मैं आप जसे सुशिक्षिता से बात करना पसंद करता हूँ, इसीलिए मैं आपस मिलन के लिए आया करता हूँ।

सावरकर उसकी ओर देखते रह। बागी न सन १८५७ की बात तो आरम्भ की किंतु वह कुछ जानता होना तो उस पर बात करता। साथ म आए अग्रेजा का उद्देश्य कदाचित्त सावरकर स कुछ उगलवाना रहा हो। अतः उनम स एक कहन लगा, "आपने सन १८५७ के उस निकुष्ट वष का इतिहास लिखा है।"

उसके मुख से 'निकुष्ट' शब्द सुन कर सावरकर मन ही मन हैम दिए। व भी समय गए थे कि कुछ टटोलने के लिए ही ये लोग यहा आए हैं। किंतु एकांत काठरी में रहत रहते सावरकर ऊब गए थे जब कुछ तो बात करन के लिए उन्होंने कहा "मैंने सन १८५७ के विषय म पर्याप्त अध्ययन किया है। इस विषय म मैंने जनक ग्रथा को पढा ह।'

"तो फिर बलवा करन वाल ऐसे 'दुष्ट' लोगो के प्रति आपके मन मे घणा क्या नहीं उत्पन्न हुई ? कितना पैशाचिक कृत्य था वह ? भर पिता उस बलवे मे थे। व बताया करते थे कि उस 'अधम' नाना साहब ने तो बानपुर म स्वयं अग्रेज महिला-जा की दुर्गति की थी। उसन स्त्रिया के मुख मे ऐसे थे वे नर राक्षस।' यह सब बारी ने कहा था।

"क्या आपके पिताजी न अपनी जाखा से यह सब देखा था ?"

"नहीं, लखनऊ मे जिस कनस न यह सब देखा था उसा मेरे पिता जी का यह बताया था।'

"तब तो यह सरासर झूठ है। क्याकि नाना साहब तो कभी लखनऊ थे ही



नहीं। जब अंग्रेज स्त्री पुरुषों की बन्दी बना कर बारागार में डाला गया था तब नाना साहब कानपुर में थे।”

किंतु बारी कम मानने वाला था। उसने एक प्रकार से इसे अनसुना कर दिया। फिर कहन लगा, “ऐसे सँकड़ो उदाहरण हैं।”

“जैसे ये कहीं सुनी बातें झूठी हैं वैसे ही वे सँकड़ो उदाहरण भी होंगे।”

तब उसके साथ आये एक अंग्रेज ने कहा, “किंतु आप नाना साहब और तात्या टोपे आदि की उस स्वार्थी नीति से घणा नहीं करते? उसकी भत्सना नहीं करते?”

‘भत्सना? देखिए मैं तो यहाँ बन्दी हूँ। मैं इस विषय पर यहाँ स्वतंत्रता से विचार विनिमय नहीं कर सकता। यदि मैं कोई बात कहूँ और आप उसे बीच में ही रोक दें तथा मेरे देश का अपमान करें तो यह आप लोगों की कायरता बहलाएगी, धीरता नहीं।”

अंग्रेजों ने बारी की ओर देखा तो उसने बाद विवाद करने की अनुमति दे दी।

सावरकर ने कहा “अपने देश के सम्मान को आघात पहुँचाना कोई भी देश-भक्त महन नहीं कर सकता। अंग्रेज सरकार ने इस प्रकार के अत्याचारों जिनका आपने अभी उल्लेख किया है के लिए जांच समिति गठित की थी उसने अपना निष्पत्ति सुनाते हुए कहा था कि ये आरोप सब ‘निराधार हैं। ये सब ब्रिटिश सिपाहियों के क्रुस्तिन मरिचक की उपज हैं।”

सावरकर का स्वाभिमान जाग उठा था। उन्होंने आगे कहा, “आप नाना साहब और तात्या टोपे को स्वार्थी कहते हैं? आप कहते हैं कि नाना राजा बनना चाहते थे और तात्या ग्याति अर्जित करना चाहते थे? तो क्या यह सत्य नहीं है कि विकटर एमनुअल राजा बनना नहीं चाहता था? क्या बार्सिलोन की दृष्टि राष्ट्रपति पद पर थी? गरीबाल्डी क्या ग्याति के लिए मर रहा था? किंतु तथ्य यही है कि वे सब अपने देश की स्वतंत्रता के लिए सघप कर रहे थे। इस तथ्य को कोई नहीं झुठला सकता।

जहाँ तक कानपुर में हुए अत्याचारों की बात है वह सब अंग्रेजों व उन अत्याचारों की प्रतिक्रिया स्वरूप था जो उन्होंने कानपुर पहुँचने से पूर्व माग के गाँवों और नगरों में किए थे।”

बारी के अतिथि अपना सा मुख लेकर रह गए। यह वार्तालाप यही समाप्त हो गया।

बारी ने चलते चलते सावरकर के स्वास्थ्य के विषय में पूछा और फिर कहा, ठीक है, इस विषय पर फिर कभी चर्चा करेंगे।” अपने साथियों को लेकर वह चला गया।

**काव्य रचना प्रारम्भ**

दो दिन तक तो सावरकर को वहाँ जेल में कोई काम करने के लिए दिया नहीं गया था।

सावरकर ने पढ़ने के लिए पुस्तकों की मांग की तो उनको कहा गया कि एक दो मास तक उनका व्यवहार देखकर तब पुस्तकें देने न देने के विषय में निणय किया जाएगा ।

ऐसे एकांत में कागज मिलना दुर्लभ था । बोलने के लिए प्राणी की ध्वनि के नाम पर केवल मच्छरों की ही भिनभिनाहट वहा सुनने को मिलती थी । ऐसे में अब दिन बिताने के लिए सावरकर ने डोगरे, भायखला और ठाणे कारागार में जधूरी रही कविताओं को पूण करने का विचार किया ।

सावरकर मोचत रहे । समुद्र प्रवास के कारण रचना प्रक्रिया लगभग समाप्त सी हो गई थी । सावरकर को महसा विचार आया कि कविता के लिए क्या न अनुष्टुप छंद का प्रयाग किया जाए । रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथा की रचना इसी छंद में की गई है ।

पहले तो सावरकर यह निश्चय नहीं कर पाए कि किस प्रकार को पद्य रचना की जाए । अनेक दिनों तक वे इसी ऊहा पोह में रहें । भाति भाति के छंद उनके मस्तिष्क में बौधने लगे, किंतु अंत में जा कर 'अनुष्टुप' छंद पर ही उनकी मति स्थिर हुई । उनका था कि उस कालावधि में अनेक सुंदर सुंदर कल्पनाएँ उनके मन में उदभूत हुई थी किंतु मन की अस्थिरता के कारण वे उस कल्पना को अक्षर एवं चरणबद्ध करने में असमर्थ रह गये । और जब उन्होंने निश्चय कर लिया तो फिर सब प्रथम उन्होंने 'कमला' की रचना आरम्भ की ।

## गुप्त पत्र

सावरकर को सेलुलर कारागार में आए पाँच दिन हो गए थे । इस अवधि में बारी अथवा उसके अतिथिया के अतिरिक्त अब किसी बाहरी व्यक्ति से उनका सम्पर्क नहीं हो पाया था । तब सहसा पाचवें दिन जब सावरकर भोजन कर के एक प्रकार से विश्राम सा कर रहे थे, मध्याह्न का समय था, तभी नीचे से एक पत्थर का टुकड़ा उनके शरोखे की मलाय से टकराया । किन्तु ऊपर गिरने की अपेक्षा वह सीधे नीचे ही जा कर गिर गया । किसी ने उसको उठाया और फिर स ऊपर फेंका ।

दूसरे दिन वह मलाय से टकरा कर सावरकर की बोठरी के भीतर आ गया । सावरकर कुछ क्षण उसको देखते रहें और फिर छिड़की में नीचे झाँका तो वहाँ एक यादर खड़ा था । उसने सकेत से सावरकर को कहा कि वे उसे उठा लें ।

सावरकर ने उसे उठाया ता देखा कि उसके साथ कागज का एक टुकड़ा बँधा है । सावरकर ने उसे खोल कर पढ़ना चाहा था कि तभी उनको नीचे बड़ा कालाहल मा सुनाई दिया । सावरकर न नीचे दखा तो पाया कि उनका अपना पहरेदार किसी अधिकारी को जोर जोर से पुकार रहा था । सावरकर ने अनुमान लगाया कि पत्थर फेंकते समय पहरेदार न बादर का देख लिया होगा । सावरकर सांच ही रहे थे कि तभी वह पहरेदार उनकी बोठरी के बाहर आ कर खड़ा हो गया ।

सावरकर द्विविधा में पड़ गए। वे उस पत्र को फाड़ना भी नहीं चाहते थे क्योंकि वे समझते थे कि जिस किसी ने भी इतना साहस कर के यह पत्र भेजा है अवश्य ही उसमें कुछ महत्व की बात होगी। उसे छिपाना अत्यंत आवश्यक था और उनका डर लग रहा था कि किसी भी क्षण उनकी कोठरी का द्वार खोल कर उसकी तलाशी ली जा सकती है। सावरकर यह भी सोचते थे कि यदि तलाशी में वह पत्र मिल गया तो स्वयं उनको, उस व्यक्ति को जिसने वह पत्र भेजा था और उस वाडर को जिसने उसको ऊपर फेंका था, भीषण सबोट का सामना करना पड़ सकता है।

सावरकर की बुद्धि ने काम किया। वे कोठरी के एक कोने में पहरेदार का जाँचा से ओझल हो गए और उस कागज के टुकड़े का अपने शरीर के गुप्त भाग में ठूस लिया। तभी 'पटी अफसर' वहाँ आ गया। उसने चिल्ला कर कहा, 'पत्र कहाँ है? पत्थर का टुकड़ा किसने उठाया?'

सावरकर अनजान से बल बोले, 'कमी चिट्ठी? कैसा पत्थर? मुझे तो कुछ मालूम नहीं है।'

उसी समय एक अचकचकान की आवाज आई। वाडर ने उचक कर देखा तो पाया कि नीचे का वाडर सावरकर की ओर कुछ सकत कर रहा था। नीचे का वाडर हिंदू था, यदि वह पकड़ा जाता तो उसके स्थान पर भी कोई पठान नियुक्त कर दिया जाता। खैर, पठान ने कोठरी खोली और सावरकर के वस्त्र और समस्त शरीर को छान दिया किंतु कहीं कुछ मिला नहीं। उसके बाद नीचे वाले वाडर की भी तलाशी ली गई, उसके पास भी कुछ नहीं मिला। इस प्रकार यह मामला ठंडा हो गया।

जब सब कुछ शांत हो गया और सदह के लिए कोई स्थान नहीं रहा तो सावरकर ने अक्सर पाकर उस पत्र को पढ़ा। वह पत्र उनके बगल में किसी पुराने मित्र ने लिखा था। उस समय वहाँ सेलुलर जेल में गजबनतिक बंदियों में मानिकदाला बस काण्ड के अभियुक्त, इलाहाबाद के 'स्वराज्य' पत्र के सम्पादक, बाबाराव सावरकर, बामनराव जोशी ये लोग भी कारावास भुगत रहे थे। उनमें से किसी ने पत्र भेजा था और उसमें जेल के वातावरण का विवरण देने के साथ-साथ सावरकर का सावधान रहने तथा किस के साथ किस प्रकार का व्यवहार करने के विषय में लिखा था। विशेषतया यह लिखा था कि यदि कोई बंदी भी है तो उस पर विश्वास करना भय से खाली नहीं होगा, क्योंकि कि बंगालिया की बेतहाशा धर पकड़ से कुछ लोग धवरा कर सरकार के मुखविर बनने लगे हैं। कुछ इस प्रकार की बातें करके जीवन की कठिनाई में मुक्ति पाने में लगे हैं। वे लोग, जो आतिशारी पकड़े नहीं गए हैं, उनके विषय में वचन में नहीं हिचक रहे हैं।

सावरकर ने पत्र पढ़ा और स्थिति को समझा। बगल के गुप्त संगठन के सन्ध्या में पड़ी उस फूट पर उन्हें किसी प्रकार का आश्चर्य भी नहीं हुआ। क्योंकि उनको पता था कि कुछ प्रमुख आतिशारीयों के पकड़े जाने पर अन्य लोग धैर्य और

माहस छो चुके थे। इस पर भी सभी विश्वासघाती नहीं बने थे, यही क्या बम था।

एक विशेष बात यह भी थी कि जिन्होंने मकटा से घबराकर इस प्रकार का विश्वासघात किया था, क्या उनको मुक्ति मिल गयी? नहीं। हाँ, उनका कष्ट कर नामो से अवश्य छुटकारा मिल गया था। इस प्रकार जो बन्दी अधिकारियों के सम्मुख किसी अयब-बंदी की चुगली करता था उसको उसका प्रतिफल अवश्य मिलता था। वह व्यक्ति अधिकारी की दृष्टि में चढ़ जाता था और उससे हलका काम लिया जान लगता था।

सावरकर का अण्डमान में आना ही हलचल भरा समाचार था। यह हम बता ही चुके हैं कि उनकी निगरानी के लिए फूर हृदय पठान बंदिदियों को नियुक्त किया गया था। जब जेल में बंदिदियों को पता चला कि किसी भी व्यक्ति की चुगली करके सुविधा प्राप्त की जा सकती है और भ्रान्तिकारी भी जब इसका साध उठा रहें थे तो फिर सामान्य निम्नस्तर का अपराधी क्या न उठाए। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ बंदि सावरकर की भी उलटी सीधी बातें बताने लग। उसके फल स्वरूप उनकी स्वयं की तो एक-एक कठिनाई कम होती गई और उसके साथ-साथ सावरकर की एक-एक कठिनाई बढ़ती गई।

सावरकर के अण्डमान पहुंचने से पूर्व जो राजबंदी वहां लाए गए थे सबको एक ही बैरक में रखा गया था। उनकी देख रेख के लिए एक पठान बंदि का अधिकारी बनाकर तैनात कर दिया गया था। बंदिदियों का काम था नारियल के छिलके निकाल कर उनके रेशे अलग अलग करना। तेल के कोल्हू में पिलन की अपेक्षा यह हलका काम था। पड़े लिखे होने पर भी उनको कार्यालय के काम में नियुक्त नहीं किया गया था। विपरीत इसके जिन लोगों को अंग्रेजी का सामान्य शब्द ज्ञान भी नहीं था उनको लेखन का काम दे दिया गया था। राजनीतिक बंदि होने के कारण ही उनको लेखन अथवा कार्यालय के काम के लिए अपात्र मान लिया गया था।

यद्यपि उन राजनीतिक बंदिदियों को इस प्रकार के निम्नस्तर का काम दिए गए थे किंतु फिर भी उनको एक साथ रहने की सुविधा थी, यह उनके लिए बड़े लाभ की बात भी थी। वे परस्पर बैठकर बातलाप तो कर सकते थे। उनमें से एक दो लोग कभी कभी रग्ग भी होते रहते थे और डाक्टरी आदेश के आधार पर उनका जो दूध मिलता था उसको वे पठान अधिकारी गटक जाया करते थे बंदिदियों का नहीं देते थे। किंतु उन बंदिदियों के कारण ही उनको दूध मिलता था, इस कारण वे उनके प्रति कुछ कुछ उदारता का व्यवहार करने लगते थे। सावरकर के बड़े भाई बाबाराव सावरकर भी उसी बैरक में उनके साथ ही रह रहे थे, यह सूचना भी सावरकर को मिलनी रहती थी।

सावरकर आदि की यह स्थिति भी स्थायी नहीं रह पाई। कुछ मास के उपरांत कलकत्ता से एक उच्च पुलिस अधिकारी कारागार का निरीक्षण करने के लिए

आया और जब उमन देखा कि राजनीति बंदी सत्र एक साथ बट्खर छिलका कूटन का काम कर रहे हैं, तो उमन को राजनीति बंदी देखा की यह सुविधा सहन नहीं हुई। उसने अधिकारियों का समझाया कि ये राजनीति बंदी, हत्यार उद्दण्ड, छूनी, दातुआ की अपेक्षा अधिक भयंकर हैं, इनका प्रति उदारता की नीति अच्छी नहीं। इनके साथ तो इस प्रकार का बठार व्यवहार करना चाहिए जिसमें कि ये कराह उठें।

## यातनाओं का प्रारम्भ

कलकत्ता के उम पुलिम अधिकारी के निरीक्षण के उपरान्त और उमन यह निर्देश देन पर कि इन प्रातिवारियों के साथ ऐसा व्यवहार किया जाए कि जिससे इनको नानी याद आने लग, जेल बाड़री का व्यवहार भी बड़ा होन लगा। वारी तो अपनी दूरता के लिए कुन्यात था ही। उसी दिन से राजनीति बंदी को अलग अलग फोडगिया में बंद किया जान लगा। वे परस्पर बात भी नहीं कर सकते थे। यहाँ तक कि स्नान के हौद पर अथवा भाजन के समय सवेत में भी कोई बात करता तो उसका सात सात दिन तक बेड़ी पहन कर रखे रहन का दण्ड भुगतना पड़ता।

इसके साथ ही आरम्भ हुआ तेल की घानी में कोल्हू के बल की भाँति पिलन का काय। जब छिलका कूटना अथवा छाँटना उनके साथ पक्षपात अथवा नरमी का व्यवहार माना जाने लगा। सक्के उठत ही लगेटी पहन कर अपन ही कमरे में कोल्हू पर बेल के स्थान पर लग जाना और डण्डा घुमाते रहना। कोल्हू में नारियल की गरी पड़ते ही वह इतना भारी चलने लगता कि सुगठित शरीर वाले शक्तिशाली बंदी भी उसकी बीस फेरिया करते करते राने लग जाते थे।

वहाँ अनेक नवयुवक जा बीस बीस वर्ष तक की आयु के होंगे, जा चारी, डकनी तथा हत्या जैसे जघन्य अपराधों में दण्ड भुगत रहे होंगे, उन तक से कोल्हू का काम नहीं लिया जाता था और राजनीति बंदी, चाहे वह किसी भी आयु वर्ग का क्यों न हो तथा उसका शरीर कसा भी रुग्ण क्या न हो उसके लिए कोल्हू का दण्ड भुगतना अनिवार्य कर दिया गया। इस प्रकार उह प्रातः काल से दस बजे तक निरंतर उसमें पिलना पड़ता। दस बजे भोजन के लिए उनकी कोठरी का द्वार खुलता। इस अवधि में अनेक बंदी कितनी बार कोल्हू पर चक्कर काटते काटते चक्कर खाकर गिर पड़ते, किंतु उन्हें कोई देखने वाला नहीं था, न कोई उह सम्भालने वाला था। यही उनकी नियति थी।

दस बजे भोजन के लिए द्वार खुलने पर बंदी द्वार पर जाता, अपन बतन में भात, रोटी और सब्जी लेकर भीतर का हाता कि तुरंत फिर बाहर से द्वार बंद। हाथ पर धोने अथवा पसीना सुखाने में यदि किसी व ची का क्षण भर का भी विलम्ब हा जाता तो बाहर उसको भद्दी भद्दी गालियाँ देता। यहाँ तक कि कोल्हू पीमते-पीमते यदि बंदी का प्यास लगनी तो कोई उमको पानी लाकर न वाला भी नहीं होता था। पाशविकता की कोई सीमा ही नहीं थी। पानी मागने पर कभी-कभी



विषय को जेल अधीक्षक के पास न पहुँचने देने के लिए सभी अग्र अधिकारी सतक रहते थे। यही कारण था कि वे सभी बारी से डर कर रहते थे। क्योंकि सलुलर कारागार में राजबंदियों की सच्ची बात को भी अधीक्षक तक पहुँचाना स्वयं का राजद्रोह का अपराधी बनाने के समान ही भयावह हो गया था।

प्रातः काल शौच जाने के लिए ८-१० बंदियों को एक साथ भेजा जाता था। शौच करन के लिए भी समय-वधि निर्धारित थी। यदि उस अवधि में भीतर किसी बंदी का शौच ठीक प्रकार से न होना और वह कुछ क्षण और लगान लगता तो पठान बाहर उसको बीच में ही उठने के लिए बाध्य करता और न उठने पर स्वयं उसको बाहर घसीट लाता। और यदि किसी दुभाग्यशाली राजबंदी को दिन अथवा रात के समय कभी शौच जान की आवश्यकता पड़ जाती तो उसे पूरा करना अत्यंत कठिन होता था। उसके लिए बांडर से कहना पड़ता। पहले तो बांडर ही डाँट फटकार करता फिर किसी प्रकार यदि वह जमादार से कह भी देता तो जमादार उस बंदी को भद्दी भद्दी गालियाँ देन लगता, मानो शौच करना भी जेल के नियमों के अनुसार अपराध हो। और यदि जमादार दया करके डाक्टर तक उसकी याचना को पहुँचा भी दे तो डाक्टर बारी के डर के कारण सो मे से केवल एक को इसकी लिखित आज्ञा देता था।

उस आज्ञा का लेकर जमादार बारी के पास जाता। बारी से अनुमति मिलन पर बंदी की कोठरी का द्वार खुलता था और तब वही जाकर उसको शौच की सुविधा प्राप्त होती। किंतु इतने से ही यह प्रकरण समाप्त नहीं हो जाता। प्रातः काल बारी आकर उससे पूछता, "तुमने रात को शोर मग्न क्यों मचाया?" बंदी कहता, "साहब शौच जाना था, क्षमा कर दो।" बारी को इतने से सन्तोष नहीं होता था। वह नाठी पटकता और गाली बकता हुआ कहता, "तबिन टट्टी रात में ही क्या लगी?" बंदी इसका क्या उत्तर दे। फिर भी उत्तर तो देना ही पड़ता तो वह कह देता, "साहब लग गयी, अब क्या करूँ?" उस समय जमादार की बदन आती और वह दो तमाचे बंदी के गाल पर जड़ कर कहता, "साला! साहब का मखौल उड़ता है।" इससे भी अधिक यह था कि उस समय बारी साहब को शोध आ जाए तो वह बंदी को एक दिन कालू का और दण्ड सुना कर वहाँ से टलता।

यदि कोई बंदी खाना न मिलने पर मलावरोध न कर पाता और अपनी कोठरी में ही मल विसर्जन कर देता तो एक तो स्वयं रात भर उस दुग्ध को सहन करना दूसरे प्रातः काल भगी की मिनत करना और उस तमाछू का तोभ दवर शौच साध करना। तमाछू न दिए जाने पर भगी का शोर मचा कर जमादार को बुला लाना। उस अवस्था में स्वयं उस शौच को घाना गानियाँ खाना साध नित तब का बठोर दण्ड भुगतना और भी न जाना क्या-क्या सहन करना पड़ता।

मामा-यजन दंड है कि पण्डितों का काम करते समय उनका मल-मूत्र रोकना पूरा माना जाता है। यदि किसी हल जोन रहा है बल मल-मूत्र विसर्जन

करता है, तो उस अवधि के लिए किसान रुक जाता है। किन्तु राजबंदि्यों को पशुओं तक को मिलन वाली इम सहज सुविधा से “बारी साहब” ने वंचित कर रखा था। इस दण्ड विधान का बदलन के लिए अनेक बंदियों ने कमिश्नर तक को प्रार्थना पत्र भेजे और जब इस बात की जाँच की गयी तो बारी का उत्तर होता था, “यह मब झूठ है। जमादार आदि में पूछा जा सकता है। यहाँ ऐसा कुछ नहीं होता। बंदी लोग पड़पड़ रचते हुए ऐसे आरोप लगात ह।”

बहुत दिनों तक यह सिलसिला चलता रहा फिर भी बंदी शांत नहीं रह। गृहमंत्री तक को इसकी शिकायत भेजी गयी। गृहमंत्री जब जेल के दौरे पर आया तो बारी उनके साथ था। उसने कह दिया, “मल मूत्र त्याग पर रोक की इनकी शिकायत बिलकुल झूठी है।”

उस समय नन्दगोपाल नामक पंजाबी युवक ने साहस करके गृहमंत्री से कहा, “आप बंदियों की कोठरी का स्वयं निरीक्षण करके देख लीजिए कि बिबश हाकर बंदियों को दीवारों पर लघुशका करनी पड़ती है, जिसे काठरियों में सदा दुग्ध भरी रहती है। आप जाकर देखिए। आपकी नाक ही हमारे लिए गवाह है।”

उस समय भी बारी ने यत्न किया कि वह नन्द गोपाल को झूठा सिद्ध करे। किन्तु सफल नहीं हो सका।

बारी का ऐसा दबदबा था कि यदि वह दिन को रात कहे तो उसके आधीन काम करने वाले सभी कहते “हा साब। रात है।” बारी ने अपना यह दब-दबा एक दिन राजबंदियों को भी दिखाया। उसने सभी बंदियों को कतारों में खड़ा कराया, पेटों अधिकारी और जमादारों को वहाँ पर बुलवा लिया और पेटों अफसर से पूछने लगा, “क्या पेटों अफसर। इस समय दिन है या कि रात?”

पेटों अफसर नया था, उसने कह दिया कि दिन है। बारी खोल पड़ा और बोला, “नहीं रात है रात।” अफसर समझा नहीं तो उसके मुख से फिर निकल गया, “नहीं हज़ूर अभी तो दिन है।” बारी क्रोध से तिलमिलाने लगा। उसने जमादार की ओर मुड़कर कहा, “तुम बताओ कि रात है कि रात?” जमादार ने अबब से कहा ‘हज़ूर अभी तो रात ही है।’ बारी बोला, “तुम ठीक कहते हो किन्तु तुमने इस नए पेटों अफसर को ठीक से क्यों नहीं पढ़ाया। देखो फिर कभी ऐसा न होना पाए।”

इस प्रकार जो भी नया पेटों अफसर आता उसको बारी के विषय में सब कुछ समझा दिया जाता और वह भी उनके स्वर में स्वर मिलान लगता।

सावरकर का रखा तो ऊपर वरक नम्बर ७ में था किन्तु पन्द्रह-बीस दिन बाद उनको काम करने के लिए निचली मजिल पर लाया जाने लगा। पहले पहल उनको छिलके कूटने का काम दिया गया। इससे उनके हाथों में छाल पड़ गए। उनसे रक्त बहने लगा किन्तु वहाँ किमको इसकी चिन्ता होनी? सुपरिटेण्डेंट से जब कहा गया तो उसने कह दिया कि यह तो करना ही पड़ेगा, घीर-धीरे सब अम्प्यास पड़ जाएगा।



विषय को जेल अधीक्षक के पास न पहुँचने देने के लिए सभी अग्र अधिकारी सतक रहते थे। यही कारण था कि वे सभी बारी से डर कर रहते थे। क्योंकि सलुलर कारागार में राजबंदियों की सच्ची बात को भी अधीक्षक तक पहुँचाना स्वयं को राजद्रोह का अपराधी बनाने के समान ही भयावह हो गया था।

प्रातः काल शौच जान के लिए ८-१० बंदियों को एक साथ भेजा जाता था। शौच करने के लिए भी समयावधि निर्धारित थी। यदि उस अवधि के भीतर किसी बंदी का शौच ठीक प्रकार से न होता और वह कुछ क्षण और लगान लगता तो पठान बाडर उसको बीच में ही उठने के लिए बाध्य करता और न उठने पर स्वयं उसको बाहर घसीट लाता। और यदि किसी दुभाग्यशाली राजबंदी का दिन भयवा रात के समय कभी शौच जाने की आवश्यकता पड़ जाती तो उसे पूरा करना अत्यन्त कठिन होता था। उसके लिए बाडर से कहना पड़ता। पहले तो बाडर ही डाँट फटकार करता, फिर किसी प्रकार यदि वह जमादार से कह भी देता तो जमादार उस बंदी को भद्दी भद्दी गालियाँ देने लगता मानो शौच करना भी जेल के नियमों के अनुसार अपराध हो। और यदि जमादार दया करके डाक्टर तक उसकी याचना का पहुँचा भी दे तो डाक्टर बारी के डर के कारण सौ में से केवल एक का इसकी लिखित आज्ञा देता था।

उस आज्ञा को लेकर जमादार बारी के पास जाता। बारी से अनुमति मिलने पर बंदी की कोठरी का द्वार खुलता था और तब वही आकर उसका शौच की सुविधा प्राप्त होती। किंतु इतने से ही यह प्रकरण समाप्त नहीं हो जाता। प्रातः काल बारी जाकर उससे पूछता, "तुमने रात को शोर गुल क्या मचाया?" बंदी कहता, "माहब शौच जाना था, क्षमा कर दो।" बारी को इतने से सन्तुष्ट नहीं होता था। वह नाठी पटकता और गाली बकता हुआ कहता, "लेकिन टट्टी रात को ही क्या लगी?" बंदी इसका क्या उत्तर दे। फिर भी उत्तर तो देना ही पड़ता तो वह कह देता, "माहब लग गयी, अब क्या करूँ?" उस समय जमादार की दन आती और वह दो तमाचे बंदी के गाल पर जड़ कर कहता, "साला! साहब का मखौल उड़ाता है।" इससे भी अधिक यह था कि उस समय बागी साहब को शोध आ जाए तो वह बंदी को एक दिन कोलहू का और दण्ड सुना कर वहाँ से टलता।

यदि कोई बंदी आज्ञा न मिलने पर मलाबरोघ न कर पाता और अपनी कोठरी में ही मल विसर्जन कर देता तो एक तो स्वयं रात भर उस दुग्ध को सहन करना, दूसरे प्रातः काल भगी की मित्त कराना और उस तमाखू का लोभ दकर शौच साफ कराना। तमाखू न दिए जाने पर भगी का शोर मचा कर जमादार को बुला लाना। उस अवस्था में स्वयं उस शौच को धोना गालियाँ खाना सात दिन तक का कठोर दण्ड भुगतना और भी न जाने क्या-क्या सहन करना पड़ता।

मामा-यजन देखते हैं कि पशुआ तक को काम करते समय उनका मल-मूत्र रोकना क्रूरता माना जाता है। यदि किसान हल जात रहा है बल मल-मूत्र विसर्जन

करता है, तो उस अवधि के लिए किमान रुक जाता है। किंतु राजबंदियों को पशुओं तक का मिलन वाली इस सहज सुविधा से “बारी साहब” न वंचित कर रखा था। इस दण्ड विधान को बदलने के लिए अनेक बंदियों ने कमिश्नर तक को प्राथना पत्र भेजे और जब इस बात की जांच की गयी तो बारी का उत्तर होता था, “यह सच झूठ है। जमादार जादि से पूछा जा सकता है। यहा ऐसा कुछ नहीं होता। बंदी लोग पड़्यत्र रचत हुए एस आरोप लगाते ह।”

बहुत दिनों तक यह सिलसिला चलता रहा फिर भी बंदी शांत नहीं रहे। गृहमंत्री तक को इनकी शिकायत भेजी गयी। गृहमंत्री जब जेल के दौरे पर आया तो बारी उनके साथ था। उसने कह दिया, “मल भून त्याग पर रोक की इनकी शिकायत बिल्कुल झूठी है।”

उस समय नदगोपाल नामक पंजाबी युवक ने साहस करके गृहमंत्री से कहा, “आप बंदियों की काठरी का स्वयं निरीक्षण करके देख लीजिए कि विवश होकर बंदियों को दीवारों पर लघुशका करने पड़ती है, जिससे कोठरियों में सदा दुर्गंध भरी रहती है। आप जाकर देखिए। आपकी नाक ही हमारे लिए गवाह है।”

उस समय भी बारी ने यत्न किया कि वह न द गापाल को झूठा सिद्ध करे। किंतु सफल नहीं हो सका।

बारी का ऐसा दबदबा था कि यदि वह दिन को रात कहे तो उसके आधीन काम करने वाले सभी कहते “हां साब। रात है।” बारी ने अपना यह दब-दबा एक दिन राजबंदियों को भी दिखाया। उसने सभी बंदियों को कतारों में खड़ा कराया, पेटी अधिकारी और जमादारों को वहाँ पर बुलवा लिया और पेटी अफसर से पूछने लगा, “क्या पेटी अफसर! इस समय दिन है या कि रात?”

पेटी अफसर नया था, उसने कह दिया कि दिन है। बारी खोल पड़ा और बोला, “नहीं रात है रात।” अफसर समझा नहीं ता उसके मुख से फिर निकल गया, “नहीं हजूर अभी तो दिन है।” बारी क्रोध से तिलमिलाने लगा। उसने जमादार की ओर मुड़कर कहा, “तुम बताओ दिन है कि रात?” जमादार ने अदब से कहा “हजूर अभी तो रात ही है।” बारी बोला, “तुम ठीक कहत हा किंतु तुमने इस नए पेटी अफसर को ठीक से क्यों नहीं पढ़ाया। देखो फिर वही ऐसा न होने पाए।”

इस प्रकार जा भी नया पेटी अफसर आता उनके बारी ने विषय में सच कुछ समझा दिया जाता और वह भी उनके स्वर में स्वर मिलाने लाता।

सावरकर का रखा तो ऊपर बैरक नम्बर ७ में था, किंतु पंद्रह-बीस दिन बाद उनको बान करन के लिए निचली भजिल पर लाया जाने लगा। पहले पहल उनका छिलके कूटने का काम दिया गया। इससे उनके हाथ में छाल पड़ गए। उनसे रक्त बहने लगा, किंतु वहाँ किमको इसकी चिन्ता हानी? मुपरिटेंडेंट स जब कहा गया तो उनमें कह दिया कि यह तो बरना ही पड़ेगा, धीरे धीरे मर अम्हाम पड़ जाएगा।

बारी आयरिश था और सावरकर चरिस्टर थे । इसलिए अपनी अंग्रेजा भाषा बोलन का शौक पूरा करता था । लिए बारी निरन्तर शाम का पाँच-मिनट के लिए सावरकर के पास आ जाता और उनसे बातचीत करता रहता । बातचीत के मध्य अधिकांश समय बारी अपनी प्रशंसा में ही बिताता था । इससे साथ ही वह राज बन्धियों की भी चर्चा करता । किन्तु उम चर्चा में न्याय प्रति घणा और निष्ठा का भाव भरा रहता था । वह सावरकर का सावधान करता रहता कि राजबन्धी अशिक्षित हैं उनके साथ उनका सम्पर्क नहीं करना चाहिए आदि आदि । किन्तु सावरकर के लिए कठिनाई यह थी कि ये उसकी ही मन्हीं नहीं मिला सकते । और अपना प्रतिवाद भी व्यक्त नहीं कर सकते थे ।

एक दिन सावरकर ने प्रतिवाद कर दिया तो उसका उह कठार दण्ड भुगतना पड़ा । उस समय तो बारी बाधित हो, उठकर चला गया, किन्तु दूसरे दिन उसने न जान क्या-क्या नाटक करने सावरकर को अपमानित करने की अपनी आकांक्षा पूरा की । उसका कहना था कि सावरकर राजबन्धी नहीं है । उनका पचास वर्ष का दण्ड मिला है और वे सामान्य बन्दी हैं । सावरकर इसका प्रतिवाद करें भी तो कैसे करें और किससे करें वहाँ कोई सुनने वाला ही नहीं था । उस दिन सावरकर का विदित हुआ कि वे राजबन्धी नहीं अपितु सामान्य चोर, डाकू की श्रेणी के बन्दी हैं ।

### शहीद द्वीप की कल्पना

इसी प्रसंग में एक दिन बारी एक राजबन्धी को बहुत भला बुरा कहता हुआ अनन्त प्रकार की भद्दी गालियाँ दे गया । यह सब सावरकर के सम्मुख ही हुआ था । इस प्रकार बारी एक तीर से अनन्त शिकार किया करता था । बारी जत्र चला गया तो उम राजबन्धी का मनान मुख देखकर सावरकर ने उसको आश्वस्त करते हुए कहा, "मेरे सामने बारी ने आपका भद्दी गालियाँ दी है सम्भवतया इससे आपको सकोच हो रहा होगा । किन्तु इसकी आवश्यकता नहीं है । आवश्यकता है धर्म बनाये रखने की । यह सब तो उसके अहंकार और मूर्खता का परिचायक है । आज हम लोग बेवश हैं आज आपका इस स्थिति में भले ही अपमान हो गया है किन्तु निश्चित जानिए, एक दिन ऐसा भी आएगा जब इसी बन्दीगृह में आप सब राजबन्धियों की मूर्तियाँ स्थापित होंगी । और इसे भारत के राजबन्धियों/राष्ट्रभक्तों की तपस्या स्थली के रूप में तीर्थ-स्थल का महत्व प्राप्त होगा । सहस्रो भारतीय एवं विदेशी यहाँ ताथयानत्रा करने आएंगे । उस समय भारतीय तीर्थ यात्री बड़े गर्व में कहेंगे — 'देखिए यही वह स्थल है जहाँ वर्षों वर्षों तक हमारे पूज्य न हमारे देश की स्वतन्त्रता के लिए अपने जावन की आहुति दी थी ।

उन लोगों का इससे कितनी सात्वना मिलती थी, यह कह पाना कठिन है । फिर भी एक दिन एक व्यक्ति ने उनसे पूछ ही लिया क्या आप वास्तव में ऐसा ही मानते हैं ।

सावरकर बोले, “कम से कम होना तो ऐसा ही चाहिए।”

वार्तालाप पूरा भी नहीं हो पाया था कि पेटी अफसर आकर उनको घसीट कर वहाँ से ले गया।

उमके ठीक बत्तीस वर्ष बाद नेताजी सुभाष चन्द्र बोस पोट ब्लेगर पहुँचे और उन्होंने ३० दिसम्बर, १९४३ को वहाँ भारतीय क्रान्तिकारियों के सम्मान और स्मृति में भारतीय स्वतन्त्रता का झंडा फहराया और उस द्वीप का नाम ‘शहीद द्वीप’ घोषित किया।

सन १९११ में सावरकर ने जो कहा था उसके ३२ वर्ष बाद परतंत्र भारत के अतगत अण्डमान में स्वतंत्र भारत का झंडा फहरा कर नेताजी ने उसे सत्य कर दिखाया। सावरकर उस समय भारत में ‘नजरबंदी’ में थे। फिर भी वह सब जान कर और सुनकर सावरकर को अपार हर्ष हुआ था।

उन्ही दिनों की बात है कि १४ अगस्त, १९११ को जेल अधिकारियों ने सावरकर को लाकर एक पत्र दिया। यह पत्र बम्बई विश्वविद्यालय से आया था। विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग के सचिव ने लिखा था कि भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट की धारा १८ के अतगत बम्बई विश्वविद्यालय की सीनेट ने अपनी १-७-१९११ की बैठक में उनको दी गई बी० ए० की उपाधि को इसलिए वापस ले लिया है क्योंकि वे नासिक पंडित अभिषेक में अपराधी घोषित हुए हैं और आजम कारावाम का दण्ड भाग्य रह है।

पत्र पढ़कर सावरकर के मन में कोई विपरीत प्रतिक्रिया नहीं हुई। उस उपाधि का उनके लिए उपयोग भी क्या था? पत्र पढ़ा और एक ओर को रख दिया।

## निराशा की झलक

कोल्हू घुमाना कितना कष्टकर होता है। इमका उल्लेख हम पूब पृष्ठों पर कर आये हैं। सावरकर जमा दुबल शरीर का ब भी यह सब करता था। क्यों कि इसके बिना अन्य कोई माग बचा ही नहीं रह गया था। फिर भी राजबंदियों में से एक-या उदार हृदय जन थे और जो वहाँ किसी प्रकार आ सकत थे, वे सावरकर के पास आकर कुछ क्षणों के लिए उनको विश्राम दिलाते हुए कोल्हू परन म उनकी सहायता किया करत थे। इतना ही नहीं उनमें से अधिकांश ऐसे थे जो सावरकर के बार-बार मना करने पर भी अवसर मिलने पर उनके वस्त्र आदि भी धा दिया करते थे। कभी-कभी वे लाग इम अपराध के लिए पेटी-अफसर में लेकर वारी के भी कोष भाजन बन जात थे। किंतु फिर भी उन्होंने इस काम को छोड़ा नहीं। जब भी उनको अवसर मिलता वे सावरकर की सहायता करने पहुँच जाते थे।

इस प्रकार के क्षण अधिक नहीं होते थे फिर भी कुछ क्षणों के लिए सावरकर को विश्राम मिल जाता करता था। निरंतर कोल्हू पेरते रहने से शरीर पसीने में तर हो जाता करता था। जोर की हवा चलनी तो बाहर की धूल आकर सारे शरीर को सान

देती थी। पसीने में मिल कर वह धूल मैल का रूप धारण लेती। यह सब देखकर सहसा सावरकर का मन कह उठता, "यह सब कष्ट किस लिए?" कभी-कभी सावरकर को स्वयं से ही घणा होने लगती।

सावरकर सोचते कि जिस शरीर को अपने देश को स्वाधीन करने के लिए काम आना चाहिए था, वह अब अग्रेज सरकार की दासता में पिस रहा है, मिट्टी में मिल गया है। अब उसका कोई मूल्य नहीं रहा। मातृभूमि के उद्धार के लिए इस जीवन का अब कौड़ी का भी मूल्य नहीं। फिर इस अंधकार में क्या कष्ट झेला जाए। वे सोचते कि उनकी यातनाओं का तो किसी को ज्ञान तक नहीं होगा, तब फिर उनका नैतिक परिणाम ही क्या हो सकता था? इस सबका न तो अपने उद्देश्य के लिए कोई उपयोग है और न जीवन के लिए ही। फिर इस स्थिति में रहने की आवश्यकता ही क्या है? यह व्यर्थ का जीवन धारण ही क्या किया जाए? इस जीवन का जा कुछ उपयोग होना था वह तो हो चुका। इस लिए अच्छा यही है कि फांसी का एक झटका देकर इसका जन्म कर लिया जाए।

बार बार सावरकर के मन में यह विचार आने लगा था 'अज जीना व्यर्थ है। अब आत्मघात ही आत्म सम्मान होगा।

सावरकर एक दिन दोपहरी में कोलहू चला रह थे। बाहर जार की लू चल रही थी। चलाते चलाते सावरकर हाफन लग फिर चक्कर आ गए और वे धड़ाम से गिर पड़े। किसी प्रकार स्वयं को सम्हाला। फिर से प्रयत्न करके बड़ी कठिनाई से उठ और जैसे तैसे कोलहू पर पिलते रह। उस समय सावरकर सोचन लग थे, भभा जो मूर्च्छा थी वही मृत्यु क्या नहीं बन गई? बार बार उनके मन में ऐसी स फांसी लगा कर आत्म हत्या का विचार कीधने लगा।

उस दिन तो आत्महत्या का आश्रय उह बार बार आकर्षित करता रहा था। जब जब भी उनकी यातनाएँ असह्य हो उठती तब तब आत्महत्या का उनका विचार प्रवृत्त होता जाता। मार्सेट्स में जब दाबारा उनकी पकड़कर भयकर लू में अत्यंत विषम स्थिति में जब उनका वोट पर बंद कर दिया गया था उस समय भी उनके मन में इस प्रकार का विचार आया था। इस प्रकार अनेक बार यह विचार उनके मन में उठता रहा और किसी प्रकार वे उस निराशा का दूर भगाने में सफल होत रह।

कभी कभी उनको यह अफवाह सुनने का मिलती कि दिल्ली दरबार में समय सभी राजनीतिक विद्वानों को रिहा कर दिया जाएगा। विद्वानों में इसका खूब प्रचार होना लगा। उनके मुख पर प्रसन्नता दिखाई देने लगी। सावरकर जानते थे कि उनका दो आज्ञाकारी वास मिल है। उनका कारागार में राजवदी नहीं साधारण बंदी माना जा रहा है। तब भी जब कोई कहता बरिस्टर बाबू। अब आप को भी मुक्त कर दिया जाएगा। तो एक क्षीण-सी मुस्कान उनके मुख पर तरन लगती।

७ से १५ दिसम्बर १९११ तक दिल्ली दरबार की घूम रही। सावरकर बहुत और बगाल के राजनीतिक विद्वानों का छाड़कर शेष सभी का इस अवसर पर प्रतिवध

के हिसाब से एक-एक मास की छूट प्रदान की गई। सावरकर का इस अवसर पर जो मिला वह केवल आलू और भात था।

इस अवस्था में भी सावरकर यह जानने के लिए उत्सुक रहते थे कि इस अवसर पर भारत के हित में भी कुछ हुआ अथवा नहीं। सावरकर को यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि बंगाल का पुनर्विभाजन रुक गया है।

जमा कि सावरकर ने पहले ही घोषणा कर दी थी, भारत की राजधानी कलकत्ता से दिल्ली ले आई जा रही थी। किंतु सावरकर का कहना था कि इतिहास, संस्कृति, राजनीतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से भी भारत की राजधानी के लिए उज्जैन सब प्रकार में उपयुक्त स्थान हो सकता था।

## हार्डिंग पर बम

२३ दिसम्बर १९१२ का दिन कलकत्ता से राजधानी का दिल्ली ले जाने के लिए तय हो गया था। भारत के गवर्नर लॉर्ड हार्डिंग उस दिन हाथी पर सवार हो कर चाँदनी चौक से पधार रहे थे कि तभी उन पर बम बरसा और वे घायल हो गये। किन्तु उनके पीछे जो छत्रधारी खड़ा था वह परलोक सिधार गया।

भारत में घटित इस घटना की जानकारी वायरलेस से 'अत्यंत गुप्त' कहकर अण्डमान के मुख्य जायकन के पास पहुँची थी। यह आश्चर्य की ही बात है कि उसी समय यह सूचना सावरकर आदि सभी राजबंदियों तक भी पहुँच गई थी। प्रातः काल जब गारा अधिकारी निरीक्षण के लिए आया तो राजबंदियों ने जानबूझकर उसको छोड़ा, "दिल्ली का समारोह तो निर्विघ्न समाप्त हो ही गया होगा न?"

विचित्र बात यह है कि तब तक उस गोरे को भी दिल्ली काण्ड के विषय में कोई सूचना नहीं थी। उसने बड़े गव से उत्तर देते हुए कहा, "क्या उसके निर्विघ्न सफल हान में आप लोगो का कोई सन्देह है? हमारे साम्राज्य के वैभव और शक्ति के सम्मुख आपके आन्तिकारियों ने वहाँ भी मुह की ही खाई होगी।"

उमरु इस सूचना से उत्तर से सभी राजबंदियों को बड़ी हसी आई। उनके चेहरा का दबकर उसको कुछ सन्देह हुआ कि बंदियों का किसी प्रकार की कोई विपरीत सूचना मिली है। उसका सन्देह ठीक निकला। ज्या ही वह अपना 'राउण्ड' पूरा कर कार्यालय में गया तो बारी ने उसका दिल्ली से आया तार पकड़ा दिया। उसे पढ़कर तो वह आगवज्रला होकर भट्ठी गालियाँ बकने लगा। उसने पूछा, "हमसे भी पहले राजनीतिक बंदियों तक यह समाचार कैसे पहुँच गया?"

यह सुनकर बारी का चेहरा फट पड़ गया। उसने इसकी जाच करवाई तो यह जानकर उसको बड़ा आश्चर्य हुआ कि दिल्ली बम काण्ड के विषय में हर कोई व दा जानता है। फिर उसने यह पता लगाने का यत्न किया कि कार्यालय में इस प्रकार का कौन व्यक्ति है जो समाचार को बंदियों तक पहुँचा सकता है। कार्यालय में नायर

नामक एक युवक था, जिसकी राजर्षिदया के प्रति सहानुभूति थी। वारी न उस पर ही सदेह किया। उसे दस दिन तक कठोर यातनाएँ दी गई। भीति भीति की धमकियाँ दी गई। उसने दड़ना स कहा जो करना हा करा। किंतु मैं ऐसा कुछ नहीं किया। उस अधीक्षक के पास ले जाया गया। किंतु उसका विरुद्ध कोई प्रमाण तो था नहीं। अधीक्षक ने उस बबल चेतावनी दत्त हुए रहा, 'भविष्य में सावरकर म किसी प्रकार का सम्बन्ध यदि रखा तो तुम्हें कठोर दण्ड दिया जाएगा।' यह कहकर उसका मुँह बंद किया गया।

किंतु नायर की सावरकर आदि के प्रति सहानुभूति उस घटना से बढ़ता गए, घटी नहीं। वहाँ बाग सावरकर नीर यह दानो एक साथ उन कारागार में काम करते थे।

तबसे वारी का हालत बदला ही गया। उसने सावरकर की मानसिक यातना देने के उद्देश्य से एक दिन भ्रष्टाचार फना दी कि सावरकर का छोटा भाई नारायण दामोदर सावरकर दिल्ली बम काण्ड में बनी बना लिया गया है। यह अनम्भब भी नहीं था अतः इससे सावरकर को कुछ आघात लगा। ये वास्तविकता जानने के लिए भी उत्सुक निर्बाध दिए। मध्याह्न के समय जब अधीक्षक आया तो उसने भी पूछा, "क्या तुम्हारा छोटा भाई बनी बना लिया गया है?" सावरकर कुछ कह उससे पूछ ही घूत वारी बोले उठा, "अब तो वह भी मही आ जाएगा।"

सावरकर का इससे प्राध आ गया उहाने उसका करारा उत्तर देने के लिए कहा, "भारत का कोई भी व्यक्ति बनी बना कर यहाँ के कारागार में डाला जा सकता है। आज तो सारा भारत ही आयरलैंड की भीति कारागार सा बना दिया गया है। तब यदि मेरे भाई का भी यहाँ आना पड़ जाए तो क्या आश्चर्य है?"

वारी तो जितिया गया किंतु अधीक्षक कहने लगा "वह मही आया या नहीं यह मैं नहीं जानता। किंतु तुम्हारा भाई बड़ा डरपोक लगता है।"

"वह कैसे?"

दिल्ली बम काण्ड का समाचार सुनते ही उसने पुलिस प्रमुख की तरफ भेजा कि वह इस समय बलवत्ता में है और उनका इस लिए सबना ब रता है कि वही बाद में पुलिस उसका इस बम काण्ड में न लेपेटे।

सावरकर न कहा, तब तो वह पूरे बलवत्ता में सबसे चतुर व्यक्ति है। मरुपि उसने बम नहीं फना। यदि फना होता तो भी उसको पुलिस के चक्का मना ही चाहिए था। इससे वह डरपोक सिद्ध नहीं होता। शत्रु का मान देकर उसके चंगुल में छटने की युक्ति करना भी तो शरयोरा का ही काम होता है।

अधीक्षक तो अपना सा मुख लेकर वहाँ से वापस चला गया किंतु सावरकर का मन नारायण के कष्टों का अनुमान लगाकर तहस उठा और उसी तड़फन में उनके मुख से कविता फूट उठी देशभक्ति का यह व्रत हमने आवेश और जघता में नहीं लिया।

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ थी जो कभी-कभी सावरकर को निराश कर देती थी। सावरकर का मन तथा बुद्धि कभी-कभी विद्रोह कर उठते थे। मन कुछ कहता तो बुद्धि उसके विपरीत कुछ और ही कहती। उनकी बुद्धि ने सदा यही सान्त्वना उनको दी—‘तुम्हारी सहन की हुई यातनाओं का सूर्य परिणाम देश पर होकर ही रहेगा। तुमका फाँसी न देने के लिए अंग्रेजा ने तुम पर तरस नहीं पाया। फिर जो बात वे स्वयं नहीं कर सके, उसे तुम अपने हाथों से करके, स्वपक्ष की हानि में क्या भागीदार बनते हो?’

“यदि मरना ही है तो जिस सजा के तुम सैनिक हो, उसी सजा का कोई एक काम करके फिर मरो। फाँसी खाकर कदापि नहीं।”

इस अन्तिम तर्ज ने सावरकर के मन का स्थिर कर दिया। कालांतर में कभी किसी घटना का स्मरण कर अथवा कोई दुःख सूचना मिलन पर भले ही कुछ क्षणों के लिए उनमें निराशा का संचार हुआ हो किंतु उन्होंने फिर कभी आत्महत्या की बात नहीं सोची।

## कोल्हू का बेल

निराशा का भूत भागते ही सावरकर में नई स्फूर्ति, नई चेतना जागृत होनी लगी। नविता की निरन्तर रचना तथा उसे कठमथ करना उनका दैनिक क्रम था ही, अब उसमें भी कुछ और करने की लगन लगी तो उन्होंने सोचा कि क्यों न कारागार के नियमों के आधीन राजनीतिक बन्धियों की दशा में सुधार के लिए यत्न किया जाए। कोल्हू में काम करते हुए वे अनेक राजनीतिक बन्धियों की स्थिति से ही भली-भाँति परिचित नहीं हुए अपितु उन्होंने अण्डमान की भी पूरी स्थिति का आकलन कर लिया था। कारागार के भीतर और बाहर दाना और उनके प्रति जन जन में अगाध प्रेम और श्रद्धा थी, यही कारण था कि लोग अपनी चिंता किए बिना समय समय पर उनका सत्र प्रकार की सूचना जादि दे दिया करते थे। दिल्ली बम काण्ड का उल्लेख पिछले प्रकरण में हम कर आए हैं, इसी प्रकार जर्म सूचनाएँ भी उनका मिल जाया करती थी।

इसी सब बातों पर विचार कर सावरकर ने सब प्रथम राजनीतिक बन्धियों की शिक्षा का कार्य प्रारम्भ करने का निश्चय किया। वम, फिर क्या था, उन्होंने उन बन्धियों को जिन्हें नृत्तिकारी आन्दोलन की पूर्ण जानकारी नहीं थी, उन्हें उनकी जानकारी दत्त हुए आन्दोलन के मूल कारण और उसके आरम्भ करने के कारण का भी भली भाँति समझा दिया। उनमें जा बड़ी स्वाधीनता प्राप्ति में हिंसा को उचित नहीं समझते थे वे भी सावरकर के तर्कों से सहमत होने लग गये। उसी दौरान सावरकर ने दो राजबन्धियों को गण्डन और प्रचार कार्य में योगदान करने की शपथ दिलायी भी ली।

इसी अवधि में अर्थात् चौदह दिन सावरकर को कोल्हू पर काम





उपरान्त पन्द्रहवें दिन उससे हटाकर डोरी बुनने के काम पर लगा दिया। यह काम अथ कामो की अपेक्षा मरस था तदपि आरम्भ में सावरकर का कुछ कठिनाई तो हुई किन्तु अभ्यास करने से कुछ दिन में ही उनको डोरी बटना आ गया। इसके साथ ही उनकी सात नम्बर बैरक में चार अथ राजनीतिक बंदी रख दिए गए थे। यह इस लिए क्योंकि कारागार में स्थान की कमी पड़ गयी थी, 'अथवा आदेश तो यही था कि सावरकर के साथ कोई न रखा जाए और न ही किसी को उसमें मिलने दिया जाए।

राजबंदियों को प्रतिमाह बदला जाता रहना था। उस अदला बदली में बंदियों का परस्पर किसी के दूर से दशन हो जात, कभी किसी में निकट से दो बात करन का भी अवसर सुलभ हो जाता। जो भी हो इसमें कुछ परिवर्तन तो होता ही था। इस प्रकार प्रतिमाह बाढ़ बदलत समय राजनीतिक बंदियों में मिलने जुलन के अतिरिक्त उन लोगों ने आपस में मिलन के कुछ अन्य उपाय भी किसी प्रकार कर लिए थे। उनमें से एक माध्यम तो था जमीन में लगी लोह की जाली और दूसरा ऊपर दीवार से सटा हुई खिड़की। बाढ़ कुछ इस प्रकार बना हुआ था कि जंगल के सामने बंदा की खिड़कियों पर बैठे लोगों से बात हो सकती थी तदपि ऊँची खिड़कियाँ पर बैठ कर बोलना उतरे से खाली नहीं होता था। खिड़की बाहर फीट की ऊँचाई पर थी, किसी प्रकार वहाँ चढ़ना जीर बाग करत हुए बाढ़र के आन की आहट या कर उसमें नीचे कूटना भी एक विवशता ही थी, फिर भी यह सब करना तो पड़ता ही था।

इसी प्रकार जमीन से सट कर लगाई गई जाली का प्रयोग भी बंदी जन भोजन के समय करत थे। उस समय जाली से सट कर सामने के बाढ़ में रहन बाल बंदियों से बात करने का मन किया जाता। बात करन से पूब घाली बजा कर सामने के बाढ़ बाना का घण्टी दी जाती थी और फिर बं जाली से जब कान लगा लते तो बातलाय आरम्भ दिया जाता था। एम ही अथ उपाय भी योक्त लिए गए थे।

## शिक्षा प्रसार काय

बंदियों का शिक्षित करने के लिए पुस्तकों की नितात आवश्यकता अनुभव की जान लगी। सावरकर के कमरे में जिन बंदियों का रखा गया था सावरकर ने सबसे पहले उनका ही शिक्षित करने का निश्चय किया। कोई बंदी दसवी तक पढ़ा था तो कोई काज तक भी हा आया था। वे राजनीति, अर्थशास्त्र और प्रशासन आदि विषयों में सबका जनभिन नयी थे।

रविवार का यहाँ कुछ बंदियों का पुस्तकें दी जाती थी। उन पुस्तकों में मुख्य होनी थी रामकृष्ण परमहंस जबवा स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकें आत्मटाय की मार्ग रितीजन, एनीमनट की धियागाफिरत दशन तथा कुछ सामान्य पत्रिकाएँ। एक बाढ़र पुस्तकें ले कर आता और बंदियों को द जाता। शाम का वही बाढ़र आ कर उन पुस्तकों को वापस ले जाता। एक बंदी का एक बार में एक ही पुस्तक दी जाती थी

और पुस्तकें परस्पर बदलने पर भी प्रतिबन्ध था। यदि किसी को परस्पर पुस्तक बदलते देख लिया जाता तो उस बंदी का कठोर दण्ड दिया जाता था।

बारी स्वयं पाचवी तक पढ़ा हुआ व्यक्ति था। वह पुस्तकों का महत्व क्या जानता? फिर भी वह चाहता था कि राजनीतिक बंदियों को कम से कम पुस्तकें दी जाएँ। पुस्तकों का चयन वह स्वयं करता था किन्तु उस जैसा अज्ञ व्यक्ति क्या चयन कर सकता था। जिनको वह समझ सके ऐसी साधारण सी पुस्तकों को ही वह देना सकता था। यदि विज्ञान जैसी कोई पुस्तक दिखायी दे तो उसके पन्ने पलट कर देखता और कुछ समझ में न आने पर उसको 'ट्रिम' कह कर एक ओर पटक देता। किन्तु यदि किसी पुस्तक में उस को 'नेशन', 'कंट्री', यदि जैस शब्द दिखाई दे जाएँ तो उनको वह प्लेग के समान छूत का रोग समझ कर दूर पटक देता। क्योंकि उसकी समझ में ऐसी पुस्तकों को पढ़ पढ़ कर ही तो इन राजबंदियों का दिमाग खराब होता है। पुस्तकों का उन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जेल की यातनाओं से उनको किसी प्रकार ठीक माग पर लाया जाता है तो पुस्तकें पढ़ने से वे फिर कुमाय पर चल पड़ेंगे।

बारी का यह भय निरर्थक भी नहीं था। वास्तव में जो सुपठित हामा बंदी तो सब कुछ ठीक से समझ सकता है, अपठित का इन सब बातों में कोई रुचि नहीं होती। इस प्रकार पुस्तकों के अभाव में सावरकर का जब भी अवसर मिलता वे राजनीतिक विद्वानों का ऐतिहासिक कहानियाँ, वीर गाथाएँ आदि सुनाया करते थे। जब कभी कभी कही एकजित होने का अवसर मिलता वे इधर-उधर की बातें न करके इस प्रकार की ही बातें करने लगते।

सावरकर ने सब प्रथम उन विद्वानों का उद्देश्य कालीन इतिहास के विषय में बताया। तदनंतर युग पुरुषों, वीर-वीरांगनाओं, महापुरुषों आदि के कृति-व और व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते। याराय का जाधुनिक इतिहास, नपालियन, मैजिनी, गरीबाल्डी तथा उस समय के रूस के आंदोलन के इतिहास पर वे प्रकाश डालते। इतिहास के बाद उन्होंने विद्वानों का अध्यात्म के मूल-तत्त्व, शासन विधान, नीति विधान और राजनीति शास्त्र पर भी बहुत कुछ बताया।

इस शिक्षण कार्य का विद्वानों पर प्रभाव पड़ता गया। ज्यों-ज्यों उनमें ज्ञान और चेतना बढ़ती गयी त्यों-त्यों वे उत्पीड़न और शोषण के विरुद्ध तथा अपने अधिकारों की मांग को लहराते हुए और सघर्ष के लिए आग आग लगाने लगे। कारागार में आंदोलन का वातावरण बनने लगा। विद्वानों में आयी इस जागृति से कारागार के अधिकारी परेशान दिखाई देने लगे।

बारी के सदा और धार विरोध करने पर भी सावरकर ने पुस्तकों के विषय में अपना सघर्ष जारी रखा। बहुत सघर्ष करने के उपरान्त जेल अधीक्षक ने पुस्तकें एकत्रित करने की अनुमति दे ही दी। किन्तु पुस्तकों का निरीक्षण बारी ही रहा और जिस पुस्तक के जिस अंश को वह उचित नहीं समझता उस सारे पृष्ठ को ही वह बाला

कर देता। एक से अधिक पन्ना को भी वह काला कर देता था और कभी कभी तो वह उन पन्नों को ही फाड़ देता था जिसमें उसको तनिक भी राष्ट्रीयता की भावना का भास हो जाता।

शिक्षा और शिक्षण का कार्य ज्या-ज्या बढ़ता गया त्या-त्या पुस्तकों की संख्या भी बढ़ती गयी। जब उसमें स्पेन्सर, मिल, सैकमपियर, गिब्लन, एमसन, मवाले, टाल्स टाय, नील्से, रुमा, वास्टेयर के साथ साथ विवेकानन्द, टैगोर आदि भारतीय चिंतकों एवं लेखकों की पुस्तकें भी एकत्रित होने लगी। विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं की पुस्तकें भी कालांतर में एकत्रित की गयीं। उस अवधि में सावरकर ने भी बंगाली साहित्य का खूब अध्ययन किया। तभी उन्होंने रवीन्द्र नाथ टैगोर पर अपनी एक कविता की रचना की। किंतु सर्वाधिक जिस पुस्तक ने उनको प्रभावित किया, वह थी 'योगवा जिण्ड'।

इतना ही नहीं सावरकर ने जघन्य अपराधियों को भी अक्षर पान कराना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार उन्होंने वहाँ के साठ प्रतिशत लोगों को शिक्षित कर दिया था। और सावरकर जब वहाँ से मुक्त हुए थे तब तक वहाँ के पुस्तकालय में दो हजार पुस्तकें एकत्रित की जा चुकी थीं।

## हिन्दी का मन्त्र

सावरकर के इस प्रशिक्षण में हिन्दी की बड़ी महत्व दत्त थी। वे कहते थे कि हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो राष्ट्र भाषा का स्थान ले सकती है। किंतु सावरकर को हिन्दी का सत्त विरोध झेलना पड़ा। उन की संस्था अभिनव भारत के उद्देश्य में एक बात यह भी निहित थी। हिन्दी हिन्दू, हिन्दुस्थान ही उसमें मुख्य था। सावरकर तो अभिनव के ही अंग थे, कारागार में वे उसको किस प्रकार भूल सकते थे? कारागार में भी वे बर्दिशा से कहते रहते थे कि वे हिन्दी पुस्तक की मांग अधिक करें। जिनको हिन्दी नहीं आती थी उनको उन्होंने हिन्दी सिखायी।

हिन्दी के विषय में जब कोई कभी किसी प्रकार का आक्षेप करता तो वे उसका समाधान करने में जुट जाते। वे हिन्दी के व्याकरण उसके समस्त साहित्य भाषा एवं लिपि की पूर्ण वैज्ञानिकता, अग्रगण्यता की क्षमता आदि के विषय में समझाया करते थे। वे कहते 'हिन्दी तो स्वतः ही भारत की राष्ट्रभाषा है। रामेश्वरम् का वरागी सत्त तथा व्यापारी पन्थीराज के काल से भी पहले से तीर्थयात्रा की अवधि में हरिद्वार और वद्रीनाथ जाने पर हिन्दी के माध्यम से ही कार्य चलाता आया है। चारों धामों की तीर्थ यात्रा करने वाले हिन्दुओं के मध्य प्रातः की माध्यम हिन्दी ही तो होती है।

बंगालियों, मराठा गुजरातियों आदि को हिन्दी तथा हिन्दी भाषी लोगों को विभिन्न प्रांतीय भाषाएँ सीखने के लिए प्रेरित करते। इस प्रकार दस वर्ष तक उन्होंने अण्डमान कारागार में हिन्दी का प्रचार कार्य किया। न केवल बर्दिशा को अपितु उन्होंने

कारागार के अधिकारियों को भी हिंदी सिखाने का काय किया। वहाँ के मद्रासी अधिकारी भी हिंदी सीखने लगे थे। सावरकर के प्रयत्न से एक राष्ट्राभिमानी डाक्टर ने अपने परिवार के सब सदस्यों को हिंदी बोलने को आदत डालन व लिए यह कह कर प्रेरित किया था कि जन्तत हिंदी ही अपने देश की राष्ट्र भाषा बनने वाली है। उन्होंने अपनी पत्नी से सकल्प कराया था कि वे अपने बच्चों के साथ हिंदी में ही वार्त्ता लाप किया करेंगी। वे डाक्टर समय-मसय पर हिंदी प्रचार के लिए सावरकर की आर्थिक सहायता भी करते रहते थे। अय घदी भी इस प्रकार की सहायता करते।

जो घदी आय समाजी विचारों के थे, वे सावरकर के साथ हिंदी के प्रचार प्रसार में सक्रिय योगदान करते थे। सावरकर ने इससे लाभ उठाकर कारागार में 'सत्याग्रहप्रकाश' की पुस्तकें मगवा कर उसे पढ़ने की प्रेरणा दना आरम्भ कर दिया। दीवान नामका एक आयसमाजी किसान इकती में आजीवन कारावास भुगत रहा था। सावरकर के सम्पर्क में आने पर उनका भक्त बन गया। दुर्भाग्य से वह वहाँ की जलवायु सहन नहीं कर सका और उसका वही देहान्त हो गया। उसके मित्रों ने उसका श्राद्ध करना चाहा, किन्तु सावरकर के समझान पर उन्होंने उस श्राद्ध पर व्यय की जान वाली राशि को हिंदी पुस्तकें मगवाने में व्यय किया।

इसी प्रकार बिहारी नामक एक अपराधी को फाँसी का दण्ड सुनाया गया था। उसने मनौती की कि यदि उसकी फाँसी की सजा रद्द हो गयी तो वह अमुक राशि दान करेगा। सयोगवशात् उसकी सजा रद्द हो गयी ता उसने उस धनराशि के लिए सावरकर से विचार विमर्श किया। उनकी प्रेरणा से उसने उस राशि से ग्रय मगवाना स्वीकार कर लिया।

किन्तु अनक सिख, बगाली, मद्रासी ऐसे भी थे जो उर्दू, अंग्रेजी तथा प्रान्तीय भाषाओं की पुस्तकें मगवाने का आग्रह करते तथा सावरकर पर हिंदी प्रचारक होने का दोषारोपण भी करते। तब सावरकर उह समझाते कि उनकी मातृभाषा तो मराठी है। व मराठी के लिए तो कोई दान माँगते नहीं। अत वे कहते कि उनका आरोप मिथ्या है। वे यह भी बताते कि वे स्वयं गुरुमुखी लिपि और बंगला आदि भाषाएँ जानते हैं, किसी भाषा के लिए उनके मन में कोई दुराग्रह नहीं है। सिखा को वे गुरु गोविन्द सिंह का 'विचित्र नाटक' और सूर्य प्रकाश इतिहास की पुस्तक दिखाते कि स्वयं गुरु जी ने उह व्रज भाषा में लिखा था।

इसके विपरीत अण्डमान कारागार में भारत से जो मुंशी आदि भेजे जाते थे वे हिंदी में सबका अनभिज्ञ होते थे। उनकी भाषा और लिपि उर्दू ही होती थी। उसका परिणाम यह हुआ कि अण्डमान की भाषा उर्दू ही हो गई। वहा पाठशालाओं और विद्यालयों में उर्दू का ही बोलबाला था। उह कोई हिन्दी व लिए प्रेरित करने वाला था ही नहीं। सावरकर न जन जन को हिंदी का महत्व समझाया। सरकारी कामकाज की भाषा उर्दू हान के कारण हिंदी पढ़न और सीखने के लिए तैयार होने में समय लगा। इसमें पहले बिदिया के पत्र सब उर्दू में ही लिखे जाते थे। क्योंकि

उनकी जाच करने वाले अधिकारी कोई अथ भाषा जानते थे ही नहीं थे। बहुत थोड़े लोग अंग्रेजी में भी पत्र लिखते थे।

सावरकर ने प्रयत्न करके कुछ बंदियों को मराठी, गुरुमुखी आदि अपना मातृभाषा में पत्र लिखने के लिए उत्साहित किया और फिर उनसे कारागार अधिकारियों का आवेदन पत्र लिखवाए कि उन्हें अपनी मातृभाषा में पत्र लिखने की अनुमति मिलनी चाहिए, क्योंकि उनके घर पर उर्दू जानने वाले दूर दूर तक कोई व्यक्ति प्राप्य नहीं हैं। बहुत प्रयास करने पर उन्हें अपनी मातृभाषा में पत्र लिखने की सुविधा प्राप्त हो गयी। उसका दूरगामी परिणाम यह हुआ कि कारागार के कार्यालयों में भी हिन्दी आदि भाषाएँ जानने वाले कर्मचारी नियुक्त करने पड़े। इसके लिए सावरकर की सत्त्वा के लोग सहयोग करने के लिए मंदा तत्पर रहते थे। उसका परिणाम यह हुआ कि पहले जहाँ ६० प्रतिशत पत्र उर्दू में जाते थे वहाँ अब ६० प्रतिशत पत्र हिन्दी में जाने लगे।

अण्डमान की बस्ती में रहने वाले हिन्दू पहले अपने सभी सत्कारों अथवा कायश्रमों के निमन्त्रण पत्र उर्दू में ही छपवाते थे। किन्तु अब स्वभाषा के महत्त्व से प्रेरित हो कर वे सब निमन्त्रण पत्र हिन्दी में छपने लगे थे। फिर भी समय-समय पर मुसलमानों तथा अंग्रेज अधिकारियों की ओर से इस काय में बाधा उत्पन्न करने का प्रयास भी चलता रहता था। किन्तु हिन्दी समय-का की सत्त्वा तब तक इतनी बढ़ गयी थी कि उनका वह विरोध उतना प्रभावी नहीं रह सका।

सावरकर के इस प्रचार से कि आज नहीं कल सही, भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही होने वाली है, अण्डमान की बस्ती के स्कूलों में हिन्दी माध्यम से पढ़ाई आरम्भ हो गयी। पहले पहले क्या विद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाने लगी। सावरकर का प्रयत्न था कि बालकों के विद्यालय में भी हिन्दी माध्यम लागू हो जाए, किन्तु तब तक उनकी वहाँ से रिहाई का समय आ गया, इस लिए उनका यह काय अपूर्ण ही रह गया।

सावरकर ने हिन्दी सीखने के लिए कुछ छात्र वृत्तियाँ भी आरम्भ कर दी थी। इसमें पढ़ने वाला में उत्साह बढ़ गया। उर्दू के स्थान पर हिन्दी शब्दों का प्रचलन बढ़ने लगा। अब यहाँ के वासी 'शादी' नहीं 'विवाह' आदि शब्दों का प्रयोग करने लगे। अण्डमान बस्ती के कुछ नागरिकों ने इसमें जो योगदान किया था सावरकर ने उनके प्रति श्रुतगता पापित की।

अण्डमान के अपने कारावास के काल में सावरकर की यह महान उपलब्धि थी।

### जेल में हड़ताल

अण्डमान कारागार में राजनीतिक शक्तियों पर जब यातनाओं का क्रम निरन्तर बढ़ता ही गया तो शक्तियों में विद्रोह की भावना पनपने लगी। तब उमर शिपिन ने

निपटने के उपाय सोचे जाने लगे। बंदियों पर अमानवीय यातनाओं का विपरीत प्रभाव पड़ता गया, यद्यपि प्रारम्भ में सबने कदाचित् यही सोचा था कि जेल के नियमों का अन्तर्गत जो कुछ करना पड़े उसे करते हुए यातनाओं का सहन का अभ्यास करना चाहिए। किन्तु निरन्तर अमानवीय यातनाएँ सहना मानव के लिए सहज नहीं होता है। वह विद्रोह कर उठता है। यही सेलुलर कारागार में हानि लगा। कभी-कभी वे बंदी यह भी सोचते कि इतने वय तक यदि यही यातना सहनी पड़ती है तो इससे तो मृत्यु का वरण करना उपयुक्त होगा।

साबरकर के भीतर भी इस निराशा में धर कर लिया था, जिसका उल्लेख हम पिछले अध्याय में कर आए हैं। उसका ही यह परिणाम था कि साबरकर जैसे सुदृढ मानसिक स्थिति के जो बंदी थे, उन्होंने निश्चय कर लिया कि अधिकारियों का शिक्षा देने का एक ही उपाय है कि हड़ताल कर दी जाए। एक पंजाबी नवयुवक क्रान्तिकारी को कोल्हू पर जोता गया। उसकी कद काठी ऐसी नहीं थी कि वह कोल्हू पर न जसी यातना को सहन कर सके। किन्तु जेल में यह सब कौन दण्डता है? फिर भी वह काम करता रहा। १० बजे काम समाप्त कर वह स्नान करने गया तब और जब वह भोजन करने बैठा तब भी, बारी तथा उसके छाटे-भाटे अधिकारी न जाने किस किस भाषा में उसको गाली बगैरह देते रहे और वह भी चुपचाप सहता रहा।

सहने की भी तो कोई सीमा होती है। जब उससे नहीं सहा गया तो उसने बारी को भी दो-चार खरी खरी सुना दी। मामला अधीक्षक तक पहुँच गया। अधीक्षक ने जय युवक से शोर शराबे का कारण पूछा तो उसने बताया कि वह शान्त मन से अपना भोजन कर रहा था कि बारी ने आकर न जाने क्या-क्या कहना आरम्भ कर दिया और उसको भाति-भाति की घमकिया देन लगा।

अधीक्षक को तो जेल के काम से लेना दना था, बंदियों से नहीं। अतः उस युवक को घान कूटन पर लगा दिया गया। इतना ही नहीं ऐसे विद्रोही स्वरो को दबाने के लिए अण्डमान में एक औपधि का प्रयोग किया जाता था। उन लोगों को निरन्तर 'कुनी' दी जाती थी, जिससे कि उनका मस्तिष्क दुबल हो जाए और वे कुछ अधिक सोच ही न सकें। इतना सब कुछ होने पर भी वह युवक झुका नहीं। किन्तु उस को दी जाने वाली यातनाओं में भी कमी नहीं हुई।

जेल के सभी राजबंदियों ने मन ही मन विद्रोह की ठान ली। उनका कहना था कि मरना तो है ही, तो फिर सम्मान के साथ क्यों न मरा जाए। जूझते हुए मरने और विवेक युक्त जीने या मरने की धारणा वाले राजबंदियों ने एकत्रित हो कर कष्ट-कारक काय न करने का निश्चय कर लिया। तब प्रथम बार कोल्हू के कष्टकारक काय से बंदियों ने इन्कार कर दिया। यह हड़ताल थी।

यह हड़ताल अथवा नहीं केवल चार दिन तक चली थी। तदपि राजबंदियों की यह हड़ताल और वह भी बारी जैसे कठोर और क्रूर अधिकारी को खुली चुनौती थी। किन्तु इस हड़ताल का प्रभाव केवल राजबंदियों तक ही सीमित नहीं रहा। चार दिन

तक निरंतर चलने वाली इस हड़ताल से व मध्यमार्गी राजबंदी भी प्रभावित हुए बिना न रहे जो यथास्थिति के साथ साथ सरकारी अधिकारियों का काप भाजन बनने से बचना चाह रहे थे। इतना ही नहीं जेल के गामाया व नी भी इस हड़ताल से प्रभावित हुए। उनके मन में भी यह विचार उत्पन्न हो गया कि हम मात्र बन्दी नहीं हैं, हम मानव हैं और हमारे भी कुछ अधिकार हैं।

जब कोई उपाय न देख सारी का चुकना पड़ा। उसने उस पंजाबी युवक को कोल्हू और धान कूटने के काम से हटा दिया। उनके बाद अब राजनीतिक बंदियों का भी नाहू और धान कूटने से मुक्ति मिली। अब उनको उनकी इच्छानुसार बाहर के खेतों में काम करने के लिए भेजा जान लगा। किंतु वहाँ भी एक बार फिर ऐसी ही स्थिति आ गयी। राजनीतिक बंदियों से जब गाड़ी खींचने के लिए कहा गया तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा 'यह हमारा अपमान है। हम यह कार्य नहीं करेंगे।

बारी, जैसा कि हम बार-बार लिखते आए हैं कि, बड़ा ही चतुर और मक्कार किम्म का प्राणी था। एक दिन उसने अपने हवालदार और जमादार को पहले ही तैयार कर लिया कि राजबंदियों को जेल से बाहर निकालते ही उन्हें गाड़ियों पर जोतना है। उसका इमने उद्देश्य यह था कि राजबंदी गाड़ी पर जुतने से मना करेगा, इससे अधीक्षक को यह पता चल जाएगा कि राजबन्दी कार्य करने से जी चुराते हैं।

इस योजना के अन्तर्गत जब राजबंदियों का बाहर निकाला गया तो उनमें से जो निर्भीक थे विद्रोही स्वर उठाया करते थे, बारी ने उनको ही गाड़ी में जुतने के लिए कहा। उन्होंने तुरंत कहा, "हम मनुष्य हैं, बेल नहीं, हम गाड़ी नहीं खींचेंगे।"

अधीक्षक भी यह सुन रहा था। उसके सामने ही बारी कहने लगा, 'देखा साहब आपने। ये हरामखोर बदमाश हैं। न अंदर कोल्हू जोतते हैं न बाहर गाड़ी। अब आप ही बताइए कि मैं इनके साथ क्या व्यवहार करूँ और इनको कौन सा काम दूँ?'

अधीक्षक ने उस समय बारी का कुछ नहीं कहा और न राजबंदियों का हाँ कुछ कहा। बारी का तो वह जानता ही था, राजबंदियों में क्या कार्य करवाया जाना चाहिए यह भी वह जानता था। अतः उसका यह परिणाम हुआ कि कालांतर में राजबंदी इस अपमान में बच गए।

यद्यपि सावरकर इन सौभाग्यशालियों (?) में से नहीं थे किंतु फिर भी बारी को चने कहाँ? वह तो सावरकर पर भाति भाति के शस्त्र प्रयोग करने में कभी चूकता ही नहीं था। वह जानता था कि सावरकर और उन राजबंदियों में परस्पर मैत्री ही नहीं अपितु सच्चा व्यवस्था भी है और उसके कारण ही उसे यह अपमान सहना पड़ा है। अतः वह सावरकर के पास आ कर उन्हें मन गढ़न कहानियाँ सुनाया करता था, जिनमें राजबंदियों के व्यवहार की आलोचना होती। बातचीत के मध्य बारी अपना

प्रशंसा के पुल बना डालता। हड़ताल करन वाले राजबंदियों की निंदा करता। एक दिन इसी प्रकार में उसने यहाँ तक कहा, “ये लोग व्यर्थ अपना अपमान कराते हैं। य इतन निलज्ज हैं कि गाली गलौज सुन कर अधिवागिया से मुह जोरी करने लगत ह। आप को ऐसे लोगो से सम्पर्क रखना उचित नहीं है। आप पढ़े लिखे है, वरिस्टर हैं” आदि-आदि।

एक दिन बारी न उस पागोरी युवक के विषय में सावरकर से पूछ ही लिया। कहन लगा, “उसे तो पागल कुत्ते न बाटा है। वह कुलीन वंश का नहीं है। अथवा ऐसा भद्दा व्यवहार क्यों करता। क्यों, आप बताइए, उसके विषय में आपके क्या विचार हैं?”

सावरकर को यह निंदा असह्य हो रही थी। उ होन कहा, “दखो, न तो मैं उन राजबंदियों को जानता हूँ, जिन्होन हड़ताल की ह और न उन श्रीमान का जिनकी तुम चर्चा कर रहे हो। तदपि केवल आपक कह दन मात्र में मैं यह मानने का तयार नहीं कि ‘उसे पागल कुत्ते ने बाटा है, वह कुलीन वंश का नहीं है अथवा असभ्य है।’ रहो हड़ताल के औचित्य अनौचित्य की बात। जब अनुचित रूप में उत्पीडन हागा, जब नियमा को ताक पर रख दिया जाएगा तो बंदियों का भी इसके निराकरण क लिए कुछ तो करना ही होगा। ऐसे में हड़ताल के अतिरिक्त अन्य माग हा क्या था?”

यह सुन कर तो बारी सावरकर पर आग-बबूला हा गया। वह क्रोध में नधुन फुटाना हुआ वहाँ से उठ कर चल दिया। किंतु इसका बदला लेन क लिए वह दूसरे दिन उम समय आया जब सावरकर खाना खा रहे थे। उस समय वह सावरकर का चिढ़ाने के लिए अन्य बंदियों के साथ गाली गलौज करने लगा। गाली गलौज करके जब वह चला गया तो सावरकर न उन बंदियों से कहा आप इससे अपमानित अनुभव न करें। यह तो उसकी मूर्खता का परिचायक है। सावरकर उनका समझा ही रह थे कि नभी पटी अपसर आ कर कहने लगा, ‘ऐ बाबू तुम यह क्या कर रह हा?’ बारी साहब देखेगा तो हमारे प्राण ले लेगा।’ उहान यह कहते हुए सावरकर का घसीट कर उनकी कोठरी में बन्द कर दिया।

## भ्रात मिलन

सावरकर के अण्डमान पहुंचन से पूर्व ही उनके बड़े भाई गणेश दामोदर सावरकर अण्डमान पहुँचाए जा चुके थे। सावरकर का इसकी सूचना लंदन में ही मिल गयी थी, जिसका उल्लेख हमने प्रारम्भिक पृष्ठा में किया है। गणेश सावरकर भी अपन छोटे भाई विनायक सावरकर की ही भाँति कभी न चुकने वाल व्यक्ति थे। इसने परिणाम स्वरूप उनका भाँति भाँति की यातनाएँ दी गयीं। सावरकर को जब इसकी सूचना मिलनी तो भाई क कष्टों की कल्पना से उनका हृदय द्रवित हो उठता।



सावरकर अन्ततः ये तो मासव प्राणी ही। दाना भाई एक ही कारागार में ही और परस्पर भेंट भी न कर सकें, यह कभी भाग्य की विडम्बना। सावरकर न जल अधिकारियाँ से इसका लिए अनुनय विनय की तो उन्होंने टासमटोल कर दी। इतना ही नहीं वे तो उनका यह भी बताने के लिए उद्यत नहीं हुए कि उनका भाई उस कारागार में है भी कि नहीं। विवश होकर सावरकर न पटी अफसर और बाडर की घुसामद की कि किसी प्रकार वे उन्हें भाई के दर्शन करा दें।

एक दिन सावरकर का पता चला कि उनके भाई बहुत रुग्ण रहन लग हैं, उन्हें निरंतर सिर पीड़ा सताती है। किन्तु इतने पर भी उनको अस्पताल में नहीं भेजा गया, अपितु उसी कोठरी में ही पड़ने रहने दिया। सावरकर को यह भी पता चला तो उनको मामूली वेदना हाने लगी। तभी अधीक्षक आया और सावरकर ने जब उनसे अपने भाई की बात कही तो उसने अयमनस्कता से उत्तर देत हुए कहा, "तुम अपनी बात कहो। किसी अर्थ के विषय में बात कहने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।" उसने जमादार आदि को मिथवत हुए कहा "एक बरक के बंदी की हण्णता की बात दूसरी बरक के बंदी को किस प्रकार विदित हो गयी? तुम लोग ठीक से निगरानी नहीं रखते। बताओ उसको यह बात किसने बतायी?"

अधीक्षक आदि अधिकारियों के दुष्प्रवहार से दुखी हो कर सावरकर कोई अन्य उपाय सोचने लगे।

अतः में गुप्त सहानुभूति ने काय किया। यह निश्चय हुआ कि शाम के समय जब बंदी दिन भर काय सम्पन्न करके तल आदि ले कर उसकी सौल आदि कराते हैं, उसी समय बाडर की सहायता से भाई के दर्शन किए जाएँगे। कभी-कभी एक विभाग के बंदियों के बरक के अंदर जाने में पहले ही दूसरे विभाग के भी बन्दी छाड़ दिए जाते थे। ऐसे में ही एक दिन जब उनके भाई अपने काम की गिनती कराने आए तो सावरकर अपनी ओर से छोड़े जाने वाले बंदियों में घुस गए और दोनों ने एक दूसरे को देख लिया।

क्षण भर तो गणेश सावरकर अपने छोटे भाई को वहाँ देखकर दिग्भ्रमित से रहे, फिर सहसा उनके मुख से निकला, तात्प्रा। तुम यहाँ कैसे?"

उनके इन शब्दों में कितनी वेदना थी यह कदाचित् सावरकर ही समझ सकते थे। किन्तु इसमें भी अधिक समय तक रहना नहीं हो सका। उनके इतना कहते ही सावरकर कुछ कहते कि तभी पेटी अफसर और बाडर दोनों न ही इस डर से कि वही किसी न अधिकारियों से उनकी चुगली कर दी तो नौकरी जाएगी, दोनों का अलग-अलग खींच लिया।

ज्येष्ठवधु को जब पता चल गया कि उनका कनिष्ठ भ्राता भी उसी कारागार में है तो उन्होंने भी उससे मिलने की चेष्टा की। उसमें सफलता न मिलने पर किसी प्रकार वे सावरकर को छोटा सा पत्र भेजने में सफल हो ही गए। अपने पत्र में उन्होंने लिखा तुम विदेश में रहकर मातृभूमि की मुक्ति के लिए प्रयत्न करते रहोगे, यह

विचार कर मेरा हृदय प्रफुल्लित रहता था और मेरी यातना मुझे तुच्छ जान पड़ती थी। किंतु तुम पेरिस में रहते हुए इनके हाथ कैसे आ गए? अब उस कार्य का क्या होगा? कौन उसे करेगा? तुम्हारा बलिदान और तुम्हारी शक्ति अब सब निरर्थक मिट्ट हो जाएगी।”

बड़े भाई के उस पत्र में कितनी ममतायुक्त वेदना छिपी हुई थी, इसे सावरकर जैसा बलिदानी ही समझ सकता है। सावरकर ने भी तुरन्त अपने पत्र द्वारा उनको आश्वस्त करते हुए लिखा, ‘लौकिक तथा भाग्यादय की राख शरीर में मल कर जूसते रहना—यही तो अलौकिक भाग्य है। ता फिर कुछ क्यों? यदि मैं परीक्षा में असफल सिद्ध होता तो मेरी योग्यता और कृतव्युक्तानों मिट्टी में मिल जाते।” उन्होंने गीता का निम्न श्लोक भी उद्धृत किया—

“सीदति मम गान्धाणि मुखं च परिशुष्यति ।

गाण्डीव सँसृते हस्तात् त्वक्च च परिदहति ॥

“यदि ऐसी स्थिति में पहुँच कर मैं कृतव्युक्त हो जाता तो क्या मुझ पर विश्वासघात का कलक न लग जाता? और क्या उस कलक के कारण मैं अपना सिर ऊँचा करने योग्य भी रह जाता? मैंने यथा प्राप्त सक्ता का सामना करने में स्वाय को तिलाजलि देकर कृतव्य क्षेत्र में डटे रहने का उपदेश औरा को दिया था। उन सक्ता को यदि मैं स्वयं खेलने को निभयतापूर्वक तत्पर न होऊँ तो क्या उससे हम सब कृतव्युक्त नहीं माने जाएँगे? वास्तव में तो उनका खेलने में ही मेरी, आपकी, हम सबकी योग्यता स्वयं प्रकट हो कर रहेगी।

“यशः अपयशः तो योगायोग की बात है। जीवन भर युद्ध करत करते, लोदी के पुल उतरते उतरते तथा आस्ट्रेलियाई को जीत कर भी नैपोलियन अन्त में बिछौने पर लेटा हुआ चल बसता है। किमी एक दूसरी ही लड़ाई में महारानी लक्ष्मीबाई तलवार के एक धाव से स्वर्ग सिधार जाती है। उनका कृतव्य योगायोग पर प्राय निश्चित नहीं होता।

“मैं घमासान युद्ध में पीछे रह कर, छिपकर जीवन बचा रहूँ और अन्त सभी आगे बढ़ कर युद्ध जीतें, जीतत जीतत वीरगति प्राप्त करे मर जाएँ, तो फिर उसका यश देखने के लिए और विजय के उपभोग के लिए मैं पीछे रह जाऊँ? ऐसी स्वायपूर्ण, जनहित विराधी, कायरता भरी इच्छा अपने मन में धारण न करते हुए वह सैनिक जब आवश्यकता पड़ी तो अन्त के साथ-साथ निश्चल हो कर मरण का अग्रभाग में जाकर जूसता रहा अथवा कि नहीं, इसी पर उनकी मूर्खी योग्यता तथा उस कृतव्य का मूल्यांकन होता है।

‘मैं ममयता हूँ कि इस कमीटी पर हम सब घरे उतर हैं। इसीलिए लौकिक तथा भाग्यादय के सुवर्ण बलय में हम जिनकी धयना नहीं मिल पाती उसमें अधिक उम भाग्यादय की राख शरीर पर मल कर आज इस कारागार में एमी कर्णाम्पद स्थिति में हात हुए भी हम मन्ताप के साथ जो रहें। उन सक्ता का धयपूर्ण सामना करना,

अपने कतव्य पालन के लिए कारागार में सड़ते रहना हमने जीवन का ध्येय बना लिया है। यह उतना ही महान है कि जितना बाहर रह कर, कीर्ति तथा दुःदुर्भाग्यो के ताल पर जूयत रहना महान माना जाता है।”

इसके अन्त में सावरकर ने अपना वह पद भी लिख दिया जो बम्बई हाई कोर्ट में सजा सुनते समय उनके मुख से सहसा फूट पड़ा था—

“सारथी जिचा जमिमानी  
कृष्ण जो आणि राम सेनानी  
अशि तीस कोटि तव सना  
ती अह्या बिन याचे ना  
परि करुनि दुष्ट दलना  
रोविलचि स्वारी  
स्वतः त्या चा हिमालया वरि  
झडा जरतारी ॥ जननी ॥

यह पत्र सावरकर ने अपने ज्येष्ठ भ्राता को गुप्त रूप से भिजवा दिया। उनके ज्येष्ठ भ्राता को इससे सात्वना प्राप्त हुई, यह उनको बाद में पता चला। किन्तु उससे अधिक सावरकर की स्वयं उस पत्र का लिखित समय जो धैर्य प्राप्त हुआ, वह उनकी उस समय डावाडोल स्थिति से उठने के लिए औपम्य रूप सिद्ध हुआ है। इससे उनके मन में नवचतय का संचार हुआ।

सावरकर ने अपनी पुस्तक ‘माझी जंमठेप’ में इसका विस्तार से वर्णन किया है। यहाँ उसका सारांश ही प्रस्तुत किया गया है।

### पत्राचार एवं समाचार

कालापनी की सजा पाए बंदियों को कारागार में जो यातनाएँ दी जाती थी, उनकी गणना हम पिछले पृष्ठों में कुछ कर चुके हैं। इन राजबंदियों को सर्वाधिक कठिनाई अथवा परेशानी यह होती थी कि उनको अपने देश, समाज, परिवार तथा मित्रों से सबंधा सम्बंध टूट जाता था। भारत के कारागारों में रहते हुए तो कभी-कभी दो-चार मास में उनसे भेंट का अवसर प्राप्त हो जाता था, कभी-कभी पत्र व्यवहार भी हो सकता था, इसके अतिरिक्त रिहा हुए बंदियों तथा नए आने वाले बंदियों के माध्यम से भी कुछ सूचना और समाचार मिलने की सम्भावना होती थी। इन्हीं ही नहीं यदि बंदी को किसी प्रकार दुष्ट अथवा कष्ट है और जेल अधिकारी उनकी प्राधना को नहीं सुनते तो बाहर आने वाले बंदियों के माध्यम से देश का समाचार पत्रों में उन कष्टों को प्रकाशित करवाया जा सकता था।

किन्तु अण्डमान में रहकर तो बंदी पूरे देश से ही कट जाते थे।

अण्डमान में जो चार छ अग्र अधिकारी थे वे परस्पर इतने सम्बद्ध होते थे कि उनमें से यदि किसी को दुष्टाचार की किसी अथवा शिकायत भी की जाए तो

उसे वे अपनी बैठकी में हँसी मजाब का विषय तो बनाते ही थे, बन्दी को भी अपमानित कर देते थे। उनका सायकाल एक साथ खेलना, एक साथ भोजन करना, रात्रि को एक साथ नृत्य में लीन रहना तो नित्य ही होता रहता था। इस स्थिति में कोई किसी के विरुद्ध शिकायत सुने भी तो किस प्रकार ?

अण्डमान का बन्दी अपने परिजनो को वष भर में केवल एक पत्र ही लिख सकता था और उसमें भी जेल अधिकारियों का यह निर्देश होता था कि थोड़ा लिखो, केवल अपना कुशल समाचार ही लिखो अधिक कुछ नहीं लिखो। उस पत्र को भी पहले जेल अधिकारी पढ़ता और उसके बाद उसको उपनिवेश के अधिकारी के पास निरीक्षण के लिए भेजा जाता। वहाँ से स्वीकृति मिलने के उपरांत ही वह पत्र आगे भेजा जाता था।

ऐसे पत्रों में अपना दुखड़ा, जेल की समस्या अथवा जेल में मिलने वाली यातनाएँ या नियमानुसार भी न दी जाने वाली सुविधाओं का उल्लेख करना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं था। फिर बाहरी समार को अण्डमान के बन्दीयों के कष्ट और दुःख का समाचार मिले भी तो किस प्रकार मिले। बन्दीयों को पहले ही बता दिया जाता था कि यदि पत्र में अनावश्यक कोई बात पाई गई तो वह पत्र आगे नहीं भेजा जाएगा। इतना ही नहीं उसको दूसरा पत्र लिखने का भी अवसर नहीं दिया जाएगा। इससे अतिरिक्त भी वष में एक पत्र न लिखने का अवसर न मिलने के भी अनेक बहाने थे। जिनसे बन्दी को बचकर रहना हाता था। अपन इस अधिकार को बनाए रखने के लिए बन्दी को जेल के सत्यकथित नियमों का पालन करना आवश्यक हो जाता था।

राजनैतिक बन्दीयों के वहाँ पहुँचाए जाने पर उन्होंने जो सघप किया था उससे जेल अधिकारी कुछ नियमों के पालन में ढील देन लग थे और कुछ ढील उन्हांन अपनी स्थिति और सम्मान बनाए रखने के लिए भी देनी आरम्भ कर दी थी। तदपि राजनैतिक बन्दीयों ने तो दो दो वष तक अपन परिवार वालों को पत्र नहीं लिखे और न ही उनको अपने परिवार वालों की कोई सूचना मिल पायी।

जब सामान्य पत्रों की यह बात थी तो फिर शिकायतें किस प्रकार भेजी जा सकती थी। जेल में रहकर ही जो शिकायतें की जाती थी उनकी जाँच या समस्याओं के निराकरण के लिए अधिकारियों का कभी कोई प्रतिनिधि मण्डल आता ही नहीं था। हा व भी साल छ महीने में एक बार मजिस्ट्रेट अवश्य आ जाता था। किन्तु वारी का विरोध करने का साहस उस मजिस्ट्रेट में भी नहीं होता था। जो कोई भी आवेदन भेजता हो, वह अण्डमान के उपायुक्त के माध्यम से ही भारत सरकार को भेजा जा सकता था। किन्तु इनमें भी यदि किसी आवेदन में जेल अधिकारियों की शिकायत होनी तो उसको आयुक्त तक पहुँचने से पहले ही फाड़ कर फेंक दिया जाता था।

थपड़ा फसाद की घटना की सूचना ऊपर तक पहुँच जाए इसके लिए भी जेल अधिकारियों मावधानी बरतते थे। क्याकि ऐसी सूचना मिलने पर उसकी जाँच के लिए अधिकारियों का आना सम्भव हो जाता था। अण्डमान से कोई सौभाग्यशाली

होना जा मुक्त होकर अपने देश का जा पाता । भारत की जेला से तो बंदी मुक्त होकर जात रहते थे । अतः उनके माध्यम से भी शिकायतें बाहर चली जाती थी और समाचारों में प्रकाशित भी हो जाती थी, किंतु अण्डमान से कौन मुक्त होकर जाता ? अतः बंदियों के माध्यम से भी शिकायतें पहुंचाना सम्भव नहीं था । बंदियों के सम्मुख यह बहुत बड़ी और विकट समस्या थी ।

## होतीलाल का साहस

इस प्रकार की विकट एवं सख्त प्रतिफल परिस्थिति में भी राजनीतिक बंदियों ने अपनी समस्याओं का विवरण भारत सरकार के काना तक पहुंचाने का सफल किया । प्रश्न यह था कि जिल्ली के गले में घण्टी बांधे कौन ? इन्हीं राजनीतिक बंदियों में होतीलाल नामक एक उत्तर प्रदेश के राजनीतिक बंदी थे । प्रारम्भिक पृष्ठों में हम इनका उल्लेख कर आए हैं । राजद्रोह के अभियोग में दम बप का दण्ड पाकर वे जेल भ्रमण भोगने के लिए अण्डमान भेजे गए थे । उन्होंने यह दुष्कर कार्य करने का सफल अपने साथियों को बताया ।

राजबंदियों ने जो हड़ताल करवाई थी, उसका प्रभाव अब तक साधारण बंदियों पर भी पड़ चुका था । हड़ताल के कारण जा सुविधाएँ प्राप्त हुई थी उससे वे भी लाभान्वित हुए थे । वे यह आशा लगाए बैठे थे कि राजबंदियों में बैरिस्टर, प्रोफेसर सम्पादक तथा बड़े बड़े पढ़े लिखे लोग हैं, ये ही कुछ करके जेल अधिकारियों के अनावश्यक उत्पीड़न से मुक्ति दिला सकते हैं । वे जानते थे कि यदि वे इन राजबंदियों की कुछ सहायता करगें तो अवश्य उनका लाभ होगा ।

उसी का परिणाम था कि इस प्रकार के एक बंदी ने एक दिन होतीलाल के कहन पर उनका एक कागज और लिखन का साधन उपलब्ध करा दिया । और अबसर पाकर बाबू होतीलाल वर्मा ने भी पत्र लिख लिया । होतीलाल हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी भाषा के अच्छे ज्ञाता थे । जेल आन से पहले वे चीन, जापान, रूस आदि जनक दशा की यात्रा कर वहां स्वतंत्रता की अलख जगा चुके थे । जेल में आने के बाद भी कोहू के समय जा हड़ताल हुई थी उस समय बारी में लेकर सुपरिटेण्डेंट तक का उन्होंने परेशान करके उनकी नाक में दम कर दिया था । इसने लिए उनको 'विगड' हुआ घोषित कर उनका तनहाई में घाद कर दिया गया था ।

तनहाई की उमी एकांत काठरी में किसी प्रकार अक्षर पक्षर करके एक लम्बा चौड़ा पत्र लिखकर तैयार कर लिया । उस पत्र में उन्होंने जेल की सारी दुदशा और बंदियों की दयनीय दशा का मार्मिक वर्णन किया था । पत्र के अन्त में होतीलाल ने अपने हस्ताक्षर किए और जेल की अपनी काठरी का नम्बर भी उस पर अंकित कर दिया ।

जेल के बाहर से बाहर जान वाले एक विश्वस्त बंदी ने होतीलाल को आश्वासन

दिया कि वह किसी न किसी प्रकार गुप्त रूप से इस पत्र को बाहर ले जाएगा और वहां जाकर किसी लिफाफे में बंद करके उसको भारत के लिए रवाना भी कर देगा। यह वीर दया के सोभाग्य की बात थी कि उस गद्दी को इस काय में सफलता प्राप्त हो गई।

अण्डमान कारागार से होतीलाल वर्मा का लिखा वह पत्र कलकत्ता के प्रखर राष्ट्रवादी पत्रकार सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का मिल गया। उस पत्र को बनर्जी माशाय ने अपने पत्र 'दि बंगाली' में न केवल प्रमुखता से प्रकाशित किया अपितु उसके साथ ही अपनी सम्पादकीय टिप्पणी लिख कर अण्डमान कारागार में राजनीतिक विद्वानों के साथ हाने वाले अत्याचार और उनको दी जाने वाली यातनाओं की कड़े शब्दों में भत्सना की। पत्र के अन्त में उन्होंने होतीलाल के हस्ताक्षर और उसकी बैरक तथा कोठरी नम्बर भी छाप दिया। 'दि बंगाली' में उस पत्र के प्रकाशित होते ही देश की अन्य भाषाओं में अनेक पत्रों ने उस पत्र को प्रकाशित किया। अनेक पत्रों ने इस विषय में सम्पादकीय टिप्पणियाँ भी लिखीं।

भारत के समाचार पत्रों में उस पत्र के प्रकाशित होते ही समस्त विश्व में अण्डमान में किए जाने वाले अत्याचार और दी जाने वाली यातनाओं की चर्चा होने लगी। विधान परिषद में इस विषय पर प्रश्नात्तर हुए।

भारत में तो उस पत्र ने हलचल मचा दी। किन्तु अण्डमान के बन्दी यह किस प्रकार जान सकें कि वह पत्र अपने गन्तव्य तक पहुँचा जयवा नहीं, यदि पहुँचा है तो उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई है। इसका समाचार वीर दया के मिलना कठिन था।

किन्तु बारी ने उन पर यह कृपा भी कर ही दी। भारत सरकार का उसकी करनी का पता लग गया है, यह समाचार जब बारी को मिला तो उस सुनकर वह आग बरूला हुआ गया। उसी स्थिति में वह कारागार में जा गया। उसके हाथ में उसका चिरपरिचित काला लट्ठ था। न केवल विद्वानों का अपितु पटी अफमरा, बाइरो आदि का गालियाँ बकना हुआ वह सार जेल परिसर में सहलका मचाने लगा। उस समय जो भी बन्दी उसके सामने पड़ा उसने उसको भी भद्दी सी गाली दे मारी। बारी अपने अजीनस्थ पर चिल्ला रहा था, 'साला सोच तुम क्या बर्दास्त रखना है? एक दिन तुम हम सबको मिट्टी में मिला देगा।

किन्तु किसी को पता नहीं चल रहा था कि हुआ क्या है और बारी इतना रूढ़ क्या है। उसको इस प्रकार वीरलताते दज्जर बन्दीजन ही नहीं अपितु उसके अपने कमचारी भी यही समझने लगे कि वही उसको वानगजूरों ने तो नहीं काट लिया जा वह इतना बीरवा रहा है? अण्डमान में यदि किसी का कान पजूर काट ले तो मनुष्य पागल हो जाता है।

पागलों की भाँति भौंकता हुआ बारी सीधा होतीलाल की कोठरी के सामने जा खड़ा हुआ। वहाँ पहुँचते ही उसका पारा सातवें से भी ऊपर के, आसमान पर

जाकर चंड गया। वहाँ जाकर वह जोर से चिल्लाने लगा, "तुम बड़ा झूठा व भक्ता है। पड़े हो जाओ। जल्दी क्यों नहीं करता।"

उसे इस प्रकार धोखाता हुए दरबार वहाँ के अय बन्दी तो इस बारा की व्यथ बकवास ही समझते रहे किंतु हानीलाल वर्मा समझ गए कि उनका तीर निशान पर लग गया है। उनका पत्र पहुँच गया है और वह प्रकाशित हो गया है। तभी तो यह आग बबूला होकर पागलों की भाँति चिंघाड़ रहा है।

होतीलाल वर्मा पर जो भरकर गालियों की बौछार करके, बारी न टाल, पटी जफसर और खाडर और अय बन्दिया का पत्र निर्देश दिए कि यदि वाई राज नीतिक बन्दी एक दूसरे के पास भी पड़ा हुआ दिखाए द गया तो वह उन्हें जान स मार डालेगा। उसने यह दिया कि आज से राजनीतिक बन्दी दूर-दूर पर बँधकर खाना खाएंगे। यदि कोई अय बन्दी भी उनके पास तक जाना दिखाई दिया तो उनका भी बड़ा दण्ड दिया जाएगा।

इस प्रकार आधा घण्ट तक बारी इधर उधर भाँकता चिल्लाता और भाँति भाँति के निर्देश देता हुआ वहाँ से चला गया।

जिन जिन बन्दियों को हानीलाल द्वारा लिखे पत्र के भारत भजन के विषय में सूचना थी वे तो समझ गए कि माजरा क्या है। उनका बड़ी प्रसन्नता हो रही थी कि यहाँ से भेजा गया पत्र भारत के समाचार पत्र में प्रकाशित हो गया है।

उसी प्रकरण में बारी ने एक दिन सावरकर से कहा कि हातीलाल ने बहुत बुरा किया है। इसका बुरा परिणाम उसको भी भुगतना ही पड़ेगा। इसका साथ ही उसने यह भी कहा कि 'दि वगाली' समाचार पत्र, जिसमें हानीलाल का वह पत्र छपा था, उसको सरकार ने जल कर लिया है। यह झूठी बात उसने अपनी खास मिटान के लिए कही थी, जब कि ऐसा कुछ नहीं किया गया था।

इस घटना का भी कारागार में दो प्रकार का प्रभाव हुआ। एक तो जा बन्दी कुछ कुछ जादमसम्मानी थे, उनको लगा कि होतीलाल ने जिस माहम का काम किया है वह अभिनन्दनीय है। इससे होतीलाल को तो उतना लाभ होगा भी नहीं जितना कि इसका कारण अय बन्दियों का हाने वाला है। इस कारण वे हातीलाल के प्रति कृतज्ञता अनुभव करते थे और अवसर मिलन पर उस शायित भी कर देते थे।

कुछ दूसरे प्रकार के बन्दी भी थे, जो इस अवसर से व्यक्तिगत स्वाथ सिद्धि करना चाहते थे। वे बारी के कहने पर होतीलाल के इस काय की निंदा करत फिरत थे। वे बन्दियों को यह भी कहा करत थे कि होतीलाल के इस कृत्य के कारण अब जल अधिकारी बन्दिया के साथ और भी अधिक कठोर व्यवहार करेंगे। इस प्रकार बारी की ओर से वे स्वयं बन्दियों को आतंकित कर स्वयं के लिए बारी से कुछ सुविधा की आकांक्षा करते थे।

सावरकर इस विषय में अपने साथी बन्दियों के जब भी आमने-सामने हान का अवसर पाते उन्हें समझाते रहते कि हमें इस प्रकार के आन्दोलन को चालू रखना

होगा तभी हम कुछ सुविधाएँ प्राप्त करते रहेंगे। अथवा एक बार के विस्फोट से तो कुछ ही दिनों में बात आधी-अधी सी हो जाएगी। न केवल इतना वे तो यह भी कहते थे कि हमें भारत के कारगारों में भी इसी प्रकार के आंदोलन करवाना चाहिए। उनका कहना था कि आन्दोलन पत्रों, हड़तालों या सघप के माध्यम से हमें इस काम में जुट जाना चाहिए।

बारी ने जब सावरकर को बताया कि 'दि बंगाली' प्रेस सरकार न जन्म कर लिया है तो सावरकर ने उसको भी उत्तर देते हुए कहा था, 'मुझे तो विश्वास नहीं होता कि ऐसा हुआ होगा। उस पत्र के छपने के बाद उसमें लिखी शिकायतों की जांच की जानी चाहिए थी। यदि जांच के बाद शिकायतें सच पायीं जाएं तो उन्हें दूर किया जाना चाहिए। यदि शिकायतें गलत निकलें तो हात्तीलाल को दण्ड दिया जाना चाहिए। क्योंकि पत्र पर तो हात्तीलाल के हस्ताक्षर थे। इस कारण प्रेस को अधिकार में लेने का क्या औचित्य है?'

बारी इसका क्या उत्तर देता। सावरकर ने ही फिर कहा, "यदि बन्दियों की यातनाएँ दूर करने के लिए, जेलों में सुधार लाने के लिए, एक नहीं अनेक प्रेस भी जन्म करवाने पड़े तो चिंता नहीं की जाएगी। भारतवर्सी इसे अपना कर्तव्य मानेंगे।"

### बन्दियों की समाचार ऐजेन्सी

बारी ने 'दि बंगाली प्रेस' के सरकार द्वारा अधिग्रहण की जाग तो कम से कम लगा ही दी थी। अब हरेक कोई यह जानने के लिए उत्सुक रहने लगा कि क्या वास्तव में सरकार ने उसे जन्म कर लिया है? किंतु यह समाचार मिले तो कहा से मिले? इसका अनिश्चित भी ये राजबंदी भारत में क्रान्तिकारी आंदोलन की गति क्या है, इसे जानने के लिए भी उत्सुक रहते थे। देश की स्वाधीनता के लिए विभिन्न राजनीतिक पक्ष क्या क्या गतिविधियाँ चला रहे हैं, इसको जानने की भी उनको उत्सुकता रहती थी।

समाचार प्राप्त करने का एक मात्र साधन था नया आन वाता 'चालान'। अर्थात् नए बंदी का आगमन। प्रतिमास भारत से अनेक बन्दी अण्डमान भेजे जाते थे। इन नवागतों को अण्डमान में प्रथम एक सप्ताह तक बड़ा ही महत्व प्राप्त होता था। हर कोई उनसे देश के समाचार जानने के लिए उत्सुक रहता था। परिचित अथवा अपनी भाषा अथवा प्रान्त के बंदी को पाकर तो उसके प्रति असीम आत्मीयता का भाव होने लगता था। उसे 'हमारा मुलकी, हमारे देश का बहकर सम्बोधित किया जाता था। किंतु इनमें से अधिकांश अशिक्षित और अपराधी होते थे, जिन्हें वाह्य संसार का विशेषतया राजनीतिक गतिविधियों का उतना कुछ ज्ञान नहीं होता था। इस अवस्था में उनका उत्तर होता था, 'कुछ नहीं, चारों ओर शान्ति है।' कोई-कोई यह बता देता था कि अमुक बड़ा नेता पकड़ा अथवा छोड़ दिया गया या अमुक बड़ा साहजिक मारा गया आदि आदि।



इस समाचार व्यवस्था में सबसे अद्भुत काय किया पञाब के एक महान नेता क तरण पुत्र ने। वे महाशय देशभक्ति का काय करते हुए देशद्रोह के अभियोग में पञाब की कारा में अपनी कारागार की अवधि जिता रहे थे। जब उनकी पता चला कि अमुक बंदी शीघ्र ही अण्डमान जाने वाला है तो उन्होंने उसके जाने का समय नात किया और यथा समय उसके पास जाकर उसके गने में लटकाए जाने वाले बिल्ल के पीछे सावरकर के लिए एक संदेश लिख दिया।

पञाब से अण्डमान तक पहुँचने में उस बंदी की कितने ही स्थानों पर, कितनी ही प्रकार की तलाशी ली गयी होगी। किंतु बिल्ले पर किसी का संदेह गया ही नहीं। अण्डमान पहुँचकर अवसर मिलते ही वह बन्दी सावरकर के पास गया और उसने बिल्ले पर अंकित संदेश उनका दिखाया। सावरकर ने उसे पढ़ा और फिर उसकी मिटा दिया।

बंदियों की विशपतया राजनीतिक बंदियों का समाचार पत्र तो क्या समाचार पत्रों के फट हुए टुकड़े भी दिखाए जाने पर प्रतिबन्ध था। फिर भी बंदीगण किसी भी प्रकार बाहर से समाचार पत्रों के टुकड़े एकत्रित करने का यत्न करते रहते थे। सावरकर ने मास्ती जेम ठेप में एक स्थान पर इस विषय पर ध्यान्य करते हुए लिखा है, 'उन दिना तो अण्डमान कारागार में एक बार कोई हाथी अंदर लाना चाह तो कदाचित्त उसको इस काय में सफलता प्राप्त हो जाए और उसकी क्षमा कर दिया जाए। किंतु समाचारपत्र का काद एक टुकड़ा भी कारागार में पहुँचाना किसी भी प्रकार क्षम्य नहीं था। यह अक्षम्य अपराध माना जाता था।'

इसके लिए तो कितने ही कष्ट उठा कर भी जखवार का टुकड़ा प्राप्त करने के आकाँक्षी राजनीतिक बन्दी अनेक बार गाड़ी घीचन जसा कष्टकर और अपमानजनक कार्य भी स्वीकार करते हुए समाचार पत्रों के टुकड़े चुपचाप एकत्रित कर लिया करते थे। कारागार का कचरा जिन गाड़ियों में भर कर बाहर फेंकने के लिए भेजा जाता था वे उन्हें खींचते हुए बाहर ले जाते। बाहर गये अधिकारियों के बगल पर रहते समाचार पत्र, उनके टुकड़े, फटी पुरानी पत्रिकाओं के पृष्ठ, जो भी मिल जाता, उसे उठाकर वे गाड़ी में छिपा लेते थे। फिर अंदर आकर उन टुकड़ों को कचरे की पटी में छिपा देते थे। तब फिर जाते जाते बाहर आने की आस बचाकर उनका पढ़ते।

उन टुकड़ों में किसी में क्रिकेट का काद समाचार होता तो किसी में एडिवांस का कोई पत्र अथवा किसी उपयोग का कोई अंश या फिर वही १८५७ से सम्बंधित भी कुछ मिल जाता करता था। उन टुकड़ों में भारत का यदि नाम भी दिखाई दे जाय तो बंदी मन ही मन प्रमन हाकर ध्यान से उसे पढ़ता। कभी कभी इन टुकड़ों में कुछ महत्वपूर्ण सूचना भी मिल ही जाती थी। इसी में एक दिन किसी गाड़ीवान को तूतिकोरिन के विन्यास अभियोग की जानकारी देने वाला समाचार-पत्र का एक टुकड़ा मिल गया। उसने उसकी छिपा लिया और अदसर मिलन पर उसे उसके का सावरकर का दे दिया। सावरकर को वह टुकड़ा सौंप कर उस बन्दी का जो

आत्मसन्तोष हुआ वह वणनातीत था। अंग्रेज अधिकारियों के बँगलो पर काम करने वाले बंदी किसी प्रकार समाचार पत्रों के टुकड़ा को छिपा कर रखते और अवसर मिलने पर सावरकर को दे देते।

जब प्रत्यक्ष में देने का अवसर नहीं मिलता तो समाचार पत्र के इन टुकड़ा का कभी खिड़की से भीतर फेंकने का यत्न होता तो कभी नालियों के माध्यम से भीतर की ओर ठूसने का। यहाँ तक कि यदि पूरा टुकड़ा न जाए तो उसको फाड़कर भेजा जाता था और बाद में भीतर वाला बंदी उन टुकड़ों को जोड़कर उनको पढ़ता था।

सावरकर ने 'माझी जम ठेप' में लिखा है "कभी-कभी बारी भी हमारे लिए 'सवाद दाता' का काम कर दिया करता था। स्वाधीनता के विपरीत अथवा हमें हतोत्साहित करने वाली कोई घटना घटित हानी तो उसको लेकर वह हमारे पास आ जाता करता था। एक दिन शाम के भोजन के समय बारी आया और बोला, 'सावरकर! आप सदा नया समाचार सुनना चाहते हैं न? सा, आज एक नया समाचार है। गोखले का निधन हो गया है।'

'समाचार सुनकर मुझे ठेस लगी। यह देख बारी कहने लगा, 'गोखले तो आपके विरोधी थे?' मैंने कहा, 'जी नहीं। मतभेद भले ही हो किंतु विरोध नहीं था। भारत वष की वर्तमान पीढ़ी के वे उत्कट दशभक्त और समाजसेवी थे।' बारी बोला 'आपके अभियोग में आप पर उनके विरोध में पड़्य-रचन का आरोप था। उन्होंने तो यहाँ तक कहा था कि जब तक आप को पकड़ा नहीं जाएगा शांति प्रस्थापित नहीं हो सकती।' इसके उत्तर में मैंने कहा, मैं सब निराधार बातें हूँ उनकी राष्ट्रभक्ति और विद्वत्ता को कैसे नकारा जा सकता है?

'कुछ और बातें आप के उपरान्त जब बारी जाने लगा तो उसने अपनी डायरी में लिखा 'ऊपरी तौर पर ये महाराष्ट्रीय परस्पर चाह जितने विराधी हैं, किंतु उनमें आन्तरिक एकरता है।'

गोखले के विषय में बारी ने गलत नहीं कहा था। गोखले को तिलक एवं उनके साथी तथा अनुयायी मदा प्रतिद्वंद्वी के रूप में दिखाई दत्त थे, इसलिए उनकी सावरकर को पकड़वाने में रुचि प्रकट करना साधक ही था। किंतु सावरकर अपने मन में प्रत्येक दशभक्त, चाह वह किसी वग से सम्बन्धित क्यों न हो, के प्रति आदर और श्रद्धा रखते थे।

ये दिन बीत रहे थे कि कुछ दिन बाद राजबंदिवा का यह समाचार मिला कि बारी द्वारा प्रसारित समाचार कि 'दि बंगाली' को जलाने का प्रयत्न किया गया है निराधार और झूठा है। कुछ दिन बाद तो सावरकर का उस समाचार पत्र का वह टुकड़ा भी प्राप्त हो गया जिसमें वह तहसका यत्ना देने वाला समाचार प्रकाशित हुआ था। इतना ही नहीं अपितु सावरकर को कोल्हू में जीत जान का समाचार भी भारतीय समाचार पत्रों में प्रकाशित हो गया था। वहीं समाचार बाद में अमरीकी पत्रों में भी प्रकाशित हुआ।

अभिनेत्र भारत के सदस्या ने उस समाचार की सहस्रो प्रतियाँ तैयार कर उनको

अमेरिका में रहने वाले भारतीयों में वितरित कर दिया। उस का जो प्रभाव उन भारतीयों पर हुआ उसकी सूचना अण्डमान के राजबंदियों को तब मिली जब पजाव के लाहौर पटवर्तन अभियोग के श्रांतिकारियों को दण्ड देकर अण्डमान कारागार में लाया गया।

## आशा की किरण

‘दि बँगाली में जिन दिनों हातीलाल वर्मा का पत्र छपा था वे दिन ‘सम्राट’ के राज्यारोहण समारोह के दिन थे। अण्डमान में राजनीतिक बंदियों को दी जाने वाली यातना का समाचार पढ़ कर भारत के देशभक्त जनो में रोष व्याप्त हो गया था। कभी कभी यह चर्चा भी सुनने में आती थी कि कदाचित् राज्याभिषेकोपरान्त जाज पंचम भारत आएगा और सम्भवतया भारत में भी समारोह मनाया जाएगा, तब उस उपलक्ष्य में राजनीतिक बंदियों को, जिनमें सावरकर भी सम्मिलित समझे जाते थे, अण्डमान से मुक्त कर दिया जाएगा। कारागार में जब यह समाचार प्रसारित हुआ तो बंदियों में इस प्रकार की आशा का संचार होने लगा कि अब शीघ्र ही उनकी यातनाओं का अंत होने वाला है।

कुछ व दी इस विचार के थे कि समारोह तक की अवधि तक यदि जेल अधिकारियों को अपने व्यवहार से प्रसन्न रखा जाए तो कदाचित् मुक्त होने वाली में उनका नाम आ जाए। उसका परिणाम यह हुआ कि इन कायरतापूर्ण विचारों के जो बंदी थे उन्होंने अपनी उग्रता को शांत कर लिया। वे सरल, शांत रहने लगे। अधिकारियों का इसकी भनक मिली तो वे उनका नाजायज लाभ भी उठाने लगे। बंदी यदि किसी कार्य के लिए इनकार कर देता तो अधिकारी कहते, ‘दखो, जमी छुबली आ रही है हम तुम्हारा नाम रिहाई की सूची में भेजने वाले हैं।’ वस, फिर क्या था। मुक्ति की आशा में बंदी उनके सम्मुख द्रविड प्राणायाम करने लगते।

किंतु जो बंदी आजम कालापानी का दण्ड भुगत रहे थे, वे जानते थे कि चाह कुछ भी हो जाए, उनकी मुक्ति सम्भव नहीं है। राज्याभिषेक पर मुक्ति की अफवाह का सावरकर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। किंतु अगले राजबंदी बड़े प्रसन्न रहने लगे थे। महा तब कि घर जा कर क्या क्या करना होगा वे इसकी भी याचना करना लग गए थे।

इसका एसा प्रभाव हुआ कि बंदी कल्पनाएँ करते कि अब वे अपने उन परिजनों के मध्य में पहुँच जाएँगे, जिनके जीवन भर दशनों की आशा ही नहीं रहा थी। घर जा कर उन्हें अपने जेल जीवन के समाचकारी संस्मरण सुना कर उनका मनोरंजन करेंगे। यहाँ तक कि बँगालिया ने महाराष्ट्रियों को और महाराष्ट्रियों ने बँगालिया का अपने अपने यहाँ आने के निमन्त्रण तक देने आरम्भ कर दिए। सावरकर का भी इस प्रकार के निमन्त्रण मिलने लगे। लोग यह भूल जाते थे कि सावरकर को दो आजम कारावासों का दण्ड मिला हुआ है। उनके बँगाली साथी उनकी आशा दिलाते

हुए कहते, “सात्या ! हमारे साथ आप भी अवश्य मुक्त होंगे।”

ज्यो-ज्या समारोह निकट आता जाता या अफवाहों की सीमा भी बढ़ती जाती थी। समारोह के अवसर पर अण्डमान कारागार में चारों ओर सफाई आदि होने लगी। बंदियों के मनो में यही आशा थी कि हम अवश्य मुक्त होंगे। कदाचित् कुछ अधिकारी भी इसी दिशा में सोचते थे।

राज्यारोहण की पूर्व संध्या पर सब बंदी जन सायंकाल का भोजन करते हुए यही कल्पना कर रहे थे कि कब उनका मुक्ति दिवस होगा। वे आनंद मना रहे थे, जमादार भी उनके उस आनंद में सम्मिलित थे। तभी खान दौड़ता दौड़ता आया और सावरकर का हाथ पकड़ कर कहने लगा, “बालिस्टर साहब ! आप छूट गए हैं।”

अण्डमान कारागार में बारी के तीन त्रिशूल माने जाते थे—खान, पठान और जमादार। यह खान दुष्टों में तृतीय श्रेणी का दुष्ट माना जाता था। इन तीन त्रिशूलों में से एक त्रिशूल वही खान उस दिन इतना मज्र और इतना उदार बन चुका था। कदाचित् उसने भी यही सोचा होगा कि एक दो दिन में सब मुक्त हो ही जाएँगे तो फिर वह सावरकर से क्यों द्वेष करे। मुक्ति के बाद फिर कभी उसने कोई जघम्य कृत्य किया तो कदाचित् सावरकर बैरिस्टर के रूप में उसके काम आ जाएँ।

खान वही पर सावरकर का अभिनंदन करने लगा वहाँ एकत्रित राजबंदियों से कहने लगा, “बड़े बाबू छूट गए हैं।”

सावरकर ने उससे पूछा, “तुम्हें किसने बताया है?”

“बुद बारी साहब ने हम सबको हुकम दिया है कि बाहर के सब जमादारा का घंटाओ कि कल उनको यहाँ बुलाया गया है। उन्हें दूसरे द्वीप पर ले जा कर बंदियों को जहाज में खटाना होगा।”

सावरकर ने फिर पूछा, “मैं भी छूटूँगा, यह तुम्हें किस प्रकार पता चला?”

‘मैं बारी साहब से आपके बारे में पूछा तो वह हँस दिया।’

उस समय सावरकर के मन में भी एक बार मुक्ति का विचार कौंध ही गया था। सोचने लगे कि कल कदाचित् मुक्ति मिल ही जाए। तभी खान की बात सुन कर सभी राजबंदी उनसे कहने लगे अब तो आपको विश्वास हो गया है? सावरकर ने नकारात्मक उत्तर दिया तो तभी एक तरुण बंदी ने सावरकर के गले में लटके बिल्ले को हाथ में पकड़ा और कहने लगा, “कल यह बिल्ला आपने गल से निकाल दिया जाएगा।”

सावरकर ने उससे कहा, “तुममें से कुछ भले ही छूट जाएँ, किंतु मैं नहीं छूट सकता। मुझे तो बसे भी दोहरा दण्ड मिला हुआ है, अर्थात् पचास वर्ष का दण्ड। तथापि आप लोगों के मुक्त होन पर मुझको उतनी ही प्रसन्नता होगी, जितनी स्वयं मुक्त होन में हाती।’

सावरकर के उस प्रकार के निराशापूर्ण वाक्यों को सुन कर उस तरुण के मन

मे न जान क्या विचार आया कि उसने उनसे गले में सटके बिल्कू का छींच लिया। तबड़ी का बिल्कू टूट गया और सावरकर के गले में जज़ार छींचने में पारीच आ गयी। वही उपस्थित सभी बंदी, इस बिल्कू टूटने की भी अच्छा झुकन मान कर सावरकर के मुकन हान के प्रति आश्चर्य से हाँ गए थे।

उस समय सावरकर ने कहा, “नो, मरी भी भविष्यवाणी सुन लो। मुक्ति होगी ज़रूर नहीं, यह तो भविष्य की बात है। किन्तु बिल्कू टूटने के अपराध में मुझे दण्ड अवश्य भागना पड़ेगा।”

रात बीती, अगला दिन आया। उस दिन उस तरुण बंगाली तथा सावरकर को छाड़ कर शेष सभी राजनीतिक बन्दिना का कारागार के द्वार के समीप बुलाया गया। सभी बंदी प्रसन्न मन उधर जा रहे थे। उनको तथा कि जमे उसी समय उनका मुक्ति का परवाना मिलने वाला है। बागी भी उस दिन नये नये कपड़े धारण करके उपस्थित था। सुपरिटेण्डेंट भी उपस्थित था।

प्रत्येक बंदी का नाम पुकार कर उसको बुलाया जाने लगा। उनको बताया जाँ लगा कि घण्टे में एक माह की सजा में छूट दी जा रही है। सावरकर के बड़े भाई का नाम भी उस सूची में था।

किन्तु बन्दिना का यह छूट का समाचार प्रसन्नतादायक सिद्ध नहीं हुआ। उनके मुख पर निराशा के बादल छा गए थे। वे तो कारागार से मुक्ति की आशा लगाए वहाँ एकत्रित हुए थे।

राज्याराहण के उपनक्ष्य में उस दिन सब बन्दिना को आलू भात का विशिष्ट भोजन अवश्य दिया गया। हाँ, यह भोजन सावरकर और उस बंगाली युवक का भी मिला। इसके साथ ही बिल्कू तोड़ने के अभियोग में सावरकर को दण्ड भी सुना दिया गया।

उसी दिन सायंकाल के भोजन के समय बारी सावरकर के समीप आ कर कहने लगा, ‘आप जैसे सर्वाधिक दण्ड प्राप्त व्यक्ति को एक दिन की भी छूट न दिए जाने में मैं स्वयं दुखी अनुभव करता हूँ। सरकार की नीति यह है कि जब तक आप सद्गुण क्रांतिकारी की मनोवृत्ति के सोच में परिवर्तन न हो, उस छूट न दी जाए।’

सावरकर ने जब इस पर अपनी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की तो वही स्वयं कहने लगा ‘अब क्रांतिकारी बंदी तो राजनीतिक बन्दिना की श्रेणी में माने जाते हैं। जब कि आपका सामान्य हत्यार के रूप में माने जाने से आपके दण्ड में छूट नहीं दी गई है। आप इसको अपना अधिकार भी नहीं जता सकते।’

सावरकर ने कहा ‘यह तो मैं पहले से ही जानता था। जब तक मैं हत्यारा हूँ, अराजनीतिक बंदी हूँ, जब तक मेरी मनोवृत्ति में बदलाव नहीं आता, तब तक मैं इस आलू भात के विशेष भोजन का भी अधिकारी नहीं हूँ, आप इसे वापस ले जाइए।’

किन्तु बारी का यह सहम नही हुआ।

कारागार के द्वार तक जा कर वापस आए बंदियों के मुँहों पर सावरकर ने निराशा की काली छाया स्पष्ट देखी थी। कुछ दिनों में वे सब बंदी भी सामान्य हो गए।

सामान्य होने पर सभी राजबंदी यह विचार करने लगे कि इस राज्यारोहण के अवसर पर भारत का भी कुछ अधिकार मिले हैं अथवा कि नहीं? यह समाचार कौन दे? यह भी जानने की उत्सुकता बनी रहती थी कि क्रान्तिकारी आंदोलन की गतिविधि क्या है? आंदोलन प्रगति कर भी रहा है अथवा कि नहीं।

जेल से बाहर जो अस्पताल या उसमें कि-ही विशेष परिस्थितियों में ही रोगी बंदी को भेजा जाता था किंतु राजनीतिक बंदियों का तो इस भय से वहाँ नहीं रखा जाता था कि वहाँ वे रुग्णता का वहाना बना कर बार-बार इस सुविधा का लाभ न उठाने लग जाएँ। इससे साथ ही उनके बाहर रह कर परस्पर मिलन की सम्भावना भी बनी रहती थी।

बाहर काम करने वाले किसी बंदी को कभी कोई समाचार पत्र का टुकड़ा मिल जाता तो वह उसको पढ़ने के लिए रुग्ण होने का वहाना करता और अस्पताल में भरती हो कर उसे पढ़ता। पढ़ने के उपरान्त वह उस समाचार को अथवा बंदियों को सुनाता, इस प्रकार धीरे-धीरे वह समाचार कारागार के बंदियों तक भी पहुँच जाता करता।

## कारागार में मुसलमानों का वर्चस्व

अण्डमान में प्रायः पंजाबी मुसलमान तथा पठानों को ही बाहर बनाया जाता था। वे बंदियों पर रौब दिखाकर अथवा बलपूर्वक या फिर सुविधा का लालच दे कर अपने लिए भर पेट गेहूँ की रोटियों का प्रबन्ध कर लेते थे। जो साधारण बंदी थे उनको न चाहते हुए भी इन बाड़ों के लिए अपनी रोटियाँ छोड़नी पड़ जाती थी और उन्हें विवश होकर चावल खाने पड़ते थे। जो बन्दी उनके लिए रोटियाँ न छोड़ता उसे वे धमकियाँ देते थे तथा उनकी झूठी शिकायतें करके उनको कठोर दण्ड दिलवाते थे। वहाँ ६६ प्रतिशत बाड़र पंजाबी-सिंधी पठान मुसलमान ही थे। वे पठान बाड़र हिंदुओं को अधिकाधिक यातनाएँ देना या दिलवाना अपना 'साम्प्रदायिक कर्तव्य' मानते थे। कारागार के ६६ प्रतिशत हिंदू उनके अत्याचारों के शिकार बनते थे।

एक वर्ष की निरन्तर यातनाएँ तथा निकृष्टतम भोजन प्राप्त होने पर भी सावरकर का स्वास्थ्य कारागार में सामान्यतया ठीक हो रहा था। भोजन के लिए बंदियों को एक समय में दो बटोरा चावल, गेहूँ की दो रोटियाँ तथा दाल और सब्जी दी जाती थी। सामान्यतया यह भोजन पर्याप्त था। कुछ ही बंदी ऐसे होंगे जिनकी इतने में तृप्ति न हो पाती हो। पंजाबी तथा पठान मुसलमान अधिकशतया गेहूँ खाते थे, उन्हें चावल रुचिकर नहीं था।

मिर्जा खान नामक पठान वहाँ प्रमुख जमादार के पद पर कार्य करता था।

उसकी प्रसिद्धि 'छोटा वारी' के नाम से थी। यद्यपि जमादारा तथा पेटी अफसरा का, जो जेल से बाहर नियुक्त थे, उन्हें बाहर अपने पसा से भोजन करने की सुविधा प्राप्त थी, किंतु भोजन के समय वे भीतर आ जाते और बंदियों को उन्हें भी अपन भोजन से भोजन दना पड़ जाता था। खान किसी भी पठान बाडर को आँखा से सक्त कर देता कि वह उसके लिए दस बारह रोटियाँ एकत्रित करके ले आए। भोजन परोसते समय मिर्जा खान भोजन परोसने वाले के साथ साथ चलता था और बाडर बंदियों की रोटियाँ मे मे उसके लिए रोटी उठा लेता था। यदि कोई बंदी रोटी देने में जाना कामी करता तो वह उस हिंदू बन्दी को व्यय में लाछन लगा कर वही पर दस बार डंडा मारा देता था।

बंदियों को वहाँ पर मप्ताह में एक बार ही दही मिलता था। जिन दिन दही मिलता उस दिन ये पठान बाडर बड़े-बड़े सोंटे लेकर उनमें जबरदस्ती दही भर कर पी जाते। यदि कोई बंदी आपत्ति करता तो उसके साथ मारपीट करने लगते थे। ऐसे ही एक बार एक हिंदू बंदी को उस पठान ने व्यय का दोपारोपण करके बहुत पीटा, इतना पीटा की उसकी चोटी तक उखड़ गयी। उसकी चिल्लाहट सुनकर मिर्जा खान नामक वह 'छोटा वारी' वहाँ आ गया। उसने मारने वाले बलूची पठान का राकन अथवा डाँटने की अपेक्षा हिंदू बंदी का ही पकड़ लिया और अपने साथ ले गया। सावरकर इस घटना को देख कर बहुत दुखी हुए। उन्होंने बंदी का संकेत कर दिया कि वह गवाही में उनका बुला ले।

बंदी का मामला पेश हुआ तो उसने गवाही में सावरकर का नाम बताया। और जब सावरकर को वहाँ बुलाया गया तो उन्होंने जो कुछ कहा था वह साफ-साफ बताया। सावरकर की सत्य साक्षी सुन कर मिर्जा खान चिल्ला कर बहने लगा, 'हुजू' यह बड़ा धाबू हर समय मुमलमाना के खिलाफ पड़ा रहता है, झूठी गवाही देता है।'।

सावरकर ने कहा, 'मेरी बात सत्य है। इस पठान ने बलपूर्वक बन्दि्या के भाग का दही ले कर सोंटा भर कर उस टीन के छप्पर में छिपा दिया है। चल कर देख लिया जाए।'।

विशेष हाकर जेलर को सावरकर ने साथ उस टीन के छप्पर के पास जाना पड़ा और तलाश करने पर वह छिपाया हुआ दही भरा सोंटा वहाँ मिल गया। जेलर का काम ब्रह्म आ गया और उससे जमादारा का पट्टा निकलवा कर उस बठोर काम पर लगा दिया।

उस दिन तो खान का दण्ड मिल गया। किंतु इसमें पूरे और इसके उपरान्त भी उन के निमेष का अनुमार पर्याप्त भाजा मिलने पर भी यही भोजन इस प्रकार का पारी और मानाजारी हान के कारण माघे पट रह जाया करता था।

रहा भोजन के खान सादर हान की बात। वह अवश्य विचारणीय थी। सावरकर भी भी टीन में नगा पकाए जाते थे। उन्हें माँस करके पकाने की बात का खयल में

भी नहीं सोची जा सकती थी। भण्डार से जैस मिले वैस ही कूड़ा बरकट समेत पक्कन के लिए डाल दिए गए। धान की भी आवश्यकता नहीं। रोटियाँ या ता अन्नपकी होती या फिर जली हुयी। चार-पाँच रमाइयो का सात आठ सौ बन्दिया का भोजन पकाना पड़ता था। उनका पसीना ता कया न जान और कया कया उमम पड़ता रहता था। उस गदगी को देख कर सहज ही भोजन से अरुचि हो जाती थी।

इनका ही नहीं, भोजन में दी जान वाली काँजी में अनन्त बार मिट्टी का तल मिला पाया गया। अण्डमान में साँप और एक अथ कोड़ा जिस कँचुली कहते थे, बहुत होते थे। कँचुली दो फुट लम्बी और अत्यन्त विपली होती थी। बन्दियों को हँमिया ले कर जंगलों में सब्जी काटने के लिए भेज दिया जाता था। वे जंगल से सब्जी काटत और गाड़िया में भर देते। जेल में आकर उनकी जूड़ियाँ बँधती और उस सब्जी को काट कर पक्के रख दिया जाता। किसी को यह देखने का अवकाश नहीं कि उन जूड़ियों में क्या बँधा है। जब वह सब्जी परोसी जाती तो अनन्त बार साँप अथवा कँचुली के टुकड़े उसमें साफ दिखायी दे जाते।

साबरकर तथा कुछ और बन्दी साँप और कँचुली का टुकड़ा उठाकर कभी सुपरिटेण्डेंट अथवा बारी को दिखाने जाते तो वे हँस कर कह देते “इनका स्वाद तो बहुत अच्छा होता है।”

ऐसे ही एक बार काँजी में जब अत्यधिक मिट्टी के तल की दुग्ध आने लगी तो बन्दियों ने इसकी शिकायत भेज दी। उनमें साबरकर का नाम भी था। बारी भागा-भागा वहाँ आया और चीख कर एक बंदी की ओर दख कर बोला, “क्या सचमुच ही काँजी में मिट्टी के तल की दुग्ध है?”

बारी ने जानबूझ कर ऐसे बंदी से पूछा था, जो मुसलमान होने के साथ-साथ मुछबिर भी था। उसने बड़े तपाक से कहा, “नहीं साहब, बड़ा धावू झूठ बोलता है।”

बारी साबरकर पर चिल्लाया, “किसी को भी काँजी में मिट्टी के तल की दुग्ध नहीं आ रही है केवल तुमको ही क्यों आती है? मैं तुम पर झूठी शिकायत करने के आरोप में मुकद्मा चलाऊँगा।”

खराब भोजन की यदि शिकायत की जाती तो बारी कह दिया करता था, “अन्न के लिए केवल वे झगड़ते हैं जिनके जीवन का उद्देश्य केवल उदर-पोषण मात्र होता है।”

साबरकर उसको उत्तर देते, “जेल नियमों के अनुसार हम जीवित रहने के लिए अच्छे भोजन की माँग करते रहेंगे। हम कोई आयरिश भिखारी नहीं हैं जो आपस में भोजन में अच्छा भोजन माँग रहे हों।”

बारी और मिर्जा खान कभी ऐसा पड़्यत्र रचते कि जिसमें किसी हिन्दू बंदी या पेटी अधिकारी पर दोषारोपण हो जाता। वे जानबूझ कर ऐसा इसलिए करते कि साबरकर आदि उन हिन्दू बंदियों की शिकायत करके मामला आगे न बढ़ाएँ। और



वे उसको बढ़ाते भी नहीं थे, अपितु जैसा भी भोजन मिलता उसे कर लेते। उसका कारण यही था कि यदि उस हिंदू को उस स्थान पर स दण्डित कर हटाया जाता तो उसके स्थान पर कोई पठान या अरब मुसलमान रखा जाता। अतः कभी-कभी जान कर भी वह विपाकत भोजन करना पड़ जाता था।

सावरकर आदि का सघष अतः म जाकर सफल हुआ। उसके बाद जब भारत के ममाचार पत्रों में राजनीतिक बर्दियों की दुदशा का समाचार प्रकाशित हुआ तो उसका भी प्रभाव हुआ। भाजन का स्तर धीरे धीरे सुधरन लगा। इसके साथ ही साधारण बर्दिया के भाजन स्तर म भी सुधार हुआ।

## असह्य यातनाएँ

सावरकर ने जब बर्दिया के मुग़ से कारागार म कारागार अधिकारिया द्वारा ही बर्दियों पर किए जाने वाले अमानुषिक अत्याचारा की कहानी सुनी तो व स्तब्ध रह गए। उनके अत्याचारों तथा यातनाओं से बचन के लिए अनक बर्दी किसी न किसी प्रकार स्वय को स्वय ही आहत कर, अपने ही दाँत से स्वय को काटकर अथवा कोल चुभा कर आहत कर लेत, जिमसे कि कष्ट कर काय से बच सकें। यहाँ तक कि कुछ बर्दी पागन बन जाते। वे न केवल अपने शरीर म अपना या पराया मल-मूत्र मल लेत अपितु कभी-कभी वे सवके सामने ही उसको अपन मुख म भी रख लेत थे।

इससे ही अनुमान लगाया जा सकता है कि बर्दिया के साथ कसा व्यवहार किया जाता होगा। किंतु इस बात की खबर किसी को काना कान भी नहीं दा जाता थी। सावरकर ने 'भाभी जमठेप' में लिखा है कि कुख्यात से कुख्यात अपराधी और खूबार डकैत व हत्यारे तक कारागार की कठोरता से भयाकात हो जात थे, तब राज नीतिश बर्दियों पर इससे क्या बीतती होगी इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। उन्होंने उपेद्रनाथ बनर्जी की आप बीती का वणन इस प्रकार किया है—

'हमस पूव सन १८५७ के राज्य क्रान्तिकारिया से लेकर जो भी आजीवन कारावान पा कर अण्डमान आते रहे हैं उनमे से एक भी जीवित स्वदेश न लौट सका था। यह बात जब जेल में कठिन स कठिन काय करत समय भरे मन में आती तो मन करता था कि रस्ती का कड़ा गल में डाल कर आत्महत्या कर लू। परन्तु मुमस ऐसा साहस नहीं हो सका। तेल पूरा करने के लिए चुपचाप कोलू चलाता रहा।

एक दिन सवेरे स शाम तक कोलू चनात रहने स शरीर काष्ठवन बन गया। हाया म छाले पड़ गए परन्तु तीम पौंड तेल पूरा नहीं हो पाया। चलात चलात बककर आ रह थे। बीच-बीच में पेटो अफसर अश्लील गालियों की ऐमी बोछार करते रहत थे जा पाबुव के प्रहार के समान सोधे हृदय को जाकर वेध दती थी।

'उम दिन तल पूरा न होने के आरोप म मुझे बर्दी पाल के सामन पेश किया गया। उमन पूरी अश्लीलता की भाषा से मेरे माता पिता तक का गालियाँ गुना डाली और गाय हो बेंन मारन की घमकी भी दी। वहाँ न गाली या कर लौटा और सोहे

की घाली में भात खान बैठ। उस समय दुख और अपमान भड़क उठा, कठारोघ होने लगा, एक भी घ्रास नीचे नहीं उतरा।

“एक हिंदू पेटो अफमर ने मेरी यह दयनीय दशा देखी। उसने मुझ पर तरस खा कर चुपचाप उस परोसने वाले से कहा, ‘इह जरा ज्यादा भात दे दी, बाबू को कष्ट हो रहा है।’

“इन शब्दों को सुन कर जो चाहा कि जार से रो पड़ू। परंतु मैंने अपन ही हाथों में अपना गला और गदन दबा कर उसे सबरण कर लिया। इससे पूर्व ऐसे समय में कोई आ कर यदि मेरी पीठ पर तहातह सटठ मार देता तो भी मैं सहन करता, किंतु उस समय वह सहानुभूति वही असह्य हो गयी थी।’

किंतु इंदुभूषण की गाथा ता इससे भी अधिक पीडा एव दुःख कारक है।

बंगाली क्रांतिकारी इंदुभूषण राय माणिकटोसा बम बाण्ड म दस बष के कठोर कारावास का दण्ड पा कर अण्डमान आया था। वहां आते ही उसको कोल्हू पर पेल दिया गया। फिर कुछ दिन बाद उसको बाहर के काम पर भेज दिया गया। किंतु वह शीघ्र अस्वस्थ हो गया। सामान्य बंदी यदि अस्वस्थ होता था तो उसको अस्पताल भेज दिया जाता था। किंतु बारी की जब इंदुभूषण के बीमार हान का समाचार मिला तो उसन उसको अस्पताल में भेजने की अपक्षा कोल्हू में भेज दिया।

सावरकर को उसकी कहानी पता चल गयी थी। शाम को जब इंदुभूषण कोल्हू से तेल लेकर उसे तुलवाने के लिए निजला ता सावरकर ने उस डाढ़म दत्त हुए कहा, “देखा तुम्हें तो केवल दस बष का कारागार मिला है, मुझे ता दो आजीवन कारावास मिले ह। मेरी ओर दख कर नम से कम अपने मन की घोरज बँधाआ।’

इंदुभूषण तुरंत धोल पडा, “ऐसी अपमानजनक स्थिति में जीवित रहन से तो मृत्यु वहीं अधिक उत्तम होगी।’

सावरकर ने उसका पुन बार बार समझाया और कहा कि वह भी उनकी ही भाँति २५ वर्षीय युवक है किन्तु वह तो कुछ बष बाद ही यहाँ से मुक्त होकर वापस चला जाएगा। इसलिए उसे जीवित रहना चाहिए जिससे कि यहाँ से जाने के बाद पुन वह मातभूमि की सेवा कर सके।

उस समय जल्दी-जल्दी मये वालें होती रही। उसके बाद नित्य वे शाम के समय उसे पसीने से लथपथ तल तुलवान के लिए जाता देखते रहे थे।

तभी एक दिन, सबरे बन्दियों की कोठरिया खुली ही थी और बंदी जन बाहर निकले ही थे कि बाहर ने चुपचाप सावरकर के कान में कहा, “इंदु बल फासी रगा कर मर गया। मैंने आपको इसकी सूचना दी है इसका किसी को ज्ञान न होने पाए, इसका ध्यान रखिए।’

यह सुन सावरकर अवाक रह गए। उसके मन में सहसा विचार उठा, ‘उस स्वाभिमानी युवक न अपमानास्पद जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा मृत्यु को सुखकर माना।’

कारागार में यह मन्त्र जानने थे कि इन्दु ने अपने कपड़ा की रस्मी बना कर अपने गले में फाँसी लगायी है। उसमें जेल के बन्दों से दुखी एवं व्यथित होकर अपनी इहमीला ममाप्त की थी। किन्तु बारी तो इस सबसे निराशा ही था।

बारी ने इन्दुभूषण की आत्महत्या को पारस्परिक झगडा तथा 'पागलपन' प्रचारित करना आरम्भ कर दिया। इतना ही नहीं अपितु इन्दुभूषण राम ने आत्महत्या के समय अपने गले में एक पत्र बाँध रखा था, जिसमें उसने अपनी आत्महत्या के कारणों का गिनाया था। बारी ने उस पत्र को गायब करवा लिया था।

कारागार में तो साधारण सी घटना पर ही जाँच का नाटक किया जाता था, यहाँ तो एक प्राणी के जीवन का ही अन्त हो गया था, फिर जाँच का नाटक क्या न था।

इन्दुभूषण की आत्महत्या की जाँच करने के लिए जय अधिकारी आए तो बारी ने अपने दो चार चाटुकार वरिद्धों का साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया और सबसे मुख में कहलवा दिया कि कुछ दिनांक इन्दुभूषण पर पागलपन का दौरा पड़न लगा था उसी आशय में उसने फाँसी लगा ली। किन्तु इसके विपरीत अनेक राजनीतिक दलितों ने अपनी साक्षी में बताया कि इन्दुभूषण पर पागलपन का दौरा कभी नहीं पड़ा, उसने कारागार की असह्य यातनाओं के कारण मृत्यु का वरण किया है।

'स्वराज्य' पत्र के युवक सम्पादक भी गजब्रोह में बंदी बना कर अण्डमान पहुँचाए गए थे। उन्होंने अपनी साक्षी में बताया कि उनकी इन्दुभूषण से बातें होती रहती थी। उनको जो असह्य यातनाएँ दी जाती उनका उल्लेख वह किया करता था। उन यातनाओं के कारण ही उसने आत्महत्या की है, पागलपन के कारण नहीं।

साबरकर भी चाहते थे कि उनकी साक्षी ली जाए। उनको भी इन्दुभूषण के बन्दों का ज्ञान था। उनके सम्मुख भी वह अपनी यातनाओं की बातें किया करता था, किन्तु जाँच अधिकारी ने साबरकर को नहीं बुलाया।

जाँच का नाटक हो गया तो शाम को बारी ने साबरकर के पास आ कर कहा, "वृद्ध इन्दुभूषण ने अपने पत्र में लिखा है कि वह पारस्परिक झगडा को सहन नहीं कर सकता, इस लिए आत्महत्या कर रहा है।"

साबरकर ने उससे कहा, 'यदि ऐसा था तो आपने उस पत्र को जाँच अधिकारी के सम्मुख क्या नहीं रखा ?

इसका बारी के पास कोई उत्तर नहीं था। बारी इतना मूर्ख था कि वह अपनी यातना में स्वयं ही फँस जाया करता था। साबरकर ने बारी को वे मन्त्र बातें बतायीं जो इन्दु उनको बताया करता था। साबरकर ने कहा कि यदि वह पागलपन में ही मरा है तो भी उसके पागल होने के कारण भी तो यही कष्ट थे ?

थोपा हुआ पागलपन

उपेन्द्रनाथ बनर्जी की ही भाँति उत्साहवर दत्त को भी अलीपुर पहलू में आरोप

मे पकड़कर उसपर अभियोग चलाया गया था। यद्यपि अभियोग के दौरान जज ने उसके विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि वह बड़ा सज्जन, बुद्धिशील निर्भीक तथा स्वच्छ हृदय वाला युवक है। किंतु फिर भी उसको बारह वर्ष कारावास का दण्ड देकर अण्डमान भेज दिया गया था।

सावरकर ने अपनी पुस्तक 'मायी जमठेप' में उल्हासकर की आपबीती को इस प्रकार दोहराया है

“मुझे उम कोल्हू में जोता गया जो भारत में तेल निकालने के काम में लाया जाता है। कोल्हू के छल दिन भर कोल्हू चलाने पर भी बड़ी कठिनाई से १५ पौंड सरसो पेर पाते हैं। किंतु अण्डमान में बलों के स्थान पर तीन बंदियों को जोता जाता है और उनसे ८० पौंड तक तेल निकलवाया जाता है। तेल पूरा न होने के परिणामस्वरूप मिलने वाले दण्ड का सदा भय बना रहता है। चलने में थोड़ा धीमा होने पर पेटी अधिकारी का सौटा खाना पड़ता है, इससे भी यदि मैं सचेत न हुआ तो कोल्हू के ढंढे से मेरे हाथ पैरों को बांध दिया जाता था और जोर से दीडन के लिए विवश किया जाता इससे मेरा सारा शरीर रक्त से सन जाता था। मुह से भी रक्त बहने लगता था। थककर चूर होने पर जब मैं कोठरी में जाया करता था तो लगने लगता कि प्रातः जीवित उठूंगा भी कि नहीं। प्रातः फिर कोल्हू में जोत दिया जाता।

“बर्षों बाद मुझे भी एक दिन कारागार से बाहर भेजे जाने की अनुमति आ गई परंतु लगा कि यह तो चूल्हे से निकालकर कड़ाही में डाल दिया गया है। इस अतिरिक्त काय के लिए भोजन में दूध दिया जाता था परंतु उस दूध को तो पेटी अफसर हड़प जाया करते थे। मुझे जब दूध दिया गया तो मैं उसे मिलते ही हड़प गया, पेटी अफसर मेरा मुख तानना रह गया। उसने चिढ़कर मुझे ऐसे काय पर लगा दिया जहां दूध नहीं मिलना था। यह काम था ऊँची पहाड़ी पर स्थित एक अफसर के घर पानी पहुँचाना। दो कनस्तर भर कर ऊपर पहुँचाने पड़ते थे। कुछ दिनों बाद मैंने उसे कग्ने से इनकार कर दिया।

“इस अपराध में मुझ पर मुकदमा चला। ‘यायाधीश ने कहा, ‘थोड़े दिन अस्पताल में आराम करो।’ परंतु मैं तो काम न करने का दंड निश्चय कर लिया था। मुझे तीन मास का कठोर कारावास का दण्ड देकर कारागार में बंद कर दिया गया। बारी मुझे देखकर बोला, “सुन, यह बाहर का मदान नहीं है, कारागार है। अनुशासन तोड़ा या काम न किया तो बेंत से खाल उधेड़ दूंगा। बेंत भी ऐसी कि शरीर पड़ते ही मांस में एक एक इंच गड़ जाएगी। एक नहीं, तीस बेंत मारूंगा।’

“मैंने दडता से उत्तर दिया, ‘वाहे मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दो, मैं काम नहीं करूंगा, क्योंकि तुम्हारा काम करना घोर अन्याय को सहन करना है। उसने मुझे उसी दिन आठ दिन की हथकड़ी की सजा दे दी और साथ ही दीवार पर टाँग देने का आदेश।

"एक दिन अचानक बारी ने कहा, तुमने मेरा अपमान किया है, मुझे चुनौती दी है, मैं तुमसे दो दो हाथ करने को उद्यत हूँ। तुम्हारी ओर मैं जो भ्रम लड़े तुम उस बुला ला। मेरी दृष्टि में तुम्हारी ओर से सावरकर रहेगा।"

"उसने सावरकर जी को बुलवा लिया। मैं देखा कि वे पूवपिशा वृणकाय लग रहे हैं। बारी ने उनसे कहा, 'क्या वे उत्साह की आर से उससे लड़ने का तयार है?'"

सावरकर तैयार हो गए तो बारी ने उनको एक हथमोजा और एक शस्त्र थमा दिया। मैं उत्सुकता से देखता हुआ अपने प्रतिनिधि की विजय की कामना कर रहा था। ईश्वर ने हम दोनों की लाज रखी और सावरकर ने बारी को परास्त कर दिया। उन्होंने हथमोजा उतारा और शस्त्र तथा हथमोजा बारी के मुख पर दे मारा। बारी का मुख उतर गया कि तु मेरा मुख प्रसन्नता से खिल उठा।

बारी मुझे दीवार के सहारे छड़ाकर के गया था। सूय का ताप बढ़ रहा था और मुझे लगा कि मुझे ज्वर चढ़ने लगा है। तब स्वर के बावजूद मैं हथकड़ी में झूम रहा था। डाक्टर आया, ज्वर १०७° डिग्री था और मैं ठंड से कांप रहा था। डाक्टर के कहने पर मुझे हथकड़ी से उतारा गया ता मैं भूचिंत हो कर भूमि पर गिर गया।

ऐसी थी अण्डमान की असहनीय यातनाएँ।

सावरकर लिखते हैं—

हम कीठरी के द्वार के समीप पहुँचे ही थे कि कक्का, कृष्ण चन्दन सा मुनार्द दिया। उसके साथ ही उठा पटक की भी ध्वनि आ रही थी। हम लगा इतना भीषण ज्वर में भी उत्साहकर का 'ठीक' करने की प्रश्रिया जारी है। कृष्ण चन्दन तथा चीखने चिल्लाने की ध्वनि निरन्तर बढ़ती जा रही थी। तभी किसी बाहर न आकर बताया 'उत्साहकर पागल हो गया है। होता भी कैसे नहीं? इतनी तपती धूप में इतना तीव्र ज्वर और ऐसी यातना। उसकी चीख पृकार प्रातःकाल उठने पर भी मुनार्द दे रही थी। वह बगला भाषा में माँ का प्रकार रहा था।

'पता चला कि अधिकारी यह जाच करन का यत्न कर रहे हैं कि वह वास्तव में पागल हो गया है अथवा कि बहाना कर रहा है। इसके लिए उसको बिजली के झटके दिए जा रहे हैं। उत्साहकर को यह सहना पड़ना हो रहा था वह उसने बाद में बताया था। उससे उसके सार शरीर में बिजली काँध जाया करती थी। यातनाओं के आगमन उसके मुख से और अधिक चीख निकलती और अंत में वह भूचिंत होकर गिर पड़ा था। हाँ आन पर उसको विनित हुआ कि वह तीन दिन तक भूचिंत रहा था।

'बारागार का नूर कुटिल अधिकारी अवज्ञान पर गया तो दूसरा अधिकारी आया, उसने उत्साहकर को मानसिक चिकित्सालय में भेज दिया। दम थप तक उत्साहकर पागल की दयनीय दशा में रहा। अण्डमान से उसे मद्रास के पागलघाने में भेज दिया गया और फिर वही स उसकी मुक्ति हुई।

उही दिन एक दिन यात्री न आकर मुझसे कहा 'तुम अब पागल बनोगे?'

मैंने क्रोध में भर कर उसे उत्तर देते हुए कहा, 'कदाचिन्, तुम्हारे पागल बन जाने के बाद ।'

" मैंने उसको कहा, 'देखो, अब तुम यह बात भली भाँति समझ लो कि तुम्हें अब वह सब सुविधाएँ हम रानीतिक बन्धियों को देनी ही हाँगी जो कि नियमानुसार हमारी प्राप्ति हैं । तुम्हें हमें साधारण बन्दी की भाँति रखना होगा । इन अमानवीय यातनाओं और कष्टों का तुरन्त समाप्त करो अन्यथा हमें हड़ताल और सघप के लिए बाध्य होना पड़ेगा । हड़ताल करने पर यदि हम तुम लोगों से टक्कर नहीं ले पाए तो कम से कम हमें इस बात का सत्यापन तो होगा कि हमने अत्याय तथा अपमान का प्रतिवाद और प्रतिकार तो किया था ।'

ऐसी असह्य यातनाएँ हमारे राष्ट्रोद्धारकों ने सही तब कही जाकर यह देश स्वतंत्र हो पाया । जगणित युवकों ने अपने जीवन होम दिए, अगणित युवक बलि चढ़ गए, मधस्व लुटा दिया । किन्तु आज के भ्रष्ट शासक नई एव भावी पीढ़ी को मार्ग भ्रष्ट करने के लिए प्रचार करते हैं—

'द दी हम आजादी बिना खडग बिना ढाल,

सावरभती के सन्त तुने कर दिया कमाल ॥'

धिक्कार है ऐसे शासकों पर जो बलिदानियों का श्रुत्यार्जन न कर अपने सुविधा-भागी पूवजा का गुणगान करते रहते हैं ।

### कारागार में स्वातन्त्र्य साधना

सावरकर सदा ही यह अनुभव किया करते थे कि एक्कान् कोठरी की अपेक्षा बाहर के अथ बन्धियों के समान रहने पर परस्पर विचार विनिमय का कभी-कभी अवसर मिल जाने से कुछ प्रचार काय में सुविधा होती है । इसलिए जब उनको अण्डमान की कारा में रहते हुए एक वर्ष पूरा हुआ गया तो उन्होंने अपने बाहर भेजे जाने के लिए आवेदन पर आवेदन करने आरम्भ कर दिए । इनके साथ ही वे बन्धियों के साथ परस्पर गुप्त पत्र व्यवहार भी करते रहते थे ।

यह सीला बड़ी विचित्र है । सावरकर जहाँ बाहर भेजे जाने के लिए आवेदन-पत्र भेज रहे थे वहाँ उसी अवधि में दो विभिन्न अवसरों पर उनको दो गुप्त पत्र पकड़े गए और उनको कभी दो मास का एकांतवास ता कभी कुछ दिनों की हड़कड़ी का दण्ड दिया गया । जहाँ बाहर भेजे जान में बाधा उत्पन्न हो गयी ।

एक बार सावरकर ने एक बन्दी को एक गुप्त पत्र देकर कहा कि "अमुक स्थान" पर जो बन्दी मिले उसको वह यह पत्र दे दे । वह बन्दी वारी का विशिष्ट व्यक्ति था, इस बात का ज्ञान सावरकर को नहीं था और न ही उनको उम्र पर ऐसा सन्देह ही हुआ । उसने वह पत्र निश्चित स्थान पर पहुँचाने की अपेक्षा वारी को दे दिया । इसने इतना ता बचाव हो गया कि सम्बन्धित बन्दी दण्डित नहीं हुआ किन्तु सावरकर को इस अपराध में दो मास का कोठरी-वास का दण्ड भुगतना पड़ा ।

दूसरी बार की घटना भी कुछ ऐसी ही है। सावरकर ने अपने एक महा राष्ट्रियन सहजदी को मराठी भाषा में पत्र लिखा। भाषा तो मराठी थी किंतु उसकी लिपि मराठी की एक सह लिपी "मोडी" होती है, वह पत्र उसमें लिखा था। यह पत्र सावरकर ने तन्हाई का दण्ड पूरा कर एकांत कोठरी से बाहर आत ही हड़ताल के विषय में लिखा था। वह गुप्त पत्र लिखकर सावरकर उसे बाहर भेजन की याजना बना ही रहे थे कि उसी समय जेल अधिकारी उनकी तलाशी करने के लिए आ पहुँचे। सावरकर ने वह पत्र वहीं इधर उधर फेंक तो दिया किंतु फिर भी किसी अधिकारी के हाथ वह लग ही गया।

पत्र पाकर अधिकारियों के सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि उस पत्र को किसमें पढ़ाया जाए। वारी ने अपने एक चाटुकार बंदी से वह पत्र पढ़वा तो लिया किंतु अंग्रेज राजबंदियों के भय से उसने सावरकर के विरुद्ध माफी देना अस्वीकार कर दिया। जब उसमें साक्षी नहीं दी तो वारी ने यह सिद्ध करना चाहा कि यह पत्र बंगला भाषा में लिखा गया है। जाँच अधिकारी के सम्मुख जब बात गई तो एक बंगला भाषी बंदी ने सावरकर के पक्ष में साक्षी देते हुए दबता से कह दिया कि इस पत्र का एक अक्षर भी बंगला भाषा का नहीं है। यह सुनकर पर्यवेक्षक घबरा गया। वारी ने चिल्लाकर कहा 'सर, इन 'बब गोला बाली' ने पढ़्य पत्र किया हुआ है कि ऐसे अवसरों पर झूठी गवाही दी जाए।

पत्र चाहे किसी लिपि में हो, जाँच अधिकारी को तो सावरकर का विरुद्ध निष्पक्ष देना ही था। जब इस प्रकार का पत्र लिखने का नियमों में प्रावधान नहीं है और सावरकर ने वह पत्र लिखा था तो उनको तो दण्ड मिलना ही था, जत उन्हीं आठ दिन की हथकड़ी का दण्ड मिल गया।

तब सावरकर ने चीफ कमिश्नर को आवेदन पत्र किया कि भल ही उनका दण्ड कम अथवा क्षमा न किया जाए किंतु इस बात का तो निश्चय किया ही जाना चाहिए कि पत्र "मोडी" में है अथवा बंगला में। इस आवेदन पर चीफ कमिश्नर ने दुबारा जाँच का आदेश दिया। जाँच अधिकारी ने उस लिपिक को बुलाया जिसने उसे बंगला भाषा का पत्र बताया था। उस समय उसने वारी को बाहर भेज दिया। उसने लिपिक को आँखें तरेते हुए कहा क्या तुमने उस पत्र का भली भाँति पढ़ लिया है, वह बंगला भाषा में लिखा हुआ है? यदि तुमने झूठ बोला तो तुम्हें दण्डित किया जाएगा।'

बन्दी घबरा गया। उसने काँपते हुए कहा, "भगवार हम तो बन्दी हैं। वारी साहब जा कुछ कहते हैं वह सब हम करना पड़ता है। वास्तविकता तो यह है कि वारी साहब के आदेश पर मैंने उस पत्र को अपनी बल्बना से बंगला भाषा में पढ़कर सुना दिया था, परंतु वह पत्र बंगला भाषा में नहीं है। मैं तो वारी साहब के कहन पर यह गत काम किया था।'

इससे जाँच अधिकारी को बड़ा नोच आया। उस अधिकारी से जितना हा

सकता था उतना उसने बारी को ढोटा फटकारा और कहा, "भविष्य में यदि इसी प्रकार की झूठी साक्षी प्रस्तुत की गई तो उसका परिणाम बहुत बुरा होगा, यह ध्यान में रखना।"

सावरकर के इस पत्र के पक्के जान से एक लाभ यह हुआ कि बारी की जकड़ कुछ ढीली हो गयी। वह कभी-कभी सावरकर को कह दिया करता, "मैं भी तो आयरिश हूँ, कभी मैंने भी अंग्रेजों के विरुद्ध पड़्यत्र रचे थे। तुम लोग मुझे अपना शत्रु क्या समझते हो? सरकारी नौकर होने के कारण मुझे तो अपने अधिकारियों के आदेश का पालन करने में यह सब करना पड़ जाता है।"

कारागार से बाहर भेजे जाने के आवेदन पत्रों के उत्तर में सावरकर का लिखा गया कि क्यों कि वे राजनीतिक बन्दी नहीं हैं इस कारण उन पर वे नियम लागू नहीं होते। सावरकर ने इसका प्रतिवाद किया, अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए किन्तु अधिकारियों का दृढ़ उत्तर था, "आपको कारागार से बाहर नहीं जाने दिया जाएगा।"

### हडताल और यातनाएँ

इदुभूषण की आत्महत्या तथा उल्हासकर दत्त को पागल बना दिए जाने की घटनाओं से कारागार में भीतर ही बहुत बड़ा बिद्रोह सा पनपने लगा था। राजनीतिक बन्दी यातनाओं व कष्टों के विरुद्ध संघर्ष के लिए उद्यत हो गए थे। इसका एक मात्र उपाय हडताल समझा गया और तब एक मत से हडताल करने का निश्चय कर लिया गया।

इन राजनीतिक बन्दीयों की माँग थी कि उनको कष्ट और यातनाएँ देने के लिए जिन रूप में राजनीतिक बन्दी समझा जाता है उसी रूप में सुविधाएँ दत्त समय भी उन्हें राजनीतिक बन्दी समझ कर नियमानुसार उनको जो सुविधाएँ दी जानी चाहिए व दी जाएँ। उनकी यह भी माँग थी कि जेल के बाहर अथवा भीतर दिए जाने वाले कष्टकारक कार्यों की अपेक्षा उनको लेखन आदि का काम दिया जाए। देश के कारागारों में राजनीतिक बन्दीयों को रियायतें और सुविधाएँ दी जाती हैं वे भी उनको दी जाएँ। सबने मिलकर एक नापन तैयार किया और उसमें यह सब लिखकर जेल के उच्चाधिकारी के पास भिजवा दिया गया।

सावरकर ने अलग से आवेदन पत्र भेजा था और उसमें लिखा था कि कारागार में भेंट करने, पत्र लिखन तथा अयाय रियायतों के जो जो लाभ बन्दीयों का दिए जाते हैं, उन सबसे हम इस लिए वंचित रखा जाता है कि हम 'कालेपानी' वाले हैं। साथ ही महा कालेपानी पर लेखन काय पट्टी अधिकारी की नियुक्ति, बाहर मुक्त संचार आदि की जो सुविधाएँ मिलती हैं, उनसे हमें इसलिए वंचित रखा जाता है कि हम साधारण बन्दी न होकर "विशिष्ट बन्दी" हैं। किसी न किसी बहाने से हमें सुविधा व रियायतों से वंचित किया जाता रहा है। अब हमने निश्चय किया है कि अपने साथ अयाय नहीं हाने देंगे। हम जब अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए, बड़े से बड़े कष्ट सहकर भी, किसी प्रकार का सहयोग न करते हुए हडताल कर देंगे।



कारागार के अधिकारी इन साधारण से माण पत्रों से कब सीधे जाने वाले थे। अवैधित समय तक न तो उत्तर प्राप्त हुआ और न सुविधाएँ ही प्रदान करना आरम्भ हुआ तो बन्दिनों ने हड़ताल आरम्भ कर दी।

बाहर के बन्दिनों ने काम करना अस्वीकार कर दिया ता उन्हें दण्डित करके अंदर भेजा जान लगा। अंदर के बन्दिनों ने तो एक साथ ही काम करने से इनकार कर दिया था, वे भी हड़ताल में सम्मिलित हो गए थे।

इस प्रकार अण्डमान में यह दूसरी हड़ताल आरम्भ हुई।

साबरकर के ज्येष्ठ भाता बाबाराव साबरकर तो पहले दिन ही हड़ताल में सम्मिलित हो गए थे। हड़ताल होने पर हड़ताली बन्दिनों के गुण्ड के गुण्ड ले जाकर जेल अधिकारी के सम्मुख उपस्थित किए जाते थे। अधिकारी उन्हें चिल्ला चिल्लाकर सजाएँ सुनाता जाता था। उन सजाओं में डण्डा वेडी, पाव वेडी तथा तनहाई आदि होती थी। परिणामस्वरूप प्रत्येक बांड में बन्दिना की काठिया में बन्दी हथकड़ियों में हाथ लटकाए दिवायी दन लग। कुछ लोग उसी स्थिति में बैठने का असफल यत्न करते। कुछ बन्दिना में पाँव ट्रेडियों लगवाने से इनकार कर दिया तो कुछ न परस्पर न बोलने के आदेश का उल्लंघन कर जार जोर से बालना आरम्भ कर दिया।

बारी जब निरीक्षण-परीक्षण के लिए आता था तो उसके सम्मान के लिए सबको खड़ा होना पड़ता था। बन्दिना न इस नियम को भी तोड़ दिया। एक दिन बारी के आते ही पटी अफसर ने जोर से कहा, 'सरकार आ रहे हैं।' सबने मुन तिया और घुर घाप रह। कोई भी बन्दी उस दिन बारी के सम्मान के लिए खड़ा नहीं हुआ। तब एक एक को खड़ा करना आरम्भ किया। एक व्यक्ति से यह काम नहीं हुआ तो तीन तीन व्यक्ति लग, किन्तु फिर भी किसी को खड़ा नहीं कर सके।

इस प्रकार उस कारागार में प्रथम बार बारी का घुला अपमान दिया गया।

हड़ताल कर देने और काम न करने के अपराध में उन बन्दिना के भोजन में भी कटौती कर दी गई। किसी का कुछ खाया सा भोजन द दिया ता किसी का कुछ द दिया। कुछ के साथ मारपीट भी हुई। इससे भगदड़ मचा लगी।

मावरकर ने उस दिन बारी से कहा, "राजनीतिक बन्दी इस समय हड़ताल पर हैं तुम उनका नियम भंग करने का दण्ड दे रहे हो। यदि तुमने सीमा से बाहर जाकर कुछ और अत्याचार किया ता दण्ड सेना कि वे हट का जवाब पत्थर में दन में नहीं दियेंगे। वे यह भी मानि जाना है कि तुम उनका अधिक से अधिक मार रहे ता मरने ह। किन्तु ध्यान रहे किम प्रकार मर प्राणा पर गन कर भी प्रत्याग्रमण करना है वे भी कुछ ऐसा ही करेंगे।"

बारी मुनमुनाता रहा। साबरकर ने उससे फिर कहा, 'अगर पटी अफसरों का अपमान करने का समय है ता कि वे उन बन्दिना का मोला दना शुरू करें।

राजनीतिक बन्दी उन पठानों और बलूचों की गालियों का उत्तर उससे भी भयंकर गाली से देना सीख गए हैं। गालियाँ सहन न होने पर मारपीट तक बात पहुँच जाती है, उसका परिणाम घातक हो सकता है, यह तुम भली भाँति समझ लो।”

सावरकर की इस चेतावनी से यद्यपि बारी डर तो गया किन्तु उसने कारागार के वरिष्ठ अधिकारियों के पाम जाकर सावरकर की शिकायत कर दी कि वह राजनीतिक बंदियों को मारपीट और अत्याचार आदोलनों के लिए भड़काता रहता है।

सावरकर प्रारम्भ में इस हड़ताल में सम्मिलित नहीं हुए थे। यह राजबंदियों के साथ उनका किसी प्रकार का विश्वासघात नहीं था, अपितु इसका विशेष कारण था और वह कारण उन्होंने मुख्य मुख्य बंदियों को बता दिया था। उनका हड़ताल में सम्मिलित न होने का कारण था घर से आने वाले पत्र की प्रतीक्षा। वष में बवल एक बार पत्र मिलता था, सावरकर चाहते थे कि कम से कम वह पत्र उनको मिल जाए, जिससे कि उनके अपने परिवार के अतिरिक्त अत्याचार जानकारियाँ भी उससे प्राप्त हो जाएँ। जो बन्दी हड़ताल आदि आदोलनों में सम्मिलित होता था उसका पत्र रोक लिया जाता था, इस कारण सावरकर प्रारम्भ में हड़ताल में सम्मिलित नहीं हुए और ज्यों ही उनको पत्र मिल गया त्यों ही वे भी हड़ताल में सम्मिलित हो गए। ज्यों-ज्यों हड़ताल आगे बढ़ती गयी त्यों-त्यों बारी को अपना अभूतपूर्व अपमान और चुनौती का अनुभव हान लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि साधारण बंदियों में भी उसका बदला कम होन लगा। इससे वह बोखाना सा इधर उधर घूमता दिखायी देता था।

बारी ने भाँति भाँति के प्रतिवध लगाने प्रारम्भ किए। राजनीतिक बन्दी साधारण बन्दी से अपनी बातें गुप्त रखने के लिए परस्पर अंग्रेजी में बोल लिया करते थे। बारी ने अंग्रेजी बोलने पर प्रतिवध लगा दिया। किन्तु इसका परिणाम उनके लिए बुरा हुआ। कभी-कभी सावरकर आदि उसके व्यंग्य का उत्तर उनको अंग्रेजी में व्यंग्य में करके दिया करते थे। बारी तिलमिलाता था किन्तु समझता था कि बात अंग्रेजी में कही गयी है इस लिए सबके पल्ल नहीं पड़ी। किन्तु अब जब उसने अंग्रेजी पर प्रतिवध लगा दिया तो बारी बात हिन्दी में हान लगी और उस पर फर्कियाँ भी हिन्दी में ही कभी जान लगी। यहाँ तक कि एक बार उसकी गाली का उत्तर में एक बन्दी ने उसकी समस्त आयर्त्त जानि को ही अंग्रेज दाइयों की सन्तान तक कह डाला। बारी तिलमिलाया और उसने उस दिन से अंग्रेजी पर से प्रतिवध हटाने की घोषणा कर दी। किन्तु बन्धियों को तो अस्त्र मिल गया था, उन्होंने स्वयं अंग्रेजी का प्रयोग बन्द कर दिया।

हड़ताल चलती रही और जेल अधिकारी भाँति भाँति की यातनाएँ और कष्ट देते रहे। अधिकारियों ने बैन का दण्ड छोड़कर अन्य सब प्रकार के दण्ड दे डाले किन्तु बन्दी टम समझ नहीं हुए। अन्त में हार कर अधिकारियों ने बैन लगाने की भी धमकी दे डाली किन्तु उसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ। विवश अधिकारियों का झुनना पड़

गया। उन्होंने आश्वासन दिया कि भविष्य में हल्का काम दिया जाएगा और बाहर भी जाने दिया जाएगा तथा राजनीतिक बंदियों की श्रेणी एवं सुविधा देने के लिए भारत सरकार से लिखा पत्र भी जाएगा।

राजनीतिक बंदी भी यही चाहते थे। वे चाहते थे कि अधिक से अधिक राजनीतिक बंदियों को बाहर जान की सुविधा प्राप्त हो। वह सुविधा मिलन लगी तो हड़ताल समाप्त हुई।

हड़ताल तो समाप्त हुई, किंतु अधिकारियों की कुटिलता समाप्त नहीं हुई। ज्यों ही सब राजनीतिक बंदियों ने हड़ताल समाप्त की और काय आरम्भ हुआ तो अधिकारियों ने उन राजनीतिक बंदियों को बाहर जान से रोक दिया जा हड़ताल का अगुआई कर रहे थे।

इन अगुआई करने वाला म सावरकर के ज्येष्ठ भ्राता बाबाराव सावरकर, चामनराव जोशी, हातोला बर्मा और नानी गोपाल प्रमुख थे। अधिकारियों ने इनको बाहर भेजे जान से इनकार कर दिया। स्वयं सावरकर का बाहर जाने वालों में नाम होना सचचा असम्भ था, क्योंकि यह बात अधिकारी भी जानते थे कि सावरकर ही इन सब आंदोलनों के नेता हैं। इन हड़ताल का सारा उत्तरदायित्व तो पहले ही उन पर थोप दिया गया था। बारी समय समय पर उच्चाधिकारियों के कान भरता रहता था कि सावरकर ही बंदियों को भड़काता है।

सावरकर ने एक दिन एक उच्चाधिकारी से प्रश्न किया, 'आप मुझे स्पष्ट बताइए आप मुझे बाहर क्यों नहीं भेजते ?

वह अधिकारी पहले तो मौन रहा। कदाचित यथोचित उत्तर गठना चाहता था। सावरकर ने पुन उससे अपना प्रश्न दोहराया। इस प्रकार जब सावरकर का आग्रह बढ़ता गया तो उसने कहा, "मुख्य आयुक्त ने आदेश दिया है कि क्योंकि आपका भारत तथा विदेशों में भी नातिकारी आंदोलन का भयकर इतिहास है अत आपको कदापि बाहर न भेजा जाए।'

सावरकर ने उस अधिकारी को ऐसे जनेक उदाहरण बताए कि जो बंदी स्वयं इस अण्डमान कारागार से भाग गए थे और उनको पृन पकड़ कर यहा लाया गया तथा जिन्हें सावरकर की ही भांति आजीवन कारावास का दण्ड मिला हुआ है, ऐसे अनक बंदी हैं जिनको कारावास की एक निश्चित अवधि पूर्ण हो जाने पर बाहर काम पर भेजा जाता है, फिर उन्हें क्यों नहीं भेजा जाता ?

अधिकारी ने कहा, 'भारत सरकार का सख्त आदेश है कि आपको बाहर न भेजा जाए।

तब सावरकर ने अपने बड़े भाई के विषय में पूछा कि उनको बाहर क्यों नहीं भेजा जाता। उनका तो कोई ऐसा भयकर इतिहास नहीं है। इस प्रश्न का उसके पास कोई उत्तर नहीं था।

कुछ सांगा का साधारण सुविधाएँ देने और कुछ को न देने से बंदियों में पुन

अस-तोप पनपने लगा था। सावरकर ने एक दिन एक अधिकारी का कहा, "यदि बंदियों को दी जाने वाली सुविधाएँ मिलती रहती, उन्हें अभानवीथ यातनाएँ न दी जाती तो कारागार का अनुशासन बना रहना और हड़ताल की नीव न आती।"

कारागार के उस अधिकारी पर इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ।

### नानी गोपाल का बलिदान

सावरकर द्वारा जेल अधिकारियों को सावधान किए जाने के उपरांत भी जब उनके कानों में जू नहीं रेंगी और राजनीतिक बंदियों को बाहर भेजने के सम्बन्ध में उनका व्यवहार वैसा ही रहा तो इससे बंदियों में पुनः अस-तोप भड़कन लगा। यह अस-तोप पनप ही रहा था कि तभी एक नया विवाद उत्पन्न हो गया।

इन राजनीतिक बन्धियों में एक बन्दी था नानी गोपाल, जिसका उल्लेख हम इससे पूर्व हड़ताल के अग्रभा के रूप में कर आये हैं। बंगाल में किसी योरापियन अधिकारी की बार पर बम फटने के आरोप में उसको दण्ड देकर अण्डमान भेज दिया गया था। सोलह वर्ष के उस तरुण क्रान्तिकारी को चौदह वर्ष का कठोर कारावास दिया गया था।

कारागार में सोलह वर्ष के तरुण को कोलू में पेलना नियम विरुद्ध था। किन्तु नानी गोपाल को कोलू में जोतने का आदेश दिया गया। नानी गोपाल ने इस पर आपत्ति की और काम करने से इनकार कर दिया। तब अधिकारियों ने उसको कठोर यातनाएँ देना आरम्भ किया किन्तु वह किशोर तनिक भी विचलित नहीं हुआ। न तो वह काम करता न कपड़े ही धोता। कपड़े न धोने पर उसे सन या जूट का दोरा पहनने को दिया गया तो उसने कपड़ा ही न पहनने का सकल्प कर लिया। अधिकारियों के आदेश पर उसको बलात वस्त्र पहनाए गए किन्तु रात्रि में उसने उन सबको फाड़ दिया। उसके परिणामस्वरूप उसको रात्रि के समय भी हथकड़ियाँ में रखा जाने लगा। ताले लगाए गए। परन्तु न जाने कैसे, उसने रात में ही हथकड़ियाँ भी तोड़ डाली।

उस पर जब आरोपों का अम्बार एकत्रित हो गया तो उसको तनहाई में डालने का दण्ड दिया गया। एकान्त कोठरी में डालने पर उसने कोठरी से बाहर आना ही त्याग दिया। वह स्नान के लिए भी बाहर नहीं आता था। तब अधिकारियों ने दो भगियों की सहायता से उसे बाहर निकलवा कर स्नान के होद पर नगा लिटा दिया। नारियल के छिलकों से उसके शरीर को मलवाया गया तो उसका शरीर लाल हो गया। उससे आग सी निकलने लगी। फिर उसमें पानी डाला गया तो उसे भीषण धुजली होने लगी। न जाने क्या-क्या उसके शरीर पर मला गया था। फिर भी उस धैर्यवान तरुण ने साहस नहीं छोड़ा, सब सहन करता रहा। क्रूर-कठार पठान बाढ़ो से उसको भेदी से भेदी गालियाँ दिन-राती दी गयीं, भौंति भौंति की उसको धमकियाँ दी गयीं, किन्तु नानी पर इन सबका कोई प्रभाव नहीं हुआ।

नानी दिन रात निबन्धन रहने लगा।

नानी गोपाल की माँग थी कि उसको राजनीतिक बन्दी स्वीकार किया जाए। उसका कहना था कि जेल का भोजन अच्छा है अथवा घटिया, यह उसके लिए गौण बात है। मुख्य बात है उसको राजनीतिक बन्दी स्वीकार करना। वह कहता था कि वह बोर डाकू नहीं है, वह राजनीतिक बन्दी है, जेल के अधिकारी सवप्रथम इसकी चापना करें। अपने इसी अधिकार के लिए वह सयप कर रहा था।

जेल के अधिकारी आकर अधिकारपूरा भावा में उसको समझाने का यत्न करते, किन्तु नानी गोपाल पर इसका कोई प्रभाव न होता। वे यहाँ तक कहते कि वह सयप करता हुआ भले ही मर जाए किन्तु उसको उसका अधिकार नहीं मिल सकता। नानी इससे भी नहीं डरा। सब बारी ने सुझाव दिया कि उसका बेंत लगाकर सीधा किया जाए। बारी साधारण बन्धियों को इसी प्रकार सीधा करता आया था। नानी का बताया गया तो उसने कहा, “बेंत खाना स्वीकार है, किन्तु भुक्ता नहीं।”

अतः भोजन अधिकारी ने उसको बेंत की सजा देना ही उपयुक्त समझा। बाता बानो में बारी ने इसकी चर्चा सावरकर के सम्मुख की तो उन्होंने उसे चेतावनी दी कि यदि नानी गोपाल पर बेंत पड़े तो सार राजनीतिक बन्दी चीन उठेंगे। व अपनी पूरी शक्ति के साथ तुम लागा पर टट पड़ेंगे। इस प्रकार जेल में होने वाले रक्तपात को वह टाल नहीं पाएगा।

बारी ने सावरकर की चेतावनी सुनी, पहले तो वह हँसा किन्तु फिर बिना कुछ कहे गम्भीर हो कर वहाँ से चला गया।

नानी गोपाल को बत लगाने का आदेश दे दिया गया। और उससे पहले सब राजनीतिक बन्धियों को कोठरियाँ में बाँट कर दिया गया, जिससे कि कोई किसी प्रकार का दगा न कर सके। इस प्रकार सारे बन्दी अपने-अपने कोठरों में बंद नानी गोपाल पर पड़ने वाले बेंतों से उसकी चीख पुकार सुनने के लिए कान खड़े किए हुए थे। तभी एक बाडर सावरकर की कोठरी के पास आया और धीरे से बोला, “नानी गोपाल का जेल से बाहर छोड़ दिया गया है।

बारी और अन्य अधिकारी समझ गए थे कि नानी को बेंत लगाने से कहीं स्थिति और अधिक भयावह न हो जाए। उस रक्तपात को टालने के लिए उसको बाहर की किसी सड़ी-गली जेल में डाल दिया था। नानी ने वहाँ पर भूख-हड़ताल आरम्भ कर दी। कारागार के अधिकारियों ने तीन चार दिन तक तो उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया, किन्तु जब दशा बिगड़ने लगी तो उसको पुनः उसी कारागार में सावर किसी कोठरी में डाल दिया और उसका नाक से दूध पिलाया जाने लगा।

### कारागार में बम

सावरकर स्वयं को बाहर भेजे जाने के विषय में निरन्तर आवेदन करते रहते थे, किन्तु सभी सन्तोषजनक उत्तर नहीं आया। उधर जेल से बाहर जन-जागृति

अभियान आरम्भ हो गया था। बाहर पहुँच कर राजनीतिक बंदी जहाँ भी जा-पाते वहाँ तक जाते और वहाँ मिलने वाला से भारत की दुदशा के विषय में बातें करते। इस प्रकार उनसे वार्तालाप के माध्यम से वे किसी न-किसी प्रकार भारत के कुछ-कुछ समाचार पाने लगे थे। वहाँ जन जागरण के लिए हस्तलिखित पत्र निकलने लगे।

कुछ दिनों बाद बन्दि्या ने वहाँ बसे उन स्वतंत्र लोगों से सम्पर्क करना आरम्भ कर दिया जो अपना कारावास का जीवन पूरा कर वही अण्डमान में ही बस गए थे। किंतु यह बात अधिकारियों से बहुत दीर्घ काल के लिए छिपी नहीं रह सकी। उन्हें इससे भय उत्पन्न होने लगा। इन्डुभूषण का फासी लगाना, उल्हासकर दत्त का पागल हो जाना आदि घटनाएँ जब भारत के पत्रों में प्रकाशित हुईं तो अण्डमान के जेल अधिकारियों में भी खलबली मचने लगी। किन्तु जब बन्दि्यों को पता चलता कि भारत में अण्डमान की खबरें प्रकाशित होने लगी हैं तो उनको बड़ी प्रसन्नता हाती थी। अधिकारियों में यह चर्चा होने लगी कि ये समाचार भारत के पत्रों तक पहुँचत किस प्रकार हैं? किंतु जब उनको इन सूत्रों का पता नहीं लगता तो वे बीखला जाते थे।

इसी बीच सावरकर को उनके बाहर भेजे जाने वाले आवेदनो का उत्तर मिला कि उनको केवल सोमवार के दिन एक दिन के लिए बाहर भेजा जाएगा। सावरकर को इससे प्रसन्नता हुई। दीवारों पर जो-जा कविताएँ लिखी थीं उनको कण्ठस्थ करने लगे, जिससे कि बाहर जाकर अपने साथियों को सुना सकें। इस प्रकार वे उत्सुकता से सोमवार की प्रतीक्षा करने लगे। सोमवार आया और चला भी गया। सावरकर प्रतीक्षा करत रह गए। तीसरे दिन जब पर्यवेक्षक आया तो सावरकर ने उससे उनके बाहर न भेजे जाने का कारण पूछा। उसने कहा, “मुप्य आयुक्त रगून गए हैं। उनके वहाँ से लौटने पर इस विषय पर अन्तिम निणय होगा।”

मुख्य आयुक्त रगून जाकर राज्यपाल से मिल कर जब लौटा तो उसके लौटत ही कारागार के राजनीतिक बन्दि्यों की घर-भकड़ आरम्भ हो गयी। उन सब की तलाशियाँ ली गयी। कुछ को हथकड़ियाँ पहनायी गयी तो कुछ का एक्कांत कोठरी में डाल दिया गया। इस प्रकार एक बार फिर यातनाओं का दौर आरम्भ हो गया। इतना ही नहीं अपितु साधारण बन्दि्यों तक में आतंक छा गया था। टडेल और जमादार भी इस तलाशी से नहीं बच पाए थे।

समस्त अण्डमान में भय और आतंक का वातावरण छा गया। बहुत खोज-बीन करने पर विदित हुआ कि राजनीतिक बन्दि्यों द्वारा बम बनाकर अण्डमान से भाग निकलने के भीषण पडयंत्र का रहस्योद्घाटन हो जाने से यह तलाशियाँ ली जा रही हैं और सजाएँ दी जा रही हैं।

यह विदित होते ही कारागार में भीति-भीति की अफवाह फैलने लगी। कोई कहता वहाँ बम मिला तो कोई कहता यहाँ बम मिला। कोई कहता किसी का ऐसा पत्र पकड़ा गया है जिसमें एक नाव भर कर बम लाने के लिए लिखा गया था। किन्तु इन

तलाशियां भ अधिकांशियां के हाथों ऐसी कोई भी वस्तु नहीं लगी। बहुत बाद में पता चला कि तालमोहन नामक एक बंगाली बाहर ने अपने अधिकारियों को प्रसन्न करने के लिए यह निराधार साक्ष्य भी दिया। उसको इसका दण्ड भुगतना पड़ा।

अब अधिकारियों को बन्दियों का परेमान करने का बहाना मिल गया। पहले इस अपवाद के ही आधार पर उन्होंने राजनीतिक बन्धियों का बाहर जाना बंद कर दिया। उन्होंने यह किया कि भारत सरकार का कड़ा आदेश है कि इन पर कड़ी नज़र रखो। बाहर या तो सजा पूरा हान के बाद ही जा सकते हैं या फिर मरने के बाद।

इतना ही नहीं राजनीतिक बन्धियों पर अत्याचारों और यातनाओं का मात्रा बढ़ने लगी। इससे बंदियों की मानसिक स्थिति बिगड़नी जाती थी।

अण्डमान के राजनीतिक बन्धियों के उत्पीड़न के समाचार भारत के समाचार पत्रों में जब प्रकाशित हुए तो बौद्धिक म भी इस विषय पर चर्चा होने लगी। उसका परिणाम निकला। अण्डमान कारागार के निरीक्षण के लिए ब्रिटिश सरकार में हमें सेंसर्सर सर रेगिनाल्ड जेडवॉ के अण्डमान भेजने का निश्चय किया गया।  
**हंसप्रभ होम सेंसर्सर**

यह सन १९१३ की नवम्बर मास की घटना है।

होम सेंसर्सर के अण्डमान आन की सूचना भी अण्डमान के बंदियों को गुप्त रूप से प्राप्त हो गयी थी। जब बन्धियों ने होम सेंसर्सर से मिलन की मांग की तो अधिकारियों ने उनसे पूछा "आपको यह सूचना किसे दी कि होम सेंसर्सर आ रहे हैं?" इसका उनको क्या उत्तर मिलता?

उधर बंदियों ने निश्चय कर लिया था कि उन्हें होम सेंसर्सर से नहीं मिलना था। तो वे उनके आगमन पर अपनी कोठियों से ही जोर-जोर से चिल्लाकर उनका ध्यान आकृष्ट करने का यत्न करेंगे।

यह सदस्य जब अण्डमान आया तो कुछ राजबंदियों से उसको मिलवाया गया। किंतु उसका व्यवहार अपमानजनक था। उसने किसी से कहा, "तुम तो सरकार के शत्रु हो तुम्हें मृत्यु दण्ड देना ही उचित था।" किसी का उसने कहा, "बाहर जान का कभी नाम मत लेना तुम राजद्रोही और घटव्यप्रकारी हो।"

१६ नवम्बर १९१३ को सावरकर के साथ यह सदस्य की जो भेंट-वार्ता हुई उसका विवरण सावरकर ने 'माझी जम ठेप' में इस प्रकार दिया है—

**जेडवॉ—सावरकर।** क्या दुःशा बना ली है तुमने स्वयं अपने ही हाथों में। मैंने तुम्हारे लेख आदि पढ़े हैं। आपने अथाह ज्ञान और बुद्धि का यदि उचित उपयोग हो सके तो तुम्हें यो ही ऊँची-से-ऊँची सरकारी नौकरी मिल सकती थी, किन्तु न जाने क्यों आपने इस दिशा को अपनाया है।

**सावरकर—**आपकी सहानुभूति के लिए धन्यवाद। किंतु मेरी इस दुःशा को समाप्त करना तो आप लोगों के ही हाथों में है। मुझे विदित हुआ है कि गोखले

का अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव अब विधानमण्डल के सम्मुख है। यदि मेरे देश को उस प्रकार के अदमर सुलभ करा दिए जाएँ और उन्हें प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया जाए तो न केवल मैं अपितु समस्त अतिवारी शान्ति के मार्ग पर सहज चलने के लिए उद्यत हो जाएँगे।

क्रडाक—आपको यह किस प्रकार पता चला ? क्या आपको यह भी पता है कि इस समय आपके साथी और आपके सहायक कहाँ हैं ?

सावरकर—मैं कैसे बता सकता हूँ ? मैं तो यहाँ एकांत काठरी में बंद हूँ। फिर भी हम एक दूसरे के विचारों को जानते हैं। जब शान्ति से कार्य सम्पन्न हो सकता हो तो अशांति का मार्ग अपनाना अपराध है। जब मैंने अतिवारी आन्दोलन में कार्य करना आरम्भ किया था तो मेरे विचार ऐसे ही थे। यही उनके भी विचार थे। हो सकता है कि वे भी अब मेरी ही भाँति सोचते हों।

क्रडाक—नहीं विलकुल नहीं। वे तो आज भी तुम्हारे नाम पर भारत और अमेरिका तक में युद्ध का निनाद करने लगे हैं।

सावरकर—यह तो मैं आपके मुख से सुन रहा हूँ। किन्तु कारागार में रहते हुए मैं उनको अपने नाम का उपयोग करने से किस प्रकार रोक सकता हूँ ?

क्रडाक—इसकी सम्भावना पर हम विचार कर सकते हैं, यदि आप उनको अपने वर्तमान दृष्टिकोण के विषय में लिखने के लिए उद्यत हो तो ?

सावरकर—क्यों नहीं, मुझे इसमें प्रसन्नता होगी। किन्तु वह पत्र मुझे स्वतन्त्र रूप से लिखने दिया जाए, अथवा उसका कोई उपयोग नहीं हो पाएगा।

क्रडाक—किन्तु पत्र निश्चय ही हमारे माध्यम से जाना चाहिए।

सावरकर—तब तो वे इसका यह अभिप्राय लेंगे कि वह पत्र मुझमें बलात् लिखवाया गया है।

क्रडाक—हम स्वतन्त्र पत्र भेजने की आज्ञा नहीं दे सकते।

सावरकर—तब मैं विवश हूँ।

क्रडाक—अच्छा, आपकी शिकायतें क्या हैं ?

सावरकर ने ज्यों ही कारागार में राजनीतिक बंदियों को दिए जाने वाले कपटों के विषय में बताना आरम्भ किया था कि मुख्य आयुक्त बीच में ही बोल पड़ा, "परन्तु तुम राजनीतिक बंदियों ने भयंकर स्थिति उत्पन्न कर दी थी। यदि तुम लागू के अधिकार में होते तो वह तुमको अब तक या तो साइबेरिया भेज देता या तुमको जीवत ही गोली मार कर समाप्त कर देता।" अपनी बात समाप्त करते हुए उसने कहा, "यह तो तुम अपना सौभाग्य समझो कि ब्रिटिश सरकार ने तुम्हारे साथ उस प्रकार की क्रूरता का व्यवहार नहीं किया।"

सावरकर—यदि भारत पर रूस का राज होता तो वे हमें शस्त्र विहीन नहीं करते। साइबेरिया के लोगों में ही आज वहाँ अधिकारी और सैनिक सेनापति हैं। यदि भारतवासियों को शस्त्र रखना सम्भव हो पाता तो जिस प्रकार



साम्राज्य को ध्वस्त करने के लिए काय किया था वही कहानी हम वार भी दोहराई जाती ।

**कड़ाक**—तो क्या, यदि तुमने अपने पुराने हिन्दू राजाओं के प्रति विद्रोह किया होता तो वे तुम्हें हाथियों के परो से रोदवा देते ।

**सावरकर**—कदाचित्त वे ऐसा ही करते । इंग्लैंड में भी तो पूर्व काल में चोर को सड़को पर घसीट कर लाया जाता था और फिर उसका सिर काट लिया जाता था । किंतु अब वहाँ ऐसा नहीं होता । यह प्रगति सभी के करने से हुई है यदि विद्रोहियों का हाथी के परो से रोदवा दिया जाता था तो जब विद्रोहियों की वन आती थी तो वे भी चाल्स प्रथम जैसे राजा को फाँसी पर लटका देते थे । समय बदल गया है । दोनों ने अपनी-अपनी काय पद्धति को बदल लिया है । यह प्रगति का संकेत है । तुम ही बताओ तुम क्या किन्हीं नियमों के आधार पर नहीं चल रहे हो । यदि कहो कि नहीं तो हम भी स्वयं को उसी भाँति डाल देंगे ।

सावरकर की कड़ाक से एक प्रकार से नीक झाँक ही हुई थी, इसे वातालाप नहीं कहा जा सकता था । यही स्थिति जय लोगो के साथ हुई । कुछ जो उसने अपमानजनक और असम्भ्यतापूर्ण उत्तर दिए थे, उनका उल्लेख हम इस अध्याय की पहली पंक्तियाँ में कर आए हैं ।

कड़ाक जतल था तो अंग्रेज और अंग्रेज सरकार का ही एक अगभूत प्राणी । वह उसके विपरीत दिशा में किस प्रकार सोच सकता था । तद्विषय सावरकर ने उसको समझा दिया था कि इस स्थिति में भी भारतीय क्रांतिकारी किसी प्रकार टूटने अवकाश देने वाले नहीं हैं ।

इस प्रकार कड़ाक प्रकरण समाप्त हुआ । वह कह गया था कि भारत सरकार उत्तर देगी । या कह कर वह अपनी घाल बचाकर अण्डमान से चला गया । या कहा जाए कि जैसा आया था वसा ही चला गया । यो भी कहा जा सकता है कि कुछ मुँह की घाँवर ही गया । अस्तु ।

## तीसरी हडताल

नानी गोपाल को अन त्याग किए ४५ दिन हो चुके थे । कुछ राजबंदियों ने उसके साथ सहानुभूति प्रकट करने के उद्देश्य से स्वयं भी भूख हड़ताल कर दी । इस प्रकार तीसरी हड़ताल का शुभारम्भ हुआ । कुछ दिन बाद सबने भूख हड़ताल आरम्भ कर दी और काम करना भी छोड़ दिया । उन सब पर अभियोग चलाया गया और सबको छ छ मास का बेडियो का दण्ड सुना दिया गया ।

नानी गोपाल का शरीर अस्थिपजर मात्र रह गया । किंतु फिर भी इस हड़ताल का उसकी भूख हड़ताल का निमित्त मान कर उसको भी आठ दिन का हथकड़ियाँ पर खड़े रहने का दण्ड सुना दिया गया । जिन लोगों ने पहले उसकी सहानुभूति में अनशन किया था उनको भी इसी प्रकार सात दिन का दण्ड दिया गया ।

सावरकर इस बार भी घर से पत्र आने की प्रतीक्षा में थे। ज्यों ही उनको ज्ञात हुआ कि घर से पत्र आ गया है। वे भी हड़ताल में सम्मिलित हो गए। उनको दो सप्ताह की आढा-वेडी का दण्ड दिया गया और उसके बाद हथकड़ी और अन्त में साँकल वेडी का दण्ड दिया गया।

सावरकर के पत्र में अनेक आपत्ति जनक बातें थीं, इस कारण उनको वह पत्र दिया नहीं गया। किन्तु इस अवधि में एक व्यक्ति ने आकर उनका पत्र का सारांश दत्ता दिया था। उस पत्र में सर्वाधिक महत्व की बात यह थी कि सावरकर के विषय में भारत में प्रयत्न चल रहा था। पार्लियामेंट में सावरकर और कीरहार्डी के परस्पर सम्बन्धों की चर्चा हुई थी। उस अवसर पर कहा गया था कि आयरलैंड में तो जनता खुले आम विद्रोह की घमकियाँ दती थी, व सोय अपनी सत्ता को एकत्रित कर प्रदर्शन किया करते थे, फिर भी ब्रिटिश सरकार कुछ नहीं करती थी। परन्तु सावरकर जैसे भारतीय क्रांतिकारी को मात्र पिस्तौल एकत्रित करने का आरोप में पचास वर्ष काले-पानी का दण्ड दे दिया गया है।

सावरकर के लघु भ्राता ने यह सारी बात उस पत्र में लिख दी थी। किन्तु अण्डमान जेल के अधिकारी समझते थे कि यदि सावरकर को यह पत्र दे दिया गया तो पार्लियामेंट तक में चर्चा होने के समाचार से यहाँ के राजनीतिक बंदियों का साहस बढ़ जाएगा। इसीलिए सावरकर को वह पत्र दिया नहीं गया।

सावरकर आदि ने इस तीसरी हड़ताल में तीन मांगें रखी थी—१ हमको राजनीतिक बंदी मानकर प्रथम श्रेणी दी जाए, २ साधारण बंदी मान कर अण्डमान के अन्य बंदियों के समान हम बाहर छोड़ दिया जाए तथा लेखन आदि काम दिए जाएँ और ३ यदि यहाँ यह सम्भव न हो तो हम भारत के कारागारों में भेज दिया जाए।

इन मांगों का लेकर हड़ताल जारी थी। सभी राजनीतिक हड़ताली बंदी दिन रात अलग अलग कमरों में बंद रखे रहते थे इस कारण परस्पर विचार विनिमय का अवसर था ही नहीं। शायद इसी कारण अधिकारियों ने उन सबको अलग-अलग रखा हुआ भी था। परस्पर मिलने पर तो न जाने क्या उपद्रव कर दें, यह भय उनको सदा ही बना रहता था। कठोर नियमों का इस कठोरता से पालन किया जाने लगा था कि बिड़की के सहारे खड़े होकर उच्च स्वर से बात करना भी असम्भव था। यदि कोई इसका प्रयत्न करता तो उसको अतिरिक्त दण्ड भुगतना पड़ता था और कायसिद्धि न होने का दुःख अलग होता था।

‘जहाँ चाह, वहाँ राह’ इस कहावत के अनुसार बंदियों ने वेडियों की ध्वनि के माध्यम से परस्पर सन्देश वहन की विधि आविष्कृत कर ली थी। कोठरी के सीखचा से वेडियाँ रगड़ी जाती। इसमें अक्षर पान होता। प्रारम्भ में यह अप्रेजी का अक्षर पान करता था किन्तु बाद में बाबाराव सावरकर ने उसे हिंदी में परिवर्तित कर सबके समझने में सुविधा कर दी थी। इन प्रकार परस्पर हिंदी में शुद्ध वार्तालाप चलने लगा था।

भारत के 'कैपिटल' पत्र को इस बेटार के तार की भनक मिली तो उसने अपन पत्र में अण्डमान की गतिविधियाँ पर प्रकाश डालने वाला एक लेख प्रकाशित करवा दिया। उसमें इस बात का भी उल्लेख कर दिया कि 'गणेश दामोदर सावरकर अण्डमान के बेटार के तार यंत्र पर नियुक्त थे। इस तार यंत्र के माध्यम से राजनीतिक बलों परस्पर सन्देशों का आदान प्रदान करते थे।'

बारी बहुत परेशान था कि यह सन्देशों का आदान प्रदान परस्पर किस प्रकार हो रहा है? उसके द्वारा नियुक्त पठान तथा बलोच बाहर या जमादार बेडिया की खटखटाखट का अभिप्राय क्या समझे। जब कभी वे इस खटखट के विषय में पूछते, 'यह खट खट क्या लगा रखी है?' तो बारी कह देते, 'हम तो बेडियों की भनकार पर भजन कर रहे हैं।' तदपि एक बाहर को कुछ सन्तुष्ट-सा हो गया तो उसने अपन घाटुकारिता के स्वभाव से विवश होकर बारी को बना दिया कि 'हो न हो बेडियों की इस भनकार में उनका सन्देश छिप रहते हैं।'।

बारी एक दिन रात के समय चुपचाप सारे बंदीगृह में घूमता रहा। बेडिया की ध्वनि से वह समझ तो गया कि 'बेटार का तार यंत्र' है। उसने बाहरों को आना दी, 'इनका बंडी बजाने को मना कर दो।' यह कह कर वह चला गया।

भोजन के समय सब राजबंदी एक घण्टे के लिए आँगन में एकत्रित होते थे। कोई परस्पर बात न कर ले इस भय से बारी स्वयं उनके मध्य में भूत जैसा खड़ा रहता था। तदपि एक दिन साहस करके नानी गोपाल अंग्रेजी में बोल उठा, 'भाइयो! ज़मना हम सब स्वतंत्र हैं। परस्पर बोलने का हमारा अधिकार ज़मसिद्ध अधिकार है। देखें, हमारा शत्रु हमारे इस अधिकार को कैसे छीनता है?' नानी गोपाल ने बारी को बनीतों दी थी। उसका वाक्य पूरा होते-होते बारी, मिर्जा खान तथा पठान बाहरों ने उसे धर दबोचा। उसको कमरे में ले जाकर बंद कर दिया। कमरे में जाते तक वह जोर-जोर से बोलता रहा। राजबंदियों के बारी की इस अमफलता पर हँसन से बारी क्रोध से नयुन फड़फड़ाने लगा।

मिर्जा खान निकृष्टतम प्राणियों में से था, इसका उल्लेख हम पहले भी कर आये हैं। उसी दिन जब सब अपनी-अपनी कोठरियों में चले गए तो वह सावरकर के पास आ कर कहने लगा, "बड़े बाबू! यह नानी गोपाल आपका सच्चा शिष्य है। किन्तु कोई हिंदू इतना साहसी नहीं हो सकता। वह तो किसी पठान के बच्चे की तरह है।"

सावरकर उसका व्यंग्य को भली भाँति समझ गए थे। उन्होंने भी उसी स्वर में उत्तर देते हुए खान से कहा 'बड़े जमादार! तुम गलत समझ रहे हो। तुम पठान की सन्तान हो। यदि नानी गोपाल तुम्हारी भाँति पठान की सन्तान होता तो स्वदेश की स्वतंत्रता के लिए यहाँ जेल में पड़ा हुआ सड़ना नहीं रहता। वह भी तुम्हारी तरह बारी की तलब घाटता फिरता। परंतु क्यों कि वह हिंदू है इसलिए राष्ट्राभिमानि पुर है।'।

“जमादार ऐसी भा बात नहीं कि सब पठान तुम जैसे ही हो। वे भी शूर-वीर होते हैं और मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ। परन्तु सभी पठान शूर होते और सभी हिन्दू शूर नहीं होते, तो हिन्दू तुम्हारा मुसलमान राज किस प्रकार पलट देते ?”

सावरकर का इस प्रकार भुह तोड़ उत्तर सुन कर मिर्जाखान ने वहाँ से जिसकने म हो भलाई समझी।

सावरकर के अनशन से जेल के अधिकारी तो परेशान थे ही किन्तु जब नानी गोपाल को भी उनके अनशन का समाचार मिला तो उसे थड़ा दुख हुआ। कुछ दिनों तक तो यो ही चल्ता रहा और नानी गोपाल को जब यह निश्चय हो गया कि जब तक वह अन्न ग्रहण नहीं करेगा तब तक सावरकर भी अन्न ग्रहण नहीं करेंगे तो उसने अधिकारियों से सावरकर के साथ भेंट वार्ता का आग्रह किया।

अधिकारियों को लगा कि कदाचित् इस भेंट वार्ता से कुछ राह निकल आए। अतः उन्होंने उन दोनों की भेंट वार्ता का प्रबंध कर दिया। सावरकर ने उस अवसर पर उसको समझाते हुए कहा, “मैं जानता हूँ कि तुम यह अनशन शरीर त्यागने के विचार से कर रहे हो। मरना तो एक दिन हम सबको ही है। किन्तु यदि मरना ही हो तो इस प्रकार स्त्री हठ की भाँति व्यर्थ जीवन की आहुति दे देना उपयुक्त नहीं। हमें कुछ करके ही मरना चाहिए।”

इस प्रकार बहुत समझाने पर वह अन्न ग्रहण करने के लिए राजी हो गया तो सावरकर और नानी गोपाल दोनों ने ही अन्न ग्रहण किया। यो यह अनशन समाप्त हुआ।

सावरकर प्रायः कहा करते थे कि अन्न त्याग कर कार्यरों की भाँति जीवन देना उपयुक्त नहीं। अन्न तो झपट कर भी लेना पड़े तो ले लो। अन्न खा कर शक्तिशाली बनो और कारागार में दिया जाने वाला काय करना बन्द कर दो। अन्न त्याग नहीं अपितु काय त्याग करना चाहिए।

धीरे धीरे सभी राजनीतिक बंदी सावरकर के इस मत से सहमत होने लगे और सबने अन्न ग्रहण करना स्वीकार कर लिया।

## बंदियों की विजय

सावरकर आदि की हड़ताल तथा अन्याय आंदोलन का सुपरिणाम अन्ततः निकल ही आया। भारत सरकार को ओर से जेल अधिकारियों को आदेश मिला कि राजनीतिक बंदियों की नई व्यवस्था की जाए।

भारत सरकार के आदेश की प्रमुख बातें थी —

१ राजनीतिक बंदियों में जो विशिष्ट अवधि के बन्दी हैं उन्हें भारत के कारागारों में भेज दिया जाएगा। वही उनको नियमानुसार चाकी प्राप्य सुविधाएँ आदि प्राप्त होगी।

मे रखा जाएगा और बाद में यदि उनका व्यवहार ठीक रहा तो उन्हें श्रम से मुक्त कर, उसी द्वीप में बसने के लिए स्वतन्त्र कर दिया जाएगा।

३ कारागार में राजनीतिक बन्धियों को उच्च श्रेणी का भोजन और वस्त्र दिए जाएंगे और पाँच घण्टी की अवधि पूर्ण होने पर उनका अपना भोजन स्वयं बनाने की छूट दी जाएगी।

सावरकर ने अपनी पुस्तक 'माझी जम ठेप' में इस विषय पर लिखा है—

"सरकार ने कुछ अशों तक हमारी माँगें मान ली थी। तब हम सबने यही विचार किया कि जो शर्तें स्वीकार कर ली गई हैं उनको कार्यान्वित कराया जाए तथा अन्य सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए अवसर की प्रतीक्षा की जाए। इस प्रकार अनशन समाप्त करने के कुछ दिन बाद हमने हड़ताल भी समाप्त कर दी। सब बन्दी पूर्ववत् काम करने लगे।

"अवधि प्राप्त बन्धियों का भारत के कारागारों में भेजा जाने लगा। जा बन्दी जाते थे, जाते समय उनको हमने कहा कि वे वहाँ जा कर अण्डमान के बन्दी के विषय में अधिक से अधिक प्रचार करें। समाचार पत्रों में इन बन्दी के विषय में प्रकाशित कराएँ। जब-जब देश से यहाँ बन्दी भेजे जाएँ उनके द्वारा देश के समाचार अवश्य भेजे जाएँ।

"अण्डमान से वापस भेजे गए बन्धियों का सरकार ने एक ही कारागार में न रख कर देश के विभिन्न प्रांतों के कारागारों में वितरित दिया। उनके विभिन्न कारागारों में रहने से अण्डमान में दिए जाने वाले बन्दी और मातनाओं का चारों ओर स्वन ही सरकार ने प्रचार करने में सहायता कर दी।

"अवधि प्राप्त बन्धियों के अण्डमान से चले जान पर अण्डमान में अब बहुत थोड़े से आज्ञाकारी कारावासीय बन्दी रह गए थे। उनका भी अपना भोजन स्वयं बनाने की सुविधा प्राप्त होने के कारण भाजन कुछ अच्छा होने लगा था। कुछ बन्धियों का मुद्रण पुस्तकालय, नक्शे आदि कार्यों पर नियत कर दिया गया था। उन्हें दस पांच रुपया वेतन भी मिलने लगा था।

राजनीतिक बन्धियों को मिलने वाली इन सब सुविधाओं से सावरकर को बचित ही रखा गया। तदपि अपने साथी बन्धियों को सुविधा मिलने के समाचार से सावरकर को अत्यंत प्रसन्नता हुई थी। सावरकर को न लेखन का काम दिया गया और न अपना भोजन स्वयं बनाने की सुविधा दी गई थी। वे दोनों भाई वही रस्सा बटने का काम करते थे। कुछ दिनों बाद सावरकर ने बड़े भाई और उनके साथी नासिक पदमराव काण्ड के अभियोगी वामनराव जोशी को भी मिल कर भोजन बनाने की सुविधा प्राप्त हो गयी थी। किन्तु सावरकर का पहल की ही भाँति इन सब सुविधाओं से बचित रखा गया था।

चारी जब-जब भी उस ओर आता तबसे मुख में यही मुस्कान की मिलता,

“अशान्ति की सारी जड़ सावरकर ही हैं। उन पर कड़ी नजर रखनी चाहिए। उन्हें किसी प्रकार की सुविधा न दी जाए।”

कुछ दिनों बाद कारागार से बंदियों को बाहर भेजा जाने लगा। वे राजनीतिक बंदी बाहर जा कर सामान्य बंदियों में देश के प्रति, शिक्षा के प्रति, रुचि जागृत करने का कार्य करने लगे। कुछ ही समय में उन्होंने बंदी अधिकारियों, व्यापारियों तथा ‘स्वतंत्र’ वर्ग के जनों में भी शिक्षा व देशभक्ति के प्रति रुचि जागृत करने में सफलता पा ली।

अण्डमान में रहने वाले लोगों को सुविधाएँ देने के लिए भारत से इंजीनियर, डाक्टर, म्यायाधीश तथा प्रशासनिक अधिकारी भी वहाँ भेजे जाने लगे थे। राजनीतिक बंदी उन तक भी पहुँचे और उनमें भी देशभक्ति जागृत करने में उनका सफलता मिली। उनमें से अनेक अधिकारी इन बंदियों की शिक्षा से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने समाज सेवा, शिक्षा के प्रचार तथा देशभक्ति का सकल्प ले लिया। अण्डमान में प्रचार काय के लिए वे अपनी आय का पाँच प्रतिशत अंश भी देने लगे। प्रचार काय के लिए कारागार में एक कोश स्थापित किया गया था, यह अंश दान उस कोश में एकत्रित होने लगा और जो बंदी वेतन पाने लगे थे वे भी इसमें अंश दान करते थे।

## शुद्धि अभिप्राय

अण्डमान कारागार में अंग्रेज अधिकारियों की सत्ता थी। वे सभी अंग्रेज अधिकारी ईसाई मत के मानने वाले थे। भारत पर अधिकार करने से ले कर आज तक मतांध ईसाई एवं अंग्रेज अधिकारी भारतवासियों को अधिकाधिक सख्या में ईसाई मतावलम्बी बनाने के लिए लोभ, लालच, कामना, प्रताड़न, सहायता आदि अनेक प्रकार से मतपरिवर्तन का कार्य करते आ रहे हैं। भोले भाले, निधन, प्रताड़ित, शोषित हिंदू उनके चंगुल में फँसते भी रहे हैं।

अण्डमान कारागार की स्थिति इससे सवधा भिन्न थी। वहाँ के अधिकारियों ने कभी इस मत-परिवर्तन पर ध्यान दिया ही नहीं, तदपि वहाँ बड़ी सख्या में मत परिवर्तन वहाँ के पठान, बलोच और अल्प मुसलमान बंदी हिंदू बंदियों को फसा कर किया करते थे।

सावरकर ने ‘माझी जन्म ठेव’ में लिखा है कि “अण्डमान में मैंने अपने १० वर्ष के काल में ऐसी घटना नहीं देखी कि हिंदू बंदी को लालच या दबाव के बल पर ईसाई धर्म ग्रहण करने को बाध्य किया गया हो। दूसरी ओर अण्डमान के मुसलमान बंदी अत्याचारों व उत्पीड़न का आश्रय ले कर हिंदू बंदियों का धर्म परिवर्तन करने में कोई कसर नहीं उठा रखते थे। अण्डमान ही नहीं अपितु हिंदुस्तान के अधिकतर कारागारों में मुसलमान बंदियों, मुसलमान बाइरो तथा जमादारा द्वारा तरह-तरह के हथकण्डों द्वारा हिंदू बंदियों का धर्म परिवर्तन कर उन्हें मुसलमान बनाने का कुचक्र चलाया जाता रहा है।

“चौदह वर्ष के अपने कारागार के अनुभव के उपरान्त, धर्म परिवर्तन की घटनाओं तथा उन्हें रोकने में स्वयं सक्रिय रहने के कारण किए गए सर्वेक्षण के आधार पर मैं साधिकार यह कह सकता हूँ कि दिल्ली अथवा बम्बई की जामा मस्जिदें उतने हिंदुओं का धर्मांतरण नहीं कर सकती जितने का कारागार के मुसलमान बंदी व अधिकारी करा लेते हैं।

“कारागार में इस इस्लामीकरण की कोई भी योजना संगठित रूप से नहीं चलती। न इस योजना के कोई अधिकृत प्रेरक या संचालक ही होते हैं। प्रत्येक मुसलमान को वचन से ही यह शिक्षा दी जाती है कि यदि वह एक हिंदू को भी मुसलमान बना लेगा तो इस लोक में तो उसकी इस्लामी जगत में छाक जमेगी है, परलोक में भी तमाम गुनाह माफ हो जाएंगे तथा जन्नत में उपभोग के लिए द्वार मिलेंगे। बाल्यकाल में दी गयी इस मकीर्ण मजहरी शिक्षा को पूरा करने में जेल का प्रत्येक मुसलमान अपनी पूरा शक्ति से लग जाता है।”

सावरकर न अण्डमान कारागार में जाते ही यह अनुभव कर लिया था कि वहाँ वाइर, जमादार व पेटी अफसर जस पदी पर धर्माग्र, पाप परामर्श पठान, बलूची व सिन्धी मुसलमानों को नियुक्त किया गया है। विशेष रूप में राजनीतिक बन्धियों की निगरानी के लिए ता जमादार आदि पदों पर मुसलमानों को ही रखने की परिपाटी रही है। ये मुसलमान अधिकारी हिंदू बंदियों को अधिकाधिक कष्ट दे कर उनका उत्पीड़न कर, पिटाई ही नहीं अपितु उनके विरुद्ध झूठी शिकायतें कर के उनकी सजा बढ़ाने की धमकियाँ दे कर उन्हें अपमानित करते। बाद में वही मुसलमान इन हिंदू बंदियों का यह भी आश्वासन देने कि यदि वे मुसलमान बन जाएँ तो उन्हें कष्टों से मुक्ति मिल सकती है।

इस प्रकार के हथकड़े और कुचक्र चला कर वे कुछ बंदियों को मुसलमान बनने के लिए राजी कर लेते थे। हर माह एक-दो हिंदू बंदियों को भोजन के समय जब सावरकर मुसलमानों की पकितमा में बठा देखत ता उन्हें अपार बदना होती।

सावरकर ने जब इस कुचक्र का रोकने के लिए वहाँ के हिंदुओं में चर्चा की तो उन्होंने पाया कि जब इस तरह की बातों में उनकी कोई रुचि ही नहीं है ता फिर उन्हें इससे वेदना होने का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता था। कोई-कोई तो यहाँ तक कह दता ‘हमें इन बातों से क्या लेना-देना।’

सावरकर ने जब इस विषय में राजनीतिक बंदियों से चर्चा की तो उन्होंने पाया कि कारागार के भयकरतम कष्टों को भागत भागत अब व बहुत थक हो गए हैं उनमें अब और अधिक जूझने का सामर्थ्य नहीं रहा है। उनमें से भी कुछ बंदियों ने सावरकर को कहा, “इन दूर पठानों में कौन झगड़ा मोल ले ? इन धर्माग्रों से व्यर्थ में झगड़ा करने से कोई लाभ नहीं होगा।’

सावरकर सोचत, एक प्रकार से तो उनका यह साधना भी ठीक ही है। क्याकि वे कारागार की अवधि में उनको रहना तो उन दूर मुसलमान वाइरों के अधीन

है। अतः उनसे झगड़ा मोल लेने का अभिप्राय हुआ कि अपने लिए यातनाओं को निमंत्रण देना। लेकिन कुछ बंदी ऐसे भी थे जो कहते थे “यदि कोई हिंदू मुसलमान बन गया तो क्या हुआ?” यहाँ तक कि उनमें से कुछ ऐसे भी थे जो उन मुसलमान बाइरो से सुख-सुविधा की लालसा में स्वयं ही कह देते “मैं भी शीघ्र ही मुसलमान बनने की सोच रहा हूँ।”

कितु सावरकर जैसा अन्तिकारी व्यक्ति कब इन बाधाओं और अड़चनों से विचलित होन वाला था। हिंदुओं को विधर्मी बनाए जाने के दूरगामी घातक परिणामों से चिन्तित होकर उन्होंने अण्डमान कारागार के राजनीतिक बंदियों को प्रेरित करना आरम्भ कर दिया। यह सन १९१३ की बात है। सावरकर को अण्डमान कारागार में पहुँचे दो वर्ष ही हुए थे तब उन्होंने पठान द्वारा एक हिंदू बंदी को मुसलमान बनाए जाने के विरुद्ध पहला मामला अधिकारियों के समक्ष दज कराया था।

सावरकर को जब विदित हुआ कि एक हिंदू बालक को मुसलमान बनाने की योजना है तो उन्होंने एक आवेदन पत्र तैयार कर लिया। जब सुपरिटेण्डेंट उस ओर को आया तो सावरकर ने चिल्लाकर कहा, “अप्लीकेशन सर।”

सुपरिटेण्डेंट ने प्रायना पत्र लिए बिना कह दिया, “अपने विषय में तुम्हें जो कुछ कहना है कहो, तुम्हें दूसरों के मामलों में पड़ने की आवश्यकता नहीं।”

सावरकर ने बड़े ही धैर्य भाव से उससे कहा, “क्या आपन उन अन्य बंदियों तथा पठानों को भी, जो हमारे पत्रों को खाल लेते हैं, अथवा जो हम भाति-भाति से यातनाएँ देने में कभी नहीं चूकते, कहा कि वे भी अपना काम देखें, दूसरों के कामों में अपनी टांग न अड़ाएँ?”

सावरकर ने वही शब्दों में कहा “मैं तो शिकायत करूँगा ही चाहे आप सुनें या न सुनें।”

यह सुन कर सुपरिटेण्डेंट कुछ डीला पड़ गया। तब सावरकर ने उसको उस दिन होने वाले धर्मपरिवर्तन के विषय में सारी बात विस्तार में बताया। सुपरिटेण्डेंट कहने लगा, “इस प्रकार की शिकायत करने की अपेक्षा हिंदू भी मुसलमानों को हिंदू क्यों नहीं बनाते?”

सावरकर को भाग मिल गया। उन्होंने बड़े जोर से यह अभियान आरम्भ कर दिया और १९२०-२२ तक जब तक वे वहाँ रहें उन्होंने अपने इस अभियान का जारी रखा। पठान गुण्डों ने चिढ़ कर कई बार उन पर आक्रमण भी किए, यहाँ तक कि उनकी हत्या का भी प्रयास किया गया। इस बात को लेकर कारागार में अनेक बार दंगे भी हुए। सावरकर के बड़े भाई पर भी पठानों ने आक्रमण किया, एक दिन तो उन्हें घायल ही कर दिया था। फिर भी उनका अभियान रुका नहीं।

इसके परिणामस्वरूप मुसलमानों का धर्म परिवर्तन का कार्य कुछ धीमा पड़न लगा तो उमके बाद सावरकर ने विधर्मी बने अनेक हिंदू बन्दिनों को पुनः अपन धर्म में



वापस ले लिया। किन्तु धर्माघ पठान बब मानने वाले थे। वे बर्दिया को अधिकाधिक प्रताड़ित करने लगे।

सावरकर को यह सहन करना बठिन हो गया। एक दिन उन्होंने बारी से कहा कि यदि पठानों ने इस प्रकार का उत्पीड़न जारी रखा तो इससे कारागार का वातावरण बिगड़ेगा। बारी यद्यपि इन सब बातों को जानता था। उसने कहा, "दूसरे बाँडे की ये सब बातें आपको किसने बतायी?"

सावरकर बोले, "मुझे किसी भी प्रकार विदित हुई, किन्तु है तो ये सब बातें सच ही न?"

बारी वाला, "जाने दो, इन बिगड़े लौंडा को। तुम बेकार के झंझट में क्यों पड़ते हो?"

सावरकर ने दूसरे दिन सुपरिटेण्डेंट से बात की तो उसने भी कुछ इसी प्रकार कहा, "ऐसे दुष्ट अपराधी, पतित जन हिंदू बने रहें या मुसलमान बन जाएँ इससे क्या अंतर पड़ता है। और फिर यदि कोई स्वयं मुसलमान बनना चाहे तो हम उसको किस प्रकार रोक सकते हैं?"

सावरकर ने भी कहा, "यदि कोई स्वेच्छा से मुसलमान बनना चाहे तो मुझे भी उमम कोई आपत्ति नहीं है। परंतु यहाँ तो मुसलमान बाडर और जमादार हिन्दू बाँडियों को कष्टकारक काम दे कर, उसे डाँट डपट कर, लातच देकर मुसलमान बनने के लिए विवश करत हैं। ऐसे जबरदस्ती से किए गए धर्मांतरण को हम सहन नहीं कर सकते।"

सुपरिटेण्डेंट बोला, "इस प्रकार कोई जबरदस्ती करत पकड़ा गया तो उसे अवश्य दण्ड दिया जाएगा।"

यह आश्वासन दे कर वह चला गया।

सुपरिटेण्डेंट से इस वार्तालाप के माध्यम से सावरकर ने बारी तथा मिर्जाखान के बिषय में भी बहुत कुछ कह दिया था। इससे वे दोनों उन पर क्रोधित रहने लगे।

यह संयोग की ही बात थी कि दूसरे दिन इस प्रकार का बम प्रयोग करता एक पठान बंदी पकड़ा गया। किन्तु पकड़ने वाला हिंदू बाडर था। सावरकर ने कहा कि वह उसको जेल अधिकारी के पास ले जाए। किन्तु हिंदू बाडर डर गया और कहन लगा, "यदि मैंने इसे रंगे हाथों पकड़ लिया तो मिर्जा खान मुझे बहुत परेशान करेगा।"

बिषय होकर सावरकर ने हल्का मचाया। पटी अपसर आ गया। पटी अफसर को सावरकर ने कहा कि उम बंदी को इस पठान ने तमाछू का लालच दिया है, चाहो तो तुम उसकी तलाशी ले लो। पटी अपसर ने तलाशी ली तो उमने पास से तमाछू निकल आया। हिंदू बन्दी ने बताया कि यह तमाछू उसको मुसलमान बाडर ने दिया था। पटी अपसर ने सावरकर को लो कोठरी में बंद कर दिया और उस बंदी

को जेलर के पास ले चलने को कह वहीं से चल दिया। किंतु मिर्जा खान की मिली भगत से उस मामले पर पर्दा डाल दिया गया, उसे आगे बढ़ाया ही नहीं गया। शाम को सावरकर ने जब बारी से उसके विषय में पूछा तो उसने साफ कह दिया, “यहाँ के मामले का अधिकारी मैं हूँ तुम नहीं। तुम्हें दूसरों के मामले में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। यदि किया तो ब्यय में परेशानी मोल लोगे।”

सावरकर ने उससे कहा, “जब अय बंदियों द्वारा राजनीतिक बंदियों के परस्पर बात करने की शिकायत पर तुम कायवाही करते हो तो तुमने मेरी शिकायत पर कायवाही क्यों नहीं की? घम पर डाले जा रहे डाके की शिकायतों को तुमको गम्भीरता से लेना ही होगा।”

बारी ने जब सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया तो सावरकर ने सुपरिंटेंडेंट तक शिकायत पहुँचायी। उस समय भी उन्होंने यही कहा कि मुसलमान बाडर ने एक हिंदू लडके को तमाखू का तालच दिया और उस लडके को राग हाथ पकड़वा कर उसकी तलाशी में तमाखू मिला तथा उस लडके ने भी स्वीकार किया कि उसका यह तमाखू अमुक बाडर ने दी थी, यह सब कुछ बारी साहब के सम्मुख हुआ किन्तु उन्होंने उस मुसलमान बाडर पर अभियोग नहीं चलाया, क्यों?

यह सुनकर सुपरिंटेंडेंट को क्रोध आ गया उन्होंने बारी से कहा, “कहाँ हैं वह बाडर?”

तभी बारी ने मिर्जा खान को इशारा किया और वह सामने आ गया। उसने कहा, “हजूर! इसी बाबू ने लडके के कपड़े में तमाखू रपी थी जिससे कि मुसलमान बाडर को झूठा फँसाया जा सके।”

सुपरिंटेंडेंट ने उस ब्राह्मण लडके को पेश करवाया। उससे पूछा गया तो उसने वही बात दोहरा दी जो बारी को बही थी। और जब उससे बहुत से पूछा गया कि बाबू ने रबी थी उसने साफ इन्कार कर दिया। इससे मिर्जाखान का चेहरा उत्तर गया, उसे बहुत फटकार पड़ी।

उसके बाद सुपरिंटेंडेंट ने इस धर्मान्तरण के विषय में सावरकर से विचार-विमर्श किया। सावरकर ने उसको समझाया कि यदि कोई उस घम की बातों को समझ कर उसको स्वीकार करता है तो वह इस विषय में नियमानुसार अधिकारियों को प्रापना करे और फिर अधिकारी जाँच करें और यदि ठीक पाएँ तो उसको धर्मान्तरित होने दें, अथवा किसी के दबाव में आकर या किसी लोभ तालच में यह श्रुत्य ठीक नहीं है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति अवयस्क है उसका भी घम परिवर्तन नहीं होना चाहिए। अन्त में सावरकर ने यही कहा कि कारागार में तो इस पर पूर्ण प्रतिबंध ही रहना चाहिए।

सुपरिंटेंडेंट को यह सुझाव स्वीकार नहीं था। उसका कहना था कि यदि कोई स्पेष्ठा से करता हो तो उसको रोकने का क्या औचित्य? हाँ, तालच और दबाव में मैं किसी हिंदू का धर्मान्तरण नहीं होने दूँगा।

वारी को क्रोध आ गया और वह बीच में ही बोल पड़ा, "ऐसा करना भी असम्भव है, क्योंकि सरकार ने सभी को धर्मस्वातन्त्र्य का अधिकार दिया हुआ है।"

सावरकर ने उसकी पुष्टि करते हुए कहा कि वे भी तो धर्म स्वातन्त्र्य की ही बात कह रहे हैं। किन्तु यहाँ मुसलमानों के साथ पक्षपात किया जाता है और हिंदुओं का दबाया जाता है। सभी चाडर और पेटी अफसर मुसलमान होने के कारण वे जब चाह तब कष्ट और यातनाएँ दे कर उन्हें विवश कर देते हैं। इसके अतिरिक्त बारी साहब की मुसलमान चाडरों पर कृपा दृष्टि रहती है, ये सदा उनका पक्ष लेते हैं, भले ही वह गलत क्या न हो। अच्छा तो यही होगा कि कारागार को कारागार ही रहन दिया जाए और यहाँ का अनुशासन बने रहने में बारी विशेष ध्यान दें।

सुपरिंटेंडेंट ने सावरकर से कहा, "तुम हिंदू लोग मुसलमानों को हिंदू धर्म में दीक्षित क्यों नहीं कर लेते?"

सावरकर एक बार तो निरुत्तर में हो गए। फिर कहने लगे, "हिंदू धर्म किसी को बल या छल पूर्वक अपने समाज में मिलाने में विश्वास नहीं करता। वह धार्मिक स्वाधीनता का पक्ष पोषक है। किन्तु बलात् हिंदू से मुसलमान बनाए गए व्यक्ति का वह संरक्षण करने में भी नहीं झुकता। उसको जुझारू रूप इसी कारण धारण करना पड़ता है।"

सावरकर ने इस विषय पर अनेक व्यक्तियों के, जैसे भगिनी निवेदिता आदि जिन्होंने स्वेच्छया हिंदुत्व को न केवल स्वीकार किया अपितु उसकी प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा भी, उदाहरण दिए तथा अनेक पुस्तकों का भी उल्लेख किया।

सुपरिंटेंडेंट ने कहा, "मैं इन बातों पर विचार करूँगा, किन्तु वह ब्राह्मण लड़का आज से हिंदू बंदियों की पक़्त में बँध कर ही भोजन करेगा।" और फिर मिर्जा खान की ओर घूम कर कहा, "यदि किसी मुसलमान ने इसमें बाधा डाली तो देख लेना।"

मिर्जा खान ने साहब को घुटनों तक झुक कर सलाम किया।

उस ब्राह्मण लड़के का प्रत्यावर्तन तो हो गया किन्तु इसके लिए सावरकर को हिंदू बंदियों का भी बहुत समझाना पड़ा। सहसा कोई उसे पुनः हिंदू पक़्त में लेने के लिए उद्यत ही नहीं होता था। अतः बारी और मिर्जा खान का यह दाव असफल सिद्ध हो ही गया। सावरकर को इसकी बड़ी प्रसन्नता थी।

सावरकर के इस कृत्य का समाचार सारे अण्डमान में फैल गया। कारागार में उत्तरी भारत के अनेक ऐसे बंदी थे जो आय समाज से प्रभावित थे। वे इस कार्य में उन्हें सहायता देने लगे। सावरकर के अण्डमान पहुँचने से कुछ ही पूर्व ऐसे लोगों ने आय समाज की एक शाखा भी स्थापित कर ली थी। किन्तु उनमें प्रचार और संगठित आन्दोलन करने की क्षमता नहीं थी। ऐसे समय में सावरकर का यह शुद्धिकरण का प्रयत्न उनके लिए उत्साहवर्द्धक सिद्ध हुआ। इतना ही नहीं कारागार में जो हिंदू बंदी

अथवा घाबर मुसलमान बनाए गए बंदियों को पुन हिंदू बनाए जाने के विरोधी थे, शनैः शनैः उन पर भी प्रभाव होने लगा और फिर वे भी इस आंदोलन में बढ चढ कर भाग लेने लगे ।

तत्कालीन सीलोन, अब श्रीलंका, से तीन ईसाई बंदी भी अण्डमान में काले पानी का दण्ड भोग रहे थे । उनमें एक ईसाई पहले हिंदू था । उसके विषय में जब शुद्धि-कर्त्ताओं को विदित हुआ तो सावरकर को बताया गया । सावरकर ने उसको हिंदुत्व की ओर पुन प्रेरित किया और एक दिन तुलसीदल गिलाकर उसको पुन हिंदू बना लिया गया । कारागार में ईसाई बन्दियों को प्रायना कराने आने वाले आदमी ने इसका हलका सा ही विरोध किया और जब सुपरिंटेंडेंट ने उसको स्थिति समझा दी तो मामला शांत हो गया ।

किंतु शुद्धिकरण का यह विषय यो ही नहीं चलता रहा । मुसलमान तो सावरकर से खार खाए बढे थे, व किसी न किसी प्रकार उनको बश में करने के लिए मानो वृत्तसंकल्प हो, इस प्रकार काय कर रहे थे । मुसलमानों के किसी कुचक्र का जब सावरकर के ज्येष्ठ भ्राता गणेश सावरकर को पता चला तो उन्होंने हिंदू मुंशी से कह कर उस हिंदू लडके का कमरा बदलवा दिया जिसे मुसलमान बनाने का पड्यत्र किया गया था । इससे वह मुसलमान चिढ गया और जब गणेश सावरकर स्नान करके लौट रहे थे तो उस मुसलमान गुण्डे ने उनकी नाक पर जोर से घूसा मार दिया । गणेश बेहोश होकर गिर पडे और उनकी नाक से खून बहने लगा । हिंदू बंदिया ने उस मुसलमान हमलावर को रोककर दबोच लिया । किंतु बारी ने उसका भी पक्ष लिया और कहा कि इस सावरकर को भी ऐसा ही पाठ पढाया जाना चाहिए । किन्तु उस मुसलमान को दण्डित होने से वह बचा नहीं सका ।

अण्डमान कारागार के हिंदू अब सजग हो गए थे । उनका संगठन बन गया था । यह सब सावरकर के प्रयत्न से ही सम्भव हो पाया था । कुछ वर्ष बाद एक ऐसा भी समय आया जब कारागार में हिंदू को मुसलमान बनाने पर रोक लगा दी गयी । जब जनगणना का काय आरम्भ हुआ तो उसमें उन बंदियों ने जो हिंदुत्ववादी हो गए थे तथा अण्डमान में रहने वाले आय समाजियों ने बढचढ कर भाग लिया और सब को हिंदू लिखाने के लिए प्रेरित किया ।

अण्डमान के कारागार और अण्डमान द्वीप में भी अब हिन्दू की अपनी पहचान बन गयी थी । कया पाठशाला में हिंदी का पठन-पाठन पहले ही आरम्भ हो गया था । इस प्रकार सावरकर ने हिंदुत्व के संरक्षण और सवदन में जो काय वहाँ किया वह स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य था । किन्तु 'सिक्कुलर' भारत में इसका मूल्यांकन वहाँ सम्भव है ?

## आय साम्राज्य की कल्पना

अगस्त १९१४ में प्रथम विश्व युद्ध आरम्भ हुआ । सावरकर उस समय अण्डमान

कारागार में थे। इस युद्ध की घोषणा तो सावरकर ने अपने लन्दन प्रवास के मध्य ही कर दी थी किन्तु दुर्भाग्य की बात यही थी कि अब जब विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया था तो उसका अपने देश की स्वतंत्रता के लिए उपयोग करने के लिए सावरकर स्वतंत्र नहीं थे। यह वह समय था कि जब ब्रिटिश सरकार सक्ट में थी और उसकी इस सकटापन्न अवस्था में भारतवर्षी लाभ उठा सकते थे। निलक ने भारतवासियों के सैनिकीकरण का इसी दृष्टि से समर्थन किया था। किन्तु गांधी ने सब किए-कराए पर पानी फेर दिया। उन्होंने बिना किसी शर्त के भारतीय सैनिकों को न केवल अंग्रेजों के पक्ष में लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया अपितु वे घूम घूमकर भारतीय नागरिकों का अग्रजों की रक्षा के लिए बट मरने के लिए सेना में भरती कराने के कार्य में जुट गए। यह उनकी ब्रिटिश भक्ति थी। गांधी ने 'बोयर' युद्ध के समय भी ब्रिटिश सरकार की सहायता की थी और सरकार ने उनकी निष्ठा का पुरस्कार भी उन्हें दिया था।

भारतीय प्रांतिकारियों के लिए यह अवसर था। यारोप तथा अमेरिका में जो जो प्रांतिकारी थे, उन्होंने इस समय विद्रोह करना ही एकमात्र कृत्य समझा और इसके लिए लाला हरदयाल, बीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, दोनों अभिनव भारत के सदस्य थे, तथा राजा महेंद्र प्रताप, जमन सरकार से वार्तालाप करने में व्यस्त थे। डा० चम्पकराम मिल्सई, लाला हरदयाल और चट्टोपाध्याय के नेतृत्व में जमन बार क्विन्ट की सहायता से जमनी में इण्डियन इन्डिपेंडेंट लीग की ब्रिनि कमेटी की स्थापना कर दी गई। जमनी के कसर और टर्की के सुलतान ने भारतीय राजकुमारों को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए दबाव डाला।

ब्रिनि कमेटी ने पंजाब की गदर पार्टी के लिए मुस्लिम देशों और तिब्बत के मार्ग से अगणित मात्रा में शस्त्रास्त्र भेजने की योजना बनाई। जिससे कि पंजाब की पार्टी उन शस्त्रास्त्रों को बंगाल की पार्टी के पास पहुँचाए और बंगाल की पार्टी ब्रिटिश भारत के पूर्वी सीमा पर आक्रमण कर दे।

इस योजना का एक अंग यह भी था कि अण्डमान की राजधानी पोर्ट ब्लेयर पर आक्रमण करके वहाँ के कारागार से सावरकर का मुक्त करके लाया जाए। सडिशन बमपट्टी की रिपोर्ट के पृष्ठ १२४ पर इस विषय में लिखा है कि अण्डमान के लिए एक स्टीमर भेजने की योजना बनाई गयी जिसमें शस्त्रास्त्रों का अम्बार हो। इस प्रकार वह स्टीमर अण्डमान पहुँच कर पाट ब्लेयर पर आक्रमण कर दे और सावरकर आदि सभी प्रांतिकारियों को मुक्त कर जमनी में ले आए।

इस सम्बन्ध में सर जॉन क्यूमिंग द्वारा संपादित 'पोलिटिकल इंडिया' के पृष्ठ २३३ पर कहा गया है— 'जमनी ने युद्ध के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों का मध्यम विचार किया कि भारतीय प्रांतिकारियों का इस समय अपने पक्ष में प्रयास किया जाए। अगर निरुपद्रव्य घटी और विभिन्न यात्राएँ सवार की गयीं कि प्रांतिकारियों के प्रयोग के लिए बंगाल में प्रभूत मात्रा में शस्त्रास्त्र भेजे जाएँ। इससे लिए भारतीय

क्रान्तिकारियों के नेता अथवा दूत भारत, जमनी बटाविया तथा अयाय स्थानों पर आने-जाने लगे जिससे कि इन प्रबन्धों को पूरा किया जाए।”

उधर अण्डमान कारागार में एक दिन सुपरिटेण्डेंट ने आकर सावरकर को बताया कि विश्वयुद्ध में जमनी और तुर्की मिलकर ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध कर रहे हैं। इस युद्ध के लिए पोट ब्लेयर में चढ़ा एकत्रित करने की योजना बना ली गयी है। इसके लिए एक मासिक पत्र भी निकालने की योजना है आदि-आदि।

सावरकर ने जब सुना कि तुर्की जमनी के साथ मिल गया है तो उसे एक चटका सा लगा। क्योंकि वे जानते थे कि तुर्की हो या अफगानिस्तान इन सबका एक ही उद्देश्य होता है ‘इस्लामीकरण’। यह सावरकर को रुचिकर नहीं था। वे सावधान थे कि इन दो बड़ी शक्तियों के युद्ध का लाभ उठाकर हिन्दुस्थानी मुसलमान तुर्की तथा रूस आदि के मुसलमानों को भारत पर आक्रमण कर मुसलमानी सत्ता स्थापित करने को आमन्त्रित कर सकते हैं।

सावरकर ने अपनी पुस्तक ‘माझी जम ठेव’ में इस विषय में लिखा है—

“हमने एक रूप रेखा बनाई और भारत सरकार के नाम एक पत्र भेजने की योजना बनायी। उस पत्र के अंश इस प्रकार हैं—‘हिन्दुस्थान को स्वतंत्र राष्ट्र की पंक्ति में बिठाना हमारा मुख्य ध्येय था और आज भी है। तथापि इस ध्येय की पूर्ति के लिए रक्तपात या सशस्त्र क्रान्ति के माग को ही अपनाने को हमन दब प्रतिज्ञा नहीं की है। इतना ही नहीं, यदि किसी अन्य माग से यह ध्येय सफल होने की सम्भावना रहती तो शायद हम सशस्त्र प्रतिकार का माग न अपनाते। इसलिए हमारा मत है कि यदि ब्रिटिश साम्राज्य हिन्दुस्थान देश को उसकी अपनी इच्छा के अनुसार, उसकी अपनी परिस्थितियों के अनुरूप स्वातन्त्र्य का उपभोग कर लेने देगा तो ऐसे राज्य से एकनिष्ठ रहने में शायद किसी को कोई आपत्ति नहीं होगी। इस प्रकार आयरलैंड से लेकर भारतवर्ष तक सभी देशों को एक सूत्र में बांधे रखने का कार्य करने वाला यह साम्राज्य ‘ब्रिटिश साम्राज्य’ नाम भी त्याग्य बनेगा। अन्य नाम प्राप्त होने तक उस ‘आय साम्राज्य’ कहें तो उपयुक्त रहेगा।

“इस युद्ध के माहौल में यदि सरकार दूर दक्षिण से काम लेकर हिन्दुस्थान को औपनिवेशिक स्वायत्तता देगी और केन्द्रीय विधान मण्डल में हिन्दुस्थानी प्रतिनिधियों को बहुमत प्रदान करगी तो हिन्दुस्थान के कल्याण के लिए हम और हमारे क्रान्तिकारी सहयोगी सशस्त्र प्रतिकार का माग त्यागकर इस युद्ध में इंग्लैंड के पक्ष का समर्थन करने को तत्पर हो सकेंगे।

“ब्रिटेन हिन्दुस्थान की शृंखला तोड़ने के लिए तत्पर है, यह सिद्ध करने के लिए उसको चाहिए कि वह समस्त राजनीतिक बन्धियों और क्रान्तिकारियों को शीघ्रता-शीघ्र रिहा कर दे। यदि ऐसा कर दिया गया तो स्वदेश की रक्षा के लिए हम सब सेना में भर्ती होने के लिए भी तत्पर रहेंगे। यदि सरकार का यह सद्बुद्धि है कि मैं यह पत्र जेल से छूटकर पाने के लिए लिखा है और हम जेल में छूटने पर पुनः अशान्ति

उत्पन्न करें तो मेरा सुझाव है कि हम न छोड़त हुए सरकार अथ निर्वासित बर्गों को तत्काल मुक्त कर दें। उनकी मुक्ति में ही हम अपनी भुक्ति का सन्तोष कर लें।"

सावरकर ने अपने इस सम्बन्ध पत्र में आयरिश राजद्रोहिणों आदि-आदि के इन्क उदाहरण भी प्रस्तुत किए थे। १९१४ के सितम्बर मास में लिख गए इस तम्वे पत्र का उत्तर दिसम्बर मास में केवल इतना आया, 'गवर्नर जनरल ने उसे पढ़ा है तथा उसका आधिकारिक तौर पर तत्काल उत्तर देना असम्भव है। बस, इतना ही सावरकर को बताया जाए।'

## ला० हरदयाल का कार्य

एक तो युद्ध के आरम्भ हो जाने के कारण और दूसरे सावरकर द्वारा गवर्नर जनरल को पत्र लिखे जाने के कारण जेल अधिकारियों का राजबंदिया के प्रति कुछ दिन तक सामान्य व्यवहार रहा। किन्तु ज्यों ही जमनी आग बढ़ने लगी त्यों ही उनके व्यवहार में फिर वही कठोरता आनी आरम्भ हो गयी। लाला हरदयाल उन दिनों अमेरिका में रहकर अभिनव भारत का कार्य कर रहे थे। लंदन में सावरकर को बंदी बना लिए जाने के बाद इंग्लैंड में अभिनव भारत सोमाइटी का कार्य लगभग तगण्य जसा ही रह गया था।

बारी तो सावरकर आदि राजबंदियों को मानसिक यातना देने में कभी चूल्हा नहीं था। एक दिन आकर उसने सावरकर से पूछा, 'यह लाला हरदयाल कौन है?'

सावरकर ने उसको स्मरण कराया कि सर रेगिनाल्ड क्रैक्स के साथ जब उनका घार्तालाप हुआ था, उस घार्तालाप में अमेरिका में जिस क्रांतिकारी का उल्लेख हुआ था, वे ही लाला हरदयाल थे। बारी को अबसर मिल गया और बोला, "उस हत्या के आरोप में अमेरिका में बंदी बना लिया गया है।" सावरकर के लिए यह समाचार बड़ा दुःखद था। यह सत्य है कि लाला हरदयाल को बंदी बनाया गया था किन्तु हत्या के आरोप में नहीं और उन्हें जमानत पर छोड़ भी दिया गया था। किन्तु बारी को तो यातना देना अभीष्ट था। सावरकर ने इस घटना की सत्यता का पता लगाने के लिए कुछ वाइरो को गुप्त रूप से बाहर भेजा।

एक दिन सुपरिंटेंडेंट ने आकर सावरकर से पूछा, "क्या लाला हरदयाल आपके निकट के मित्र थे?" सावरकर ने 'हां' में उत्तर दिया तो सुपरिंटेंडेंट ने भी यही कहा, "दिल्ली बम काण्ड में तथा हत्या में हाथ होने के अपराध में उन्हें बन्दी बना लिया गया है।"

सावरकर ने कहा, "यदि हत्या और बम काण्ड में उनका हाथ हो, तो भी उनके प्रति मेरी जो श्रद्धा है वह किसी प्रकार भी कम नहीं होती है।"

सुपरिंटेंडेंट अपना सा मुख लेकर वापस चला गया, किन्तु सावरकर ने सहृदयी इस कारण चिन्तित रहने लगे कि वहाँ हरदयाल के प्रति उनकी मित्रता के कारण जेल अधिकारी उनमें दृष्ट होकर उनपर अत्याचार न करने लगे। सावरकर ने उनका

सात्वना दी, लाला हरदयाल ने त्रिया कलापो का परिचय दिया और स्वयं उनके विषय में तथ्य जानने का यत्न करने लगे। इस प्रयास में उनको सफलता मिल गयी। दो दिन बाद ही उनको पता चला कि 'लाला हरदयाल अमेरिका में पकड़े गए थे तथा जमानत पर रिहा हो गए हैं।'

उस दिन में जहाँ सावरकर आदि बारी से न्यय्य में पूछते लाला हरदयाल दिल्ली जेल में है या नहीं और, वहाँ बारी भी उनका उसी प्रकार कुछ न कुछ कह देता। एक बार उसने यहाँ तक कह दिया कि हरदयाल का दण्डित कर दिया गया है और उसका शीघ्र ही अण्डमान भेजा जाना वाला है। सावरकर ने कहा 'यदि लाला जी को यहाँ लाया गया तो उनको मेरे बराबर की कोठरी में रखन की कृपा करना। बारी बोला 'इसका विचार तो बाद में किया जाएगा कि उनका कहा रखना है।' बारी का उत्तर सुनकर सारे राजबंदों ठहाका लगाकर हँस पड़े तब बारी यह समझा कि इन बंदियों को सब पता है, ये बवल उस ही मुख बना रह ह।

सावरकर आदि राजबंदों किसी न किसी प्रकार युद्ध के वास्तविक समाचार प्राप्त करने में सफल होते रहते थे, इससे राजबंदियों का उत्साह बढ़ता जाता था। कारागार में नियुक्त पठान, बलाच आदि बाडर या अधिकारी इस युद्ध में विचित्र स्थिति में थे। तुर्की का सुलतान जमनी के साथ मिलकर युद्ध कर रहा था अतः सावरकर आदि हिंदू बंदी उनको चिढ़ाया करते थे। उससे क्षुब्ध होकर एक दिन रात के समय मुसलमान पेटो अफसरा ने बारी के कान भर दिए कि सावरकर बंदियों को अधिक काम न करने के लिए भड़काता रहता है और उन्हें राजद्रोह की प्रेरणा देता रहता है।

बारी ने सुपरिटेण्डेंट के कान भर दिए तो जिस निगरानी के काम पर सावरकर को लगाया था वहाँ से उनको हटा दिया गया। दण्ड के रूप में छिलके कूटने का काम दे दिया गया। इस प्रकार जेल अधिकारियों ने सावरकर को पुनः शारीरिक और मानसिक यातनाएँ देना आरम्भ कर दिया। मुसलमान बाडर दिन भर भददी गालियाँ बक्ते रहते थे।

## एमडेन मद्रास में

तभी अण्डमान में और फिर कारागार में भी समाचार मिला कि एमडेन नामक जमानत पनडुब्बी अण्डमान के समुद्र तट तक पहुँच गई है। यह भी सुनने में आया कि उसने मद्रास पर वमबारी भी की है। इस समाचार से जहाँ राजबंदियों में प्रसन्नता की लहर दौड़ने लगी वहाँ अधिकारियों में खलबली मचने लगी। अधिकारियों ने इस समाचार को मर्यादित गुप्त रखन का यत्न किया, किंतु वह अत्यंत अनिश्चितपूर्ण रीति में सार द्वीप में फैल गया। जेल के चारों ओर खाईयाँ खोदी जाने लगी, बाण्ड बिछाया जाने लगा और कारागार के भीतर गोरे सैनिकों का बड़ा पहरा लगा दिया गया। अंग्रेज अधिकारी दिन रात समुद्र पर पहरा देने लगे। इनमें से कुछ अधिकारी



जेल में आ जाते थे। एक दिन एक रूसी अधिकारी सावरकर के पास आकर बोला, "यारों के लिए आज भी आपको स्मरण करते हैं। उनमें से अधिकांश यह जानते हैं कि आप अण्डमान में आजीवन कारावास का दण्ड भाग रहे हैं।"

### सावरकर को छुड़ाने का प्रयत्न

यह सुनकर सावरकर का सन्तोष हुआ कि कम से कम समार के लिए उन्हें प्रातिवर्षीय नाम में स्मरण भी करने दें। इसमें सावरकर का यह अनुमान लगाने में विफल नहीं हुआ कि जमन आदि न शत्रु देशों को अपना मित्राना बनाने के लिए जिन जिन स्थानों का चुनाव है उनमें अण्डमान भी सम्मिलित है। उन्हीं जिन अण्डमान टापू के एक डाक्टर मित्र ने सावरकर को सन्देश भेजा कि योरोप में मन्त्रि अमिनव भारत तथा अयाय प्रातिवर्षीय सगठन न जमनी में कैमर से सम्पन्न करके योजना बनाते हैं कि उन पनडुब्बों अण्डमान भेज कर यमवारी की जाए और सावरकर आदि राजवाँदिया को वहाँ से मुक्त कराया जाए।

यह समाचार पाकर सावरकर का स्पष्ट हो गया कि ये अंग्रेज अधिकारी अण्डमान में क्या नमान हैं और कारागार के चारों ओर खूदक आदि क्या छोड़ी जा रही हैं। उन दिनों अफवाहों का इतना जोर होना लगा था कि तमाम सरकारी अधिकारी दूरबीन लगाकर समुद्र की ओर ताकत रहते थे। अंग्रेज अधिकारियों के मन में प्रयत्न थे और उनको यह भी भय था कि यदि 'एमडेन' अपने काम में सफल हो गया तो कारागार के सारे बंदी सगठित होकर अंग्रेजों के विरुद्ध धावा बोल देंगे। अण्डमान में अंग्रेजों के पास युद्ध सामग्री का अभाव था। बस्ती के सारे अंग्रेजों ने अपना बगल पाली करके एक स्थान पर रहना आरम्भ कर दिया।

सावरकर के पास कुछ क्रान्तिकारियों का सन्देश भी पहुँचता रहता था और जब अण्डमान में अंग्रेजों में इस प्रकार की हलचल देखी तो सावरकर का विश्वास होने लगा कि भारतीय क्रान्तिकारियों की योजना के अंतर्गत जमन नौकाओं का अण्डमान पर आक्रमण तथा उन्हें मुक्त कराने का प्रयास करना सम्भव है। अंग्रेजों ने सहायता के लिए जो तार बलकते भेजे उन्हें जमन सैनिकों ने रास्ते में ही पकड़ लिया और बलरता ने जो सहायता अण्डमान के लिए भेजी थी उस भी माग में लूट लिया गया। उधर कारागार में सावरकर आदि ने योजना बना ली थी कि यदि जमन द्वारा अण्डमान पर आक्रमण होता है तो उन लोगों को क्या क्या और किस प्रकार करना होगा।

ज्या ज़्यादा जमन पनडुब्बी के निकट आने के समाचार बढ़ते गए सावरकर पर निगरानी भी बढ़नी लगी और अंत में उनको सबसे अलग करके केन्द्रीय कारागार के ऊपरी भाग में एकान्त में रख दिया गया। वहाँ भी उनपर कड़ी निगरानी रखी गयी। किन्तु दुभाग्य ! ११ नवम्बर १९१४ को 'एमडेन' पनडुब्बी को नष्ट करने में ब्रिटिशों को सफलता मिली और प्रातिवर्षीय की सारी योजनाएँ धरी की धरी रह गयीं।

इतिहास साक्षी है कि जिस सावरकर को फ्रेंच सरकार ने निष्ठाविहीन होकर अंग्रेजों को सौंप दिया था उसी सावरकर को बारा मुक्त करने के लिए जर्मन सरकार ने निष्ठापूर्वक सघप किया था।

‘एमडेन’ के नष्ट हो जाने के कुछ दिनों बाद ही सावरकर को एतद्विषयक सारे तथ्य विदित हो गए थे कि किस प्रकार नान्तिवारिया न याजना बनाई और किस प्रकार जर्मन सरकार ने उनकी सहायता की और यहाँ तक कि जर्मनी ने कारागार से सावरकर मुक्त करा कर वहाँ से निःशालन के लिए एक हवाई जहाज की भी व्यवस्था कर दी थी। किन्तु विधि को कुछ और ही स्वीकार था।

## अण्डमान के अंतिम वर्ष

### क्रान्ति और विश्वयुद्ध

भारत के आतिथ्यागियों को अण्डमान में भेजने की असफलता का मुख देना पड़ा हो, किंतु इससे वे हताश और निराश नहीं हुए। भारत में उनका प्रयत्न चलते रहा। सन् १९१५ में अमेरिका, कनाडा तथा सुदूर पूर्व से लगभग ८ हजार सिख आतिथ्यागियों भारत में आ गए। इस प्रकार सरकार के लिए पंजाब की स्थिति बड़ी भयावह हो गई। इस सम्बन्ध में सर जॉन बर्गमिग ने अपनी पुस्तक 'पॉलिटिक्स इंडिया' के पृष्ठ २३५ पर लिखा है "लॉर्ड हाडिंग ने अपने सस्मरणों में लिखा है कि उस समय पंजाब की आन्तरिक स्थिति बड़ी भयावह हो गयी थी। क्या कि आतिथ्यागियों को सेवा की दुबलता का आभास हो गया था। ऐसी स्थिति में उस समय के गवर्नर जनरल लॉर्ड हाडिंग ने सविधान सभा में डिफेंस आफ रल्स एक्ट पारित करवाया।"

उधर दसवीं बलूची बेटालियन में कुछ गड़गड़ हान लगी। उसकी मसूदा कम्पनी ने मसोपोटामिया का जाते हुए बम्बई में अपने अधिकारी को गोली से उड़ा दिया था। इसी प्रकार दिल्ली, लाहौर, मेरठ में आतिथ्यागियों के सुदृढ़ होने के समाचार से भी सरकार तिलमिल उठी थी। मेरठ में दसवीं कैवेलरी की लाइन में महाराष्ट्रियन विष्णु गणेश पिंगले नामक युवक १० भरे हुए बमों सहित पकड़ा गया। उस पर अभिप्राय चला और उसकी फांसी पर लटका दिया गया। लाहौर पिण्डो और फिरोजपुर में शास्त्रास्त्र लुटने के पड़मंत्र का भी भण्डाफोड़ हो गया। बंगाल में भी नरेन्द्र भट्टाचार्य और उमरे चान मानवद्रनाथ राय आदि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए मरणोन्मुख प्रयत्न कर रहे थे। कामागाटामार के ५०० यात्री २६ सितम्बर १९१४ को टूंगती पर पहुँच गए, किंतु दूसरे दिन ही बंगाल पुलिस ने उनका अपने अधिकार में कर लिया।

अण्डमान कारागार में ये सारे समाचार छन छनाकर प्राप्त हो रहे थे। उन समय सारे कारागार में सबका इन्हीं समाचारों की चर्चा होती रहती थी। सभी इन मन्त्रियों का भी अण्डमान में भेजा जाना लगा जिन्होंने अपना काम लिए हुए

करने के लिए जाने से इनकार कर दिया था। कुछ दिनों तक तो जल्ये के जल्ये अण्डमान भेजे जाने लगे किंतु जब जर्मन रणनीकाओं ने समुद्र में व्यापारिक जलयानों का मार्ग अवरोध कर दिया तो फिर भारत से बर्मा का अण्डमान जाना रुक गया। किंतु कुछ दिनों बाद जब जापान, रूस और ब्रिटिश नौ सनाओं ने जर्मन रणनीकाओं को विनष्ट कर दिया तो उनका अण्डमान जाना पुनः चालू हो गया।

ब्रिटिश सरकार ने नेपाली सेना के आश्रय क्रांतिकारी आंदोलन को कुचलने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। केवल पंजाब में ही लगभग पांच हजार सैनिकों पर मुकदमा चलाया गया और कोर्ट मार्शल द्वारा पाँच सौ क्रांतिकारियों पर अभियोग लगा कर उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया तथा ८ सौ को आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया और दस हजार सैनिकों को बिना किसी अभियोग के सेवा निवृत्त कर दिया गया तथा इतनी ही संख्या में सैनिक वर्षों तक भूम्यान्तगत रहे। फिर भी भारत के गांधीवादी कहते हैं—

सावरमती के सत तूने कर दिया कमाल ॥

पंजाब से जो बन्दी आजम कारावास का दण्ड भुगतने के लिए अण्डमान भेजे गए थे उनमें भाई परमानंद भी थे। भाई परमानंद और सावरकर का तो पहले से ही लंदन के समय में परस्पर परिचय था किंतु अब बन्दी भी सावरकर से भली भाँति परिचित थे। जो भी नया क्रांतिकारी जेल में आता वह सावरकर से मिलने के लिए आतुर रहता। उधर कारागार के अधिकारियों का यह प्रयत्न रहता था कि वे लोग किसी भी प्रकार उनके सम्पर्क में न आने पावें, किंतु बर्मा की संख्या अत्यधिक होने के कारण उनके लिए यह सब कर पाना सम्भव नहीं था।

## नागरिकों में क्रान्ति

सावरकर के प्रेरणा प्राप्त करने वाला की सच्चा दिन प्रति दिन बढ़ती जाती थी। अमेरिका में गदर आंदोलन के नेता पण्डित जगतलाल को भी लाहौर पड़ोश काण्ड में दण्ड दे कर अण्डमान भेजा गया था। उनको जब मृत्यु दण्ड दिया गया तो उनमें पूछा गया कि वे अपने बचाव में कुछ कहना चाहें। उन्होंने यह कह कर इफ़ादा कर दिया, "जैसे मैंने सक्षम ज्ञान का मार्ग अपनाया है ता बचाव कैसे?" उन्होंने सावरकर को बताया, "मैं राजनीति से सबका अनभिज्ञ तथा आराम का जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति था। किन्तु एक दिन भरे हाथ में आपका ग्रन्थ '१८५७ का स्वातंत्र्य समर' लग गया। उसे मैंने पूरे दिन और पूरी रात में पढ़ डाला। उसे पढ़ कर मेरा जीवन बदल गया और उसी समय मैंने संकल्प लिया कि अपने राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए शेष जीवन अर्पित कर दूंगा। आपकी पुस्तक के कारण ही आज मैं आपके बीच हूँ।"

उस समय सावरकर ने उनमें हँसी में कहा था, "तब तो मेरी पुस्तक अण्डमान भेजे जाने के 'टिकट' का काम करती है।"

पजाव से अण्डमान भेज गए मिथ यदियो न, सावरकर के कोलू में जाइ गए चित्र का अमेरिका में किस प्रकार प्रचार हुआ, उसकी रोचक वार्ता सुनात हुए बताया, "अमरीना में प्रकाशित होने वाले शक्तिवारिया के समाचार पत्र में आपका कोलू चलते हुए का एक रयाचित्र प्रकाशित हुआ। अमेरिका की सड़क पर एक लड़के का हाथ में मैं वह चित्र देखा तो उस देख कर मेरे हृदय में भारी आपात लगा। ओंवा में आसू आ गए। मेरे मन में विचार आया कि एक बार अपनी मातृभूमि, अपने राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए सावरकर जी आदि शक्तिकारी वंशों की भाँति कोलू में जुत रहे हैं तो दूसरी बार हम खान पीन और भोज उठान में मस्त ह। इन विचारों के उठते ही हम स्वयं पर राज्जा जान लगी और हमने उसी समय अपने देश भारत की स्वाधीनता के महान राष्ट्रीय काय में अपना सबस्व समर्पित करने का दृढ़ संकल्प लिया।'

## प० परमानन्द और बारी

लाहौर पदमण केस से सम्बंधित राजविदिया के अण्डमान पहुँचते ही बारा गार के अधिकारियों ने और अधिक कठारता करने आरम्भ कर दी। पजाव का उस टोली में सभी युवक थे और वे सब गम मिजाज थे। शाम को पटी अप्पर बहुत कम काम आया देख कर उनके माथ दुब्यवहान करना। एक दिन उन युवकों ने उत्पन्न करारा जवाब दिया। उनमें चाँसी का तेज तर्रार युवक प० परमानन्द भी था। बारी से शिकायत होने पर उसने परमानन्द का अपने कार्यालय में बुलवाया। वे ज्यों ही बारी के सामने हुए कि बारी ने उन्हें सीधा खड़ा हाने का कहा। इसके बाद बारी ने उनके लिए अपमान जनक शब्दों का प्रयोग किया तो उनका मुख काँध से तनना उठा। उसके बाद बारी ने गाली गलीच करनी आरम्भ की तो परमानन्द ने झटके से स्वयं को दोनों बाइरो के हाथों से छुड़ाया और लपक कर बारी के गालों पर दो तमाक जड़ दिए।

इस अप्रत्याशित जात्रमण से बारी सन्नत हुआ, उसका टाप नीचे गिर पड़ा। वह पक्को-पक्की कहता हुआ कार्यालय से बाहर को भाग गया। बाइरो ने परमानन्द को दबोच लिया और धूसे मार मार कर उनके मुख को लहलुहान कर दिया। परमानन्द का हाठ फट गया बारी ने सुपरिटेण्डेंट की इसकी सूचना दी। न केवल कारागार में अपितु समस्त अण्डमान द्वीप समूह में यह समाचार फैल गया कि 'बम गाले वाले ने बागी की पिटाई कर दी है।

सुपरिटेण्डेंट ने आकर परमानन्द को २० बेंतों का दण्ड किया। बाइरो ने निदयता से बेंत मारे जिससे परमानन्द का सारा शरीर ही सड़ से लयपथ हो गया। उसके बाद न उसके शरीर की मलहम पट्टी की गई न अस्पताल ले जाया गया। विपरीत इसके उसको कोठरी में बंद कर दिया गया। इस राजनीतिप विदिया का दब दबा बंद गया और अब बारी की कोई सुनता ही नहीं था।

इस अपमान से खींच कर वारी ने सावरकर के विरुद्ध अभियान आरम्भ कर दिया। उसने भरसक यत्न किया कि सावरकर के सम्पर्क में अब बंदी न आन पावें। वह बंदि्या को भडकात हुए कहता, "सावरकर तो काम चार है, चतुर है। यदि तुम लोग उसके कहने पर चलते रहे तो तुम सकट में पड जाओगे।" दूसरी ओर वह अधिकारिया के पास शिकायत भेजता कि 'सावरकर ही झगडे की जड है।' जेल में होन वाली प्रत्येक घटना के लिए वह सावरकर को ही उत्तरदायी ठहराता।

सावरकर को आतंकित करने के जितने प्रकार हा सकते थे, वारी ने उन सबका प्रयोग उन पर किया। एक बार वारी ने सोचा कि क्यों न सावरकर को उन सब पत्रा और नाटस की प्रतिलिपिया लिखा दी जाएँ जो उनकी शिकायत के रूप में उमने लिख-लिख कर अधिकारिया को भेजी थी, या अभी भेजने के लिए मजा कर रखी हुई थी। उसने सावरकर का अपने कार्यालय में बुलाया। पहले ता उसन उनको सामन बैठा कर उनकी पून प्रशसा की। कहा आप तो बुद्धिमान विद्वान और भी न जान क्या-क्या ह। दूसरी ओर वह सहबंदि्या को कहता रहता था कि सावरकर कामचोर और भी न जाने क्या क्या है।

फिर उसने कहा कि उसकी सावरकर के प्रति सहानुभूति है इसलिए वह उनका थ सब आवगन, प्रतिवेदन आदि पढबा रहा है जो उसने उनके विषय में अधिकारिया का भेजे ह। फिर उसन अपनी डायरी खाली और उसम स कुछ टिप्पणियाँ पढ कर सुनाई। उसम उमने अपनी कटुता, आछापन और नीचता का पून परिचय दिया हुआ था। उन आवदना जथवा डायरी को पढबा अथवा सुना कर वह साचता था कि सावरकर इसस आतंकित हो जाएँगे, भयभात हो जाएँगे और उससे घबरा कर वारी का दबदबा स्वीकार कर लेंग।

सावरकर पर उसकी ऐसी कोई प्रतिक्रिया नही हुई। क्योंकि यह सब ता सावरकर पहन ने ही जानते थे।

वारी के परिवार म उसकी पत्नी और पुत्री थे। उसकी पुत्री न रगून म मद्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। वारी की पत्नी और पुत्री उनका स्वभाव विनम्र बनान की यथाशक्ति प्रयास करती थी। सावरकर का कहना है कि कुमारी वारी जब कभी भी रगून स अवकाश पर अण्डमान आती तो वह उनसे अवश्य मिल कर जाती। घर पर रहन के दिनो म वह समय निवाल कर उनस मिलती रहती थी और उनम विभि न विषया पर चचा करती हुई अपना ज्ञान बढ़ाती थी।

यप म केवल एक ही दिन ऐसा होना था जिस दिन वारी में मानवता जागृत हाती थी। वह दिन क्रिमस का दिन होना था। उस दिन वह बंदि्या म मिठाई बाँटना था। सावरकर यदि मिठाई लेने के लिए उसके कार्यालय में न भी जाएँ ता भी वह उनकी कोठरी में मिठाई भेज दता था। अपने बगीचे के फल आदि भी वह उस दन साथ रख कर दता था।

## सावरकर अस्वस्थ

सन १९१५ १६ के मध्य सावरकर एकाएक अस्वस्थ हो गए और फिर उनका स्वास्थ्य सम्भलने में ही नहीं आया। सावरकर का पहला बार सन १९१० में इंग्लैंड में बंदी उनाया गया था। उसके बाद निरंतर पहले लंदन और फिर भारत की विभिन्न कारागारों में वे भाँति भाँति की यात्राएँ और कष्ट सहते रहे थे और फिर अंत में उनको अण्डमान भेज दिया गया था। वहाँ के कष्टों का ताँ पारापार ही नहीं था। शारीरिक कष्ट के साथ-साथ मानसिक चिन्ता भी रहना स्वाभाविक था। मानसिक कष्ट शरीर के लिए अत्यंत दुखदायी होता है। अपोष्टिक भोजन के कारण व्याधियाँ पनपने लगीं तो मानसिक कष्ट के कारण शरीर और भी क्षीण होता गया।

सावरकर ने अपनी अस्वस्थता की बात सुपरिंटेंडेंट को बतायी तो उसने भी इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया और न ही उनको अथर्व चिकित्सा की भाँति अस्पताल भेजा गया। यहाँ तक कि रोगी को दिया जाने वाला भोजन भी उनको नहीं दिया गया। ज्यों ही उनका ज्वर कम हुआ कि उनको फिर काम पर लगा लिया गया। वहीं अधकच्चा भोजन उनके भिन्नता था जिसके परिणामस्वरूप सावरकर को दस्त रहने लगे। साधारण चिकित्सकों को साधारण रोग पर भी दूध दिया जाता था किन्तु सावरकर को कभी दूध दिया ही नहीं गया, चाहे वे कितने ही अधिक रण कपा न हो गए हो।

दिन बीतते-बीतते ज्वर ने शरीर में घर कर लिया था और उसके साथ ही रक्त मिश्रित दस्त भी होने लगे थे। डाक्टर भी सावरकर को देखने लगे आता था जब कि उसका भली भाँति विश्वास हो जाए कि वास्तव में उनका दस्त लग ही है अथवा घाँसी के कारण वह भी डरता हुआ उनके पास कम ही आया करता था। डाक्टर के सम्मुख यदि सावरकर को दस्त हुआ और उसमें रक्त मिश्रित हुआ तो डाक्टर औषधि भी देता था और रोगानुसार भोजन की भी व्यवस्था करवाता था अथवा नहीं। ज्यों ही ज्वर कुछ कम होता अथवा दस्त कम होता सावरकर का पुनः काम पर लगा दिया जाता था। यह क्रम चलता रहा। उस शरीर निरंतर बिगड़ता गया।

सन १९१४ की हड़ताल के उपरान्त अनेक बन्धियों को अपना भोजन स्वयं बनाने की अनुमति मिल गयी थी। यहाँ तक कि सावरकर के बड़े भ्राता मणश सावरकर और रामनाराय जोशी भी अपना भोजन स्वयं बनाते थे। किन्तु सावरकर का यह सुविधा बहुत समय बाद प्राप्त हुई। जबकि उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था।

सावरकर को रात्रि के समय ज्वर चढ़ता था। रात्रि को डाक्टर को लिखाया नहीं जा सकता था, दिन को ज्वर न हान पर डाक्टर न औषधि देता और न दवा आदि की ही व्यवस्था हो सकती थी। दुर्भाग्य की बात यह कि दिन निकलते ही ज्वर गायब हो जाता था। इस कारण चिकित्सा नहीं हो पाती थी। डाक्टर को यदि कहो कि रात्रि में ज्वर होता है तो वह इस बात का सुनने के लिए तैयार नहीं होता था।

दूगरी और कारागार के अधिकारी राजनीतिक चिकित्सा को यात्रा दान का

काई अवसर नहीं चूकते थे। अवसर न हो तो वह उत्पन्न कर लिया जाता था। काम पूरा न हो तो बेंत लगाने की धमकी। ऐसे ही एक बार एक बंगाली युवक जो कलकत्ता विश्वविद्यालय का एम० ए० था, षडयंत्र में पकड़ कर कारागार में भेजा गया था। उसको डेढ़ पौंड छिलका कूटने का दिया गया। उसका काम पूरा होना सम्भव नहीं था। परिणामतः उसको बेंत लगाने की जय धमकी दी गई तो सभी राजनीतिक बन्दिनों में रोष फैल गया। बंगाली युवक ने भी काम करने से निर्भीकता से इनकार कर दिया, उसको बेंत लगाए गए। बिना आहू किए वह बेतों की भार सहता रहा। इससे तो और भी रोष फैलने लगा।

जब अब कोई माग नहीं दिखायी दिया तो सबने हड़ताल करने का निश्चय कर लिया। अधिकारी पिछली हड़तालों का परिणाम जानते थे। अतः इस बार इस विषय पर हड़ताल करने की नौबत नहीं आई और अधिकारियों ने यह स्वीकार कर लिया कि राजनीतिक बन्दिनों से जितना काम हाँ सके वे उतना ही करें।

जब से कारागार में पंजाबी बन्दी जाए थे, तब से एक बात और हुई। जो बाडर पहले गालियों की बौछार किया करते थे वे अब पंजाबी बन्दिनों के सम्मुख कुछ डीले पड़ने लगे। क्योंकि उन पंजाबी बन्दिनों में मजबूत प्रकार के लोग थे और उनके पास गालियाँ का इतना भण्डार था कि टड्डेला और बाडरों के बाप-दादा को भी याद नहीं हाँगी। यदि कोई टड्डेल उन्हें 'अरे' तक कह देता तो उसे उसके उत्तर में 'क्यों वे' सुनना पड़ जाता था। बाडर या टड्डेल माँ की गाली दे ता उस नानी की सुननी पड़ती और बाप की दे तो दादा परादादा की।

इतना मजबूत होना पर भी राजनीतिक बन्दिनों की यातना महीनी पड़ती थी। सावरकर पर तो विशेष ही कृपा थी। और अब जब उनका स्वास्थ्य गिरने लगा था तो उनमें भी वह स्फूर्ति नहीं रह गई थी, जिससे कि वे यातना का पहले की भाँति सह सकें। फिर भी कारागार तो कारागार ही था, सब कुछ सहन करना पड़ता था।

सावरकर मजबूत समय पर आवेदन करते रहते थे। और नही तो उन्हें कम से कम राजनीतिक बन्दिना की सुविधाएँ तो दी ही जानी चाहिए। भारत सरकार सुधारों की बात करने लगी तो उस समय सावरकर ने अपने आवेदन में कहा कि सरकार जब सुधारों की बात कर रही है तो उनका चाहिए कि वे सभी राजनीतिक बन्दिना को रिहा कर दें। उन्होंने लिखा कि जब देश में एक भाई दूसरे भाई से दूर कर दिया है तो सरकार यह किस प्रकार अपेक्षा रखती है कि देश में शांति और व्यवस्था ठीक रहूँगी। किसी न किसी का कोई न नाइ व्यक्ति, कोई रिफ़ेरेन्स, कोई मित्र किसी न किसी प्रकार राजनीतिक बन्दी के रूप में सताया जा रहा है। जो खबर है वे सेना के साथ सुदूर देशों में पड़े हुए हैं।

इसका प्रभाव यह हुआ कि सरकार ने 'मौटग्यू चेम्पफाड रिफ़ॉर्म' के विषय में सावरकर से सुझाव देने के लिए लिखा। सावरकर ने इस विषय पर अपने बुद्धिमत्तापूर्ण सुझाव दिए। अपने विचारों के अन्त में उन्होंने लिखा, 'मैं सर्वात्मना उस कौमन-



वैल्य व साथ महयोग करने के लिए मना तत्पर रहूँगा जो न हो ब्रिटिश हाजी और न ही भारतीय, जब तक कोई और अन्य नाम नहीं मिल जाता तब तक उसका 'आयन वीमनवैल्य' कहा जाए।"

### चतुर्थ हड़ताल

पञ्चाय व एक मित्र राजनीतिक दली सरदार मानसिंह के साथ टडल और पट्टी अफमर का किसी बात पर झगडा हो गया। गुरु मार पीट हुई और फिर मानसिंह का काठरी म बंद करवा दिया गया, साथ ही बारी को भी बुनवा लिया। बारा न मानसिंह की कोठरी म घुस कर ज्या ही उसको गाली देनी आरम्भ का कि मानसिंह ने उसका उससे भी बड़ी जोर जोरदार मग्ना गाली द डाली। बारी इसस आग बबूला हो गया और उसने अपन चाटुकार टडला, पट्टी अफमरों और बाडरा का उस मना चपाने का सकन कर दिया।

सकैत पाते ही दम-बारह लोग लाठियाँ ल कर मानसिंह की कोठरी म घुसकर उसकी धुनाइ करने लग। उस अपेल सरदार ने इस आक्रमण का डटकर सामना किया। किन्तु वे लाठिया म लैस और सरदार था निहत्था। फिर लात घसा स जितना अधिक वह कर सकता था उसने किया फिर भी थक कर वह जमीत पर गिर गया। तब तो रानसों की वन आई। सरदार का जोर कोई उपाय नहीं सूधा ता उसन चिल्लाना आरम्भ किया 'भाइयो मुझे मार रहे है "

उसके आस पास के वन्धिया ने जब उसकी चीय पुकार सुनी ता जिस वन्ध का हाथ म जो कुछ भी आया वह उसी को लेकर उस आर चल दिया। बारी न कोठरी का द्वार बंद कराया हुआ था और स्वय डडा लकर बाहर छडा था। बारी ने जब वन्धियों को आता देखा तो उसका हाथ उड गए और वह पीछे की सीढ़ियों स भाग लिया।

सावरकर को जब इस घटना का पान हुआ तो उ होने इस घटना व विषय मे उच्चाधिकारियों स शिनायत करने का सुझाव दिया। जावेदन पत्र भजे भी गए किन्तु उन पर कोई कारवाही नहीं हुई।

बारी न राजनीतिक बन्धियों को आतंकित करने व लिए यह कुहृत्य किया था किन्तु इसस जातकित होने की अपक्षा सार बंदी नुड हो गए और इस अन्याय क प्रतिकार के लिए उन्होंने हड़ताल करने का निश्चय कर लिया।

बारी का जब अपन उद्देश्य म असफलता और बन्धिया व हड़ताल करने का समाचार मिला तो वह धबरा गया। ऐसे अवसरों पर वह अधिकांशतया सावरकर व पास आ कर गिडमिडाया भी करता था। इस बार भी वही हुआ। शाम को वह सानरकर से मिलने आया ता उसके कुछ कहन स पूव ही, सावरकर ने उसके आन क उद्देश्य का अनुमान लगा कर वन्ध आरम्भ किया, मिस्टर बारी। तुम्हारे अत्याचार सीमा पार कर चुके है। तुम्हें इसका परिणाम भयकर रूप म भुगतना पड़ेगा।

बारी सरलता से मानने वाला नहीं था। उसने उस घटना का सारा दोष

मानसिंह पर लगाते हुए कहा, "मानसिंह ने मुझे दाँतो से काट लिया था, इस लिए मुझे उसकी पिटाई करनी पड़ी।"

सावरकर बोले, "मानसिंह के तुम्हें काट लेने की बात यदि सत्य भी हो तो भी उसको नियमानुसार दण्ड दिया जाना चाहिए था, न कि उसकी भार पिटाई करवाई जाती। उसको तुमने ऐसा पिटवाया कि उसके नाक मुँह से रक्त प्रवाहित होने लगा। अब तो मंत्री राजबंशी तुम्हारे इन अत्याचारा का डट कर सामना करने का निर्णय कर चुके हैं।"

दूसरे दिन जब सुपरिंटेंडेंट निरीक्षण के लिए आया तो सभी राजबंशियों ने मानसिंह के साथ हुए अत्याचार का उल्लेख करते हुए बारी को दण्डित किए जान की माग की। बारी को तो क्या दण्डित किया जाता। विपरीत इसके जिहाने इस तरह की माग की थी उनका ही डाँट पड़ गयी और दण्डित करने की धमकी दी गई। जिहान मानसिंह को बारी के जगल से बचाया था उह भी धमकिया मिलने लगी। इससे विवश होकर हड़ताल करने का निश्चय किया गया था।

तभी माटंग्यू व भारत जान का समाचार मिला। 'माटंग्यू चम्सफाड रिफॉर्म' के विषय में कुछ सकेत हम पिछले पृष्ठा पर कर आए हैं। सावरकर न उम समय यही उचित समझा कि अण्डमान के मंत्री राजनीतिक बंदी इस समय हड़ताल करके माटंग्यू का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करें। हड़ताल का निश्चय हान पर कुछ लागा न मुश्ताब दिया कि इसका नतीजा व लाग करें जो काफी समय से यहाँ यातनाएँ और अत्याचार सहत आए हैं। किंतु सावरकर ने उह समझाया कि यदि उन जैसे लागा न नतीजा किया और अधिकारियों ने चिढ़ कर उह काठरिया में बंद कर दिया तो फिर पत्र व्यवहार काय में बाधा आ जाएगी। एक बात यह भी थी कि जितने भी पुराने बंदी थे वे अब तक सह गए कष्टों और यातनाओं के कारण अपना स्वास्थ्य खो चुके थे उनके लिए इस स्थिति में टिका रहना भी कठिन था। अतः नवागंतुकों और युवकों का ही इस काय में आगे आने का सावरकर न प्रोत्साहन दिया।

योजना बन गयी और उस योजना के अनुसार सावरकर स्वयं, उनके बड़े भाई गणेश सावरकर और वामनराव जोशी प्रत्यक्ष रूप से उस हड़ताल में सम्मिलित नहीं हुए। कुछ अन्य भी हड़ताल न करने वाले राजबंशी थे। यद्यपि उहान स्वयं अपनी आँखों से मानसिंह को पिटते हुए देखा था। इसके विपरीत उहोंने अधिकारियों के पास उन लोगों की शिकायत कर दी जिहोंने हड़ताल की योजना बनायी थी। यद्यपि उहान मानसिंह को पिटत अपनी आँखों से देखा तदपि व उसके पक्ष में साक्षी देने के लिए भी उद्यत नहीं हुए।

सावरकर ने योजना बनायी कि हड़ताल आरम्भ करने से पूर्व दा हड़ताली नेता अधिकारियों को ज्ञापन दें कि राजबंशियों के साथ साधारण बंदियों का जसा भी व्यवहार नहीं किया जाता है। उनके साथ ही मानसिंह के साथ हुए दुर्व्यवहार का भी उल्लेख किया जाए। यदि अधिकारी ज्ञापन स्वीकार करने से इनकार करें तो जो सक्षम

बढ़ी हैं वे भूख हड़ताल की घमकी दें। भूख-हड़ताल करने वाला को यह स्पष्ट समझा दिया था कि किसी भी अमूल्य जीवन को इसमें स्वाहा करने तक की नीयत नहीं आना चाहिए।

अन्ततः वही हुआ जिमकी सम्भावना थी। अधिकारियाँ ने ज्ञापन नहीं लिया था बंदि्यों ने विभिन्न बाड़ों में काम करने से इनकार कर दिया। लगभग एक सौ बंदि्या न यह हड़ताल आरम्भ की थी। इससे पूर्व इतने संगठित रूप में हड़ताल नहीं हुई थी। सावरकर ने इससे प्रचार प्रसार का काय अपने ऊपर लिया था। नदवि पिछली तीन हड़तालों भी सफल हुई थी और अधिकारियों को मुछ की छानी पड़ी थी। इस बार तो बंदि्या में पूर्वापेक्षा कहीं अधिक उत्साह दिखायी देता था। अण्डमान के इतिहास में यह हड़ताल सर्वाधिक व्यापक, प्रभावशाली और सुसंगठित हड़ताल थी।

हड़ताल आरम्भ होने पर बारी ने अपने हथकण्डे अपनाने शुरू कर दिए। उसने बंदि्या में परस्पर फूट डालने का काय आरम्भ कर दिया। उस फूट में वह सब प्रथम सावरकर का ही नाम लेता। हड़तालियों की कोठरियों के आगे खड़े हो कर वह कहता, "देखो, सावरकर ने किस प्रकार तुम लोगों का आगे फेंका कर सबट में डाल दिया है। उसने स्वयं हड़ताल में भाग नहीं लिया। तुम लोग पागल हो जो उसके बहकावे में आ गए हो।"

3 व तक राजबंटी बारी की नस नम से परिचित हो गए थे। वे सावरकर के विषय में सब कुछ जानते थे। वे यह भी जानते थे कि बारागार में आते ही सावरकर ने कितनी यातनाएँ और कष्ट मह हैं। बंदि्या को आज जो थोड़ी बहुत सुविधाएँ मिल रही हैं वे उनका कारण ही मिल रही है वह भी वे भली भाँति जानते थे। और इस हड़ताल के आरम्भ होने से पूर्व अपने हड़ताल में सम्मिलित न होने का कारण भी उन्होंने स्पष्ट कर ही दिया था। बंदि्यों पर बारी का कोई प्रभाव नहीं हुआ। उनसे कोई उमसे पूछ बैठा, "क्यों साहब! जब सावरकर इतने ही डरपोक हैं तो आप दिन रात उनसे घबराते क्या रहते हैं?"

यह सुन कर बारी खिसिया गया।

## मानसिंह का बलिदान

मानसिंह का जिस दिन पीटा था उसी दिन से उसने शय्या पकड़ ली थी। शय्या पर से उठ पाना उसका लिए सम्भव नहीं था। हड़ताल जाग पर थी मानसिंह के मुख से जब रक्त चमन होना लगा तो उसको अस्पताल में भर्ती कराया गया। उससे पूर्व उसका अस्पताल में भी भर्ती नहीं कराया गया था। इसी बीच सावरकर अस्वस्थ हो गए तो उन्हें भी अस्पताल में भर्ती करा दिया गया। वहीं उन्होंने मानसिंह के लाठियों से दानवि त्त शरीर को देखा।

अस्पताल में मानसिंह की दशा बिगड़ती गयी। दान विद्या शरीर के साथ-साथ दुर्बलता का कारण बनकर धीरे-धीरे शरीर भी हरा गया। वहाँ जसी चिकित्सा हो सकती

थी वह की गई किंतु एक माम के भीतर ही उस नरवीर ने देह त्याग दी। सावरकर ने उसके विषय में लिखा है—

“मानसिंह सवथा अशिक्षित वृषक था, परंतु उस जैसा उत्कट दशभक्त सुशिक्षितो में भी मिलना दुर्लभ है। बेचारा अपने देश की स्वाधीनता के लिए जूझता हुआ वदी बनाकर, आजम नारावास का दण्ट पाकर अण्डमान आया और वही ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों से जूझता जूझता चल बसा। उसने दशहिताय ‘हुतात्मा’ जैसा उच्च पद प्राप्त किया। मेरी आँखें उसके परलोक प्रयाण की दुःख घटना से नम हो गयी। प्रत्येक राजवदी का सिर उम वीर के चरणों में झुक गया।”

हडताल के असफल होने के बाद दूसरा चरण भूख हडताल का था। जब अधिकारियों ने हडतालियों का ज्ञापन देने से इनकार कर दिया तो योजनानुसार दो राजवदी नेता अन छोड़कर भूख हडताल पर बैठ गए। इनमें एक तो थे ६० वर्षीय सिख सरदार सोहनसिंह तथा दूसरे पंजाब के ही तेजस्वी राजपूत युवक पंथ्वीसिंह ‘आजाद’। ये दोनों नेता पूरे बाहर दिन तक बिना अन ग्रहण किए अपनी-अपनी कोठरी में पड़े रहे।

उनके अनशन से कारागार के अधिकारी घबरा गए और ज्ञापन लेने के लिए तैयार हो गए। इस ज्ञापन में इंग्लैंड की भांति उह राजनीतिक बंदियों की मायताए व सुविधाएँ दिए जाने से लेकर सिख राजनीतिक बंदियों को अपने केश धोने के लिए साबुन और पानी दिए जाने तक की माँगें लिखी गई थी।

### आजाद का अनशन

अधिकारियों द्वारा माँगें मान लेने पर सरदार सोहनसिंह ने तो अपना अनशन तोड़ दिया, किन्तु पंथ्वीसिंह आजाद डटे रहे। दो सप्ताह बाद जब उसकी दशा बिगड़ने लगी तो अधिकारियों ने नाक में नली डाल कर बलात् उसके पेट में दूध डलवाया। उसने कपड़े पहनना और चादर ओढ़ना भी त्याग दिया। निराहार, निवस्त्र, कारागार की भीषण ठंड और हवा में वह कोठरी के सीमेंट के ठंडे फश पर पड़ा रहता। वह किसी से नहीं बोलता था। अन्त में जब कमिश्नर आया तो उसको भी उसने यही कहा, “मैंने अपने ज्ञापन में सब लिखकर दे रखा है, अतः उससे अधिक मैं कोई बात नहीं करूँगा।”

इस प्रकार एक नहीं, दो नहीं अपितु पूरे छ मास तक वह युवक बिना खाए-पीए, निवस्त्र, एकाकी अपनी कोठरी में तपस्या करता रहा। उसका सुगठित शरीर अस्थि कंकाल मात्र रह गया था।

सावरकर से यह स्थिति देखी नहीं गयी। उन्होंने उसके जीवन को बचाने का यथाशक्ति प्रयास किया। एक दिन वे किमी प्रकार उसकी कोठरी में जाने में सफल भी हो गए। उन्होंने उसको समझाया कि परिस्थिति के अनुसार कभी कभी कुछ पग पीछे भी हटना पड़ जाता है। सावरकर ने उसे महाराणा प्रताप के कष्ट और तपस्या

का उल्लङ्घन किया और बताया कि परिस्थिति के अनुसार व भी कभी-कभी दा चार पग पीछे हट जाना पड़ता है। उन्होंने कहा कि एसात में मूने प्यास रहकर प्राण देने में राष्ट्र का अहित ही हागा हित नहीं।

सावरकर ने उसे समझाया कि उसका इस प्रकार का व्यवहार प्राण त्याग देना अतः 'आत्महत्या' कहलाएगा। वही तथा बाहर के लोग इसे आत्म हत्या मानेंगे। सावरकर के समझाने का प्रभाव हुआ। उसने वचन दिया कि वह आत्म हत्या नहीं करेगा।

सावरकर ने एक बार तो 'आजाद' को प्रेरित किया तथा दूसरी बार अस्पताल के डाक्टर को कहा कि वह प्रतिदिन आजाद के स्वास्थ्य के विषय में उनका बताना रहे। यदि अवस्था बिगड़ जाए तो उन्हें तुरन्त सूचित किया जाए। तभी एक दिन डाक्टर ने सावरकर को बताया कि पथ्वीसिंह की ऐसी स्थिति आ गई है कि या तो वह आत्महत्या कर लेगा या फिर पागल हो जाएगा। सावरकर ने सभी राजबंदियों की ओर से उसके नाम एक प्रार्थना पत्र लिखवाया, जिसमें कहा गया कि वह अपना अनशन तोड़े इससे कोई यह नहीं सोचेगा कि उसने मृत्यु से डर कर अनशन तोड़ा है, अपितु इस समय परिस्थिति की यही माँग है कि अनशन तोड़ दिया जाए। बंदियों की इस प्रार्थना का प्रभाव हुआ और आजाद ने अनशन तोड़ कर अन्न ग्रहण करना स्वीकार कर लिया।

अण्डमान कारागार में हडताल चल रही थी और उधर भारत में माटेयू चेम्सफोर्ड सुधारों पर बहस चल रही थी। सावरकर का पत्र भी माटेयू के पास गया, उस पर भी विचार किया गया।

हडताल चलते हुए छ मास हो गए थे। सावरकर इतनी लम्बी अवधि तक हडताल करने के कुपरिणाम से विचिंत थे। इससे अनेक बड़ी रोगी हो गए थे और कुछ को तो क्षय जैसा भयंकर रोग भी लगने की सम्भावना हो गई थी। उधर अधिकारी भी कुछ माँग स्वीकार करने की तैयार हो गए थे। उस अवस्था में सावरकर ने बंदियों को सुझाव दिया कि या तो जो माँग स्वीकार कर ली गयी है उनके आधार पर हडताल समाप्त कर दी जाए अथवा जो हडताल कर रहे हैं वे तो हडताल समाप्त करें और जिन्होंने अब तक हडताल नहीं की है, वे हडताल करना आरम्भ करें। हडताल तोड़ने वाले जब कोठरिया से बाहर निकलने और पर्याप्त भोजन करेंगे तो उनका स्वास्थ्य सुधरने लग जाएगा। इस पर पर्याप्त चर्चा हुई और अंत में हडताल समाप्त करने का निणय ले लिया गया।

हडताल सफल रही। इस हडताल की न केवल अण्डमान में अपितु देश भर में चर्चा भी हुई। देशभर के समाचार पत्रों में अण्डमान के राजनीतिक बंदियों की दयनीय दशा के समाचार तथा उन पर लगे भी प्रकाशित हो रहे। उधर अधिकारी ने स्वयं चिन्तित न होने के लिए मयाशक्ति प्रयत्न किया और अपने इस प्रयत्न में वह सफल गया। अन्त में था तो वह अंग्रेजों का ही पिछड़ा वे क्या न उसको सरक्षण देते ?

इस हड़ताल का सुपरिणाम यह हुआ कि कारागार के अधिकारियों का व्यवहार पूर्वपिछा नभ्र होने लगा। अब तो जेल अधिकारी यहाँ तक कहने लगे कि 'चाह आप लोग काम करो अथवा न करो, किन्तु मुख स 'नहीं' मत कहो।

किसी जमाने में पोट व्नेयर में परमेश्वर मान जान वाले वारी का भूल्य तथा प्रतिष्ठा गिर गयी। साधारण बंदी भी 'अप' उनके आदेश की गुली अवटेलना कर दिया करते थे। यह व्यवहार देखकर वारी भी अब कुछ कुछ उदासीन सा रहने लगा था। उसका उद्देश्य था उसकी नौकरी के बचे छुचे दिन किसी प्रकार ठीक ठाक बीत जाए। फिर भी राजनीतिक बंदी उनका उपहास किए बिना रहते नहीं थे।

इस समय तक युद्ध की स्थिति भी बदल गयी थी। जर्मनी की विजय की आशा धूमिल होने लगी थी। इसी बीच पजाय का रामरक्षा और यमाल का जोशीश चंद्र अपनी मांगो के समर्थन तथा अधिकारियों की हठधर्मी के कारण प्राणोत्सग कर चुके थे। सावरकर का हृदय कहता था कि एक दिन हो सकता है उनको भी इस प्रकार जाना न पड़ जाए। किन्तु उनके लिए यह चमत्कार का ही विषय था कि विगत तीन चार वर्ष की अवधि में उनके देखते-देखते अनक सोग स्वग सिधार गए थे। किन्तु सावरकर स्वयं आठ-नौ वर्ष तक घोर यातनाओं को सहने के उपरान्त भी मृत्यु की चुनौती स्वीकार कर उस दूर भगात रहे थे।

सावरकर के अण्डमान के जीवन में वह अन्तिम हड़ताल थी, जो इससे पूर्व की अन्य हड़ताला की ही भांति सफल रही थी। यह सबके लिए प्रसन्नता का विषय था।

## मुक्ति के लिए अभियान

जब विश्व युद्ध आरम्भ हुआ था और जर्मन तथा रूस आदि मिलकर ब्रिटिशस के विरुद्ध मोर्चाबंदी कर आगे बढ़त जा रह थे तो भारत के राजबंदी सोचत थे कि जर्मन ने अब इंग्लैंड पर अधिकार किया और कल हम सब कारागार से मुक्त हुए। लगभग सभी बंदी इसी प्रकार की आशा लगाए बैठे थे। परन्तु कालांतर में जब जर्मनी की पराजय के समाचार आने लगे तो उनकी आशा भी क्षीण से क्षीणतर होती गयी। सभी बंदी निराशा, क्रुष्ठा और उदासीनता का अनुभव करने लग। किन्तु मन का फिर भी चैन कहाँ। क्यों कि अब जब अंग्रेजों की विजय हा गयी थी तो बंदिदों को यह आशा होने लगी कि विजय की प्रसन्नता में अंग्रेज सरकार बंदिदों को मुक्त करेगी। वे उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे जिस दिन उनकी रिहाई का आदेश आएगा। कुछ लोगों को यह आशा थी कि यदि रिहा न भी किए गए तो रियायत तो मिलेगी ही।

इसके साथ ही भारत वष में यह चर्चा जोरो पर थी कि अण्डमान में जलवायु खराब होने के कारण और राजबंदिदों के साथ किए जाने वाले दुर्व्यवहार एवं उत्पीडन के कारण उनकी दशा दयनीय हाती जा रही है। सावरकर का इसी आशय का पत्र जब भारत के समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ तो इससे सबत्र यही चचा होने

लगी थी। कुछ ही दिना में यह भी चर्चा फैलने लगी कि सावरकर तथा कुछ अन्य बन्दिषों को अण्डमान से भारत के वाराणसी में भेज दिया जाएगा। विगी ने यह भी बताया कि सावरकर को सिंगापुर भेजा जाएगा। इसके साथ ही कुछ दिना बाद वामनराव जोशी तथा एक दो अन्य बन्दिषों को भारत भेज जाने का आश्वासन भी आ गया। जोशी तथा उनका साथी सावरकर की विदा करने के लिए उनमें मिलकर अस्पताल में गए। वह अवसर प्रसन्नता और उदासी का अवसर था। प्रसन्नता इसलिए कि उनका साथी भारत जा रहे थे, उदासी इसलिए कि बहुत दिना के साथी बिछ रहे थे।

विश्व युद्ध सन १९१८ में समाप्त हो गया था। उसके तुरन्त बाद ही सम्पूर्ण भारत में राजनीतिक बन्दिषों की रिहाई के लिए प्रचार प्रसार किया जात लगा था। जनसामान्य, प्रख्यात नेतागण, समाचार पत्र सभी एक स्वर से राजनीतिक बन्दिषों की रिहाई की माँग करने लगे थे। इस निमित्त म्यान्मार्-स्थान पर सम्पूर्ण आयोजन की जाती, बैठकें होती, प्रस्ताव पारित किए जाते। बम्बई की नेशनल यूनिन, अन्तरराष्ट्रिय गेद्रे, मेनापति बापट, तथा शिवराम पराजपे आदि ने इस कार्य में बड़ा बड़ा योगदान दिया। उन्होंने इस निमित्त इम्तान्तर अभियान आरम्भ किया और एक पाचिका बनाकर भाग्य सचिव माटंगू के पास भिजवायी। किन्तु भारत सरकार ने इसको अस्वीकार कर दिया। उसी समय अन्तर्गत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो उसमें भी एक विशेष प्रस्ताव के माध्यम से राजनीतिक बन्दिषों की रिहाई की माँग की गयी। महाराष्ट्र की जिला होम अल्ल लीग ने अलग से अपना प्रस्ताव भेजा।

इस सबका प्रभाव हुआ।

२४ दिसम्बर, १९१९ को राजनीतिक बन्दिषों के लिए सम्मेलन की ओर स दया की घोषणा कर दी गयी। उस घोषणा में कहा गया—“मैं अपने वायसरॉय को निर्देश देता हूँ कि वह मेरी आर से, मेरे नाम पर राजनीतिक बन्दिषों को भी जाने वाली दया की घोषित रूप में विचार कर और सब प्रकार की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए पूर्ण रूप से लागू कर। मेरा यह आदेश उन सभी के लिए भी लागू होगा जो किसी प्रकार के राजद्रोह अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य द्वाह से सम्बन्धित हैं और उनकी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।”

इस घोषणा के आधार पर प्रांतीय सरकारों ने अपने कारागारों के द्वार खोल दिए तथा सभी राजनीतिक बन्दिषों को रिहा कर दिया गया। अण्डमान की सेलुलर जेल से अन्तर राजनीतिक तथा सामान्य बन्दिषों को रिहा कर दिया गया। यहाँ तक कि जो सावरकर के बाद आए थे अथवा जो सावरकर के साथ साथ एक ही आरोप में बन्दी बनाए गए थे उन सबको भी मुक्त कर दिया गया। किन्तु जनसुरक्षा के नाम पर भारत सरकार ने सावरकर को मुक्त करना उचित नहीं माना।

## सावरकर का गिरता स्वास्थ्य

उधर शारीरिक दृष्टि से सावरकर की दशा दिन प्रति दिन बिगड़ती जा रही थी। सामान्यतया जब बंदी को अस्पताल में भर्ती कराया जाता था तो थोड़े ही समय में उसकी दशा में सुधार होने लगता था। किंतु सावरकर का तो जाठ वष बाद तब अस्पताल में डाला गया था जब उनकी दशा बहुत ही बिगड़ चुकी थी। अब उन पर अस्पताल का प्रभाव उस गति से होना सम्भव नहीं था। हाँ, अस्पताल में आने के बाद उनकी देख भाल ठीक प्रकार से होने लगी थी। डाक्टरों का प्रयत्न रहता था कि सावरकर को वह खाद्य पदार्थ दिया जाए जिसको वे सरलता से पचा सकें। दूसरी ओर ज्वर को उतारने के लिए इतनी अधिक मात्रा में बिबिनीन की गोलियाँ दी जान लगी कि उनसे उनकी पचिश बंद गई। पचिश के कारण उनकी पचाने की प्रक्रिया पूर्णतया नष्ट हो गई थी।

अण्डमान में रोगी पर टी० बी०, मलेरिया और पचिश एक साथ ही आक्रमण करते थे। इन तीनों घातक रोगों के सम्मिलित आक्रमण से शरीर की पूर्ण शक्ति क्षीण हो जाती थी। सावरकर को मलेरिया तथा घून की पचिश तो थी ही, छ मास के उपरांत डाक्टरों को आश्चर्य होना लगी कि कहीं उनका क्षय रोग न हो गया हो। अर्थात् रोग रूपी अन्तिम शत्रु ने भी उन पर आक्रमण कर दिया था।

निदान हो जाने पर सावरकर की उसी विधि से चिकित्सा भी होने लगी। इस प्रकार एक वष तक सावरकर जेल के अस्पताल में रहे। एक वष बाद पुनः उनकी जेल की पाँच नम्बर बैरिक की तीसरी मजिल की कोठरी में बिलकुल एकांत में लाकर रख दिया गया। एकांत में पड़े-पड़े अनेक प्रकार के विचार उनके मन में उठने लगते। शरीर क्षीण होना से उनकी दृष्टि भी क्षीण हो गयी थी, अतः पढ़ना बंद कर देना पड़ा। अबले में नेटे-लेटे सोचते रहने के अतिरिक्त उनको और कुछ काम ही नहीं था। इसी विचार मग्न में इसी ऊहापोह में उन्होंने अपनी कविता 'मृत्यु शैया पर' की रचना की थी।

जिस समय सावरकर ने अपनी 'मृत्यु शैया पर' नामक कविता की रचना की थी, उस समय कदाचित्त उनका यह आशा कम ही रही होगी कि जब वह कविता पूर्ण हो जाएगी, तब उसको पुनरेण पढ़ने के लिए वे जीवित भी रहेंगे अथवा नहीं। क्योंकि उनका स्वास्थ्य इतना गिर गया था और फिर जिसको एक साथ तीन तीन रोग घेरे हुए हों, वह भी अण्डमान के कारागार में, उसका वचन कर निकलना कठिन ही समझा जाता था।

सावरकर को जब पहचान धार इंग्लैंड में बंदी बनाया गया था तो उन्हें यही सम्भावना थी कि उनको फाँसी पर लटका दिया जाएगा। उस समय की अवस्था में उन्होंने मेरा मृत्यु पत्र' कविता की रचना की थी। जब उन्हें कारागार में रहते हुए एक सप्ताह बीत गया तो उन्होंने 'प्रथम हफ्ता' शीर्षक कविता की रचना की थी। तदनंतर अब जब वे स्वयं को मृत्यु की दहरी हर खड़ा पात तो उन्होंने 'मृत्यु शैया पर



कविता की रचना कर डाली थी। कालान्तर में ये कविनाएँ सावरकर की अग्रणी पुस्तक 'इको फ्रोम दि अण्डमान' में प्रकाशित हुई।

यो एकांत कोठरी में सावरकर अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे।

## परिजनो से भेंट

अण्डमान की कारागार के नियमों के अनुसार अय बर्दिया को पांच वष में एक बार अपने परिजनो से मिलने की सुविधा प्राप्त थी। यहा तक कि कुछ दम्पतियों को कुछ सप्ताह तक एक साथ रहने की भी सुविधा प्रदान की जाती थी। इस प्रकार अनेक बन्धियों के सम्बन्धी कुछ सप्ताह के लिए अण्डमान आकर रहने की सुविधा प्राप्त करते रह थे।

सावरकर के परिवार को यह सुविधा, केवल भेंट की सुविधा, जाठ वष बाद और वह भी न जाने कितने आवेदन, प्रतिवेदन तथा प्राथनाओं तथा सिफारिशों के बाद प्राप्त हुई थी। यहा तक कि एक बार तो उनके अनुज डा० नारायण दामोदर सावरकर तथा सावरकर की पत्नी अण्डमान में उनसे भेंट करने के लिए कलकत्ता तक पहुँच गए थे। किंतु वहा पहुँचने के उपरांत तार से उनको सूचित किया गया कि उनकी भेंट की अनुमति रह की जाती है। ऐसा क्रूर मजराक शायद ही किसी के साथ किया गया हो।

नारायण सावरकर जब बम्बई सरकार से अण्डमान आकर मिलने के लिए प्राथना पत्र भेजते तो उनको उत्तर दिया जाता कि पोर्ट ब्लेयर से पत्र व्यवहार करो। जब वे पोर्ट ब्लेयर के कमिश्नर का प्राथना पत्र भेजते तो वहा से उत्तर मिलता कि भारत सरकार ही यह अनुमति प्रदान कर सकती है। हिन्दुस्तान सरकार को आवेदन पत्र दिया गया तो उत्तर मिला कि बम्बई राज्य सरकार के माध्यम से आवेदन आने पर विचार होगा। टालमटोल का यह क्रम वर्षों तक चलता रहा था।

अन्तत आठ वष बाद उनको अण्डमान में आकर मिलने की अनुमति प्रदान की गई। मई १९१६ के अन्तिम सप्ताह में उनके परिजन, छोटा भाई नारायण दामोदर सावरकर, उनकी पत्नी तथा सावरकर की पत्नी भेंट करने के लिए पहुँचे थे। कारागार के अधीक्षक की उपस्थिति में इस भेंट की व्यवस्था की गयी थी। पर्दे के पीछे एक मराठी भाषी वाडर की नियुक्ति की गयी थी, जिससे कि उनमें मध्य होने वाले वार्तालाप को ठीक प्रकार से समझा जा सके। वदाचित यहाँ पर भी अधिकारियों को यह आशका रही होगी कि कहीं सावरकर को मुक्त करने के लिए किसी प्रकार कोई पडपत्र न रचा जा रहा हो।

आठ वष बाद सावरकर ने अपनी पत्नी, भाई तथा उसकी पत्नी को देखा था। सावरकर को उहे देखकर यह प्रसन्नता हुई कि परिवार पर आने वाले इन भीषण सकटों में भी वे लोग अपनी जीवन नीका का किसी न किसी प्रकार खेत चले आए हैं। उन भीषण सकटों में भी वे अडिग और दढ़ रहे थे, सावरकर के लिए यह

अत्यधिक प्रसन्नता की ही बात थी। इस भेंट के विषय में सावरकर के लिए अत्यधिक प्रसन्नता की ही बात थी। इस भेंट के विषय में सावरकर ने लिखा है—“हम सबने लगभग डेढ़ घंटे तक अनेक विषयों पर उस निश्चिन्तता के साथ बातचीत की जिस निश्चिन्तता से क्या का विवाह निविधन सम्पन्न कर परिवार के लोग बैठकर गपशप करते हैं।”

अपनी भाभी के प्रति सावरकर की अपार श्रद्धा और भक्ति थी। सावरकर ब्रधुओं की राजनीतिक और प्रातिवारी गतिविधियों में उस वीर साहसी महिला का सक्रिय समयन रहता था। सावरकर की बहू बाल्यकाल की सखा थी, भवतामयी माता थी, उनकी गतिविधियों में अत्यन्त विश्वसनीय सहयोगिनी थी। अपने पति तथा देवर से मिलने के लिए अण्डमान आने के लिए वे वर्षों से आतुर थी, यह बात सावरकर जानते थे। आखिर वही पूज्या माँ-स्वरूपा भाभी आज मिलने ब्यो नहीं आयी, यही सावरकर के लिए पहली घनी हुई थी।

आखिर सावरकर ने साहस करके प्रश्न कर ही दिया। तब उनका पता चला कि वे अब इस लोक में नहीं हैं। अथवा क्या यह सम्भव था कि भेंट की अनुमति मिले और भाभी न आएँ। समाचार सुनकर सावरकर हतप्रभ से हो गए। बिना एक शब्द कहे उन्होंने उस समाचार का विषय अपने हृदय में उड़ेल लिया। स्वयं को अथवा कि सामने वालों को, सात्वता सी देते हुए उस समय सावरकर ने कहा, “यह नसार ही परिवर्तन शील है। जा आज है वह कल नहीं। धर्मशास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है कि अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए वीरता के साथ रणायण में सपय करती हुई बलिदान देने वाली महिला सीधी स्वर्ग को जाती है। भाभी भी स्वाधीनता की एक ज्योतिषुज थी, उनके शरीर मुक्त हो जाने पर रोना या दुःख व्यक्त करना उचित नहीं है।”

सावरकर के बड़े भाई गणेश सावरकर भी तब तक वहीं थे। तीनों भाइयों की यह परस्पर भेंट बारह वष बाद हो रही थी। बारह वष पूर्व जब सावरकर १९०६ में लन्दन के लिए प्रस्थान कर रहे थे तो उस समय दोनों भाई उनको विदा करने के लिए बम्बई के समुद्र तट पर आए थे। उसके बाद मई १९१९ में केवल डेढ़ घंटे के लिए एक साथ मिलकर बातें करने का अवसर मिल रहा था।

सावरकर को अपनी पत्नी से भी आधा घण्टा एकांत में बात करने का अवसर दिया गया था।

परिवार की इच्छा थी कि चार छ दिन उस टापू में रहकर वहाँ के दृश्य देखें, किन्तु उन्हें इसकी स्वीकृति नहीं दी गयी। कदाचित् इसमें भी सरकार को यह भय रहा होगा कि कहीं वे वहाँ रहकर सावरकर को मुक्त कराने का पट्यत्र न करें। अण्डमान के अनेक जन सावरकर के परिवार से मिलने के लिए आतुर थे, किन्तु किसी को भी उनसे नहीं मिलने दिया गया। तदपि, इस कड़े प्रतिबन्ध के होने पर भी कुछ लोग परिवार से मिलने में सफल हो ही गए थे। अपनी ओर से उन्हें फल आदि भेंट कर उनके प्रति अपने श्रद्धा सम्मान की भावना प्रदर्शित की थी।

डेढ़ घण्टे बाद यह शॉट वार्ता समाप्त हो गयी। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है सावरकर के परिवार का न तो दो चार दिन के लिए अण्डमान में रहने का अनुमति प्रदान की गयी और न ही उत्सुक लोगों से उनको मिलन दिया गया।

उनको तुरन्त स्टीमर पर चढ़ा कर पोर्ट ब्लेयर से रवाना कर दिया गया।

### सावरकर को हवाई प्रणाम

परिवार को विदा हो गया। सावरकर का पुन वही दैनिक क्रम आरम्भ हुआ। स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा था। वदियों को साधर करने का उनका सक्त्प अब जोर मारने लगा। उसके लिए सावरकर को भाँति भाँति के यत्न करने पड़ते थे। यहाँ तक कि एक गुजराती मुसलमान को उन्होंने रिश्तत में तमादू दकर पढ़ने के लिए तैयार किया किया था। एक पञ्जाबी ब्राह्मण को भी तमादू का लालच दिया गया किन्तु वह फिर भी तैयार नहीं हुआ तो सावरकर ने उसको अपने लिए अस्पताल से मिलने वाला दूध देने का वचन दिया। इस प्रकार उसने पढ़ना आरम्भ किया। एक बार पढ़ने आने के बाद फिर निरन्तर आते रहेंगे, ऐसी बात भी नहीं थी। नित्य ही उनको पढ़ने के लिए प्रेरित करना पड़ता था।

उन वदियों से जब खुलकर बातें होतीं तो वे अनेक विचित्र घटनाओं का उल्लेख करते। एक बार एक वदी ने सावरकर से कहा, “आप जब से अण्डमान आए हैं तब से अमेरिका की ओर से जो जहाज भारत आते हैं, उनमें जो भारतीय मंत्री होते हैं वे उस जहाज के सिगापुर से आगे बढ़ते ही अण्डमान की ओर मुड़ करके, झुककर हाथ जोड़ते हैं। वे कहाँ करते हैं कि इस अण्डमान की कारा में राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए सावरकर जैसे राष्ट्रभक्त कष्ट और यातनाएँ सहन कर रहे हैं।”

उही दिनों चारी के सेवानिवृत्त होने का समय आया। उसकी सेवा के अन्तिम वर्षों में उसे भी राजवदियों ने उसके दाँत तोड़ दिए थे अब तो वह उतना बटखना नहीं रह गया था। उसने अपनी सेवा के अन्तिम दिनों में बाइरो से कहना आरम्भ कर दिया था, “राजवदियों की बातों का बतमझ मत बनाओ। उन सबको कुछ न कुछ काम देते रहो। यदि कोई काम न करे तो शांत हो जाओ। अधिकारियों के कामों तक कोई बात नहीं जानी चाहिए। वे जो चाहें करें, तुम अपने काम से काम रखो।”

सेवा निवृत्त होने से पाँच वर्ष पूर्व चारी जब एक बार अवकाश लेकर जयपुर लड़ जाने लगा तो सावरकर से कहने लगा, “मि० सावरकर! सुना है तुम्हारे कुछ साथी मेरे भारत में पर रखते ही मुझ पर बम फेंकने की योजना बना रहे हैं?”

सावरकर ने सुनकर व्यर्थ करते हुए कहा “मुझे तो इस बात का बिलकुल भी विश्वास नहीं होता। भारतीय न्यायिकारी इतने भूख नहीं है कि वे किसी कोबे या गीध की हत्या के लिए बम का उपयोग करें। यदि उन्हें बम ही फेंकना होगा तो किसी शेर पर फेंकेंगे।”

### चारी का अन्त

किन्तु अब जब चारी सेवानिवृत्त होकर जाने लगा तो उसके मन में भय समा

रहा था। वह सोचता था कि वही उसको इस ससार से ही मुक्ति न मिल जाए। रह-रह कर उसको अपने कुटुम्बों का स्मरण हो जाता था। सहस्रो बंदियों के शापो के उपहार से बारी की कमर टूट गयी थी। सेवा निवृत्त होने पर अण्डमान से बारी जब तक भारत पहुँचा तब तक उसका शरीर रोग से जजर हो गया था। अण्डमान से सेवा मुक्त होने के उपरान्त वह आयरलैंड नहीं पहुँच पाया था, भारत में ही उसकी मृत्यु हो गयी।

बारी के परमभक्त और चाटुकार मिर्जाखान की भी अकड़ समाप्त हो गयी थी। वह भी अनेक प्रसंगों पर सावरकर से क्षमा याचना किया करता था। यहाँ तक कि एक बार उसका एक हाथ किसी प्रकार खराब हो गया तो उसके ठीक होने के लिए उसने सावरकर से आशीर्वाद माँगा और कालान्तर में ठीक उपचार से उसका वह हाथ ठीक हो गया तो उसने यही समझा कि सावरकर के आशीर्वाद से ही वह ठीक हुआ है। बारी के जाने के सात आठ मास बाद मिर्जा खान को भी कारागार से मुक्ति हो गयी थी। उसके विदा होते ही कारागार के पठान, बलोच और सिन्धी बाडरा के हौसले भी पस्त हो गये थे। अब चारों ओर हिंदू बाडर आदि थे। कारागार के बाहर भी सब हिंदू बाडर ही नियुक्त हो गए थे। अब स्वयं पठान लोग कहा करते थे, 'अब क्या बोलना, अब तो हिंदू राज हो गया है।'

बारी के जाने के बाद नया जेलर आया तो उसने आते ही अपनी धाक जमाने का यत्न किया। उसने अपने अधिकारियों से परामर्श करके बलिष्ठ और सौम्य लोगों को चुनकर कोल्हू पर लगाने की योजना बनाई। किंतु सभी बंदियों ने कोल्हू चलाने से इनकार कर दिया। जेलर ने बारी का तरीका अपनाना चाहा। उसने कुछ बंदियों को कोल्हू से बँधवा दिया और कुछ को बनात कोल्हू पर हाथ रखवा कर उसे चलाना चाहा। इससे एक गुजराती ब्राह्मण के हाथ पर छिल गए। सारे कारागार में यह बात फैल गयी।

सारे राजबंदियों ने भूख हड़ताल का निश्चय कर लिया और पालियाँ हाथ में लेकर सब बाहर निकल आए। जेलर ने जब उनके तमतमाए मुख देखे तो वह समझ गया कि अब इन पर उसका वह दाँव नहीं चल सकता। कुछ बंदियों ने उसको धमकी दी कि उनके उत्पीड़न का जब तक निणय नहीं हो जाता तब तक वे लोग लान ग्रहण नहीं करेंगे। जेलर ने कहा, "गुजराती को कोल्हू में जाते जाने की बात गलत है।" सभी एक पंजाबी बंदी ने कहा, "ता क्या हमारा गुजराती भाई झूठ बोल रहा है? देख ल, यदि तूने इस प्रकार की बदमाशी की तो इसी धाली से तेरा सिर चबनाचूर कर दूंगा।"

जेलर तो ऐसा गुनत ही पसीना-पसीना हो गया। वह वहाँ से घिसक गया और बंदियों का कोल्हूओं पर से हटाकर उन्हें कोठरियों में बन्द कर दिया। जब सुपरिंटेंडेंट ने आश्वासन दिया कि गुजराती समेत किसी भी बंदी को बान्द्र पर नहीं लगाया जाएगा, सभी जाकर बंदियों ने अपना अनसन तोड़ा।

एक बार जेलर ने किसी बंदी को गाली दे दी तो उसको भी गाली सुननी पड़ी। न केवल इतना अपितु उस सप्ताह चीफ कमिश्नर निरीक्षण के लिए आन वाला था। बन्दियों के पास आकर गिडगिड़ाया और क्षमा माँगने लगा। चीफ कमिश्नर को जब उसकी बरतूत बतायी गयी तो उसने उसको डाँटा और चेतावनी भी दी। परिणाम स्वरूप भविष्य में ऐसी कोई घटना नहीं घटी।

कुछ दिनों बाद बारी का साला डिग्रेस जेलर नियुक्त होकर आया। वह आयरिश होने पर भी भारतीयों के प्रति स्नेह भाव रखता था। तथा सुपठित होन स अध्ययनशील था। बंदियों के साथ सौम्य व्यवहार के माध्यम से वह मनचाहा काय करवा लेता था। वह यत्न करता था कि बंदियों को नियमानुसार मिलने वाला सब सुविधायें मिलें। इसके लिए कई बार उसको उच्च अधिकारियों का काप भाजन भी बनना पड़ा था।

### जाँच आयोग का नाटक

इही दिनों जेल जांच आयोग की नियुक्ति हुई और जो आयोग जाँच के लिए अण्डमान गया वह सबसे पहले सावरकर से ही मिला। आयोग के सभी सदस्य सावरकर से परिचित थे। प्रारम्भिक कुशल खेम के उपरांत जब उनसे जेल के विषय पूछना आरम्भ किया तो सावरकर ने सबसे पहले मानसिंह के उत्पीड़न का मामला सम्मुख रखा। उसे सुनकर आयोग का भारतीय सदस्य क्रुद्ध होकर सावरकर से पूछन लगा, "आप यह कैसे कह सकते हैं कि उसके शरीर पर जो घाव आदि थे वे मारपीट के थे?"

सावरकर ने उत्तर दिया, "ता क्या वे घाव शरीर पर स्वयं उभर आए थे?" दूसरा सदस्य बोला, 'वह जीने से नीचे उतरते समय लुढ़क गया था, इससे उसके शरीर पर घाव आ गए हाने। और दूसरे फिर मार पीट के समय आप सामन तो थे नहीं। फिर आप कस कह सकते हैं कि वे घाव मारपीट के ही थे। आप सुनी सुनाई बात ही तो कह रहे हैं।'।

सावरकर ने भी उसी की भाषा में उत्तर दिया 'जब वह जीने से लुढ़का था तो क्या आप वहाँ पर थे? आप भी तो सुनी सुनाई बात ही कह रहे हैं? मैं घटना के समय कारागार में तो था, किन्तु आप तो सागर के उस पार बहुत दूर भारतवर्ष में थे। मैं तो उस दीवार के समीप था जहाँ से मैंने मानसिंह की पिटाई के समय चिल्लाहुट सुनी थी। दौड धूप तथा तमाम गडबडी अपनी आँखों से देखी और जो व्यक्ति वहाँ पर उपस्थित थे उन्होंने सारी घटना मुझे पाँच मिनट बाद ही सुना दी थी। विसियाना सा वह बोला "हम तो अधिकारियों ने जो रिपोर्ट दी है उसका आधार पर ही मैंने ऐसा कहा है।'

सावरकर ने कहा 'यहाँ के अधिकारी तो आपका एक पक्षीय रिपोर्ट ही देंगे। वे तो सत्य पर पूर्ण डालकर स्वयं को निर्दोष सिद्ध करेंगे ही। मुझे तो उन

बन्दिओ ने आखो देखी घटना बताई थी और फिर दूसरे स्वयं मैंने अस्पताल में मानसिक के शरीर पर छडियो के नीले चिह्न देखे। अतः आपको मेरी बात पर विश्वास करना चाहिए।”

सावरकर के तकों का उनके पास कोई उत्तर तो था नहीं। एक अन्तर्दृष्टि ने विषय बदलते हुए पूछ लिया, “यदि इस कारागार से आपको मुक्त कर दिया गया तो बाहर जाकर आप क्या करेंगे?”

सावरकर के उत्तर देने से पहले ही एक अन्तर्दृष्टि खोल पड़ा “राजद्रोह फैलाने का अपना पुराना काम ही करेंगे और क्या करेंगे।”

सावरकर ने कहा, ‘सगता है आप अतर्कनी है। मैंने बाहर जाकर फिर राजद्रोह किया तो आपको मुझे बंदी बनाने का भी पुराना अधिकार तो होगा ही। किन्तु आपको तो यह देखना चाहिए कि मैं आजकल क्या कर रहा हूँ। देखिए गत पाँच वर्षों में मुझ पर एक भी अभियोग नहीं चला है। जबकि जेल तोड़ कर भागने वालों को एक वष से अधिक बंद नहीं रखा गया। मेरा तथा अन्तर्दृष्टि राजनीतिक बन्दिओ का आचरण अच्छा होने पर भी जेल में बंद रखना “याय तो नहीं है।”

इस चर्चा में सावरकर ने अण्डमान कारागार में दी जाने वाली यातनाओ का विस्तार से वर्णन किया। लगभग डेढ़ घंटे तक वार्तालाप के उपरान्त आयाग ने सावरकर से कहा कि इन सब बातों को यदि वे लिख कर भेज सकें तो उनके लिए उपयोगी सिद्ध होगी। उन्होंने तीन चार अन्तर्दृष्टि के आवेदन पत्र भी मँगवाए। बाहर के लोगो ने अपने अलग स चापन दिए। सभी में अन्तर्दृष्टि बातों के अतिरिक्त अण्डमान उपनिवेश को बंद करने की भी माँग की थी। इसी दौरान भारत के समाचार पत्रों ने भी अण्डमान उपनिवेश को बंद करने की माँग रखनी आरम्भ कर दी।

सावरकर ने अपने आपन में जेल सुधार की बातें, दण्डित व्यक्ति के मानसिक, आत्मिक तथा शारीरिक सुधार की ओर ध्यान दिया जाना आदि सभी बातें विस्तार से लिपी। उन्होंने अण्डमान को जल सेना का दुर्ग बनाने का भी सुझाव दिया था जिसे सुनकर सदस्य मुन्कुरा दिए थे। उस समय तो बात यों ही टल गयी किन्तु १९२६ में भारत सरकार ने इस दिशा पर कार्य करना आरम्भ कर दिया था।

## द्वितीय भेंट

नवम्बर सन १९२० में सावरकर की विदित हुआ कि उनके लघु भ्राता डाक्टर नारायण सावरकर को एक बार पुनः उनसे भेंट का सुअवसर प्राप्त हो गया है। सावरकर को इस भेंट से जहाँ अतीव प्रसन्नता हुई, वहीं उनको दुःख भी हुआ। क्यों कि अनुभव करते थे कि इस बार उनका भाई जब उनसे तथा बड़े भाई सावरकर के शरीरों को देखेगा तो उसको बहुत निराशा होगी। छोटे भाई को निहई अथवा नहीं, यह कहा नहीं जा सकता, किन्तु सावरकर अब स्वयं बहुत निचुके थे।

इस बार भेंट करने के लिए सावरकर की पत्नी तथा छोटा भाई ही आए थे। नारायण की पत्नी नहीं आ पायी थी। सावरकर ने इस भेंट के विषय में अपनी पुस्तक 'माझी जम ठेप में लिखा है—

"मेरे कनिष्ठ वधू हमें से मित्र थे। इसलिए दूसरी बार अण्डमान आये। हम दोनों भाइयों की मुक्ति की अन्त आशा भूरी रह गयी थी। ज्येष्ठ वधू का शारीरिक दृष्टि से बहुत ही दुर्बल हो चुक था। ऐसी स्थिति में मेरे मन में विचार आया कि कदाचित् अपने परिजनो में यह अंतिम भेंट हो। यदि तीसरी भेंट की अनुमति मिली भी तो एक वष के बाद ही तो मिल पाएगी। परन्तु क्या एक वष तक यह शरीर चल पाएगा ?

"मन में धैर्य रखकर कनिष्ठ वधू से मैंने कहा, 'मैं यह उचित नहीं समझता कि वस्तुस्थिति को तुमसे छिपाया जाए। अचानक यदि कोई दुःख समाचार मिलता है तो उससे धक्का सा लगता है। तुम उस दुःख समाचार को सुनने का मत बना सको इसके लिए मैं पहले ही तुमको बता देना चाहता हूँ कि कालान्तर में किसी भी दिन तुमको हम दोनों भाइयों के जीवन के अन्त होने का समाचार मिल सकता है। हम लोग का शरीर अब अधिक सहन करने योग्य नहीं रह गया है। कदाचित् तुम्हारे साथ हमारी यह अंतिम भेंट हो।'

हम पहले भी उल्लेख कर आए हैं कि कभी कभी सावरकर में निराशा का भाव उत्पन्न होता था। ऐसी एक अवस्था पर उन्होंने आत्महत्या तक का निश्चय कर लिया था। इस बार तो वास्तव में उन दोनों भाइयों का शरीरक्षय हो चुका था अतः यह भाव उठना स्वाभाविक था।

पिछली भेंट के समान ही यह भेंट अल्पकालिक रही।

सावरकर जेल के अंदर से अपनी रिहाई के लिए आवेदन कर रहे और बाहर भारत के नेतागण भी अपनी ओर से उनकी रिहाई के लिए पत्राचार करते रहे। 'नेशनल यूनियन' इस कार्य में बहुत सक्रिय थी। किन्तु परिणाम आशा जनक नहीं निकल रहा था।

दिन बीतते गये। जाच जायोग ने सरकार को अपनी रिपोर्ट दे दी। तदनुसार सरकार ने अण्डमान उपनिवेश का समाप्त करने का निर्णय भी कर लिया। अण्डमान के निवासी अवस्थ को भारत से लगा हुआ समझने लगे थे।

उही दिना अर्थात् अगस्त सन १९२० में ही तिलक का देहांत हो गया। इस का देश व्यापी प्रभाव हुआ। इस प्रभाव में अण्डमान भी अछूता नहीं रहा। अण्डमान में जहाँ ही यह समाचार पहुँचा सभी घंटियाँ न एक दिन का उपवास किया। जेल अधिकारियों को इसकी बानोकान खबर तक नहीं हुई।

## जन जागृति और राजक्षमा

भारत में नेशनल यूनियन सावरकर आदि की रिहाई के लिए यत्न कर रही

थी। इसके साथ ही बहू भारत में प्रचार माध्यमों में जन-जागृति अभियान भी चला रही थी। उनके इस अभियान का बहुत प्रभाव दिखायी देने लगा था। पयवेक्षकों का कहना था कि राजनीति के इतिहास में यह जन जागृति अभियान एक आश्चर्य की बात थी। नारायण सावरकर इसमें बहुत सक्रिय रूप से भाग ले रहे थे।

जब आंदोलन ने जड़ पकड़ ली तो 'नेशनल यूनियन' ने हस्ताक्षर अभियान आरम्भ किया। ७० हजार व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से युक्त एक ज्ञापन तैयार किया गया जिसमें क्रान्तिकारियों सहित सभी राजनीतिक वर्गों को बारा मुक्त करने की मांग की गयी। इस ज्ञापन में सावरकर बंगुआ की रिहाई पर विशेष बल दिया गया था।

सावरकर को जब इस ज्ञापन का समाचार मिला तो उन्होंने नेशनल यूनिन के बंगुआ को कृतज्ञता का पत्र लिखा और कहा कि उनका प्रयत्न अभी न अभी अवश्य फलीभूत होगा। इसका यह लाभ तो स्वरित हुआ कि प्रत्येक देशवासी की दृष्टि में राजबंदियों की छवि तथा प्रतिष्ठा उभर कर आ गयी।

और वैसे ही हुआ भी। कुछ माम वाद सरकार ने घोषणा कर दी कि प्रत्येक राजबंदी को राजक्षमा प्रदान कर कारा मुक्त कर दिया जाएगा। इस प्रकार का समाचार एक सिख बन्दी ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट करते हुए सावरकर को सुनाया, "बाबू जी। खुशी का समाचार सुनो। आज राजबंदियों की रिहाई का आदेश आ गया है। आप सब मुक्त हो गए।"

सावरकर की स्थिति विचित्र थी। वे समझते थे कि सम्भव है आदेश आ जाय। हो। किन्तु उनकी अपनी मुक्ति में अभी भी संदेह था। क्योंकि एक बार १९११ में भी एक बन्दी इसी प्रकार दौड़ता हुआ आ कर मुक्ति का समाचार दे गया था। उसे सुन कर सबने अपने अपने विस्तर तक बाँध लिए थे। उस प्रसंग को धीरे धीरे भूल ही गए थे और वे सभी लोग अभी तक कारागार में ही बँधे थे। सावरकर अपने साथी की बात पर अविश्वास भी नहीं कर सके।

सावरकर ने उससे पूछा, "इस समाचार का आधार क्या है?"

उसने अपनी जेब से तार निकाल कर दिखा दिया। उन दिनों राजबंदियों की समाचार व्यवस्था यही उत्तम हो गयी थी। तार में लिखा था—सावजनिक शांति के समर्थक राजनीतिक बन्दी ही मुक्त होंगे।

तार पढ़कर सावरकर समझ गए कि अभी भी उन दोनों भाइयों सहित अन्य अनक उग्रवादी बंदियों को मुक्त नहीं किया जाएगा। हाँ कुछ बन्दी अवश्य मुक्त होंगे।

वही हुआ। इस राजक्षमा में सावरकर आदि उग्रवादियों को मुक्त नहीं किया गया। सर्वप्रथम पंजाब तथा गुजरात के उन सैनिकों को मुक्त किया गया था जिन्हें दंगों के आरोप में अण्डमान भेजा गया था। उसके बाद माणिकटोला बम काण्ड से सम्बंधित और पंजाब और बनारस के अभियोग के कुछ आज़म कारावास का दण्ड पाने वालों को मुक्त किया गया। उनको बिदा करते हुए सावरकर ने उनसे कहा, "आज की



मुक्ति का आनन्द सखि है। अभी तो आपको बाहर जा कर भारत माता की भुक्ति के लिए और जुझारू बन कर संघर्ष करना होगा।”

सरकार को इन राजबंदियों पर सदेह था। अतः मुक्त करते समय उनसे एक करार पत्र पर हस्ताक्षर करवाए गए। उसमें लिखा था—

“मैं आगे चल कर पुन अवधि तक न तो राजनीति में भाग लूँगा और न राज्य प्रान्ति में। यदि मुझ पर पुन राजद्रोह का आरोप सिद्ध हो जाए तो मैं आजीवन कारावास का दण्ड भुगतने को तत्पर रहूँगा।”

रिक्त स्थान पर बंदी का नाम तथा अवधि का उल्लेख किया गया था।

राजबंदियों में इस करार पत्र पर हस्ताक्षर करने अथवा न करने पर भी गरमागरम बहस हुई। मशरू रिहा होना चाहिए अथवा नहीं, इस विषय पर विचार विमर्श हुआ। सावरकर ने इस विषय में अपना मत प्रकट करते हुए शिवाजी-जयंती, शिवाजी-अफजल खाँ, गुरु गोबिंदसिंह तथा भगवान श्री कृष्ण के अनेक उदाहरण दते हुए कहा कि राष्ट्रद्रोह तथा विश्वासघात को छोड़ कर नीति के अनुसार परिस्थिति वश मुक्ति से काम लेना ही ‘राजनीति’ है। सावरकर को यह देख कर आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता हुई कि इतना कष्ट और यातनाएँ सहने के उपरान्त भी अनेक बंदी ऐसे थे जो तिल भर भी डिगने के लिए तत्पर नहीं थे। सावरकर ने अपनी पुस्तक ‘माझी जम ठेप’ में लिखा है कि उनके प्रति मेरा मस्तक नत हो गया। अंत में बहुत समझाने और तक देने पर मैं उनको हस्ताक्षर करने के लिए सहमत कर पाया था।

इन मुक्त होन वालों में भाई परमानन्द भी थे। विदा होत समय उन्होंने सावरकर से कहा था “मुक्ति होन की बारी तो आपकी थी, पर क्या करें।”

राजबंदियों की मुक्ति का समाचार मिलत ही वहाँ बैठकें आरम्भ हो गयीं और सावरकर उनको निर्देश देते कि बाहर जाने के उपरान्त उनकी रणनीति क्या होनी चाहिए। यह एक प्रकार का उनका दीक्षांत समारोह होता था।

अधिकांश राजबंदियों को बारी बारी से टोली बनाकर मुक्त कर दिया गया। अंत में सावरकर बंधुओं सहित केवल तीस व्यक्ति रह गए थे। सावरकर बंधुओं के मुक्त न किए जाने का कारण तो समझ में आता था किंतु अग २८ बन्धियों का ऐसा क्या अपराध था जो उनको मुक्त नहीं किया गया यह समझ में नहीं आया।

सावरकर बंधुओं के मुक्त न किए जाने से भारत भर में उनके प्रति सहायु भूति बढ़ती गयी। यहाँ तक कि दिल्ली की लेजिस्लेटिव कौंसिल में भी उनकी मुक्ति की माँग उठायी गयी। समाचार पत्रों में लेख प्रकाशित कर सावरकर बंधुओं के प्रति सरकार के कठोर एवं अय्यायपूर्ण रुख की निन्दा की जान लगी। यहाँ तक कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में भी सावरकर बंधुओं सहित पंजाब के बग्गा और रतन चौधरी का तुरन्त मुक्त करने की माँग का प्रस्ताव पारित किया गया।

अंत में सावरकर का भी मुक्ति मिली। किन्तु न तो कारागार से और न ही अण्डमान ॥। बसंत कोठरी से कारागार के बाहर तक जाने की मुक्ति।

सावरकर अपनी सुविधा आदि के लिए लिखा पढ़ी करते रहे। अन्त में एक रुपया मासिक वेतन पर उन्हें जेल के फोरमन के पद पर नियुक्त कर दिया गया था। यह महत्व का पद था।

## अण्डमान से विदाई

समय बीतता गया। माच १९२१ में के० वी० रगास्वामी आयरगर ने कौंसिल में एक प्रस्ताव रख कर कौंसिल के गवर्नर जनरल से प्रार्थना की कि वे सावरकर के विषय पर विचार करें। उन्होंने तक दिया कि सावरकर का गांधी के विचारों से मत-भेद रहा है। उन्होंने सरकार द्वारा प्रदत्त सुधारों के अनुसार कार्य करने का निर्णय प्रकट किया था। इस प्रस्ताव पर कौंसिल में बहुत तक वितर्क और वाद विवाद हुआ। फिर भी उन दोनों भाइयों के वहाँ से स्थानान्तरण के आदेश ही दिए गए, उन्हें मुक्त नहीं किया गया। हयातखी और नबाव सर बहराम खी ने इस प्रस्ताव का भी घोर विरोध करते हुए कहा कि सावरकर भारत के लिए खतरा हैं। उन्होंने यहाँ तक कहा कि सरकार का उन्हें मुक्त करना आग में घी डालने के समान होगा। यह सुन कर आयरगर ने कहा कि वे सावरकर के चाल चलन का उत्तरदायित्व अपने पर लेते हैं।

इससे एक मास पूर्व ही सावरकर के सीने पर से 'डी' टिकट उतार लिया गया था। सावरकर को जब अण्डमान कारागार में रहते हुए दस वष हो गए तो उन्होंने 'टिकट' प्राप्ति के लिए आवेदन किया था। यह टिकट भी उनको प्राप्त हो गया था। इस 'टिकट' का अर्थ था कि बंदी व्यक्ति स्वतंत्र रूप से अपना व्यवसाय कर सके तथा उपनिवेश में अपना घर बसा कर वहाँ सपरिवार रह सके। अन्या को तो यह सुविधा तीन वष बाद ही मिल गयी थी, किन्तु सावरकर बंधुओं को यह सुविधा दस वष बाद, वह भी अनेक प्रयत्नों की लिखा-पढी करने के बाद प्राप्त हुई थी। वह भी उनको बाहर जा कर रहने की अनुमति थी। यह एक प्रकार से टिकट का उपहास मात्र ही था। अर्थात् जेल पर नमक छिड़कना।

सावरकर निराश थे। दिन प्रति दिन कारागार के दिन घटते जाते थे और उमी प्रकार दिन प्रति दिन उनके जीवन के दिन भी कम होत जाते थे।

तब अचानक एक दिन कुछ अप्रत्याशित मा हो गया।

नित्य की भाँति सायंकाल की घटी बजने पर सावरकर ने तल गादाम का ताला लगाया, बड़े जमादार को चाबी सौंपी और स्वयं अपनी कोठरी की ओर चल पड़े। कोठरी तक पहुँच भी नहीं पाए थे कि तभी एक बाहर ने आ कर उनको एक पत्र देने हुए कहा, 'बाबू, अच्छी खबर है। आप लोगों को भारत भेजा रहा है।'

सावरकर ने पढ़ा, "आयुक्त के कार्यालय में आज भारत सरकार का आदेश आया है कि 'सावरकर बंधुओं' को भारत वापस भेज दिया जाए। बम्बई सरकार ने उन्हें बुलाया है।"



एक समाधान भी था कि ग्यारह वप पूव इस कारागार में पाव रखते ही हिंदू वदियों को एकता की जो दीक्षा उन्होंने दी थी, आज उमी कारागार से बाहर पग रखते समय अपने साथी वधुओं के समक्ष भी उनके मुख से वही शब्द निकले थे।

सावरकर अपने ज्येष्ठ वधु के विषय में निरन्तर चिंतित थे। किंतु जब वे कारागार के विकराल लौह द्वार के समीप पहुँचे तो अपने ज्येष्ठ वधु को भी वहाँ पर खड़ा पाया। जेलर ने उन दोनों को भारत से जान वाले सिपाहियों को सँभा और कहा, "वेडियाँ निकाल दो, इनकी आवश्यकता नहीं है।" दोनों की वेडियाँ निकाल दी गईं।

विशाल लौह कपाट खुले। जिन कपाटों के खुलने पर सावरकर ने ११ वप पूव कारागार के भीतर पग रखा था, आज उन्हीं कपाटों के माध्यम से कारागार से बाहर पग रख रहे थे। भीतर प्रविष्ट होते समय उन्हें कल्पना तक नहीं थी कि अब इससे जीवित बाहर निकल भी पाएँगे, किंतु आज दोनों भाई जीवित बाहर निकल रहे थे।

जब उम विकराल लौह द्वार से बाहर निकले तब सावरकर को विश्वास हुआ कि वे जीवित रूप से अण्डमान से मुक्त हो गए हैं। उस पर अपने मन में उठने वाले विचारों को सावरकर ने यों लिपिबद्ध किया है—'बाबा! यह इतनी सी लाहे की देहरी, जीवन-मृत्यु की सीमा रखा है। मृत्यु की सीमा से जीवन की सीमा में उस वास्तविक भ्रम की देहरी पार करके पैर रखा ही था कि मुख्य द्वार के बाहर भीड़ दिखायी पड़ी। अधिकारियों ने भीड़ पर नियंत्रण के लिए व्यवस्था की हुई थी। अदर के बंदी भी हमें द्वार तक छोड़ने के लिए आए थे। उनकी आँखाँ में तरते हुए आसू हमें स्पष्ट दिखायी दे रहे थे। कुछ मुनक भी रहे थे।"

द्वार से आगे बढ़ कर दोनों भाई सिपाहियों के पहरे में समुद्र की ओर चलने ही लगे थे कि कुशाया पाटिल नामक एक बंदी जमादार अधिकारी सहसा सामने आ गया। समीप आते ही छिपा कर रखा हुआ पुष्पहार उसने सावरकर के गले में डाल दिया। पहरेदार हो हल्का कर ही रहे थे कि तब तक वह सावरकर के चरणों में चुंका, नमस्कार किया सजल नयनों से उनकी देखा और उनकी जय जयकार करता हुआ वहाँ से आगे बढ़ गया।

### पुनः हथकड़ी

विधि का कैसा विरोधाभास है कि उधर वह बंदी सावरकर के गले में पुष्प माला डाल रहा था और इधर सिपाही सावरकर के हाथों में हथकड़ियाँ पहना रहे थे। पुष्पहार पहनाने वाला देशवधु, राष्ट्रभक्त बंदी प्रेम के आदर का प्रतीक था ता हथकड़ी पहनाने वाला उस सरकार का प्रतीक था जो सावरकर का नाम तक मिटा डालने के लिए कृतसकल्प थी।

समुद्र तट पर अण्डमान टापू के असह्य जन सावरकर को विदाई देने के लिए एकत्रित थे। उन्हें अपना अन्तिम संदेश देते हुए सावरकर ने कहा, "अण्डमान में ही

यह सावरकर के एक मित्र का पत्र था। जो कारागार के बाहर उपनिवेश में रहता था। इससे पहले भी ऐसी अफवाहें अनेक बार सुनने को मिली थी। इसलिए सावरकर इन बातों को सुनने के अश्वस्त हो गए थे और इससे उनके मन में किसी प्रकार की उमंग न उठना भी स्वाभाविक ही था।

सूचना भेजने वाले मित्र ने अन्त में लिखा था—‘यह समाचार पुष्ट है, मैंने अपनी आँखों से उस आदेश को देखा है।’

इस ‘पुष्ट समाचार’ की बात पढ़ कर सावरकर के मन में विचार आया कि हो सकता है कि अण्डमान उपनिवेश में उनको ‘अखिर’ की अपेक्षा भारत सरकार देश की किसी कारागार में रखते रहेंगे। उनका उपयुक्त समझती हो। और भी न जाने क्या-क्या विचार सावरकर के मन में उठते रहे। इन्हीं विचारों में उनकी रात बीती।

आठ बाल होने पर कारागार के अधिकारी ने उनसे कहा, “अपनी सभी वस्तुएँ, पुस्तकें आदि समेट लो, आपको भारत जाना है।

अधिकारी ने जब यह कहा तो सावरकर को उस समाचार का पुष्ट हो गयी। और वे समझ गए कि ‘इस कारागार’ से मुक्ति का अवसर आ गया है। यद्यपि सामान्य बन्दी तो हम मुक्ति का अभिप्राय सदा से कारा मुक्ति ही समझ रहे थे। उन्हें क्या पता था कि यह एक कारागार से दूसरी कारागार में स्थानान्तरण मात्र है। फिर भी कारागार के बन्दी तथा अण्डमान के अन्य अन्य सावरकर की इस मुक्ति से प्रसन्न थे।

मन में उठने वाली अनेक प्रकार की विचार तरंगों के साथ-साथ सावरकर ने अपनी सभी सामग्री समेटी। अपनी कुछ पुस्तकें उन्होंने वहाँ के बन्दी साधियों को भेंट कर दी और कुछ पुस्तकें उपनिवेश के अपने मित्रों को ‘उपहार’ में दे दी। शेष सब पुस्तकें उन्होंने वहाँ के पुस्तकालय को भेंट कर दी।

अंतिम दिन बाहर से निवास के लोग सावरकर से मिलने के लिए आने लगे। कारागार के अधिकारियों ने इस भेंट की छूट दे दी थी। भेंट करने वाले मित्र भाति भाति की वस्तुएँ सावरकर को भेंट करत थे। जो स्वयं नहीं आ पाए उन्होंने भी अपने साधियों के द्वारा उपहार भिजवाए थे। इस प्रकार दोपहर तक द्वार पर उपहार वस्तुआ का ढेर लग गया था। सावरकर ने वे सभी वस्तुएँ बँटिया में वितरित कर लीं।

सावरकर द्वारा जेल में गठित संस्था के लोग जब उनसे मिलने आए तो उन्होंने उनको संस्था की शपथ दिनाई—

एक देव, एक देश एक जाति ।

एक जाति एक जीव, एक भाषा ॥

सावरकर अपने मित्रों को इस प्रतिज्ञा का विस्तार से ध्याप्य समझा रहे थे कि तभी बाहर से आकर कहा, “साहब आ रहा है और आपको ले जाने वाले सिपाही भी आ रहे हैं।

सावरकर उस समय एक प्रकार से भारी मन से वहाँ से उठे। किन्तु मन को

एक समाधान भी था कि ग्यारह वष पूव इस कारागार में पाँव रखते ही हिंदू बंदियों को एकता की जो दीक्षा उन्होंने दी थी, आज उमी कारागार से बाहर पग रखते समय अपने साथी बंधुओं के समक्ष भी उनसे मुँह से वही शब्द निकले थे।

सावरकर अपने ज्येष्ठ बंधु के विषय में निरन्तर चिंता थे। किंतु जब वे कारागार के विकराल लोह द्वार के समीप पहुँचे तो अपने ज्येष्ठ बंधु को भी वहाँ पर छोड़ा पाया। जेलर ने उन दोनों को भारत से जान वाले सिपाहियों को सौंपा और कहा, “वेडियाँ निकाल दो, इनकी आवश्यकता नहीं है।” दाना की वेडियाँ निकाल दी गईं।

विशाल लोह कपाट खुले। जिन कपाटों के खुलने पर सावरकर ने ११ वष पूव कारागार के भीतर पग रखा था, आज उही कपाटों के माध्यम से कारागार से बाहर पग रख रहे थे। भीतर प्रविष्ट होत समय उन्हें कल्पना तक नहीं थी कि अब इससे जीवित बाहर निजल भी पाएँगे, किंतु आज दोनों भाई जीवित बाहर निकल रहे थे।

जब उन विकराल लोह द्वार से बाहर निकले तब सावरकर को विश्वास हुआ कि वे जीवित रूप से अण्डमान से मुक्त हो गए हैं। उस पर अपन मन में उठने वाले विचारों को सावरकर ने यों लिपिबद्ध किया है—“बाबा! यह इतनी सी लोह की देहरी, जीवन मृत्यु की सीमा रखा है। मृत्यु की सीमा से जीवन की सीमा में उस शालिस्त भर की देहरी पार करके पैर रखा ही था कि मुख्य द्वार के बाहर भीड़ दिखायी पड़ी। अधिकारियों ने भीड़ पर नियंत्रण के लिए व्यवस्था की हुई थी। आदर के बंदी भी हमें द्वार तक छोड़ने के लिए आए थे। उनकी आँखों में तरल हुए आँसू हमें स्पष्ट दिखायी दे रहे थे। कुछ सुनक भी रहे थे।”

द्वार से आगे बढ़ कर दोनों भाई सिपाहियों के पहरे में समुद्र की ओर चलने ही लगे थे कि कुशाभा पाटिल नामक एक बंदी जमादार अधिकारी सहसा सामने आ गया। समीप आत ही छिपा कर रखा हुआ पुष्पहार उसने सावरकर के गले में डाल दिया। पहरेदार हा हल्का कर ही रहे थे कि तब तक वह सावरकर के चरणों में झुँका, ममस्कार किया, सजल नयनों से उनको देखा और उनकी जय जयकार करता हुआ वहाँ से आगे बढ़ गया।

### पुनः हथकड़ी

विधि का नैसा विरोधाभास है कि उधर वह बंदी सावरकर के गले में पुष्प माला डाल रहा था और इधर सिपाही सावरकर के हाथों में हथकड़ियाँ पहना रहे थे। पुष्पहार पहनाने वाला देशबधु, राष्ट्रभक्त बंदी प्रेम के आदर का प्रतीक था तो हथकड़ी पहनाने वाला उस सरकार का प्रतीक था जो सावरकर का नाम तक मिटा डालने के लिए कृतसंकल्प थी।

समुद्र तट पर अण्डमान टापू के असंख्य जन सावरकर को विदाई देने के लिए एकत्रित थे। उन्हें अपना अन्तिम सदेश देते हुए सावरकर ने कहा, “अण्डमान में ही

रहो, कृपि करो। परस्पर विवाह करो। सनति उत्पन्न करो और हिंदू सस्कृति क विकास मे सहभागी बनो।" (माझी जम ठेप)

२ मई सन् १९२१ का दिन।

'महागजा' नामक जलपोत समुद्र के तट मे आ लगा। इसका गन्तव्य कलकत्ता था। सावरकर बंधुओं को उस पर चढ़ाया गया। जलपोत के तलघर मे बंदियों के लिए विशेष व्यवस्था की गयी थी, वही दोनों बंधुओं को भोज दिया गया। सावरकर विचार कर रहे थे कि दस वष पूव उसी पिंजडे मे बंद करके उनको अण्डमान लाया गया था। उस समय उस पिंजडे की यातनाओं की स्मृति होते ही उनका शरीर कांप उठा था।

पिंजडे के समीप जाते ही एक और सफट। पिंजडा पागलो से भरा हुआ था। अण्डमान के पागल उसी जलपोत से भारत ले जाए जा रहे थे। उन पागलों क साथ ही सावरकर बंधुओं का उस पिंजडे मे बंद कर दिया गया। पिंजडे मे जा कर देखा तो कोई हँस रहा था, कोई रो रहा था और कोई भद्दी भद्दी गामियाँ बन रहा था। उनका अधिकारी भी उही पागलो मे से चुन कर रखा हुआ था। वह एक एक करके सब की पिटाई करता था। तिल घरने को स्थान न होने पर भी सावरकर बंधुओं को उसमे ठेक दिया गया था।

सावरकर बंधुओं के लिए उममे रहना दूधर हो गया। बड़े भाई को घसे भी मयरीग था। सावरकर ने अनेक बार अधिकारियों से आग्रह किया कि उनके लिए कोई अलग व्यवस्था की जाए। बहुत कहने सुना पर और उस जलपोत मे यात्रा कर रहे अन्य यात्रियों के बहुत आग्रह करन पर किसी प्रकार पिंजरे के बाहर एक कोने मे दोनों बंधुओं को स्थान दिया गया। किंतु वहाँ वही से भी वायु के प्रवेश के लिए कोई प्रावधान ही नहीं था।

ढकैतो, हृत्पारा, चीरो आदि के लिए तो जलयात्रा के ऊपर व्यवस्था की गयी थी परंतु सावरकर बंधुओं को इस प्रकार से प्रताड़ित किया जा रहा था। इसके लिए जब प्रायना पत्र दिया गया तो फिर किसी प्रकार दूसरे दिन से तलघर मे ऊपरी ढक से घेली द्वारा दो बार शुद्ध वायु छोड़ा की व्यवस्था की गयी, किंतु स्थान फिर भी नहीं बदला गया। हाँ, आधा घण्टा पहले मे डेक पर ले जा कर बैठने की अनुमति प्राप्त हो गयी। उस समय उस पोत के अनेक यात्री सावरकर के पास आ कर उनसे वार्तालाप करत थे। भारतीय तथा योरोपियन, दोनों ही प्रकार के यात्रियों की उनके प्रति महानुभूति थी। एक योरोपियन यात्री ने तो उनको थोमस कैंपमिस की पुस्तक 'इमिटेशन ऑफ नाइस्ट' भेंट भी की थी। यह सावरकर की मनवाही पुस्तक थी।

इस प्रकार यह जल-यात्रा सुख और दुःख दोनों से भरी हुई बीत रही थी। १४ वर्ष बाद दोनों बंधु पहली बार रात को एक साथ सोये थे। उस दिन ज्येष्ठ बंधु ने अपन स्वास्थ्य से लेकर के अन्य भी अनेक बातें सावरकर को बतायीं। दिगंत १४ वर्षों का उनका व्यक्तिगत जीवन तथा सामाजिक जीवन किस प्रकार व्यतीत हुआ,

अभिनव भारत की क्या गतिविधियाँ रही आदि सब बातें बड़े भाई ने छोटे भाई को विस्तार से सुनायी ।

‘महाराजा’ पर आरुढ़ हुए पाँच दिन बीत रहे थे । उस दिन जब सावरकर डेक पर हवाखोरी के लिए गए तो सामने तट दिखायी दिया । समीप खड़े व्यक्ति ने कहा, ‘भारत का तट आ गया है ।’

सावरकर धौंके ‘भारत का तट ?’ उन्होंने मुँह कर अपने भाई से कहा, ‘बाबा ! यह देखो, भारत । हमारी भारत माता ।’ सावरकर के मुख से काव्य फूट पड़ा—

“नील सिन्धु जल धीत अरणतल ।”

दोनो बंधुओं ने भारत माता को नमन किया और बोल उठे—

“स्वातन्त्र्य लक्ष्मी की जय, वन्दे मातरम् ।”





## आकाश से खजूर पर

### अलीपुर कारागार

‘महाराजा’ जनपोत ज्यो ही ‘पत्तन’ पर दूरा कि सावरकर बंधुओं को उतार कर रिना एव क्षण का भी विनम्र किए सीधे अलीपुर कारागार में ले जाया गया। अलीपुर कारागार में भी विकरान लौहद्वार की पार करते ही दो बाहर दो भादया का विपरीत दिशा में ले गए। एक को इधर वाले बाड़ की गली में मोड़ा तो दूसरे को उधर वाले बाड़ की गली में मोड़ दिया। सावरकर का दूर तक अपने ज्यष्ठ बंधु को खीसा और कराहने की ध्वनि सुनाई देती रही।

बाड़ में ले जाकर सावरकर को एक काठरी में बंद कर दिया। सावरकर पर जो पहरेदार था उस पर एक बाहर भी था। उसे १४ वर्ष काले पानी का दण्ड मिला था, परंतु तीन वर्षों में ही वह सुविधा प्राप्त कर यहाँ अलीपुर कारागार में बाहर बन कर स्वाधीनता का उपभोग कर रहा था। परंतु जण्डमान में जो राजबंदी थे, उनको दस वर्षों में एक बार भी कारागार से बाहर नहीं निकाला गया था। सरकार की दृष्टि में अपराधिया और राष्ट्रभक्ता में यही अंतर था।

दिन बीत गया, शाम हा गयी। सावरकर कोठरी के सीक्चे पकड़े छड़े थे कि एक सिपाही कोठरी के पास आ कर उनसे बात करने लगा। उसके चण्डूछाने की गप भी विचित्र थी। कहने लगा, “अब तो बस एक दो मास में ही स्वराज मिलने वाला है। महात्मा गांधी नाम का एक योगवली अब अयेजा के विरुद्ध भेदान में उतर गया है। अयेजा की उससे सामने एक न चलेगी। क्योंकि गांधी पर तो बंदूक की गोली का भी कोई प्रभाव नहीं होता। उसे कई बार जेल में डाला गया किंतु वह जादू से जेल में गायब हो गया। कभी नहीं दियावी देता है तो कभी पलभर में किसी दूसरे स्थान पर।” (मागो जम ठप)

एक अन्य स्थान पर ‘मागो जम ठप’ में सावरकर ने वहाँ के बाइनों, बंदियों तथा सिपाहियों में उनके अपने विषय में बनी धारणाओं का बड़ा मनोरंजन बनाने

किया है—“मेरे समीप की कोठरी में एक चीनी युवक बंदी था। उसको मादक द्रव्यों तथा कोकीन आदि की बिक्री के अपराध में दण्ड दिया गया था। वह दो दिन बाद ही मुक्त होने वाला था। वह प्रसन्नता से नाच उठता था। उससे जब सावरकर की बात हुई तो उसको चीन के आन्तिकारी नेता सनयात सेन का नाम विदित था। बातचीत के मध्य जब भारतीय आन्तिकारियों का उल्लेख आया तो उसने कहा उसने ‘सावरकर’ का नाम सुन रखा है। उसे जब बताया गया कि ‘मैं सावरकर हूँ।’ तो वह चौंक उठा और मेरी बात असत्य मानने लगा।

“वह मुझे महान योद्धा मान कर अपने मन में भाति भाति की कल्पनाएँ किए हुए था। अपने मन के उस ‘महान’ व्यक्ति को साधारण मनुष्य के रूप में कोठरी में बंद देखकर कदाचित्त उसे आघात लगा हो। क्या कि उसने तुरन्त पूछा, “क्या आपके शरीर की बल्लूक की गोली क्षति पहुँचा सकती है?”

“मैंने कहा, ‘क्यों नहीं। अवश्य पहुँचा सकती है।’ मेरे उत्तर को सुन कर वह निराश हुआ। क्यों कि गांधी की तरह वह मुझे भी ‘योगी’ या जादू टोने वाला समझ रहा था।

“इसी प्रकार एक अय सिपाही ने मेरे बारे में न जाने क्या-क्या धारणा बना रखी थी। उसने एक दिन मुझसे पूछा, ‘आप जहाज से कूदन के बाद कितने दिन तक समुद्र में तैरते रहे थे? मैंने उसको कहा, ‘मैं तो दस पंद्रह मिनट में ही तैर कर समुद्र तट पर पहुँच गया था।’

“इस उत्तर को सुन कर उसकी धारणा को भी धक्का लगा। यदि मैं गवॉन्ति में असत्य बोल देता, अतिशयोक्ति कर देता तो कदाचित्त मेरे प्रति उसका आदर भाव में बढ़ि हो जाती। किंतु अतिशयोक्ति अथवा असत्य बात करके आदर प्राप्त करने का अभ्यास मुझे नहीं था।”

जहाँ एक ओर इस प्रकार की अपार श्रद्धा का स्रोत बहता था, वहाँ दूसरी ओर अंग्रेज और एंग्लो इण्डियंस कुछ और ही करने में लगे थे। ज्यों ही सावरकर बंधुओं की अलीपुर जेल में लाया गया उसके तुरंत बाद कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले एंग्लो इण्डियन के समाचार पत्र “कपिटल” में डिचर नाम के एक व्यक्ति ने सावरकर बंधुओं पर आरोप लगाते हुए लिखा कि सावरकर बंधु जर्मनों से मिलकर पडयंत्र कर रहे थे। यह पत्र पढ़ कर बम्बई के प्रख्यात सोलिसिटर मैक्स मणिलाल एग्ज स्तेर ने उन पर मानहानि का अभियोग करते हुए डिचर तथा कपिटल से बिना शर्त क्षमा याचना के लिए कहा।

अलीपुर में सावरकर बंधुओं को अधिक दिन तक नहीं रखा गया। आठ दिन बाद दोनों बंधुओं को पक्क-पक्क कारागारों में भेज दिया गया। बड़े भाई बाबाराव सावरकर को वहाँ से बीजापुर और फिर साबरमती जेल भेजा। उनका स्वास्थ्य जब बहुत ही गिर गया तो मिनम्बर १९२२ में उन को कारागार से मुक्त कर दिया गया।

## स्थानान्तरण

सावरकर को जिस रेल गाड़ी से ले जाया जा रहा था मार्ग में आन वाल रेलवे स्टेशनो पर उनके दक्षना के लिए अपार भीड़ जमा हो जाती थी। लोग उनको फल, मिठाई और समाचार पत्र आदि भेंट करते थे। इससे सावरकर ने अनुमान लगाया कि किसी ने कलकत्ता से उनके अग्र ले जाने का समाचार प्रकाशित करवा दिया होगा, तभी यह भीड़ एकत्रित हो रही है। जब रेल नागपुर स्टेशन पर पहुँची तो सावरकर ने देखा कि एक व्यक्ति समाचार पत्र पढ़ रहा है, जिसमें उनकी रिहाई का समाचार बड़े बड़े अक्षरों में प्रकाशित किया गया था। इस प्रकार उस रेल से सावरकर को बम्बई पहुँचाया गया। मार्ग में नासिक स्टेशन आने से पूर्व ही उनके साथ चल रहे अधिकारी ने डिब्बे की सारी गिडकियों को बंद कर दिया था। सावरकर को तो केवल छोटे बालों की आवाज से पता चला कि नासिक स्टेशन आया है। सावरकर के मन में पूरे स्मृतियाँ उभर आईं। नासिक से उनके जीवन की अनेक स्मृतियाँ जुड़ी हुई थीं।

इसी प्रकार बम्बई भी पहुँचे। वहाँ भी जब गाड़ी से बाहर निकले तब पता चला कि बम्बई पहुँचे हैं। गाड़ी से उतरते ही तुरन्त मोटर द्वारा स्टीमर तक गए और वहाँ से किमी अगले स्थान को चल दिए। रात्रि के बाहर बजे किसी कारागार के लौह कपाट खुलने की ध्वनि हुई और उन्हें अंदर खान दिया गया। प्रातः काल सावरकर को विदित हुआ कि वह रत्नागिरि कारागार है।

## रत्नागिरि कारागार

सन् १९२१ का काल भारतीय जन जीवन में बड़े उथल-पुथल का काल रहा है। भारतीय राजनीति में उस समय तक गांधी के नेतृत्व बहुत ऊँचे चढ़ चुके थे। गांधी द्वारा समर्थित खिलाफत आन्दोलन का अन्त जघन्य मोपला आन्दोलन के रूप में हुआ था। इस मापला आन्दोलन में सहस्राधिक हिंदुओं का नरसंहार किया गया था, हिंदू सलनाओं के साथ बलात्कार की घटनाओं का ताँ बणन करना ही कठिन है। न केवल इतना, सहस्राधिक हिंदू घरों के कारण धर्मान्तरित होकर मुसलमान बन गए थे। अनेक स्थानों पर अनेक हिंदू परिवारों को जीवित ही भस्म कर दिया गया था। क्योंकि न उन्होंने इस्लाम के आगे घूटने देवे और न मुसलमानों के ही आग। अपनी सत्त्व बचाने के लिए उनकी महिलाओं ने कुँआँ और नदियों में कूद कर उनसे आत्म रक्षा की और इह जीवनपूर्ण कर दिया।

इतना सब कुछ हो गया कि तब फिर भी 'महात्मा' गांधी ने इन हत्याओं, लूटेरा और मत्ताघों को 'ईश्वर से भय खाने वाले पवित्र मुसलमान' ही कहा था।

रत्नागिरि कारागार में सावरकर खिलाफत आन्दोलन तथा सत्य की खोज करने वाले गांधीवादी विद्वानों के सम्पर्क में आए। ये सत्य की खोज करने वाले गांधीवादी यही घोर से समाचार पत्र सँभाला करते थे और सत्य भवन होने के नाते उन्हें युल में

पढ़ना चाहते थे। इसी प्रकार अवैधानिक और गुप्त रीति से वे बाहर से खाद्य सामग्री मगवाते थे और चोरी-चारी से उनको खाया करते थे। वे कहा करते थे कि स्वराज्य प्राप्ति में, जो कि जब कुछ ही महीनों की बात रह गया है, यदि सारे हिन्दुओं को भी मुसलमान बना लिया जाता है तो उनको इसकी कोई चिन्ता नहीं है। खिलाफत आन्दोलन से सम्बन्धित पठाना ने रत्नागिरि कारागार के हिन्दू बन्दिओं के साथ दगा करना चाहा था, किन्तु सावरकर द्वारा पहले ही नावधान किए जाने के कारण वे लोग बच गए थे।

रत्नागिरि पहुँच कर सावरकर के लिए फिर भोजन की समस्या उत्पन्न हो गयी। अण्डमान के अन्तिम दिनों में कुछ ठीक सा भोजन और दुग्ध मिलने के कारण सावरकर का गिरता हुआ स्वास्थ्य कुछ सुधरने लगा किन्तु रत्नागिरि में मध्याह्न के भोजन में वही ज्वार की बच्ची रोटी देख कर वे हतप्रभ रह गए। अण्डमान में सघन के बाद उनको लेखन और स्वाध्याय की सुविधा भी प्राप्त हो गयी थी, धर्म से मुक्ति मिल गयी थी। किन्तु यहाँ वह सब सुविधाएँ छिन गयीं। बारह बष पूर जेल के प्रथम दिवस पर बन्दिों का जो परिधान उनको दिया गया था, वही अब सामने था और वह बिल्ला भी जिस पर लिखा था—'रिहाई सन् १९६०'।

सावरकर का यह सब देख कर रह रह कर अपन ज्येष्ठ बन्धु का स्मरण होने लगा। सोचते थे कि उनके साथ भी यदि ऐसा ही व्यवहार किया जा रहा होगा तो वे किस प्रकार यह सब झेल पाएँगे। न जान उनको किस कारागार में रखा होगा।

रत्नागिरि आत ही सावरकर के लिए फिर उसी प्रकार क्षण क्षण बिताना दुस्तर होने लगा था। कातने के लिए उनको सूत दिया गया था किन्तु अभ्यास न होने के कारण उसे पूरा करना कठिन होता था। पुस्तकों की माँग की तो उसको ठुकरा दिया गया। इस वातावरण में सावरकर के मन में निराशा न पुनः घर कर लिया। आत्म-हत्या का विचार फिर तरंगयित होने लगा। सावरकर को लगा कि यो ही जेलों में सदते रहने से लाभ क्या।

इत विचारों में छोड़े सावरकर एक बार सहसा उठे। उस कोठरी की दीवार में ऊपर एक छेद था। उस तक किस प्रकार हाथ पहुँचाया जाए, उसकी सलाख से लटक कर बन्धन से मुक्ति पाने का उपाय सोचने लगे। वह दिन का समय था। साचा कि रात के समय यह प्रयोग ठीक रहेगा।

रात्रि हान पर चिन्तन धारा बदल गई। अण्डमान के दृश्य सामने आने लग। इन्दुमूपण से ले कर भाई परमानन्द तक जा जो देशभक्त यातनाओं से ऊब कर आत्मघात करने की सोचन लगे थे, इन्हें सावरकर ने ही तो इस पापटृत्य को कायरा का माग बता कर रोका था। इस प्रकार उह अपन संकल्प का स्मरण हुआ और उन्होंने वह विचार त्याग दिया।

उन्होंने अपनी अब तक की खण्डित काव्य धारा को पुनः प्रवाहित करने का संकल्प कर लिया। विदेश में बंदी बनाए जाने से आरम्भ कर रत्नागिरि पहुँचन तक

का सारा विवरण अपने मन में संकलित कर लिया। इस प्रकार उसको अपने मन में उतार कर उसे लिपिवद्ध करने की योजना बनाने लगे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'भाग जमठेप' की योजना उसी समय बना ली थी।

अण्डमान में रहते हुए सावरकर ने अनेक कविताओं की रचना आरम्भ की थी, किन्तु सब अपूर्ण ही थी। रत्नागिरि में उन्होंने उनको भी पूरा कर लिया। हिन्दू संगठन के लिए हिंदू शब्द की प्राचीनता तथा उसका महत्व प्रदर्शित करने वाले अग्रिम ग्रंथ 'हिन्दुत्व' की रचना भी उन्होंने उसी कारागार में की थी। उसकी पाण्डुलिपि को गुप्त रूप से बाहर भेजा गया और नागपुर से वह प्रकाशित हुई। क्योंकि सावरकर उस समय कारागार में थे। लेखक के स्थान पर उनका नाम दिया जाना सम्भव नहीं था, अतः 'मरहटा' छद्म नाम से वह प्रकाशित हुआ।

'हिन्दुत्व' में भी एक प्रकार में तहलका सा मचा दिया। स्वामी ब्रह्मानन्द ने इसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि यदि ग्रन्थों की भाँति यह पुस्तक भी हमारे दस बासिया को प्रेरित करेगी। इसी प्रकार विजय राघवाचार्य, एन० सी० बेलकर पार्सि अनेक विद्वानों ने पुस्तक की सराहना की।

सावरकर को उसकी सूचनाएँ प्राप्त होती रही। इससे उनको प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला। बहुत प्रयत्न करने पर अब उनकी कारागार में कुछ पुस्तकें भी मिलने लगी थीं। उन्होंने 'दासबाध' का पुनरेण अध्ययन किया, पुराणा का पढ़ा। इसके साथ ही अन्य अनेक ग्रन्थों का प्रणयन भी करते रहे। रत्नागिरि कारागार के काल में ही उनकी अन्य रचनाएँ—गोमातक, कमला आदि का प्रकाशन हुआ और उनका भी उसी भाँति स्वागत और सराहना हुई जिस भाँति कि हिन्दुत्व की हुई थी।

अपने ज्येष्ठ बन्धु के स्वास्थ्य के विषय में सावरकर निरंतर चिन्तित रहते थे, ऐसे में एक दिन उनकी समाचार मिला कि उनके बड़े भाई की दशा चिन्ताजनक है। उनके छोटे भाई नारायण सावरकर ने जब अपने बड़े भाई से मिलने के लिए प्रायता की तो उनसे कहा गया कि वे इस भेंट के समय खादी के वस्त्र नहान, अन्य वस्त्र पहन कर जाएँ। नारायण ने इस शर्त को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने राज्यपाल के पास इस विषय को पहुँचाया, वहाँ जाकर यह शर्त हटो तो फिर वे उनसे भेंट करने के लिए गए। बाबाराव सावरकर की स्थिति खराब थी। लिखा पढ़ी करने पर उन्हें अहमदाबाद कारागार में भेज दिया गया।

सावरकर मदा उनसे विषय में सोचते रहने थे। तभी उनको सूचना मिली कि बाबाराव सावरकर को कारामुक्त कर दिया गया है। सुनकर सावरकर को असाम प्रसन्नता हुई। किन्तु अब पता चला कि उन्हें बेहोशी की दशा में मुक्त किया गया है तो उनके दुःख की सीमा नहीं रही। बेहोशी की दशा में बाबाराव सावरकर को घर लाया गया था सरकार ने कञ्चित् उन्हें मृत्यु के किनारे लगा जानकर अत्येष्टि का ध्येय बचाने के लिए उन्हें मुक्त किया होगा।

सावरकर की मुक्ति के लिए भी समय समय पर माग उठती रहता थी।

नारायण सावरकर भी इसके लिए लिखा पढी करते रहते थे। उसी समय कांग्रेस का काकिनाडा अधिवेशन हुआ। वहाँ पर कांग्रेस अध्यक्ष ने सावरकर की मुक्ति से सम्बंधित एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो सब सम्पत्ति से स्वीकार कर लिया गया।

प्रयत्न होते रहे, किन्तु सरकार के मन में क्या था, यह कह पाना कठिन था। उन प्रयत्नों का तत्काल कोई सुपरिणाम नहीं निकला।

## यरवदा स्थानान्तरण

दो वर्ष बाद सन् १९२३ में सावरकर को रत्नागिरि से यरवदा कारागार में स्थानान्तरित कर दिया गया। यरवदा कारागार में कांग्रेसी राजनीतिक सत्याग्रहियों की संख्या बहुत अधिक थी। उन्हीं दिनों सावरकर की पता चला कि लाहौर पंडितजी में दण्ड प्राप्त करने वाले अण्डमान के कुछ बंदियों को भी यरवदा कारागार में रखा गया है। सावरकर ने उनसे मिलने का यत्न किया और अपने गुप्त प्रयत्न में वे सफल भी हो गए। उन्हें सबसे अलग वाड में रखा गया था और उन्हें अब भी उसी प्रकार की यातनाएँ दी जा रही थी।

गांधी के असहयोग आन्दोलन में बन्दी बनाकर यरवदा कारागार में रखे गए बन्धियों की क्रान्तिकारियों के विषय में बड़ी ही विवृत धारणाएँ थी। वे उन राष्ट्र-योद्धाओं को गुप्त पंडितजी, हिंस्र, हत्यारे और पापी तथा न जाने क्या-क्या समझते थे। साल छ मास साधारण कारागारों में साधारण जेल जीवन व्यतीत करने वाले ये सुविधाभोगी असहयोगी दस-दस वर्षों तक कालापानी के अमानवीय कष्टों तथा घोर यातनाओं को सहन करने वाले क्रान्तिकारियों के सम्मुख अपने त्याग का ढिंढोरा पीटते थे। न केवल इतना अपितु वे उन क्रान्तिकारियों को स्वयं से बहुत ही निम्न कोटि का भी समझते थे।

इन सुविधाभोगी असहयोगियों का अधिकांश समय तो अपन लिए जेल में सुविधा प्राप्त करने के प्रयत्न में ही बीतता था। जो कुछ बचा रहता, उस समय को ये असहयोगी क्रान्तिकारियों तथा हिंदुत्व पोषकों की निंदा में बिताया करते थे। उन्हें हिंदू संगठन का कार्य राष्ट्रघातक और हिंदू मुस्लिम एकता में बाधक दिखाई देता था। सावरकर अपने तक से उनको पराजित करत रहते थे। इसके लिए सावरकर पेड पर चढ़ जाते और दोनों ओर के बंदियों के मध्य विभिन्न विषयों पर अपना मत व्यक्त किया करते।

कालान्तर में जब सावरकर को भी गांधीवादी बन्धियों के साथ रखा गया तो फिर तो वे उनके साथ खुलकर अहिंसा, हिंदू-मुस्लिम एकता, खिलाफत आदि विषयों पर उनकी विवृत धारणाओं का खण्डन करते रहते थे। वे उनको समझाया करते थे कि केवल चरखा कातने से स्वराज्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। वे कहते थे कि खिलाफत आन्दोलन का समर्थन करके मुसलमानों की धर्माघता को बल प्राप्त होगा और यह राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध होगा। कुछ सत्याग्रहियों पर, विशेषतया युवकों पर

सावरकर के तर्कों का प्रभाव भी हुआ। वे गांधी की नीति के छोड़लेपन को समझने लगे थे।

इही दिनों यरवदा कारागार के अधिकारियों में अण्डमान कारागार के अश्री दत्त मेजर मुरे को पञ्जाबी विभाग का अध्यक्ष बनाकर स्थानान्तरित करके भेजा गया था। मेजर मुरे और सावरकर का अण्डमान के समय का परिचय था। अतः दोनों एक-दूसरे के स्वभाव की भली भाँति जानते थे।

मेजर मुरे ने यरवदा आत ही सावरकर से सम्पर्क किया और फिर उन्हें बौद्धी से बाहर निकालकर बियनीन के विन्नी बेडर पर नियुक्त कर दिया। उसने सावरकर को फौट्री के मुखौ को पढ़ाने की भी अनुमति दे दी। अण्डमान और रत्नागिरि का भाति ही सावरकर ने यरवदा जेल में भी अपना सुधार आन्दोलन चालू कर दिया। वहाँ भी पुस्तकालय की स्थापना की और पुरानी सीमक लगी पुस्तकों का हटवा कर नई-नई हिन्दी मराठी पुस्तकें भेगायी।

रत्नागिरि कारागार में रहते हुए सावरकर ने अनेक शुद्धियाँ की थी। रत्नागिरि कारागार में एक ईसाई अधिकारी को उन्होंने सपत्नीक हिन्दू धर्म में दीक्षित किया था। अब यरवदा में भी उन्होंने अपना शुद्धि आन्दोलन चालू कर दिया था। कारागार का मद्रासी डाक्टर किसी समय में ईसाई बन गया था। तदपि हिन्दुत्व के प्रति उसकी आस्था कम नहीं हुई थी। उसके मकान में राम, कृष्ण जाति के विन्नी अभी भी लग रहते थे। उसकी इसाई पत्नी ने उसे तलाक दे दिया था। वही जब सावरकर के सम्पर्क में आया तो उन्होंने उसे समझाना आरम्भ किया। परिणाम स्वरूप वह प्रत्यावर्तन के लिए मान गया तो सावरकर ने अपने भाई के नाम एक पत्र देकर उसकी बम्बई भेज दिया। वहाँ हिन्दू मिशनरी सासावटी के माध्यम से उसकी शुद्धि करवा गयी। एक ईसाई नस से उसने विवाह किया तो उसका भी शुद्ध कर लिया गया।

बम्बई से लौटकर जब वह यरवदा कारागार में आया तो सावरकर ने देखा कि वह मस्तक पर तिलक लगाए था तथा उसकी नवविवाहिता पत्नी के मांग में सिन्दूर भरा हुआ था। उसने स्वयं पूना वाले ब्राह्मणों का वाना धारण किया हुआ था। इसमें सावरकर को बड़ी प्रसन्नता हुई।

### लीयड सावरकर भेंट

सन् १९२३ में रत्नागिरि में तृतीय रत्नागिरि जिला राजनीतिक सम्मेलन आयोजित किया गया था। उसमें एक विशेष प्रस्ताव के माध्यम से सावरकर की बिना शर्त रिहाई की माँग की गयी थी। जमनालाल मेहता की अध्यक्षता में एक सावरकर मुक्ति समिति का गठन किया गया। उस समिति ने 'सावरकर को मुक्त करना क्यों आवश्यक' शीर्षक से एक पत्र भी वितरित किया था। बम्बई के भारवाडी विद्यालय में एक सभा का आयोजन किया गया और उसमें जोरदार शब्दों में सावरकर की रिहाई की माँग दोहराई गयी। विटठल भाई पटेल उस सभा की अध्यक्षता कर रहे थे।

हवा का रुख सावरकर की ओर होने लगा था। सर रफक इस्साक जो अब साठ रीडिंग कहलाता था, उस समय सदन में सावरकर के अभियोग में सरकार की ओर में सोलिसिटर का काय कर रहा था। वह इस समय भारत का गवर्नर जनरल होकर आ गया था। सर ज्याज लीयड उन दिनों बम्बई का गवर्नर था। मेजर मुरे यरवदा जेल का अधीक्षक बन गया था। ये सब सावरकर के साथ मन ही मन सहानुभूति रखने वाले थे।

मेजर मुरे ने एक दिन सावरकर से पूछा कि यदि उनको मुक्त कर दिया जाए तो फिर वे क्या करेंगे। सावरकर ने इसके उत्तर में कहा था कि जिस परिस्थिति में उनको मुक्त किया जाएगा उसके अनुसार ही वे काय करेंगे। यदि बिना शर्त मुक्त किया गया तो राजनीति में सक्रिय हो जाएंगे। यदि राजनीति में भाग लेने पर प्रतिबन्ध लगाया तो वे समाज सेवा के काय में अपना समय खपा देंगे।

उसके कुछ दिन बाद एक दिन पेट पीछा से ग्रस्त सावरकर अस्पताल में गए तो कारागार के अधिकारी ने उनसे कहा, “बम्बई के गवर्नर सर ज्याज लीयड अथ दो-तीन वरिष्ठ अधिकारियों के साथ उनसे मिलने आने वाले हैं।”

सावरकर का अण्डमान का स्मरण हो आया। वहाँ भारत सरकार के गृह सचिव सर रेगिनाल्ड नाडाव उनसे मिलने के लिए आए ता थे किन्तु उस बैठक का कोई सुपरिणाम नहीं निकला था। देखें हम बार क्या होता है।

गृह सदस्य मॉटगुमरी के साथ गवर्नर सर ज्योज लीयड सावरकर से मिलने के लिए यरवदा कारागार में आए। उनसे राजनीति से आरम्भ कर मुक्ति तक की चर्चाएँ हुईं। सावरकर ने गवर्नर को स्पष्ट शब्दों में कहा कि जब शांति और वैध माग से राष्ट्र की राजनीतिक आकांक्षाओं को पूरा करना सम्भव नहीं हो पाया तभी क्रांतिकारी माग अपना पडा था। वर्तमान बदलती परिस्थिति में यदि सुधारों ने माध्यम से, वैध माग से यह सब सम्भव होता दिखाई देगा तो हम सकटपूण माग को अपनाते की आवश्यकता क्या पड़ेगी?

यह सुनकर लीड ने उनसे प्रश्न किया कि यदि सरकार उनके इस आश्वासन पर विश्वास न करे तो क्या होगा? उसका उत्तर देते हुए सावरकर ने कहा था—

“तो कुछ कालावधि तक मैं राजनीति से अलग रहकर शिक्षा और राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रचार और प्रसार, समाज सुधार तथा हिंदू संघटन के काय में लग कर समाज की सेवा करता रहूँगा।” (माझी जन्म ठेप)

इस वार्तालाप के अन्त में गवर्नर ने सावरकर को कहा कि वे राजनीति में भाग लेने पर कुछ बातों के लिए प्रतिबन्ध लगा कर ‘स्थलबद्धता’ की शर्त पर उनकी मुक्ति का सरकार को सुझाव देंगे।

इस वार्तालाप की अवधि में गवर्नर ने सावरकर के प्रति पूरा सम्मान का व्यवहार किया और फिर उसी वातावरण में उन्हें विदा मागी।

कारागार के अधीक्षक ने भी सावरकर की मुक्ति की सिफारिश की।



लौह लीयड आदि के जाने के उपरान्त सावरकर पूषदत अपन जागति काय में जुटे रहे। नवागंतुक राजबंदियों में अनेक उरण थे, उनके पानवधन के लिए सावरकर ने इतिहास पर व्याख्यान माला का आयोजन किया। उन्होंने उनका स्वाधीनता सपना के अमर हुतात्माओं की जानकारी दी। आति के कारणों से उन्हें अवगत कराया।

यह संयोग की बात थी कि पास की कोठरी में महात्मा गांधी भी बंसी कटर में वहाँ रह रहे थे। उनके खिलाफत तथा असहयोग आंदोलन का तो सावरकर तक पूरा रीति में नित्य ही विरोध करते थे। इस अवस्था में कुछ यदियों का गांधी के पास जाकर उन्हें सावरकर के विचारों से अवगत कराना भी स्वभाविक ही था।

इन व्याख्यान माला के अंतिम दिन सावरकर ने हुतात्मा मदनलाल डांगरा के जीवन पर प्रकाश डाला। उन्होंने अभिनव भारत से सम्बंधित राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए फामी पर चढ़ाए गए वीर हुतात्माओं के विषय में तथा अपने पहले व्याख्यानों में विस्तार से बता ही दिया था। मदनलाल डांगरा के साहस और शौर्य तथा वीरचित्त कार्यों की गाथा सुन कर तो सभी राजबंसी रोमांचित हो उठे थे।

सावरकर का व्याख्यान अभी पूरा भी नहीं हुआ था कि तभी एक सार्जेंट ने आ कर बताया कि उनका कारागार के अधीक्षक ने अपने कार्यालय में बुलाया है। सावरकर वहाँ गए तो अधीक्षक ने उनको बताया कि सरकार ने उनकी मुक्ति के लिए कुछ कागजात भेजे हैं। उसने वे कागजात सावरकर को दे दिए। उन कागजों में अनेक पुराने पत्र भी थे। १९२० में सावरकर द्वारा अण्डमान से भारत सरकार को लिखा पत्र भी उसके साथ नथी था।

सावरकर ने उन कागजों को देखा। ज्योत लीयड के माथ जो वातलाप हुआ था उसके आधार पर वे कागजात तैयार किए गए थे। सावरकर ने उन्हें ध्यान से देखा और फिर अधीक्षक से कहा कि वे इसमें कुछ फेर-बदल करना चाहते हैं। अधीक्षक ने इसकी स्वीकृति प्रदान की तो सावरकर ने कुछ शब्दों में फेर बदल करके कागजात अधीक्षक का लौटा दिए।

राजबंदियों की जब यह सूचना दी गयी तो उनको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। सावरकर भी समझते थे कि अब उनकी मुक्ति की सम्भावना लगभग कायरूप में परिणत होने वाली है। फिर भी, अब तक जो प्रक्रिया चली थी, उसका ध्यान से रखते हुए सावरकर अभी भी पूणतया आस्वस्त नहीं थे। इस लिए वे अपन सहबंदियों को भी कहा करते थे कि जब तक अंतिम निर्णय नहीं हो जाता तब तक सन्न के लिए स्थान बना ही रहता है।

## शर्तें एवं मुक्ति

सावरकर को २७ दिसम्बर १९२३ को भारत सरकार की ओर से जेल के धारिया से जो 'नौ' आदि मिली थीं उन पर विचार कर तथा अपनी ओर से कुछ

फेर बदल करने के उपरांत उन्होंने वह सब बागज पत्र अधिकारियों को वापस कर दिए थे। डा० नारायण दामोदर सावरकर को सरकार की ओर से सूचना मिली कि जनवरी ६, १९२४ को उनके भाई की रिहाई होने वाली है। अतः वे अपने भाई के रत्नागिरी में निवास के लिए उनसे परामर्श करके निवास का प्रबंध करें। तदनुसार ५१ १९२४ को डाक्टर सावरकर अपने भाई से यरवदा कारागार में मिले।

सावरकर पर जो शर्तें लागू की गयी थी वे निम्न थी

अ—सावरकर रत्नागिरि जिले में ही निवास करें और बिना भारत सरकार की अनुमति के व रत्नागिरि जिले के बाहर पग नहीं रख सकेंगे। यदि कोई अत्यन्त ही आवश्यक कार्य हो तो उसके लिए भी उनको जिलाधिकारी की अनुमति से बाहर जाना होगा।

आ—बिना सरकार की स्वीकृति के वे पांच वर्ष तक निजी तथा सावजनिक तौर से किसी भी प्रकार की राजनीति में भाग नहीं लेंगे। ये पांच वर्ष पूरे होने पर यदि सरकार चाहे तो इस प्रतिबंध का नवीनीकरण कर सकती है।

सावरकर की जेल से रिहाई के आदेश में लिखा हुआ था कि कारागार के द्वार से निकलते ही वे सीधे रत्नागिरि के लिए प्रस्थान करें और रत्नागिरि पहुँचते ही वे वहाँ के जिलाधिकारी को अपने पहुँचने की सूचना दें।

५ जनवरी को भाई से भेंट होन के उपरान्त यह निश्चय हो गया कि एक दो दिन में सावरकर कारागार से मुक्त होने वाले हैं। यह तो विदित ही था कि उनकी मुक्ति सशत होगी। ५ जनवरी की रात्रि एक प्रकार से उनके लिए कारागार की अन्तिम रात्रि थी। उस दिन वर्षा हुई थी, इसलिए वातावरण में कुछ ठण्ड थी और सावरकर के पास उससे बचने के लिए पर्याप्त वस्त्र आदि नहीं थे।

६ जनवरी की प्रातः सावरकर उठे। नित्यक्रम आदि से निवृत्त हो कर अपने सह बंदियों के साथ बैठकर उन्हें हुतात्मा मदनलाल दीगरा का जीवन चरित्र सुनाने बैठ गए। कई दिन से यह चरित्र वे उनको सुनात आ रहे थे। अब यह भी अपने अन्तिम चरण पर था और जब सावरकर को विनित हुआ कि शीघ्र ही रिहाई होने वाली है तो उन्होंने उसको सक्षेप में सुनाना आरम्भ कर दिया। उस दिन बीच में ही एक अधिकारी ने आकर कहा कि वे मुक्त हो गए हैं और उनको जेल सुपरिटेंडेंट ने बुलवाया है।

उस समय तो सावरकर को सीधा सुपरिटेंडेंट के पास जाना पड़ा। और जो आवश्यक कार्यवाही करनी थी वह की। वापस जब साथी बंदियों के पास आए तो वहाँ का वातावरण स्वयं सावरकर को ही भारी सा लगन लगा। उनके अण्डमान के साथी जिन्होंने अनेक वर्ष तब उनके साथ ही कष्ट भोगे थे, साथ मिल कर दिन-और रातें बितायी थी, शिक्षा तथा हिन्दी के प्रचार में उन्हें से कच्चा मिला कर योगदान किया था, उन सबके नेत्र आँसुओं से भर रहे थे। स्वयं सावरकर का उनको अक्ला छोड़ कर जाने की बात सोच कर दुःख सा होने लगा।

सावरकर की मुक्ति की निश्चित बात सुन कर सभी वंदो वंद उनके मिलने लगे। सबके गले भरे हुए थे। सब कहत "हमें न भूलना, फिर कभी दशन देने के लिए आना" आदि आदि। उनमें से एक ने कहा, "आप हमसे पहन कातापानी आए थे ता पहले जा भी रहे हैं, इसमें भसा दुख की क्या बात है? आपकी मुक्ति का हम अपनी ही मुक्ति मानते हैं। हमसे हमारी मुक्ति का माग प्रशस्त हुआ है। अब तो मात भूमि की मुक्ति का माग भी खुलेगा ही।"

सावरकर ने कहा, "यह सच तो भगवान की कृपा पर निर्भर है। वे हम अपना वक्ष्य पूरा करने की कृपा प्रदान करें।"

इस प्रकार सबसे मिल कर और प्रत्येक में कुछ न कुछ बात करके सावरकर उनसे विदा होने लगे ता उन्होंने घोष किया—'स्वातंत्र्य लक्ष्मी की जय।' सब ने एक स्वर में उस घोष को दोहराया।

ब्रिटिशों में विदा लेकर सावरकर कार्यालय में आए तो सुपरिंटेंडेंट ने उन्हें मुक्ति का आदेश पढ़ कर सुनाया—“पाँच वर्षों तक राजनीति में भाग न लें। रत्नागिरि में ही स्थान बद्ध रहें।”

मेजर मुरे ने भी सावरकर को हार्दिक बधाई दी और उसके साथ ही यह भी कह दिया कि भविष्य में वे सतक रहें। उनसे कहा गया कि भाग में बिना कहीं दके सीधे रत्नागिरि पहुँचें।

सावरकर ने वहीं पर ब्रिटिशों के वस्त्र उतार कर रखे और घर के वस्त्र पहिनाने को प्राप्त हुए। बम्बई के डोंगरी कारागार में जो वस्त्र सन १९११ में उतार कर रखे थे जिन १४ वर्ष बाद उन वस्त्रों को पुन शरीर पर धारण किया। किंतु इस सुनिष अवधि में उनके शरीर की दशा बहुत दुबल हो गयी थी। वे वस्त्र उतार नहीं, मानो किसी अंग के हो, ऐसा लगने लगा था।

उस समय तक वहाँ पर कार्यालय के अनेक बंधु और बन्दीगण एकत्रित हो गए थे। किसी ने कह दिया, “भगवान राम की ही भांति आप भी चौदह वर्ष तक वनवास में रहें हैं।”

सावरकर उनके उस हार्दिक स्वागत से अभिभूत हो गए और उनके मुख में निकल पड़ा, “राम और मेरी अवधि की तुलना में एक अंतर है। वह अंतर मेरे मन में मंदा हो कर उत्पन्न करता रहा है। क्योंकि राम ने तो वन व्रत के उपरांत रावण का सहार करके रणक्षेत्र में विजयधी का वरण किया था जब कि मैं वनवास में गया, महान धननाई भी नहीं, पर तु रावण ता अभी भी जीवन छोड़ा हमें चुनौती दे रहा है। मैं अपना जीवन की साधकता उसी दिन समझूँगा जब इस रावण का सहार हो जाएगा। यदि इश्वर ने चाहा तो एक न एक दिन वह काय भी सम्पन्न होगा ही।” (माझी जमठेप)

डा० नारायण सावरकर आदि सावरकर के सम्बन्धी उनको लेने के लिए आ बाहर प्रार्थना कर रहे थे।

कारागार का लौह द्वार खुला और सावरकर उससे बाहर निकले। सावरकर के स्वयं के तथा अयाय जनो के बितने कठिन प्रयासों और जन आंदोलनों से उनकी मुक्ति हो पाई थी, इसे सारा जग जानता था। सावरकर अब मुक्त थे।

द्वार के बाहर निकल कर सावरकर ने मुक्त आकाश में चारों ओर दृष्टिपात किया। उन्होंने मन ही मन कहा होगा 'मैं मुक्त तो हो गया, किन्तु यह निश्चय से तो नहीं कहा जा सकता कि किसी न किसी बहाने से मुझको वापस पुन बंदी बना लिया जाएगा। मासैल्स में भी तो कुछ मिनटों के लिए मुक्त हुआ था। परन्तु वहां तो तुरन्त ही पुनरेण पिंजरे में बंद कर दिया गया था।'

यद्यपि मासैल्स की ओर आज की स्थिति में अंतर था। तब सावरकर मुक्त हुए नहीं थे अपितु उन्होंने मुक्ति के लिए स्वयं यत्न किया था। उस समय उनकी स्थिति भगीडे जैसी थी। हा, ईश्वर की कृपा होती और उनके साथी समय पर वहां पहुँच जाते तो कदाचित् वे सरकार के शिकजे से मुक्त हो जाते, भले ही फिर उनको अज्ञात वास भुगतना पड़ता, किन्तु कारागार में जो यातनाएँ उन्होंने सहनी थी वे तो नहीं सहन करनी पड़ती।

जहाँ तक देश का प्रश्न था, जिनके लिए कि सावरकर अब तक सघष कर रहे आए थे, वह सब समस्याएँ तो वैसे ही थी। जैसा कि उन्होंने कारागार के अपने साथी बंदियों से कहा था 'रावण तो अभी जीवित है।' अंग्रेज़ों का आधिपत्य भारत पर बर्बर था। मातृभूमि को मुक्त करने का सघष तो अभी भी जारी था।

सावरकर बाहर निकल कर उस कार में सवार हो गए जो उनको ल जान के लिए वहां खड़ी थी। उसके चक्के ने गति पकड़ी और उन्हें आज्ञा कारावासीय सीमा को लाघ कर जीवन की सीमाओं में पहुँचा दिया।

देश विदेश से सावरकर को बधाइयों के सदेश मिलने लगे। किसी ने उन्हें 'राष्ट्रमोक्ष' के विशेषण से अलंकृत किया तो किसी न 'वीर' अलंकरण से। इसी प्रकार अनेक अलंकरणों से उनको विभूषित किया जान लगा।

रत्नागिरि महाराष्ट्र के उत्तम नगरों में से एक नगर हो सकता है। वह वीरान और उजाड़ भी नहीं था, वहाँ लोग रहते थे और छोट बड़े, धनी निधन, सरकारी-गैरसरकारी कर्मचारी, दुकानदार, कारखानेदार, अध्यापक, डाक्टर, वकील, न्यायाधीश, जिलाधिकारी आदि-आदि सभी नागरिक तो वहाँ रहते ही थे। किन्तु सावरकर के लिए एक अपशब्द भी वहाँ माना जाता था। प्रसंगवशात् उसकी यहाँ पर चर्चा कर दें तो अभुक्त नहीं होगा।

यह कहा जाता था कि वर्मा के तृतीय युद्ध के उपरांत वर्मा के राजा महाराज शिवा को रत्नागिरि में स्थान बद्ध किया गया था और वहीं उनकी मृत्यु हो गयी थी। यह पुन जीवित रूप में अपने देश नहीं लौट पाया था।

इतना होने पर भी भारत की स्थिति अब चौदह वर्ष पूर्व जैसी नहीं रह गयी थी। देशवासियों में भी कुछ-कुछ जागृति आने लगी थी, यद्यपि गांधी के तथाकथित

अहिंसक प्रयत्न देश को पीछे धकेलने में सहायक हो रहे थे। तदपि प्राति के बीज विलुप्त नहीं हुए थे। यद्यपि तब तक जवाहरलाल नेहरू का भी नेता के रूप में उदय नहीं हुआ था। राजनीतिक मंच पर जवाहरलाल नेहरू का उदय १९२६ के अन्तिम दिन लाहौर कांग्रेस के अवसर पर हुआ था। सावरकर के कारामुक्त होने के ६ वर्ष बाद।

'गांधी के असहयोग और खिलाफत आन्दोलन के असफल होने पर सरोजिनी नायडू ने कहा था कि महात्मा गांधी को चाहिए कि वे राजनीति में दखल न दें। वे महात्मा हैं और उनको चाहिए कि जनता ने जा श्रद्धा उन पर अब तक व्यक्त की है, वे उससे सन्तुष्ट हो जाएँ।' (सौकम्याय २२ ८ १९२४)

उस समय गांधी की अपेक्षा तिलक और सी० आर० दास के विचारों को प्रमुख स्थान प्राप्त होना लगा था। किन्तु न गांधी ने, सरोजिनी नायडू के कथनानुसार अपनी उपलब्धि पर सन्तोष किया और न तिलक और दास की विचारधारा को अधिक बल मिल पाया।

ऐसी राजनीतिक स्थिति में सावरकर को कारामुक्त करके रत्नागिरि में स्थान बढ़ा दिया गया था।



## रत्नागिरि में स्थानवद्ध

### शोकत भली को लताड

पराजित और पदच्युत तथा दिवगत वर्मा का राजा धिवा को जहाँ स्थानवद्ध किया था वहाँ रत्नागिरि नगर स्थान वद्ध सावरकर का निवास स्थान बन गया। ज्येष्ठ बंधु सावरकर का स्वास्थ्य तब तक ठीक हो चुका था, उन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध भी नहीं था। अतः वे मुक्त हो कर सामाजिक कार्य करने लगे थे। उसी प्रकार सावरकर जब रत्नागिरि पहुँचे तो व भला कदम चूप रहने वाले थे। दोनों भाइयों के सम्मिलित प्रयत्न से सावरकर के रत्नागिरि पहुँचने के दो सप्ताह के भीतर वहाँ रत्नागिरि हिंदू सभा की स्थापना हो गयी।

उस समय हिंदू सभा के मुख्य उद्देश्य थे, हिन्दुओं को संगठित, एकत्रित और सुगठित करना। जिससे कि वे अपने पर होने वाले अन्याय का प्रतिकार कर सकें तथा इस प्रकार वे अपने सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आर्थिक विकास का संरक्षण कर सकें। मानवता की रक्षा में हिंदुओं का संगठित होना परमावश्यक समझा जाने लगा था।

उधर राजनीतिक जगत में भी सावरकर के स्थानवद्ध किए जाने पर असेम्बली में अनेक लोगों ने अनेक प्रकार के प्रश्न करने आरम्भ कर दिए थे। सघटनिष्ट पार्टी इसमें विशेष रुचि प्रकट कर ही थी। प्रश्नकर्ताओं ने पूछा कि क्या सरकार ने सावरकर और उनके परिवार के रहने के लिए रत्नागिरि में सब व्यवस्था भली प्रकार की है? सरकार का उत्तर नकारात्मक था।

सघटनिष्ट पार्टी ने उस वर्ष मई में शिवाजी उत्सव के अवसर पर रत्नागिरि में जगत गुरु शंकराचार्य को आमंत्रित किया था। इस अवसर से सघटनिष्ट पार्टी अपने संगठन को बलिष्ठ बनाने का साधन उठाना चाहती थी। किंतु तभी रत्नागिरि में प्लेग ने महामारी का रूप धारण कर लिया और इससे सघटनिष्ट पार्टी के कार्य में बाधा उत्पन्न हो गयी।

ऐसी स्थिति में जब सावरकर ने वहाँ से नासिक जाने की अनुमति चाही तो,

वह उनको प्राप्त हो गयी। इस प्रकार उनीस वष बाद सावरकर ने नासिक में, उस नासिक में जिसको उन्होंने १६ वष पूर्व श्रान्तिवारियों का यशस्विलक बना दिया था, पुन पदार्पण किया। नासिक में प्रविष्ट होने पर २४ द-१६२४ को समस्त महाराष्ट्र की ओर से सावरकर का स्वागत किया गया और उन्हें अपनी श्रद्धा के रूप में धली भेंट की गयी।

नासिक में सावरकर ने हिंदू समाज के उद्धार के कार्य में सहयोग देना आरम्भ कर दिया। उन्होंने अनेक महारा को आगाधानी मुसलमान बनने से रोका। इस कार्य के लिए सरकार से अनुमति ली और उन्होंने नासिक के समीप के विभिन्न नगरों का दौरा किया। खूबियादी हिंदुओं के विरोध का बावजूद उन्होंने महारों के साथ बैठ कर अनवरत चर्चा पान किया।

सावरकर स्थान-स्थान पर जाकर जागृति का निनाद करते थे। उनके भाषण सुनने के लिए दूर दूर से लोग आते थे। नासिक में इस प्रकार की उनकी गतिविधियाँ को देख कर और उनकी सभाओं में समस्त जनमग्न हो के विचार कर सरकार ने उन्हें पुन रत्नागिरि में जाने के लिए विवश कर दिया।

नवम्बर १९२४ में नासिक से रत्नागिरि जाते हुए सावरकर जब बम्बई में थे तो वहाँ शौकत अली ने उनसे भेंट की। शौकत अली ने सावरकर की देशभक्ति तथा उसके लिए किए गए प्रयत्न एवं सहे गए कष्टों के लिए उसने सावरकर की बड़ी प्रशंसा की किंतु साथ ही उसने सावरकर की हिंदू सगठन की वृत्ति को अनुचित ठहराते हुए कहा कि उन्हें यह कार्य स्थगित कर देना चाहिए। सावरकर ने उसका उसकी ही भाषा में उत्तर देते हुए कहा कि यदि वह चाहता है कि सावरकर हिंदू सगठन का विचार स्थगित कर दें तो उसको चाहिए कि वह अपना खिलाफत आन्दोलन समाप्त कर दे। इसका उत्तर देते हुए शौकत अली ने कहा कि खिलाफत आन्दोलन तो उसकी रग रग और नस नस में समाया हुआ है, वह उसको किस प्रकार समाप्त कर सकता है ?

सावरकर ने कहा कि जब तक भारत में मुसलमानों के लिए पूषक सगठन विद्यमान रहेंगे तथा उनके द्वारा धर्मांतरण का आन्दोलन जारी रहेगा, तब तक न तो हिंदू सगठन स्थगित किया जाएगा और न ही हिंदुओं द्वारा धर्मान्तरण का आन्दोलन रोका जाएगा। शौकत अली कहने लगा कि इसमें मुसलमानों में श्रेष्ठ की भावना है इसलिए वे हिंदू सगठन का विरोध कर रहे हैं। यदि आप इसको बंद नहीं करेंगे तो जो परिणाम होगा उसको भुगतने के लिए भी आपको उत्तय रहना चाहिए। सावरकर ने भी उसी तर्क में उसको उत्तर देते हुए कहा कि जिस ब्रिटिश राज्य का सूय कभी अस्त नहीं होना माना जाता है, वह ब्रिटिश राज उनको अपने पथ में विचलित नहीं कर सका तो यह थोड़े से मुसलमानों को धाकूँ लिए घूमते हैं उनकी परवाह कौन करता है ?

उसके बाद शौकत अली कहने लगा कि मुसलमानों के लिए भारत ही एक देश नहीं रह गया है। सत्तार में अनेक मुसलमान देश हैं, यदि उनके लिए अनिवार्य हो गया तो वे यह दश छोड़ कर किसी भी मुस्लिम देश में जाकर बस जाएँगे।





जब महामारी फैली थी तो सबके साथ उनको निरोधक टीके नहीं लगाए गए थे। क्यों कि जब पिछली बार उनको टीके लगाये गए थे तो उन्हें बहुत तीव्र ज्वर हो गया था। बिना टीके लगाये उनका महामारी के क्षेत्र में रहना भयावह होगा, अतः उन्हें नागर अथवा सतारा में रहने की अनुमति दी जाए। निवृत्तस्थ वेलगाम का प्रश्न नहीं उठता, क्या कि वहाँ तो वाय्रेस का अधिवेशन होने वाला था।

सरकार ने स्थानान्तरण के लिए स्पष्ट भना कर दिया। हाँ, यह कह दिया कि रत्नागिरि में व जिस स्थान पर भी रहना चाहें उसकी उनका अनुमति मिल सकती है।

सरकार ने उनको अनुमति दे दी थी कि वे उच्च न्यायालय में वकालत करने के लिए अनुमति की प्राप्ति कर सकते हैं। सावरकर ने उसके लिए आवदन किया। किन्तु बम्बई उच्च न्यायालय ने उनकी प्राप्ति को अस्वीकार कर दिया।

सावरकर के रत्नागिरि में रहते हुए देश भर के अनेक देश प्रेमी उनसे मिलने के लिए आते रहते थे। मार्च १९२५ में राष्ट्रीय स्वयं सेवक सघ के संस्थापक डाक्टर केशवराव बलीराम हेडगेवार भी उनसे भेंट करने के लिए आए थे। सावरकर की पुस्तक 'हिंदुत्व ने बहुत लोगों को उनकी विचार धारा से प्रभावित किया था। आज तक हिंदू राष्ट्रीयता और हिंदू राज्य की किसी ने पुनरेण कल्पना ही नहीं की थी। राष्ट्रीय स्वयं सेवक सघ की स्थापना से पूर्व डाक्टर हेडगेवार ने सावरकर के साथ सुदीर्घ काल तक विचार-विनिमय किया। डाक्टर हेडगेवार चाहते थे कि हिंदू युवक अपनी शक्ति देश और जाति के उत्थान के लिए समर्पित करें। इसी उद्देश्य से उन्होंने कालान्तर में राष्ट्रीय स्वयं सेवक सघ की स्थापना की थी। किन्तु जब तक सावरकर रत्नागिरि में रहे तब तक सघ की किसी भी शाखा की वहाँ स्थापना नहीं हुई थी।

शिरगांव में सावरकर पुनः रत्नागिरि आ गए। वहाँ गांधी के परम भक्त अप्पा साहू पटवर्धन ने उनका बड़ा आदर सम्मान किया। गांधी के परमभक्त होने पर भी वे सावरकर का ही अपना प्रेरक मानते थे। यद्यपि बाका साहेब कालेलकर ने पटवर्धन को सावधान कर दिया था कि कहीं वे उनके विचार प्रवाह में ही बह न जाएं। सावरकर अछूतोंद्वारा के काय में सगे हुए थे, पटवर्धन उसमें उनके सहायक थे। गांधी ने उनके इस काय की आलोचना नहीं की।

कालान्तर में सावरकर ने अपने विचारों को काय रूप देने के लिए रत्नागिरि हिंदू सभा के सघ का उपयोग किया। उस समय तब हिंदू महासभा को राजनीतिक मंच नहीं माना जाता था। उन दिनों डाक्टर एम० जी० शिंदे उनके मुख्य सहयोगियों में से थे। उनके अतिरिक्त पामुकाबा जोशी, नानल, रावबहादुर पाट-सेकर, 'सत्यशोधक' के सम्पादक दत्तोपन्त लिमये 'बलवन' के सम्पादक पद्माननराव पटवर्धन, राव साहू राजाडे, डा० बी० एन० साबन्ना काशीनाथ पत्र पाठक, जी० टी० सुबरी, आर० बी० विप्लवकर, विष्णुपन्त दामने, वामनराव चवन्, भास्कर पाटकर, अच्युतराव मामुटे, नारायणराव घाटू, हरिभाऊ गांधी, दत्तात्रय सावन्त,

आत्मारामराव साठवी, केरुजी महार आदि अनेक सज्जन उन दिनों सावरकर को सब प्रकार से सहाय्य कर रहे थे ।

## मुसलमान स्वराज्य के विरुद्ध

यह स्वाभाविक ही था कि इस प्रकार का विशुद्ध हिंदूवादी आंदोलन मुस्लिम-परस्त एवं मुस्लिम पोषक गांधीवादियों की आँख की किरकिरी बन जाए । इस लिए गांधीवादियों और मुसलमानों में इसकी यह प्रतिक्रिया होने लगी कि कहीं ये लोग मुसलमानों के विरुद्ध कोई कार्य न कर बैठें । उधर सघटनिष्ठ युवका ने भी निश्चय कर लिया था कि अपने हितों की रक्षा के लिए, अपनी जाति के उत्थान के लिए वे सब प्रकार के साधनों का सदुपयोग करेंगे । इसके लिए कुछ स्थानों पर दण्ड आदि का अभ्यास भी कराया जाने लगा था ।

मुसलमानों द्वारा मस्जिद के सामने बाजा न बजाने देने का राग १९२७ में रत्नागिरि में भी फैल गया । यद्यपि सभी योरापियन देशों में ही नहीं अपितु स्वयं टर्की में इस प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं है और न ही मस्जिद तथा अर्थात् सावजनिक स्थानों पर बाजा बजाने पर किसी को कोई आपत्ति होती है । इसी प्रकार इस्लामिक विधिविधान में कहीं भी ग्राह्यता का प्रावधान नहीं है । हज के अवसर पर मक्का मदीना में भी किसी प्रकार से गा की हत्या का कोई विधान नहीं है ।

अपनी पुस्तक 'घोटस ओन पाकिस्तान' के पृष्ठ २६७ पर डा० भीमराव अम्बेदकर ने लिखा है कि किसी भी मुस्लिम देश में मस्जिद के सामने बाजा बजाने पर प्रतिबंध नहीं है ।

रत्नागिरि के मुसलमानों ने जिलाधीश के सम्मुख प्रार्थना की कि मस्जिदों के सामने बाजा बजाने पर प्रतिबंध लगाया जाए, किंतु समझदार जिलाधीश ने अपना निणय देते हुए लिखा कि ऐसा कोई प्रावधान अब तक लागू नहीं रहा है । यह हाल ही में किसी सिरफिरे के मस्तिष्क की उपज है । अतः इस प्रार्थना पर विचार करने का कोई औचित्य नहीं है ।

मुसलमानों में इसकी बड़ी विपरीत प्रक्रिया हुई । उन्होंने बड़े-बड़े गसों पर लिखकर 'हमें स्वराज नहीं चाहिए' प्रदर्शित करना आरम्भ किया तो सघटनिष्ठ पार्टी ने कहा, अल्ला उनकी यह पुकार सुन ले तो अच्छा ही है । अथवा यदि मुसलमानों को स्वराज मिल गया तो वे कोह्लाट, मालावार और गुलबर्गा जैसे कान्डा की पुनरावृत्ति करने लग जाएंगे ।

कांग्रेस पार्टी, विशेषतया इसके नेता, समझौता और तुष्टीकरण में अंतर को समझने में सवधा असमर्थ रहे अथवा उन्होंने समझना ही नहीं चाहा । विगत तीन वर्षों में सावरकर ने इस विषय पर अनेक लेख लिखकर समाचार-पत्रों में प्रकाशित करवाये थे । उन्होंने उनमें न केवल गांधी अपितु मोतीलाल नेहरू का भी दोषी सिद्ध किया था । सावरकर ने यहाँ तक लिखा था कि गांधी हिंदुओं द्वारा परावर्तन कार्य की

तो नि दा करते है किन्तु अपन अली बंधुओ को धम परिवर्तन स रोरन का सामध्य उनम नही है । याकूब हुसन, मुहम्मद अली और शौकत असी सदा गांधी से आशीर्वाद प्राप्त करन ग् ।

इतना ही नही जब अब्दुल रशीद नामक हत्यारे ने दिल्ली मे स्वामी श्रद्धानंद की दिन दहाड़े हत्या की तो गांधी उसकी तक निंदा नही कर सका । न हत्यार की ओर न हत्या की ही । उस पडयान मे कौन-कौन सम्मिलित थे, यह गांधी बली भानि जानता था किन्तु उसने उनकी भी निंदा नही की । यहाँ तक कि मापलाओ द्वारा मालावार म किया गया नर-संहार गांधी की दष्टि म मुसलमानो का धमयुद्ध था, हिंदू की जघन्य हत्या नही । इस सम्बन्ध म गांधी ने 'यंग इण्डिया' पत्र के ४ मई १९२१ अंक मे लिखा था 'धीरे किन्तु ईश्वर स डरने वाले मोपला जो समझन थे कि व अपने धम के लिए और जिस वे धम युद्ध कहत थे, उसके लिए लड़ रह थे ।' इतना ही नही गांधी ने अफगानिस्तान के अमीर द्वारा भारत पर आक्रमण का भी समर्थन करत हुए लिखा था, 'यदि अफगानिस्तान का अमीर ब्रिटिश राज्य सरकार के विरुद्ध युद्ध का आह्वान करता है तो निश्चय ही मैं उसकी सहायता करूँगा ।'

इस पष्ठ भूमि मे माघ १९२७ म गांधी रत्नागिरि पधारे । उनके पधारन पर वहाँ के कांग्रेसी स्वाभाविक रूप स यह चाहत थे कि रत्नागिरि नगरपालिका गांधी का स्वागत और अभिनंदन करे । किन्तु सावरकर ने इस प्रकार के किसी मुखाव का स्पष्टतया और निर्भीकता से विरोध किया । १ माघ १९२७ को गांधी रत्नागिरि पधारे । कांग्रेसजनों ने सावरकर के विरुद्ध उनके कान भर दिए और प्रयत्न किया कि वे किसी भी प्रकार सावरकर से भेंट न करें । किन्तु परिस्थिति न विचित्र मोड़ लिया । नगरपालिका द्वारा किए गए अपने स्वागत के उत्तर मे गांधी ने रत्नागिरि की प्रशंसा करते हुए उस तिलक का जन्मस्थान होने से तीर्थ के रूप म चिन्तित किया और साथ ही कहा कि 'यह नगर सावरकर का शरण स्थल होने से भी प्रशंसनीय है । सावरकर को मैं लंदन से ही जानता हूँ, जिनकी देशभक्ति पर किसी का काइ सबह ही नही हो सकता । उनके बलिदानो की जितनी सराहना की जाए वह कम होया । यद्यपि हम दोनों मे मत भिन्नता है किन्तु इसका यह अभिप्राय नही कि हम दाना की परस्पर मित्रता म इससे कुछ कमो आ गयी हो ।'

सावरकर उस दिन उबर ग्रस्त थे । जब उनको गांधी के उक्त भाषण के विषय मे बताया गया तो उन्होंने गांधी को अपन स्थान पर पधारने का निमन्त्रण भेजा । सावरकर का निमन्त्रण पाकर गांधी अपने आय कार्यक्रमो को स्थगित कर उनसे मिलने के लिए आए । उनके साथ उन की धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरबा गांधी भी थी । यह समाचार फलते ही सावरकर के निवास स्थान पर भीड़ एकत्रित होने लगी ।

**गांधी सावरकर भेंट**

यह अनुमान लगाया जाता है कि गांधी जी का सावरकर के पास जाने का

मुख्य कारण यह जानना था कि सावरकर के भीतर जाति की जो ज्वाला अटारह वष पूर्व धक रही थी, यह वैसी ही है अथवा इतने दिना के कष्ट और मातना से वह बुझ गयी है।

दोना म परस्पर राजनीति पर खूब चर्चा हुई। किंतु दानो म किसी भी बात पर सहमति नहीं हो सकी। उनके बाद शुद्धि की समस्या पर विचार विमर्श हुआ। सावरकर ने गांधी से सीधा प्रश्न किया कि शुद्धि के विषय म उनके क्या विचार है? गांधी न कहा कि मैं यह नहीं समझ पा रहा कि कोई आदमी अपना धर्म छो दे। यह अच्छा नहीं है। सावरकर ने उनके कथन स अद्द सहमति जताते हुए कहा कि आज हिंदुओ म जो जातिवाद पनप रहा है वह घातक है। उस स्थिति मे यह आवश्यक हो जाना है।

गांधी ने कुछ कुछ सहमति प्रकट करत हुए कहा कि मैं उन भुमलमाना के परावर्तन के पक्ष म नहीं हूँ जिनके पूर्वजो ने सदियों पूर्व इस्लाम स्वीकार कर लिया था। मैं मनुष्य को अपने धर्म म स्थिर रहना श्रेयस्कर समझता हूँ बनिस्वत इसके कि वह किसी दूसरे धर्म को अपना ले। किसी का बलात धर्म परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए।

सावरकर ने कहा कि यदि कोई सोच-समझ कर भला बुरा विचार कर हिंदुत्व को अंगीकार करता है तो फिर इसमें हानि क्या है? हिंदू धर्म तो विचार स्वातंत्र्य का पोषक ही है। सावरकर ने यह भी कहा कि मुस्लिम नेताओ की आकांक्षा भारत को मुस्लिम राष्ट्र के रूप मे परिवर्तित करने की है, जिससे हम सदैव सतक और सावधान रहना चाहिए।

सावरकर से विदा लेत हुए गांधी के शब्द थे, “यह तो निश्चय है कि कुछ समस्याओ पर हम दोनो मे परस्पर मतभेद है। किंतु मैं समझता हूँ कि मेरे प्रयोगो के विषय मे आपको कोई आपत्ति नहीं होगी।” सावरकर ने स्पष्ट उत्तर देते हुए कहा, “आप राष्ट्र के मूल्य पर अपना प्रयाग कर रहे हैं।” उसी बीच मे मालवन तालुका कांग्रेस कमेटी के प्रधान आर० के० गवाण्डे न बीच म हस्तक्षेप करते हुए कहा, “मेरी समझ मे यह आया है कि गांधी और सावरकर बराबर हैं स्वराज के।” उसकी बात सुन कर गांधी हँस पडे।

## अछूतोद्धार और गांधी

गांधी विदा हो गए और सावरकर अपने काम म लग गए। अछूतोद्धार उनका मुख्य लक्ष्य था। उन्होंने रूढ़िवादी हिंदुओ को पग-पग पर सावधान किया, चुनौती दी और बार-बार कहा कि जब तुम ईसाई अथवा मुसलमाना को आगे बढ़ने स, सावजनिक स्थानो का उपयोग करने से, कुओ स पानी भरन मे, धार्मिक अनुष्ठान करने आदि से नहीं रोक सकते, तो फिर अछूता न क्या पाप किया है। वे म्लेच्छों से कही अधिक अच्छे हैं। जब कोई महार ईसाई अथवा मुसलमान बन जाता है तो उसको सब प्रकार

की सुविधाएँ मिलने लग जाती हैं। किन्तु जब वह महार रहता है उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देता।

सावरकर ने इस दिशा में इतना काय किया कि कालांतर में जहाँ रुढ़िवादी हिन्दू उनके स्वर में स्वर मिलान लगे यहाँ रत्नागिरि में बायरन अमेरिकन मिशन की भी अपना योरिया विस्तरा बाँध कर जाना पड़ा। किन्तु शुद्धिकृता के पुत्रियों के विवाह के प्रश्न पर उनको पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ा। इस प्रकरण में विनायक महाराज मसूरकर के साथ सावरकर ने तालमेल बठाया। मसूरकर महाराज पहले से ही शुद्धि आंदोलन में संलग्न थे। कालांतर में सावरकर ने उनके काय के साथ सहयोग करते हुए उन्हें आर्थिक सहायता भी दितवाई। किन्तु कांग्रेस का व्यवहार विरोधी ही रहा। मध्यि कांग्रेस अध्यक्ष मोहम्मद अली, याकूब हुसैन आदि जो कि अछूतों को घमस्तिरित करने में संलग्न थे, गाँधी की दृष्टि से देशभक्त मुसलमान ही थे। किन्तु सावरकर आदि का शुद्धि काय उनको फूटी आँखों भी नहीं सुहाया था। मोपला विद्रोही तो उनकी दृष्टि में प्रगतिशील और देश भक्त थे किन्तु लाला लाजपत राय और स्वामी श्रद्धानन्द को वे साम्प्रदायिक मानते थे।

इस क्षेत्र में डाक्टर अम्बेदेकर जो काय कर रहे थे सावरकर ने केवल उनकी प्रशंसा करते थे अपितु उनको यथाशक्ति सहयोग भी देते थे। अछूतों का उपनयन संस्कार कराने में, उनके मंदिर प्रवेश के सम्बन्ध में, उनके साथ सहभोज में, उनके वेद पढ़ने के अधिकार के सम्बन्ध में, सावरकर ने निरंतर अम्बेदेकर से सहयोग किया और उनके इस काय में अभिभूत होकर पूना के अछूतों के नेता श्री पी० एन० राजभोज ने सावजनिक रूप से कहा, "आरम्भ में तो मैं सावरकर जी के आंदोलन को केवल एक द्रष्टा के रूप में देख रहा था। किन्तु जब मैंने उनसे चर्चा की और स्वयं अपनी आँखा से उनके काय को देखा तो मैं उससे अभिभूत हो गया। मैं अनुभव करता हूँ कि वे राजनीति के क्षेत्र में ही नहीं अपितु सामाजिक क्षेत्र में भी उसी प्रकार की प्राप्ति लाने के लिए कृत सक्त्त हैं।"

रत्नागिरि के विठोबा मंदिर में अछूतों के प्रवेश के समय जो काय सावरकर ने किया वह न केवल सामाजिक इतिहास में स्वर्णक्षरो में उल्लेखनीय था अपितु प्रशासनिक दृष्टि से भी उसकी बड़ी सराहना की गयी। रत्नागिरि के जिलाधिकारी, जिलाधीश के साथ उस अवसर पर उपस्थित थे। जिस शांति से सब काय सम्पन्न हुआ, वह उनके लिए अत्यंत आश्चर्यजनक था। जिलाधीश सावरकर के भाषण से इतना अभिभूत हुआ कि अपना पद और स्थान भूल कर वह मंच पर चढ़ गया और बोला, "बताइए, किसी को अब कोई शका रहती है?" जिलाधीश का अभिप्राय रुढ़िवादियों को लजकारन का था। किन्तु कोई भी सामने नहीं आया।

## सबजाति सहभोज

रत्नागिरि का पवित्र पावन मंदिर सावरकर का स्मारक है। उस मंदिर के

माध्यम से उन्होंने अनेक सामाजिक कार्य सम्पन्न किए। समय-समय पर वे वहाँ सहभोज और सम्मिलित पूजा आदि कराते रहे। किन्तु उनके सम्मुख अछूतो मे अछूत-पने से एक विचित्र समस्या उत्पन्न हुई। महार भगियो के साथ बैठ कर खाने को पसंद नहीं करते थे और भगी डोर जाति के लोगों के साथ नहीं खाते थे। वे सबकों के साथ बैठकर भोजन करने के लिए लालायित रहते थे किन्तु साथी अछूतो के साथ बैठने के लिए तत्पर नहीं थे। इससे भुक्ति पाने के लिए सावरकर ने 'सबजाति विशाल सहभोज' का आयोजन किया। यह सहभोज उन दिनों के समाचार पत्रों मे बड़ी चर्चा का विषय रहा।

सावरकर के यह प्रयत्न सब शांति पूर्वक सम्पन्न होते रहे, ऐसा नहीं कहा जा सकता। समाज सुधारक का कार्य बड़ा ही कष्ट और यातनाओं भरा होता है। पीगा पण्डितों, रुढ़िवादियों, राजनेताओं, असामाजिक तत्वों की ओर से उनको समय समय पर बेतावनिया और धमकिया मिलती रही। यहाँ तक कि उनको जान से मार डालने तक की धमकिया दी जाती रही। इतना ही नहीं उनके समयका को भी बहुत कुछ झेलना पड़ा। एक उदाहरण। सावरकर के एक सहयोगी की कन्या अपनी ससुराल मे रुग्ण हो गयी। रोग बढ गया किन्तु उसकी चिकित्सा ठीक से नहीं हो पायी। कन्या के पिता ने कन्या के श्वसुर से आग्रह किया कि उसकी कन्या को उसके घर भेज दिया जाए जिससे कि वह उसकी उचित चिकित्सा करा सके। नितरज श्वसुर ने कहा कि जब तक वे सावरकर के काम से सम्बद्ध हैं तब तक उनका उनसे कोई नाता रिश्ता नहीं है और न वे अपनी पुत्रवधू को उनके पास भेजेंगे, वे सावरकर से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लें। परिणामस्वरूप चिकित्सा के अभाव मे कन्या परमलोक को पधारा गयी।

### भगतसिंह की गुप्त भेंट

सावरकर के रत्नागिरि निवास के दिनों मे ही बलिदानी वीर भगतसिंह भी उनसे भेंट करने के लिए गया था। सरदार भगतसिंह सावरकर की अनन्य कृति '१८५७ का स्वातंत्र्य मर्मर' से बहुत प्रभावित था। उन दिनों वह पुस्तक अप्राप्य थी। सरदार भगतसिंह चाहते थे कि उस ग्रन्थ का पुनर्मुद्रण हो और उसे क्रांतिकारियों को पढने के लिए दिया जाए।

इस सम्बन्ध मे पहले उन्होंने बाबाराव सावरकर से सम्पर्क स्थापित किया। सरदार भगतसिंह चाहते थे कि सावरकर से ग्रन्थ के मुद्रण की स्वीकृति लें। इस प्रकार उनके दशन भी हो जाएगे। एतदर्थ उन्होंने बाबाराव सावरकर से परिचय पत्र प्राप्त किया और १९२८ मे वे उनसे मिलने के लिए गुप्तरूप से रत्नागिरि जा पहुँचे। यह भेंट भी गुप्त रूप से ही हुयी थी। रात्रि के नौ बजे भगतसिंह उनके पाम गए।

उनके चरण स्पर्श कर सरदार भगतसिंह ने स्वयं को धन्य समझा और अनेक विषयों मे वार्तालाप करने के उपरान्त ग्रन्थ के पुनर्मुद्रण की स्वीकृति प्राप्त कर वे यहाँ से विदा हुए।

कालांतर में अमर शहीद सुखदेव सिंह भी सावरकर के दशना के लिए रत्नागिरि गए थे।

सेनापति वापट, जो कि लंदन के दिनों में सावरकर के अनन्य महायक थे, वे सावरकर में मिलने के लिए रत्नागिरि गए। इसी प्रकार ठाकुर चन्दनसिंह न भी उन दिनों सावरकर के रत्नागिरि में दशन किए। वापट तो रत्नागिरि जिला राजनीतिक सम्मेलन की अध्यक्षता करने के लिए गए थे। किंतु उन्होंने घापणा कर दी थी कि रत्नागिरि में उनका सब प्रथम काय सावरकर के दशन करना होगा। सावरकर के पास जा कर उन्हें अति प्रसन्नता हुई और तत्पश्चात् उनकी अंतिम भेंट से आरम्भ कर अद्यप्यत अपने जीवन के सारे काय सावरकर के सम्मुख गिना दिए।

## हडसन हत्या

क्रांति के इतिहास में जुलाई २२, १९३१ का एक अनन्य स्वर्णिम पृष्ठ जुड़ गया। उस दिन फर्गुसन कालेज पूना में बम्बई के गवर्नर जे० ई० वी० हडसन को वासुदेव बलवंत गोगटे ने गोली से उड़ा दिया था। इस शुभ एवं साहसिक काय को करने से पूर्व गोगटे सावरकर से भेंट करने गया था। उधर जब वापट रत्नागिरि पहुँचे तो उन्होंने राजनीतिक सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए गोगटे के काय की भरिभूरि प्रशंसा की। परिणामस्वरूप उन पर अभियोग चलाया गया और उसमें उनकी सात वर्ष कारावास का दण्ड मिला।

सितम्बर १९३१ में अधिल भारतीय गोरखा लीग के अध्यक्ष ठाकुर चन्दनसिंह राज परिवार के एक सदस्य हमचंद्र शमशेर जगद साध सावरकर को मिलने के लिए रत्नागिरि गए। हिंदू सभा द्वारा नेपाल में किए जा रहे कार्यों के परिणाम स्वरूप यह भेंट सम्भव हो पायी थी। भेंट वार्ता में सावरकर ने भारत के लिए नेपाल के और नेपाल के लिए भारत के महत्व पर प्रकाश डाला। किंतु आवश्यक तो इस बात पर होता है कि गांधी जी की कांग्रेस ने तथा स्वयं गांधी ने टर्की के लिए खिलाफत आन्दोलन का संचालन किया और चीन के व्यापक कार्रवाई के लिए दवाआ के अम्बार भेजे, कम्युनिस्ट स्पेन के लिए आन भेजने का प्रस्ताव किया। किंतु अपने निकटतम पड़ोसी देश, जिसका कि भारत के लिए विशेष महत्व है, ऐसे नेपाल की सदा उपेक्षा की।

चन्दनसिंह सावरकर के अनन्य प्रशमका में से था। उसने सावरकर के लखा का नेपाली में अनुवाद कर उन्हें अपने देश के पत्रों में प्रकाशित करवाया। 'तरुण गोरखा' और 'हिमालया टाइम्स' उन दिनों वहाँ का प्रमुख समाचार पत्र थे।

## सरकारी अकुश

ये भेंट वार्ताएँ सरकार की दृष्टि से आक्षेप नहीं रह सकती थी। अंग्रेज सरकार की दृष्टि में सावरकर का यह राजनीति में हस्तक्षेप माना जाने लगा। ठाकुर चन्दनसिंह के आने-पर पतित पावन मंदिर में एक सभा आयोजित की गयी जिसकी

अध्यक्षता सावरकर ने की थी। दो दिन बाद गृह विभाग ने सावरकर को लिखा कि पतित पावन मन्दिर में दिए गए भाषण की प्रति भेजें। उसके दो दिन बाद स्वयं जिलाधीश ने वहाँ आ कर उनसे भाषण की प्रति के लिए कहा। सावरकर ने अपने भाषण का सारांश उसको दे दिया। यद्यपि उस भाषण में कोई भी आपातजनक अंश नहीं पाया गया तदपि सावरकर को चेतावनी दी गई कि उनका स्पष्टीकरण सताप-जनक नहीं है और भविष्य में उन्होंने इस प्रकार के भाषण दिए जा यह शतनामों का उल्लंघन माना जाएगा।

ठाकुर चन्दनसिंह सावरकर से मिल कर और उनसे वार्तालाप कर तथा उनका भाषण सुन कर बहुत ही प्रभावित हुआ। किन्तु सरकारी अकुश के कारण सावरकर को फिर सीमित क्षेत्र में स्वयं को सफुचित करना पड़ा। उन्होंने शुद्धि पर बल देना आरम्भ कर दिया। यद्यपि उससे पूर्व भी आय समाज, प्रायना समाज, ब्रह्म समाज तथा आगरा आदि समाजोत्थान का कार्य करते रहे थे। सरकार को उनके कामों में कोई आपत्ति नहीं थी और न ही गांधी ने खुल कर इनका विरोध किया था। यह कदाचित् इस कारण कि उस समय वे सभी तथाकथित सुधारवादी नेता और संस्थाएँ गांधी की विचारधारा से प्रेरित होकर ही कार्य कर रहे थे। यहाँ तक कि आय समाज भी स्वामी दयानन्द का भाग छोड़ कर गांधी के भाग पर चलने लगा था। जातिवाद पर विश्वास करने वाले गांधी चाहते थे कि अछूतोंद्वारा हो जाए। यह किस प्रकार सम्भव था? गांधी ने मुल्ला-मीलानाजी द्वारा किए जा रहे धर्मांतरण पर तो कभी कोई अंगुली उठायी नहीं किन्तु सावरकर के दूर प्रयत्न का वे विरोध करते रहे।

## गांधी का विकार

समाज सुधार और अछूतोंद्वारा कार्य के अतिरिक्त सावरकर ने रत्नागिरि में रहते हुए, 'भाषा सुधार' का भी कार्य किया था। अपने 'भाषा शुद्धि आन्दोलन' के प्रचार के लिए उन्होंने भाषा शुद्धि शीपक से एक विस्तृत लेख लिखा था। जिसमें उन्होंने कहा था कि हिन्दी भाषा को शुद्ध बनाने के लिए सब प्रथम उसमें सम्मिलित उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों को बाहर निवालना होगा। मस्त्रतनिष्ठ हिन्दी ही विशुद्ध हिन्दी हो सकती है।

देवनागरी लिपि को सावरकर भारत की एकता का आधार मानते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि भारत के सब भाषा भाषी जन यदि अपनी भाषाओं को देवनागरी लिपि के माध्यम से लिखना आरम्भ कर दें तो भारत की भाषा समस्या बड़ी सरलता से सुलझ सकती है। सावरकर के इस प्रयत्न की भाव्य पुरुषोत्तमदास टण्डन ने बड़ी सराहना की और एक अवसर पर तो यह भी दिया कि मुझे इसकी प्रेरणा बीर सावरकर से ही प्राप्त हुई है।

दूसरी ओर 'हिन्दुस्तानी' के प्रेरक गांधी ने जब राम की शाहजादा दशरथ की बादशाह दशरथ, वेम सीता, मीलाना वाल्मीकि आदि सम्बोधन



आरम्भ किए तो सावरकर ने उनके इस अनुचित हस्तक्षेप पर क्षोभ व्यक्त करते हुए उनकी कड़ी आलोचना की और इसे हिन्दुत्व पर आघात बताया। यही कारण है कि पूना हिंदी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर 'हिंदुस्तानी' भाषा का प्रस्ताव पारित नहीं हो सका।

हिन्दुत्व, हिंदू पदपादशाही, घोर बंदा बरागी आदि कृतियाँ सावरकर के रत्नागिरि प्रवास काल की ही रचनायें हैं। हिंदू महा सभा के भगवा ध्वज में कृपाण, ओंकार, और कुण्डलिनी का समावेश सावरकर की प्रेरणा से हो हुआ। सावरकर जी तेरह वष तक रत्नागिरि में स्थानबद्ध हो कर रहे थे। इस अवधि में उन्होंने अछूतोद्धार, समाज सुधार भाषा सुधार आदि अनेक आन्दोलनों का सूत्रपात और उल्लयन किया।

रत्नागिरि में सावरकर से मिलने वालों से अनेक अय जनों के साथ-साथ प्रसिद्ध पत्रकार एन० सी० केसकर, डाक्टर भुजे, भाई परमानंद, बी० बी० एस० अय्यर, ज्ञानचंद्र वर्मा, शचीन्द्रनाथ सायल, नानी गोपाल, जी० बी० मावलकर, डा० महादेव पटवर्धन, डा० एस० केतकर आदि अनेक महानुभाव थे। इनमें से अधिकांश उनके पुराने साथी थे, जिनका कि उल्लेख यथा स्थान किया गया है। मावलकर आदि कुछ नये भी थे। सोशलिस्ट नेता यूमफ मेहर अली भी उनमें से थे। सावरकर उन्हें पतित पावन मंदिर में भी ले गए।

## द्विधा सृष्टि

रत्नागिरि में रहते हुए सावरकर ने अनेक ग्रंथों की रचना की। अछूत समस्या को ले कर उन्होंने एक नाटक लिखा था 'उशषाप'। इसका सबप्रथम मंचन ६ अप्रैल १९२७ को हुआ था। अहिंसा के प्रत्युत्तर में उन्होंने जो नाटक लिखा, उसका नाम है 'सयस्त खडग'। सयस्त खडग से पूर्व उन्होंने बुद्ध के जीवन पर भी एक नाटक लिखा था 'बोधिवृक्ष'। सन् १९३४ में उन्होंने एक अय नाटक लिखा 'उत्तरक्रिया'। इस नाटक में उन्होंने मराठा इतिहास के पानीपत के युद्ध के उपरांत का विवरण प्रस्तुत किया है। इसमें साथ ही उन्होंने उपवास और कविता संग्रहों की भी रचना की।

सावरकर की जा जीवित सन्तति थी, एक कन्या और एक पुत्र, उनका जन्म रत्नागिरि प्रवास के काल में ही हुआ था। उस काल में एक मजली बना भी उत्पन्न हुई थी, किंतु शशबबाल में ही उसका देहांत हो गया था।

रत्नागिरि में सावरकर की गतिविधियाँ यद्यपि जसबधानिक नहीं थीं। तदपि सरकार उनके क्रियाकलापों से वेचैन रहती थी। और वह किसी ऐसे निमित्त की खोज में रहती थी कि जिससे उनकी स्थानबद्धता की अवधि पाँच वष के उपरांत पुन पाँच वष के लिए बढ़ायी जा सके। इसके लिए वे जहाँ सावरकर के निवास और उनकी गतिविधि पर कड़ी निगाह रखते थे वहाँ तनिक भी सदेह होने पर उनकी तलाशी लेने में भी नहीं चूकते थे। इनमें से एक अवसर था 'दि इण्डियन बार ऑफ इण्डिपेंडेंस' का पुनःप्रकाशन।

इस प्रकरण मे हम उल्लेख कर आए हैं कि सरदार भगतसिंह सावरकर से भेंट करने और उनसे पुस्तक के पुनःप्रकाशन की अनुमति लेने के लिए रत्नागिरि मे आए थे। वहाँ से जाने के उपरान्त उन्होंने इस पुस्तक की दो हजार प्रतियाँ प्रकाशित की थी। जिससे कि उन पुस्तकों को क्रांतिकारियों को पढ़ाया जा सके और उसकी श्रिष्टी से क्रांतिकारियों की कुछ आर्थिक सहायता की जा सके। सरकार को भनक मिली तो वह तलाशी लेने आ गयी। सावरकर परिवार सहित घर से बाहर आए और पुलिस अधिकारी से बोले 'लीजिए हम बाहर आ गए हैं अब आप भीतर जाकर तलाशी लीजिए। किन्तु ध्यान रखिए, मैं चार बप तक स्वीटलेड याड से सघप करता रहा हूँ और उसको खुदू बनाने मे सफल रहा हूँ।'।

पुलिस को उस तलाशी मे कुछ नहीं मिला और वह अपना सा मुख लेकर लौट गयी।

एक अन्य अवसर पर महत्ता गुप्तचर विभाग के अधिकारी ने आकर तलाशी का वारण्ट दिखाया। सावरकर एक बार को तो सकपका गए किन्तु उन्होंने तलाशी के बाय मे किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं की। तलाशी के समय वे उनके साथ अवश्य खड़े रहे। तलाशी समाप्त होने के बाद जब रिपोर्ट लिखने के लिए सावरकर से कागज माँगा गया तो सावरकर के पास उस समय एक ही पेड था, यही उन्होंने अधिकारी के सम्मुख रख दिया। उस पेड के भीतर सावरकर की वह कविता थी, जो उन्होंने बलिवानी वीर सरदार भगतसिंह की प्रशंसा मे लिखी थी। किन्तु वदाचित्त अधिकारी को रिपोर्ट लिखने की ख़वरा थी, अतः उसने उसके भीतर कुछ नहीं टटोला और ऊपर के कागज पर अपनी रिपोर्ट लिख कर पड सावरकर को वापस दे दिया।

उसी अवधि मे डाक्टर नारायण राव सावरकर के सम्पादकत्व मे सावरकर ने 'श्रद्धानन्द' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ करवाया था। इसका प्रकाशन बम्बई से होता था और समय समय पर सावरकर के क्रांतिकारी विचारों से परिपूर्ण लेख तथा कविताएँ, इसमे प्रकाशित हाते रहते थे। 'मराठा' मे भी उनके लेख और कविताएँ प्रकाशित होते रहे थे।

## कांग्रेस का अध्यक्षत्व

सन १९२७ की बात है। जबलपुर मे हिन्दू महासभा का अधिवेशन होने वाला था। स्वागत समिति ने सोचा था कि सावरकर को इसका अध्यक्ष घोषित किया जाए। किन्तु उनकी स्थानबद्धता के कारण यह सम्भव नहीं हो पाया। तब एन० सी० केलकर को अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। अपने अध्यक्षीय भाषण मे उन्होंने इस बात का उल्लेख किया—'सावरकर का अध्यक्ष न बनाए जाने पर जितना दुःख आपको हुआ है, मैं स्वयं भी उसमे आपका समभागी हूँ।'।

इसी प्रकार दिसम्बर १९२७ मे दलित सघ की दिल्ली मे आयोजित सभा की अध्यक्षता करने के लिए भारत सरकार ने उनको अनुमति नहीं दी थी। इन्ही दिनों

महाराष्ट्र के एक प्रमुख कांग्रेसी नेता ने सुझाव दिया था कि सावरकर को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष निर्वाचित किया जाए और यदि सरकार उनके उसमें सम्मिलित होने की अनुमति न दे तो हमें मंच पर उनकी एक विशाल-वाय प्रतिमा स्थापित कर उनके अध्यक्षीय भाषण का पढ़ कर सुना दिया जाय। न केवल इतना अपितु भाई परमानन्द ने तो यहाँ तक सुझाव दिया कि उन्हें गोल मेज कॉन्फ्रेंस में कांग्रेस का प्रतिनिधि बना कर भेजा जाना चाहिए। इसी प्रकार हिन्दू महासभा के नेता पद्मराज जैन की इच्छा थी कि सावरकर को हिन्दुआ का प्रतिनिधि बना कर गोल मेज कॉन्फ्रेंस में भेजा जाए। किन्तु यह हिन्दुओं का दुर्भाग्य था कि उनका कोई प्रतिनिधि न तो गया और न ही बुलाया गया।

### स्वीट लैंड घट

मई १९३१ में बम्बई में श्री वामनराव चवन नामक एक युवक ने एक सैनिक अधिकारी स्वीट लैंड को माली से उठा दिया तो उस पड़यंत्र में सावरकर को बन्दी बना लिया गया। इस प्रकार दो सप्ताह तक उनको हवालात में रखा। सावरकर ने सरकार का लिखकर दिया कि उनका वामनराव चवन और गजानन दामले से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध कभी रहा ही नहीं। उनका कहना था कि वे उन सहस्रा युवकों में से हैं जिनको सामाजिक कार्यों में सक्रिय भाग लेना पड़ रहा है। यद्यपि सरकार के कानों में इससे जू तक नहीं गँगी किन्तु जब उनको इस अभियोग में सावरकर के विरुद्ध कुछ नहीं मिला तो विषय हाकर उन्हें पन्द्रह दिन बाद मुक्त कर दिया गया।

### गांधी कौन सावरकर ?

एक ओर सरकार सावरकर को स्थानचढ़ बनाए रखने के लिए बहाने खोजती रहती थी तो दूसरी ओर सावरकर के प्रशंसक उनकी मुक्ति के लिए प्रयत्न करते रहते थे। इसके लिए अनेक आवेदन और प्रार्थना की गयी और उनका कोई प्रभाव नहीं हुआ तो फिर हस्ताक्षर अभियान चलाया गया। इस प्रकार की अपील ले कर जब सावरकर के प्रशंसक गांधी के पास गए तो गांधी ने कहा, 'मैं नहीं जानता कि वह कौन सा सावरकर है' और पूछा कि क्या यह वही सावरकर है जिसने दि इण्डियन नॉन ऑफ इट्रिपंडेंस १८४७ लिखी है? गांधी ने कहा कि सावरकर की मुक्ति देश के हित में नहीं है।

नेहरू इससे एक पग और आगे बढ़ गया। ऐसा सुना गया है कि हस्ताक्षर करने की तो बात ही दूर उसने 'सावरकर मुक्ति प्रतिवेदन' नामक कागज के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। सावरकर से गांधी और नेहरू इतने भयभीत रहते थे।

### स्थान चढ़ता से मुक्ति

अपने ध्येय के प्रति सावरकर कितने निष्ठावान थे, इसका एक उदाहरण रत्नागिरि में देखने को मिला था। सावरकर चितपावन ब्राह्मण थे, इसलिए 'चितपावन

विद्यार्थी सहायक सघ' के अधिकारी एक बार सावरकर के पास गए और उनसे कहा कि वे सघ के वार्षिकोत्सव को सम्बोधित करें। सावरकर ने स्पष्ट अस्वीकार करते हुए कहा कि जो सस्था किसी जाति विशेष के लिए ही बनायी गयी हो वे उमम भाग नहीं ले सकते। हाँ यदि वे अपनी सस्था का नाम बदल कर केवल 'विद्यार्थी सहायक सघ' कर दें और तदनुसार अपने सविधान में भी संशोधन करें तो वे उसमें सम्मिलित हो सकते हैं।

सावरकर के इस सुझाव का प्रभाव हुआ और सघ ने अपना नाम और विधान बदला। इस प्रकार सावरकर मानव धर्म के उन्मायक थे। वे वास्तविकता पर विश्वास करते थे, धोखे आदर्शों पर नहीं।

सन् १९३७ में श्री जमनादास मेहता और श्री धनजीशा कूपर को सरकार द्वारा मंत्रिमण्डल में सम्मिलित करने का प्रस्ताव आया तो उन दोनों ने शर्त रखी कि अपने मंत्रिमण्डल में सम्मिलित होते ही वे जो प्रयत्न करेगें, वह होगा वीर सावरकर की ससम्मान और बिना शर्त स्थानबद्धता से मुक्ति। सरकार ने उनकी शर्त को स्वीकार किया और इस प्रकार १० मई १९३७ को सावरकर की रत्नागिरि की स्थानबद्धता से मुक्ति हुई।

## मुक्ति के अनन्तर

### गांधी नि शब्द

सावरकर की स्थानबद्धता से मुक्ति का समाचार जगल की आग की भाँति समस्त दश में प्रसारित हो गया। इससे सभी हिन्दुत्ववादी भारत भक्ता को असीम प्रसन्नता हुई। सब श्री एन० सी० केलकर, भाई परमानन्द, डाक्टर मुजे और अणे ने अपने अपने वक्तव्यों में इसको राष्ट्रीयता की विजय बताया और आशा व्यक्त की कि इससे हिन्दू राष्ट्र के उत्थान में प्रगति होगी। कांग्रेस उच्चाधिकारियों की प्रतिक्रिया भी स्मरणीय थी। पण्डित नेहरू ने सावरकर की रिहाई का स्वागत किया। राजगोपालाचारी ने सावरकर की रिहाई पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए उन्हें वीरता, देशभक्ति साहस, धैर्य और शीघ्र का प्रतीक बताया। देशगौरव सुभाषचन्द्र बोस ने उनकी रिहाई का स्वागत करते हुए उन्हें कांग्रेस में सम्मिलित होकर राष्ट्रीय आन्दोलन को सद्गुण करने के लिये आमन्त्रित किया। उन्होंने कहा कि उज्ज्वल भविष्य सावरकर की प्रतीक्षा कर रहा है। रेडिकल पार्टी के नेता एम० एन० राय ने सावरकर की रिहाई का स्वागत करते हुए आशा व्यक्त की कि भविष्य में सावरकर अपने ही ढंग और विचारों से भारत की प्रगति के लिये पुनः प्रवृत्त हो जायेंगे।

सावरकर की स्थानबद्धता से मुक्ति पर जिस एक नेता ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की वह महात्मा गांधी थे। वे मौन ही रहे।

इसी प्रकार जो वट्टर गांधीवादी कांग्रेसी थे उन्होंने भी इस विषय में कोई उत्साह नहीं दिखाया। मानो किसी आघात से वे सहम से गये हों। कांग्रेस के वे नेता भलीभाँति जानते थे कि सावरकर उस धातु के नहीं बने हैं, जिसको जब चाहा और जस चाहा तोड़ मरोड़कर अपनी इच्छानुसार ढाल लो। और वे यह भी भलीभाँति जानते थे कि विपरीत इसके, यदि सावरकर ने कांग्रेस का नेतृत्व सम्भाल लिया तो, वे उन सभी को एक झटके में झुका कर अपनी राह निष्पष्ट कर देंगे। उनका मोहक व्यक्तित्व, प्रबलमान भाषण पटुता तथा प्रभावी एवं प्रखर राजनीतिज्ञता इस

प्रकार के कांग्रेसियों के लिये उनके अपने अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगाने वाला था।

जिस व्यक्ति न अपने वीरतापूर्ण कृत्यों से स्वयं इतिहास का निर्माण किया हो, राजनीतिक विचारों का जो स्वयं प्रेरक रहा हो, जो विश्वविख्यात आन्तिकारी दल का निर्विवाद नेता रहा हो, ऐसा व्यक्ति अपनी सफलता के लिये अपने सिद्धान्तों की बलि चढ़ा दे और इस प्रकार अपने आन्तिकारी बलिदानों साधियों की आत्मा के साथ विश्वासघात करे, यह न सम्भव था और न सोचा जा सकता था।

## राजनीति में प्रवेश

सावरकर एकाकी अपने काम की ओर अग्रसर हुए। रत्नागिरि से उन्होंने विदा ली और यह देखने निकल पड़े कि उनकी मातृभूमि की आत्मा का स्फुरण किस दशा में विद्यमान है। स्वतन्त्राधिकार की चिनमारी घघक रही है अथवा कि बुझ गई है। उन्होंने कोल्हापुर में शिवाजी की गद्दी को श्रद्धा सहित प्रणाम किया और भारतीय राजनीति में अपने प्रवेश की प्रबल शब्दों में घोषणा की। यही वह स्थान था जहाँ पर सावरकर ने घोषणा की कि हिन्दू राज्य ही शक्ति के केन्द्र बन सकते हैं। पण्डरपुर जाकर उन्होंने महाराष्ट्र के महासन्त को श्रद्धा सुमन अर्पित किये।

मीरज वह स्थान था जहाँ से उन्होंने कांग्रेस की घञ्जिया उड़ानी आरम्भ की। उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त में मुसलमान गुण्डा ने जब एक हिन्दू कन्या का अपहरण कर लिया तो केन्द्रीय विधान सभा में विद्यमान कांग्रेसी नेताओं के सम्मुख इसकी गुहार पुकार की गई। उसको छुड़ाने के लिये कोई चारा जोई करने की अपेक्षा उन नपुंसकों ने सावजनिक रूप से बड़ी निलज्जता से घोषणा की कि यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं, केवल मनुष्य की शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति की बात है।

सावरकर ने इस विषय पर कांग्रेस नीति और उसके नेताओं की कटु और प्रमादी शब्दों में आलोचना करके उन पर सीधा और तीव्र प्रहार किया। परिणाम स्वरूप, अपने अभ्यास के अनुसार कांग्रेसियों ने सावरकर के इस वक्तव्य को अनेक भाँति तोड़ा-भरोठा, उसके विरोध में बहुत कुछ कहा, अपनी सफाई भी दी। इतने से भी जब उनको चैन प्राप्त नहीं हुआ तो उन्होंने न केवल सावरकर के स्वागत समारोहों का बहिष्कार किया अपितु उनको काले झण्डे दिखाने आरम्भ कर दिये। विरोधी के दमन का यही अहिंसक उपाय उनके राजनीतिक गुरु गांधी ने कदाचित् उनको बताया होगा।

## पूना व बम्बई में स्वागत

जब सावरकर महाराष्ट्र के राजनीतिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक गढ़ पूना में पहुँचे तो पाया कि सारा पूना नगर आदोलित हो उठा है। उनके आगमन की सूचना से नगर निवासियों में नव जीवन का संचार हो गया था। यही पर सावरकर ने हिन्दू ध्वज को लहराया था। सावरकर के नाम से ही पूना के हिन्दुओं में नवीन

जागृति का संचार होने लगा था। विगत निर्वाचनों में कांग्रेस के मिथ्या प्रचार के कारण जिन राजनीतिक कार्यकर्ताओं का हतासाह होना पड़ा था, सावरकर के पूना में प्रविष्ट हात ही उनमें प्राणा का संचार होने लगा था।

पूना के बाद सावरकर बम्बई पहुँचे। सन १९०८ के बाद उस दिन पहली बार शीनो भार एक साथ दादर स्टेशन पर परस्पर मिले थे। बाबाराव सावरकर को भी नासिक में स्थानबद्ध किया हुआ था और उनका भी उसी सप्ताह वहाँ से मुक्त किया था। सावरकर के स्वागत में बम्बई निवासियों ने बोरी बंदर में गिरगाव तक एक शोभायात्रा का आयोजन किया था। तदनंतर कृष्णा सिनमा हॉल में उनका नागरिक अभिनंदन और स्वागत किया गया। इस सभा को अयो के अतिरिक्त सबश्री के० एफ० नरीमन, एम० एन० राय तथा एस० के० पाटिल ने सम्बोधित करत हुए सावरकर के त्याग, तपस्या और बलिदान की प्रशंसा की। एम० एन० राय ने तो यहाँ तक कहा कि सावरकर वे महान् बट वृक्ष हैं जिसकी हम सब छोटी छोटी शाखाएँ जसी हैं।

## बम्बई स्थायी निवास

सावरकर ने बम्बई को अपना स्थायी निवास बनाया।

बम्बई में रहते हुए सावरकर समय-समय पर विभिन्न नगरों में जा-जाकर अपना प्रचार कार्य करत रहे। इसके साथ ही उन्होंने लेखन कार्य को भी बड़ी तीव्र गति से आरम्भ किया। उनकी लेखनी में वास्टेयर का व्यय और लूथर का तेज और प्रवाह पाया जाता था। जिस प्रकार वास्टेयर और लूथर ने रुढ़िवादिता के विरुद्ध जेहाद किया था उससे भी अधिक त्वरा, तेज और प्रवाह से सावरकर ने भी अपनी लेखनी के माध्यम से एक प्रकार के आन्दोलन ही खड़ा कर दिया था। मराठी में इस प्रकार का लेखन न आज तक किसी ने किया था और हम यह कहने में तनिक भी सकोच नहीं है कि सावरकर के दिवंगत होने के बाद भी उस प्रकार की लेखनी देखने में नहीं आई।

सावरकर विज्ञान के प्रबल समर्थक थे। अनेक लोगों का अनेक बातों से सावरकर से मतभेद हो सकता है। मत भिन्नता बुद्धिमत्ता का चिह्न है। अध्रष्टा मनुष्य को अवगति की ओर प्रेरित करती है। सावरकर अनीश्वरवादी नहीं थे और न ही वे नास्तिक थे। किन्तु उनके कुछ विचार कुछ लोगों के लिये पूणतया ग्राह्य नहीं भी हो पाये तो इसमें आश्चर्य करने की बात नहीं है। सावरकर मानते थे कि बलि देने से वर्ण नहीं हो सकती तो साथ ही वे यह भी मानते थे कि सभी पशु-पक्षी मनुष्य के उपयोग के लिये रच गये हैं, फिर भले ही वह गाय ही क्यों न हो। उनकी दृष्टि में कोई भी पशु-पक्षी पूज्य नहीं था। यह कुछ ऐसी बातें हैं जिनसे सभी का सहमत होना सम्भव नहीं।

सावरकर अपने भाषणा तथा लेखों एवं निजी वार्त्तालाप के अवसर पर मशीन के उपयोग की ओर विशेष बल देते थे। विज्ञान में उनकी विशेष रुचि होना पर भी वे समग्ररूपण उसको स्वीकार करने के लिये उद्यत नहीं होत थे। उन्होंने

अनेक बार यह भी कहा कि विज्ञान स्वयं म उतना घुरा नहीं है जितना कि उसने अ-वेपक और उपयोगकर्ता उसे सिद्ध कर दत्त हैं। इसी प्रकार वे 'जो पुराना है, वह सब ठीक है' इस मत के भी विरोधी थे। वेद और स्मृति ग्रन्थों के प्रति उनकी आस्था थी किन्तु पुराणों में विकृत इतिहास का होना भी वे स्वीकार करते थे।

## लेखन की विशेषता

मावरकर और नेहरू, दोनों ने ही इतिहास पर लेखनी उठाई है। किन्तु दोनों के लेखन में अन्तर है। नेहरू ने यदि गाँधी और कांग्रेस की प्रशंसा में कलम चलाई है तो मावरकर ने राष्ट्रीयता और देश प्रेम पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। मावरकर के लेखन में मौलिकता है किन्तु नेहरू के लेखन में आज भी उल्लास ही दिखाई देता है। नेहरू की स्वयं की दृष्टि में जो घोर पुरुष थे उनकी ही उसने प्रशंसा की है और दूसरों की निंदा की है। किन्तु सावरकर ने इस प्रकार का पक्षपात नहीं किया है। उन्होंने राष्ट्र को प्रेरित किया है और असत्य का प्रत्याख्यान करने में ही अपनी लेखनी का सदुपयोग किया है।

## नेहरू का विकृत इतिहास

नेहरू और मावरकर के लेखन में और भी अनेक विसंगतियाँ हैं। नेहरू ने अपनी पुस्तक 'विश्व इतिहास की झलक' में शिवाजी के विषय में जो कुछ लिखा है वह विकृत इतिहास है। उसने शिवाजी के व्यक्तित्व को बहुत बीना कर दिया है, जबकि उस स्थिति में उन जसा घोर पुरुष जो कर सकता था वही उन्होंने किया। इसी प्रकार 'भारत की खोज' में भी उन्होंने इतिहास को सचथा विकृत कर दिया है। हिन्दुत्व की नेहरू ने सदा अवमानना की है। इसीलिए उमने महाराणा प्रताप के कार्यों की प्रशंसा नहीं की, विपरीत इसने अकबर द्वारा प्रतिपादित 'दीने इलाही' की प्रशंसा की है। क्योंकि 'दीने इलाही' ही गाँधी और नेहरू का धर्म है। न केवल इतना नेहरू ने जय-चन्द की भी प्रशंसा की है। जबकि सावरकर ने लिए वह विश्वासघाती के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं था। सावरकर की दृष्टि में महाराणा प्रताप 'राष्ट्रीय घोर पुरुष और अकबर विदेशी आक्रामक' मात्र था।

जिन्होंने सावरकर के चित्तौड़, पानीपत और १८५७ के विषय में विचार पढ़े और सुने हैं वे भलीभाँति उनका आकलन कर सकेंगे। यही पर एक बहुत बड़ा प्रश्न भी उपस्थित होता है। वह यह कि क्या ट्रेकलगर और वाटरलू के युद्ध के बिना इंग्लैंड के इतिहास को इतिहास कहा जायगा? नहीं, कभी नहीं।

दूसरा प्रश्न है—क्या किसी ने ऐसी भी कोई इतिहास पुस्तक देखी है, जिनमें 'चित्तौड़' का उल्लेख न हो? जो हाँ, देखी है और कांग्रेस सरकार ने राजीव गाँधी के प्रधानमन्त्रित्व के काल में दूरदर्शन पर उसको दिखाया भी है। वह कृष्णात इतिहास पुस्तक है 'हिस्वरवी ओफ इंडिया' अर्थात् 'भारत की खोज'। जिसके रचयिता (?)



लेखक हैं पण्डित जवाहरलाल नेहरू। बीसवीं शताब्दी के नवम दशक के उत्तरार्द्ध के भारत के प्रधानमंत्री राजीव गांधी के मातामह अर्थात् नाना। इसी कारण राजीव गांधी ने दूरदर्शन पर उसका दर्शन कराये हैं।

सावरकर ने 'माझी जमठेप' की रचना अपनी रत्नागिरि स्थानवद्धता की अवधि में ही की थी। नेहरू की आत्मकथा उसके सम्मुख वही भी नहीं टिक सकती।

## हिंदू महासभा में

बम्बई में स्थिर होन के उपरान्त सावरकर ने वहाँ के युवकों को सम्बोधित करत हुए कहा था, "जीवन में नाटक, कविता तथा साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है इसमें संदेह नहीं। किंतु जब माता मृत्यु शया पर पड़ी हो उस समय जलवायु परिवर्तन के लिये अग्रज जाना अथवा जीवन को मनोरंजन-मय बनाना महान पाप है।" उन्होंने युवकों से अपील की कि वे राष्ट्रफन बनायें आरम्भ करें।

१ अगस्त १९३७ को अपने पूना प्रवास में सावरकर ने घोषणा की कि वे तिलक की डेमोक्रेटिक स्वराज पार्टी में प्रविष्ट हो गए हैं और उसके तुरंत बाद ही उन्होंने हिंदू महासभा में प्रवेश ले लिया। जो लोग उनकी विचारधारा से परिचित थे उनको इससे किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं हुआ। उन्होंने कांग्रेस को इसलिए नहीं अपनाया क्योंकि उसने अपने प्रजासांत्रिक तथा राष्ट्रीय पक्ष से विचलित होकर अराष्ट्रीय तत्वा के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया था। स्वराजपार्टी और हिंदू महासभा दोनों ही गांधीवाद के विरुद्ध थे। किंतु जा प्रभावशाली लोग थे, पूजोपति अथवा उद्योग पति थे, वे सब उस समय गांधी की सहायता कर रहे थे।

उन्ही दिनों सावरकर के योरोप के साथी वीरेंद्र चट्टोपाध्याय योरोप में रहते हुए ही कम्युनिस्ट बन गये थे। वे रूस चले गये। किन्तु वे कम्युनिस्टों में भी द्रोहकी के विचारों के पोषक थे और उन दिनों रूस पर स्टालिन की कम्युनिस्ट पार्टी हावी थी। ऐसा माना जाता है कि स्टालिन की सरकार ने चट्टोपाध्याय को गोली से उड़ा दिया। सावरकर ही एक मात्र भारतीय नेता थे जिन्होंने इसके विरोध में वक्तव्य प्रसारित किया था और मांग की थी चट्टोपाध्याय की मृत्यु की जांच कराई जाय। किन्तु ब्रिटिश और रूसी सरकारें चुप्पी साधे रही।

हरदयाल भी उन दिनों योरोप में निर्वासित का जीवन बिता रहे थे। भारत में सर तजबहादुर सप्रू ने उनके निवासन की निलम्बित कर उन्हें भारत आने के लिए ब्रिटिश सरकार से बातचीत की और उन्हें अनुमति मिल गई। किन्तु शीघ्र ही ४ मार्च १९३९, को उनका देहान्त हो गया। इसी प्रकार तब तक मादाम कामा और पण्डित स्यामजी कृष्ण वर्मा भी परलोक सिंघार चुके थे। राणा निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहे थे। मेना-पति बापट और डाक्टर राजन कांग्रेस में प्रविष्ट हो गये थे।

अपने राजनीतिक विचारों के सम्मुख में सावरकर स्पष्टतया कहा करत थे कि वे भारत में हिंदूराज के पक्षपाती हैं। ऐसे हिंदूराज का राज, जो जागत हो, निष्ठावान

हो और कायक्षम हो। उनका उद्देश्य पूरा राजनीतिक स्वराज्य प्राप्त करना था। वे येन-केन प्रकारेण स्वराज्य प्राप्त करने के पक्षपाती थे। तीसरा उनका उद्देश्य था हिन्दुओं का पुनर्जागरण। हिन्दुत्व की सावरकर की अपनी व्याख्या थी, जो कालान्तर में सबसे सम्भव व्याख्या स्वीकार कर ली गई।

इस विचारधारा और इस मन स्थिति तथा दश की ऐसी परिस्थिति में सावरकर ने देश भ्रमण आरम्भ किया। भ्रमण का अनिप्राय मनोरञ्जनाथ भ्रमण नहीं अपितु राजनीतिक जागरण के हेतु भ्रमण था। सब प्रथम वे नासिक गये और वहीं उन्होंने अपने पुराने मित्रों के साथ विचार विमर्श किया और जनसभा को सम्बोधित किया। उन्होंने वहाँ के जक्सन उद्यान का नाम काहारे उद्यान के रूप में परिणत करने का आग्रह किया। एक अन्य जनसभा में उन्होंने छुआ छूत का जड़ मूल से समाप्त करने का आग्रह किया। वहाँ से वे सतारा तथा अण्णाय स्थानों पर जाकर अपने व्याख्यानो द्वारा हिन्दुओं में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने के लिये उन्हें उत्साहित करते रहे।

## गांधी की भर्त्सना

पूना में सावरकर ने यह झण्डा लहराया, जिसे मादाम कामा ने सर्वप्रथम जमनी में लहराया था, इसे गजाननराय केतकर बड़े प्रयत्न से भारत लाकर अब तक इसको सुरक्षित रख पाये थे। पूना से वे अन्य अनेक स्थानों पर गये और डाक्टर हेडगेवार के आग्रह पर वे वहाँ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा में भी गये। सावरकर के नागपुर पहुँचने पर उनका भव्य स्वागत किया गया। १३ दिसम्बर, १९३७ की नागपुर की विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने हिन्दुओं को सावधान किया कि वे पाकिस्तान की योजना को असफल करने के लिए सन्नद्ध हो जाय। उसी सभा में उन्होंने चेतावनी दी कि काश्मीर का हिन्दू राज्य बना रहना बड़ा कठिन हो जायेगा। यदि अंग्रेजों से अहिन्दू शक्तियों को सामंती न किया गया तो कालान्तर में उसे सम्हाल पाना कठिन होगा। काश्मीर के विषय में उनकी भविष्यवाणी 'कितनी साधक सिद्ध हुई यह आज की स्थिति से स्पष्ट है। महोदय गांधी ने महाराजा काश्मीर को परामर्श दिया था कि वे अपना राज्य मुसलमानों को सौंपकर स्वयं बनारस जाकर प्रायश्चित्त करें। सावरकर ने उसी सभा में गांधी के इन ओछे विचारों की जोरदार भर्त्सना की थी। उन्होंने कहा कि महाराज काश्मीर को तो गांधी ने परामर्श दे दिया किन्तु निजाम हदरावाद से उसी भाषा में बात करने का माहृत उनको क्यों नहीं हुआ। उन्होंने कहा कि 'भारत के सभी नवाब देश छोड़कर भक्ता में जाकर प्रायश्चित्त करें। किन्तु नहीं, मुसलमानों के प्रति गांधी के हृदय में बड़ा सम्मान का स्थान था। इसी जनसभा में उन्होंने महिलाओं को रसाई और घर की चारदीवारी से बाहर निकल कर राष्ट्रोत्थान के कार्य में हाथ बटाने का आग्रह किया।

## महासभा के अध्यक्ष

सावरकर को हिंदू महासभा का अध्यक्ष मनोनीत किया गया और ३० दिसम्बर, १९३७ को अहमदाबाद में सम्पन्न महासभा के वापिक अधिवेशन को सम्मोहित करते हुए उन्होंने पहली बार सावजनिक मंच से 'हिन्दू' की ध्याख्या दी। यहाँ पर उन्होंने घोषणा की—

आसिधु सिधु पयन्ता यस्य भारत भूमिका ।

पितभू पुण्यभूश्चैव ॥ वै हिदुरिति स्मृत ॥

सिधु से आरम्भ कर समुद्र तट तक विस्तृत इस भारत भूमि को जो अपनी पितृभूमि, पुण्यभूमि मानता है, वही हिंदू है ।

इस अधिवेशन में सावरकर ने गाँधी के 'मुसलमानों को साथ लिए बिना स्व-राज्य मिलना असम्भव है।' इस कथन को गाँधी द्वारा मुसलमानों का तुप्तीकरण करना कहते हुए इसकी निन्दा की और उसी समय उन्होंने मुसलमानों को चेतावनी देते हुए कहा—

यदि तुम साथ आने हो तो तुमको साथ लेकर, यदि तुम साथ नहीं आते तो बिना तुम्हारे अकेले ही, और यदि तुम हमारा विरोध करोगे तो तुम्हारे उस विरोध को कुचलते हुए हम हिंदू, देश की स्वाधीनता का युद्ध निरन्तर लड़ते रहेंगे ।'

सावरकर ने गाँधी पर आरोप लगाया कि उसने असामाजिक प्रचार के मुसलमानों को सिर चढ़ाकर देशपातक काय किया है। उसका परिणाम आज भी देखने में आ रहा है और भविष्य में इसका बहुत ही भयंकर परिणाम होने वाला है ।

सावरकर ने उस समय जो कुछ कहा था कालान्तर में वह अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ है । उन्होंने उद्गू भाषा में विषय में भी उसी अधिवेशन में, भविष्यवाणी करते हुए कहा था—

"मुसलमानों ने मुस्लिम लीग की सखनठ बैठक में उर्दू को राष्ट्रभाषा बनाने का जो प्रस्ताव किया है वह घोर साम्प्रदायिकता और हिन्दुओं तथा हिन्दी के प्रति घृणा पर आधारित है । आज तो मुसलमानों की 'बन्दे मातरम्' जैसा राष्ट्रगीत भी अस्तित्व में नहीं है । हिंदू मुस्लिम एकता के लिए चिन्तित कांग्रेसियों ने मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए 'बन्दे मातरम्' में बहुत काट-छाट तक कर दी है । किन्तु वे तो 'बन्दे मातरम्' शब्द को ही अस्वीकार करते हैं ।

"हिन्दुओं को यह बात भतीभाँति समझ लेनी चाहिए कि मुसलमानों की इस कुचाल का कारण केवल यही है कि हिन्दुओं को ही हिन्दू मुस्लिम एकता रूपी पिशाच के पीछे पड़ने की सगन सगी हुई है । जिस दिन हमने मुसलमानों के मन में यह उत्पन्न कर दिया था कि 'उनके सहयोग दिए बिना स्वराज्य मिलना असम्भव है' उसी दिन से उन्होंने हमारे सिर पर चढ़ना प्रारम्भ किया है ।

फरवरी १९३८ में सावरकर का आगमन दिल्ली में हुआ । ६-१९३८ को दिल्ली के स्टेशन पर हजारों हजारों की सख्या में उपस्थित होकर दिल्लीवासियों ने

उनका हार्दिक स्वागत किया। 'भोपा' उस समय उनका स्वास्थ्य बहुत खराब था फिर भी दिल्ली में उनकी शोभायात्रा निकाली गई। एक सुन्दर सज्जित रथ पर उन्हें बैठाकर ८ किलोमीटर की शोभायात्रा निकाली गई। इस शोभायात्रा में सावरकर जी के साथे डाक्टर मुंजे, सोसा मोरार्यदेव, भाई परमानंद, प्रो रामसिंह, डा जयेंकर और श्री एम एस अणे आदि महानुभाव विराजमान थे। सभी चौराहों पर मिठाई बांटी जाती रही और उन चौराहों को बहुत संजाया गया था। उस दिन पहली बार 'जिदाबाद' के स्थान पर 'अमर रहे' शब्द का प्रयोग किया गया और तब से यह प्रयोग स्थायी बन गया। दिल्ली में उनके स्वागत में एक भव्य विशाल जनसभा का आयोजन किया गया और उपरिलिखित सभी महानुभावों ने उसमें भाग लिया।

दिल्ली से लौटते हुए भोपाल स्टेशन पर उनका शानदार स्वागत किया गया। इस यात्रा में वे १३-२-१९३८ को नागर पहुँचे जहाँ कांग्रेस के प्रख्यात नेता रावसाहब पटवर्धन ने उनका औरदार स्वागत सम्मान किया। श्री नाना साहेब मोदक ने उनसे भेंट की। कोपरगांव में श्री जमनादास मेहता ने उस जनसभा की अध्यक्षता की जो सावरकर के स्वागत के लिए आयोजित की गई थी। इस अवसर पर भी उन्होंने इस बात को दोहराया कि उन्होंने मंत्रिमण्डल, म इसी शत पर सम्मिलित होना स्वीकार किया था कि सावरकर जी को पहले कारागार से मुक्त करना होगा।

सावरकर की इस यात्रा के सफल आयोजन के लिए डाक्टर भोपे, श्री गोपाल राव गायकवाड़, डा खानोलकर और श्री सहस्रबुद्धे आदि महानुभावों ने अनथक प्रयत्न किया था।

### क्रांतिकर्षक कानपुर

इसी यात्रा में सावरकर स्वातंत्र्य समर की क्रांति भूमि के रूप में प्रख्यात अनेकानेक जयश्री में १३-४-१९३८ को उन्होंने कानपुर की एक विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुए १८५७ के स्वातंत्र्य युद्ध पर ही अपना सारा भाषण दिया था। उन्होंने कानपुर की भूमि का अभिनन्दन करते हुए कहा था "यह वही क्रांतिभूमि, ऐतिहासिक नगर कानपुर है जिसने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की पराजय देखी थी। इसी पवित्र भूमि पर सेनापति तात्या टोपे ने ब्रिटिश सत्ता का गर्भ ध्वजाचूर करके उसे पराजित किया था। मेरे हृदय में अपने बाल्यकाल से ही कानपुर, बनारस और मेरठ जैसे पवित्र नगरों की दृष्टि आकांक्षा थी। कानपुर और मेरठ मेरे लिए प्रातिशीर्ष और बनारस पुण्य तीर्थ के रूप में वन्दनीय हैं। जब से मैं इस नगरी में प्रविष्ट हुआ हूँ मेरे हृदय में प्रातिवीर माना साहेब या तात्या टोप की हिन्दू सेना के युद्ध उद्घोष तथा उनके तोपों की गरमदाहट की ध्वनि निरन्तर प्रनिध्वनित हो रही है। यह मेरा परम सौभाग्य है कि बाल्यकाल से जिस पवित्र भूमि में दशनों के मैं स्वप्न सजोया करता था आज मैं प्रत्यक्षतया उनके दर्शन करके उनकी प्रणाम करने के लिए यहाँ पर विद्यमान हूँ।"

सावरकर गंगाजी के तट पर उस घाट को भी देखते के लिए गए जहाँ भारतीय रणबाकुरो ने अग्नेज आतताइयों को मौत के घाट उतारा था। भगवान शिव के जिस मन्दिर में सेनापति तात्या टोपे ने सर्वप्रथम शङ्खध्वनि के द्वारा जाति का बिगुल बजाया था सावरकर उस मन्दिर में भी गए और उन्होंने भगवान शिव के चरणों में अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किए।

कानपुर से सावरकर फँजाबाद के गुरुकुल और संस्कृत पाठशाला में भी गए, जहाँ जातिवीरो को देशभक्ति के पाठ पढ़ाये जाते रहे थे। अपने स्वागत भाषण के उत्तर में सावरकर ने कहा था कि उनको यह जानकर प्रसन्नता हुई कि इन शिक्षण संस्थानों में बिना किसी जाति भेद के सब हिंदुओं को प्रमानरूप से समान शिक्षा दी जाती है। फँजाबाद से सावरकर बाराबंकी गए वहाँ भी उनका भव्य स्वागत हुआ। बाराबंकी के बाद सावरकर उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध नगर लखनऊ पहुँचे। ५४ ई० को लखनऊ में उनके सम्मान में विशाल शोभा यात्रा निकाली गई। वहाँ पर भी सावरकर ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि किस प्रकार कांग्रेस अपने मूल लक्ष्य से भटक कर अस्वामाजिक तथा अराष्ट्रीय मुसलमानों के सम्मुख घुटने टेक कर दश का अहिन कर रही है।

लखनऊ में उन दिनों सावरकर के अण्डमान के साथी शचीन्द्रनाथ सायल विगजमान थे। उन्होंने सावरकर के सम्मान में अपने निवास पर एक विशाल भोज का आयोजन किया, वहाँ तत्कालीन कांग्रेस के नेता, कालांतर में समाजवादी नेता के रूप में प्रख्यात, आचार्य नरेन्द्रदत्त ने सावरकर से भेंट की। अपनी बातचीत में नरेन्द्रदत्त ने अपनी पार्टी की स्थिति स्पष्ट करत हुए कहा कि क्योंकि भारत में मुसलमान अल्पसंख्या में हैं, इसलिए उनको कुछ न कुछ सुविधा तो मिलनी ही चाहिए। उसके उत्तर में सावरकर ने कहा कि किन्तु मुसलमान तो अपने अल्पसंख्यक होने का आभास हिंदु समुदाय को नहीं दत्त व तो आक्रमणकारी रूप का ही आभास देते रहते हैं। वास्तव में उन्होंने तो हिंदू बहुमत को धर्मान्तरण के द्वारा अल्पमत में लाने का यत्न किया था, जिसमें वे असफल रहे हैं। लखनऊ नगर पालिका का अध्यक्ष उन दिनों मुसलमान था, उसने सावरकर के सम्मान में भाषण दिया था।

### सैनिक प्रशिक्षण की आवश्यकता

लखनऊ से चलकर सावरकर हसनगंज और शाहगंज की समाओं में उपस्थित होने हुए आगरा पहुँचे। आगरा में सावरकर का भव्य स्वागत किया गया। वहाँ विशाल 'सावजनिक' सभा का आयोजन किया गया। अपने भाषण में सावरकर ने सैनिक शिक्षा का महत्व बतात हुए युवकों को परामर्श दिया कि वे या तो सेना में प्रविष्ट होकर सैनिक शिक्षा का प्रशिक्षण प्राप्त करें अथवा जो सना में न जा सकत हों वे अपने नगर में ही राइफल बनवों की स्थापना कर इस प्रकार के प्रशिक्षण अवसर प्राप्त करें।

अपने प्रवामवाला में सावरकर आगरा में हृदयनाथ बृजरू के भार्दे राजनाथ बृजरू के घर पर टहरे थे। वहीं तत्कालीन सयुक्त प्रांत के मुख्यमंत्री पण्डित गान्धिवि-

बल्लभ पन्त ने उनसे भेंट की थी। आगरे में सावरकर आगरा का वह दुर्ग और स्थान भी देखने के लिए गए जहाँ छत्रपति शिवाजी ने औरंगजेब से भेंट की थी।

अपने इस प्रवास के अन्त में १५ अप्रैल १९३८ को सावरकर ने भराठी साहित्य सम्मेलन को सम्बोधित किया था। उस सम्मेलन में जहाँ सावरकर ने साहित्य सम्बन्धी अनेक विधाओं आदि पर विचार किया वहाँ उन्होंने अपने भाषण के अन्त में उद्बोधन रूप में कहा था, " मैं जितने उच्च स्वर से बोल सकेता हूँ, उतने उच्च स्वर से यह कहता हूँ कि भारत की वर्तमान आवश्यकता अथवा समय की पुकार कहती है कि इस समय हम साहित्यकारों की नहीं सैनिकों की आवश्यकता है। यदि यह सारा दशक भी साहित्यविहीन हो जाता है तो इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। भले ही इस दशक में कोई गाना न गाया जाय अथवा कोई कविता न रची जाय। किन्तु भारत के नगरों की धींधीयाँ शस्त्रास्त्रों से सज्जित, सैनिकों के बूटों की ध्वनियाँ से ध्वनित होती रहें। कभी-कभी बदलाव के लिए कोई सुन्दर सौ कविता अथवा कोई हृदय तंत्री को शकृत करने वाली कथा लिख भी ली जाय तो ठीक है, क्योंकि हम जानते हैं कि नेपोलियन जैसे बहादुर को भी विश्राम की आवश्यकता पड़ती-ही थी। अपने शत्रुओं से घुटने टिकवाने के बाद बाजीराव प्रथम ने भी कुछ समय के लिए प्रेम प्रसाप किया था।

"किन्तु जब मैं आज भारत की यह स्थिति देखता हूँ तो मेरा हृदय कराह उठता है। इसलिए ओ साहित्यकारों ! मैं आपको कहता हूँ कि क्या आप सेग, तलवार और बन्दूकों के पक्ष में अपनी लेखनी को कुर्बान कर सकते हैं ? क्याकि आप यह बात भली-भाँति हृदयगम करके कि दास देश में साहित्य कभी नहीं पनप सकता। यह कहा जाता है कि ज्ञान विज्ञान की उन्नति शस्त्रास्त्रों से सज्जित स्वतंत्र देश में ही हो सकती है, किसी दास देश में नहीं।"

उस वृत्त अपनी भारत यात्रा में सावरकर साहूँर, अमृतसर, अजमेर, नासिक, ग्वालियर आदि आदि स्थानों पर गए और वहाँ सब स्थानों पर उनका भव्य स्वागत किया गया। सावरकर ने अपने ओजस्वी भाषणों के माध्यम से देश के युवकों का जाह्वान किया और सहृदयानीय नेताओं से भी भेंट बार्ता की।

सितम्बर १९३८ में सावरकर ने दस दिन की सिन्ध यात्रा की। सिन्ध के प्रत्येक नगर में उनका भव्य स्वागत किया गया। कराची में उनकी शोभायात्रा को अपने गन्तव्य पर पहुँचने में पूरे पाँच घण्टे लगे थे। सब्बर में आयोजित हिन्दू सम्मेलन के अध्यक्ष सावरकर थे। उन्होंने उसी समय हिन्दुओं को मार्गदर्शन कर दिया था। किन्तु उस समय सिन्ध के हिन्दू कांग्रेस के दुष्प्रभाव में होने के कारण सावरकर की चेतावनी को समझ नहीं पाए, परिणामस्वरूप उन्हें भारत विभाजन के अवसर पर महान कष्ट और यातनायें सहनी पड़ीं। सावरकर की सिन्ध यात्रा के विषय में वहाँ के कांग्रेस समर्थक समाचार पत्र 'सिन्ध ओजवर' ने लिखा था—'वे आए, उन्होंने देखा, वे विजयी हुए।'

## निजाम का विरोध

1857-58

वर्तमान में आंध्र प्रदेश की राजधानी हैदराबाद, सन् १६४६-४६ तक हैदराबाद रियासत के रूप में थी। हैदराबाद शहर तथा उसके आसपास के क्षेत्र अनेक शहर तथा ग्राम जिन दिनों हैदराबाद के अंतर्गत थे। यह बड़े विस्तृत और सुदृढ़ मुस्लिम रियासत मानी जाती थी। वहाँ का गवाक 'निजाम' कहलाता था। वह बहुत और सनकी मुसलमान था। गाँधी के विसाप्त आंदोलन में ज़माने बढ़ बढ़ कर इस-लिए भाग लिया था क्योंकि एक तो वह समय मुसलमान था और दूसरे टर्की के खलीफा की क़्या का उसके पुनर्स्थापना के कारण। वह खलीफा का सुदृढ़ पक्षधर बन गया था।

निजाम के राज्य में हिंदुओं को अन्याय कष्ट और यातनायें सहनी पड़ रही थी। निजाम का अत्याचार प्रतिदिन बढ़ता ही जाता था। उसने हिंदुओं के सभी धार्मिक अधिकारों को छीन लिया था। हिंदुओं का पूजा-पाठ, हवन आदि करना तो दूर में यज्ञोपवीत तक धारण नहीं कर सकते थे। यज्ञोपवीत तो शरीर पर धारण कर वस्त्रों के भीतर रहता है, किन्तु वहाँ वस्त्रों के भीतर छिपा यज्ञोपवीत तक धारण नहीं करते दिया जाता था। सब फिर मन्दिरों में शकध्वनि करना, भजन कीर्तन करना, पूजा पाठ करना, रामायण, गीता, भागवत अथवा महाभारत आदि पुराणों की कथा आदि करना किस प्रकार सम्भव हो सकता था? वहाँ वह सब असंवधानिक घोषित कर दिया गया था। मुसलमान गुण्डे हिंदुओं पर अन्याय अत्याचार करते थे, उसकी कोई सुनवाई नहीं होती थी। हिन्दू क़्याका तथा महिलाओं का अपहरण वहाँ सामान्य घटना समझी जाने लगी थी। धर्मान्तरण ही नहीं अपितु बलात धर्मान्तरण भी वहाँ पुण्य का और दीन का काम समझा जाता था।

इस प्रकार निजाम ने औरतज्जेस और मन्दिरताह आदि को भी अनाचार और अत्याचार में पीछे पड़ा दिया था। जब हिन्दू जनता के लिए यह सब असह्य होने लगा, पाप, अत्याचार और अनाचार का घड़ा जब उसकन लगा तो हिन्दुओं में कुछ हलचल हुई। शोलापुर आय समाज ने निजाम के इन अत्याचारों के प्रतिकार के लिए शोलापुर में आय महासम्मेलन का आयोजन किया। दिसम्बर १९३८ में आयोजित इस महासम्मेलन के आयोजक थे महात्मा नारायण स्वामी सरस्वती और अध्यक्ष थे श्री बापूजी जेजे। आय समाज के अनेक नेताओं ने साबरकर से आग्रह किया कि वे उस सम्मेलन में पधार कर अपने ओजस्वी भाषण से हिन्दू जनता का भाग दर्शन करें।

जहाँ हिंदू पर आई विपत्ति के निवारण की बात ही, सामरकर जब पीछे रहने वाले थे। वे तुरन्त शोलापुर पहुँचे और घोषणा करते हुए कहा, "इस आन्दोलन में आय समाज को अपने को अकेला अनुभव नहीं करना चाहिए। हिन्दू महासभा अपनी पूर्ण शक्ति से आय समाज के साथ साथ स कथा मिलाकर निजाम की हिंदू विरोधी नीति व अघन्य क्रिया कलाओं को चकनाचूर करके ही जन की सास लेगी।"

सावरकर ने उसी सभा में घोषणा करके २२ जनवरी, १९३६ को 'निजाम विरोधी दिवस' के रूप में आयोजित करने का आह्वान किया। उन्हीं दिनों नागपुर में हिन्दू महासभा का अधिवेशन होने वाला था। इस महासम्मेलन में 'जापान के' बोद्ध भी सम्मिलित हुए थे। हिन्दू महासभा के नव निर्वाचित अध्यक्ष की शोभायात्रा को अपने गन्तव्य स्थल पर पहुँचने में पाँच घण्टे लगे थे। इतना उत्साह था नागपुर की जनता में। सावरकर पर धामयान से पुष्प वर्षा की गई। नागपुर अधिवेशन के अवसर पर सावरकर ने जो अध्यक्षीय भाषण दिया वह हिन्दू महासभा के ही नहीं अपितु अध्यक्षीय भाषण के इतिहास में अनन्य था। इस अधिवेशन के अवसर पर सभी सभा समितियों में हैदराबाद समर्थ की जोरदार चर्चा रही।

### बिरला को करारा उत्तर

हिन्दू महासभा के अधिवेशन के प्रसंग में जब सावरकर नागपुर में थे तो उन्हें भारत के महान उद्योगपति (स्व.) घनश्यामदास बिरला का एक तार मिला। बिरला ने सावरकर से अनुरोध किया था कि अपने अध्यक्षीय भाषण में वे गाँधी द्वारा किए तथाकथित हरिजनोद्धार का उल्लेख अवश्य करें। सावरकर ने उस तार को चुपचाप एक ओर की संरका दिया और घनश्यामदास बिरला को लिख दिया कि हिन्दू महासभा के अध्यक्ष के कार्यालय के रख रखाव के लिए जो राशि वे देते हैं उसे देना बन्द कर दें। घनश्यामदास ने यह अपमान चुपचाप सह लिया।

निजाम हैदराबाद के अत्याचारों के विरोध में चलाए जा रहे आन्दोलन में हिन्दू महासभा ने पूर्ण सहयोग दिया और सावरकर की प्रेरणा पर सनातन धर्मी विचार-धारा के भी अनेक व्यक्ति हैदराबाद सत्याग्रह में बूढ़ पड़े थे। सावरकर ने पूना जाकर इस सत्याग्रह के लिए नाथूराम गोडसे के नेतृत्व में हिन्दू महासभा का विशाल जत्था हैदराबाद भिजवाया था।

न केवल साधारण कांग्रेसी नेता अपितु गाँधी तक ने उस हैदराबाद आन्दोलन को साम्प्रदायिक आन्दोलन घोषित करते हुए एक वक्तव्य प्रसारित कर दिया। तुरन्त ही उस वक्तव्य का इतना विरोध हुआ कि गाँधी के लिए उसका प्रतिवाद प्रकाशित करना अनिवार्य हो गया। तब गाँधी ने कहा, "धार्मिक स्वतंत्रता के लिए चलाए गए आन्दोलन से तो मुझे सहानुभूति है, किंतु हिन्दू महासभा द्वारा आन्दोलन में बूढ़ पड़ने से यह साम्प्रदायिक हो गया है।"

सावरकर भला यह असत्य किस प्रकार सहन करते? डाक्टर मुंजे के साथ उन्होंने इस वक्तव्य का उत्तर देते हुए कहा, "गाँधी जी बनायें कि 'बन्धे मातरम्' को सहन न करने वालों, हिन्दी भाषा का विरोध करने वालों एवं स्वाधीनता सङ्ग्राम में योग न देने वालों की चापलूसी करना, उन्हें सिर पर चढ़ाना क्या बड़ा भारी धर्म, निष्पक्षता व 'माय का काय' है? क्या यह सब साम्प्रदायिकता का पोषण करना नहीं है?"



## निजाम का विरोध -

वर्तमान में आंध्र प्रदेश की राजधानी हैदराबाद-सन १९४८-४९ तक हैदराबाद रिमासत के रूप में थी। हैदराबाद नगर तथा उसके आसपास के अनेक नगर तथा ग्राम जन-दिनों हैदराबाद के अंतर्गत थे। यह बड़ी विस्तृत और सुदृढ़ मुस्लिम रियासत मानी जाती थी। वहाँ का मवान 'निजाम' कहलाता था। वह कट्टर और सनकी मुसलमान था। गाँधी के विसाप्त आंदोलन में उसने बड़-बड़ कर इसलिए भाग लिया था क्योंकि एक तो वह स्वयं मुसलमान था और दूसरे दलों के छलीफा की वधावा उसके पुत्र से विवाह होने के कारण। वह छलीफा का सुदृढ़ पक्षधर बन गया था।

निजाम के राज्य में हिंदुओं को अन्याय-कष्ट और यातनायें सहनी पड़ रही थी। निजाम का अत्याचार प्रतिदिन बढ़ता ही जाता था। उसने हिंदुओं के सभी धार्मिक अधिकारों को छीन लिया था। हिंदुओं का पूजा-पाठ, हवन आदि करना तो दूर वे यज्ञोपवीत तक धारण नहीं कर सकते थे। यज्ञोपवीत तो शरीर पर धारण कर धत्तों के भीतर रहता है, किंतु वहाँ धत्तों के भीतर छिपा यज्ञोपवीत तक धारण नहीं करने दिया जाता था। तब फिर मन्दिरों में शस्त्रध्वनि करना, अन्न कीतम करना, पूजा पाठ करना, रामायण, भीता, भागवत अथवा महाभारत आदि पुराणों की कथा आदि करना किस प्रकार सम्भव हो सकता था? वहाँ वह सब असह्य ध्वनि ध्वनित कर दिया गया था। मुसलमान शुद्ध हिंदुओं पर मनमाने अत्याचार करते थे, उसकी कोई सुनवाई नहीं होती थी। हिंदू कन्याओं तथा महिलाओं का अपहरण वहाँ सामान्य घटना समझी जाने लगी थी। धर्मान्तरण ही नहीं अपितु बलात धर्मान्तरण भी वहाँ पुष्प का और दीन का काम समझा जाता था।

इस प्रकार निजाम ने औरंगजेब और नादिरशाह आदि की भी अनाचार और अत्याचार में पीछे पछाड़ दिया था। जब हिंदू जनता के लिए यह सब असह्य होने लगा, पाप, अत्याचार और अनाचार का घड़ा जब छसकने लगा तो हिंदुओं में कुछ हलचल हुई। शोलापुर आय समाज में निजाम के इन अत्याचारों के प्रतिकार के लिए शोलापुर में आय महासम्मेलन का आयोजन किया। दिसम्बर १९३८ में आयोजित इस महासम्मेलन के आयोजक थे महात्मा नारायण स्वामी सरस्वती और अध्यक्ष थे श्री बापूजी अणे। आय समाज के अनेक नेताओं ने सावरकर से आग्रह किया कि वे उस सम्मेलन में पधार कर अपने ओजस्वी भाषण ॥ हिन्दू जनता का माग दर्शन करें।

जहाँ हिंदू पर आई विपत्ति के निवारण की बात हो, सावरकर जब पीछे रहने वाले थे। वे तुरन्त शोलापुर पहुँचे और घोषणा करत हुए कहा, "इस आन्दोलन में आय समाज की अपने की अनेका अनुभव नहीं करना चाहिए। हिंदू महासमा अपनी पूर्ण शक्ति से आय समाज के साथ कंधे से कंधा मिलाकर निजाम की हिंदू विरोधी नीति व अजय्य क्रिया कलाओं को चकनाचूर करके ही धर्म की साँस लेगी।"

सावरकर ने उसी सभा में घोषणा करके २२ जनवरी, १९३६ को 'निन्नाम विरोधी दिवस' के रूप में आयोजित करने का आह्वान किया। उही दिनों नागपुर में हिन्दू महासभा का अधिवेशन होने वाला था। इस महासम्मेलन में आपात के बोध भी सम्मिलित हुए थे। हिन्दू महासभा के नव निर्वाचित अध्यक्ष की शोभायात्रा को अपने गन्तव्य स्थल पर पहुँचने में पाँच घण्टे लगे थे। इतना उत्साह आ-नामपुर की जनता में। सावरकर पर वायुयान से पुष्प वर्षा की गई। नागपुर अधिवेशन के अवसर पर सावरकर ने जो अध्यक्षीय भाषण दिया वह हिन्दू महासभा के ही नहीं अपितु अध्यक्षीय भाषण के इतिहास में अनन्य था। इस अधिवेशन के अवसर पर सभी सभा समितियों में हैदराबाद समर्थ की जोरदार चर्चा रही।

## बिरला को करारा उत्तर

हिन्दू महासभा के अधिवेशन के प्रसंग में जब सावरकर नागपुर में थे तो उन्हें भारत के महान उद्योगपति (स्व.) धनश्यामदास बिरला का एक तार मिला। बिरला ने सावरकर से अनुरोध किया था कि अपने अध्यक्षीय भाषण में वे गाँधी द्वारा किए तथाकथित हरिजनोद्धार का उल्लेख अवश्य करें। सावरकर ने उस तार को चुपचाप एक ओर की तरफ दिया और धनश्यामदास बिरला को लिख दिया कि हिन्दू महासभा के अध्यक्ष के कार्यालय के रख रखाव के लिए जो राशि वे देते हैं उसे देना बन्द कर दें। धनश्यामदास ने यह अपमान चुपचाप सह लिया।

निन्नाम हैदराबाद के अत्याचारी के विरोध में चलाए जाने वाले आन्दोलन में हिन्दू महासभा ने पूरा सहयोग दिया और सावरकर की प्रेरणा पर सनातन धर्मी विचार-धारा के भी अनेक व्यक्ति हैदराबाद सत्याग्रह में कूद पड़े थे। सावरकर ने पूना जाकर इस सत्याग्रह के लिए नामूराम गोडसे के नेतृत्व में हिन्दू महासभा का विशाल जत्या हैदराबाद भिजवाया था।

न केवल साधारण कांग्रेसी नेता अपितु गाँधी तक ने उस हैदराबाद आन्दोलन को साम्प्रदायिक आन्दोलन घोषित करते हुए एक वक्तव्य प्रसारित कर दिया। तुरन्त ही उस वक्तव्य का इतना विरोध हुआ कि गाँधी के लिए उसका प्रतिवाद प्रकाशित करना अनिवार्य हो गया। तब गाँधी ने कहा, "धार्मिक स्वतंत्रता के लिए चलाए गए आन्दोलन से तो मुझे सहानुभूति है, किंतु हिन्दू महासभा द्वारा आन्दोलन में कूद पड़ने से यह साम्प्रदायिक हो गया है।"

सावरकर भला यह असत्य किस प्रकार सहन करत। डाक्टर मुजे के साथ उन्होंने इस वक्तव्य का उत्तर देते हुए कहा, "गाँधी जी बतायें कि 'बन्दे मातरम्' को सहन न करने वालों, हिन्दी भाषा का विरोध करने वालों एवं स्वाधीनता संग्राम में योग न देने वालों की चापलूसी करना, उन्हें सिर पर बठाना क्या बड़ा भारी धर्म, निष्पक्षता व न्याय का काम है? क्या यह सब साम्प्रदायिकता का पोषण करना नहीं है?"

गौधी के पास इसका कोई उत्तर नहीं था।

सावरकर ने हैदराबाद आन्दोलन में प्राण फूँकने के लिए अनेक स्थानों पर जा-  
जाकर उसके समयन में जोशीले भाषण दिए। अनेक स्थानों से सत्याग्रही जत्या को  
भिजवाया।

## कांग्रेस की तलवा चाटू नीति

महाराष्ट्र का प्रवास पूरा कर सावरकर ने बंगाल और बिहार की ओर मुख  
किया। फरवरी १९३६ में सावरकर ने बन्दे मातरम् की जन्मभूमि, मुरझनाथ बनर्जी,  
सी आर दाम, विपिनचन्द्र पास, अरवि द घोष और खुदोराम बोस की मातृभूमि में  
पदापण किया।

हिन्दू परिषद की ओर से खुसना में एक विशाल आयोजन किया गया था।  
सावरकर की सिंहगजना ने सोये बंगाल को जागृत कर लिया। कांग्रेस समर्थक समाचार  
पत्र 'अमृत बाजार पत्रिका' तक को लिखना पड़ा कि कांग्रेस की चाहिए कि वह मुस्लिम  
हुस्दीकरण तथा मुस्लिम लीग के तलुवे चाटने की अपनी नीति को सुरन्त, त्याग दे।  
यही कांग्रेस और देश के हित में होगा।

इस सभा में डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, सर मनमथनाथ मुखर्जी, एम सी चटर्जी  
तथा बंगाल के अग्रगण्य सावजनिक नेता एवं कार्यकर्ता उपस्थित थे। यही स डाक्टर  
श्यामाप्रसाद मुखर्जी भारतीय राजनीति की ओर उन्मुख हुए और कालान्तर में वे हिन्दू  
संगठन के लिए बड़े उपयोगी सिद्ध हुए। सावरकर के बंगाल प्रवासकाल में डाक्टर  
मुखर्जी उनकी खोज थी। बंगाल के समाचार पत्रों ने सावरकर के बंगाल अभियान का  
'भारतीय रोबिन्हुड अभियान' का नाम दिया।

खुसना में भी हैदराबाद सत्याग्रह के लिए जत्या भेजा गया।

बंगाल के बाद सावरकर बिहार प्रांत के प्रवास पर निकले। मार्च १९३६ के  
तृतीय सप्ताह में मुंगेर में हिन्दू सम्मेलन का आयोजन किया गया था। जिसकी अध्यक्षता  
सावरकर ने की। उस अवसर पर सावरकर की जो शोभा मात्रा निकली थी वह  
मुंगेर के इतिहास में 'न भूतो न भविष्यति' जसी ही थी।

बिहार के प्रवासकाल में वहाँ के पत्रों—प्रभाकर, इन्द्रियन नगल—आदि ने  
सावरकर के भाषणों को प्रमुख स्थान दिया और बताया कि हिन्दू संगठन की उनकी  
अपील बड़ी भासिक थी। उनका प्रत्येक वाक्य हृदय को आन्दोलित करता था। उनका  
भाषण में मात्र भावुकता नहीं अपितु तक और बुद्धिमत्ता का समावेश था।

बिहार के उपरान्त सावरकर महाकौशल के प्रवास पर गए वहाँ भी अनेक नगरों  
में उनका बैसा ही भव्य स्वागत हुआ। महाकौशल में वे बरार के विभिन्न नगरों और  
ग्रामों में जाकर हिन्दू जागरण का काम करते रहे।

सावरकर जहाँ वही भी गए, वे हैदराबाद में हिन्दुओं को नहीं भूल। सब

उन्होंने हैदराबाद के निजाम के अत्याचारों की चर्चा की और यथासम्भव अधिक से अधिक लोगों को उन्होंने हैदराबाद सत्याग्रह में भाग लेने के लिए प्रेरित किया।

## गांधी की साम्प्रदायिकता

यह हिंदुओं की विद्वम्बना ही कहा जाएगा कि जो गांधी हैदराबाद में हिंदू सत्याग्रहियों को साम्प्रदायिक कहकर उनकी भत्सना कर रहा था, वही गांधी काश्मीर में मुसलमानों द्वारा महाराजा काश्मीर के विरुद्ध चलाए गए अभियान का समर्थन कर रहा था। कांग्रेस तथा कांग्रेसियों की ओर से प्रकाशित होने वाले पत्र-पत्रिकाओं ने भी स्वयं को हैदराबाद सत्याग्रह से अलिप्त रखा। तदपि उस आंदोलन की ध्वनि ब्रिटिश पार्लियामेंट तक पहुँची। बनल बेजबुड ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में हैदराबाद सत्याग्रह की आवाज उठाई और हिंदुओं पर होने वाले अत्याचार तथा उनके सघप की कहानी सुनाई तो उसी दिन बापूजी भिड़ ने हैदराबाद की ब्रिटिश रेजिडेंसी के ऊपर हिंदू ध्वज सहारा दिया।

हैदराबाद आन्दोलन शान्तिपूर्ण रीति से नहीं निपटा। निजाम के अत्याचारों से अनेक हिंदुओं की कारागार में हो जानें चली गईं। किन्तु अन्त में अपनी गद्दी की सुरक्षा को देखते हुए निजाम को झुकना पड़ा। १६ जुलाई, १९३६ को निजाम ने नागरिक सघप आंदोलन को मायता दी और उनकी अधिकांश मांगों का स्वीकार करत हुए हैदराबाद विधान सभा में हिंदुओं को ५० प्रतिशत प्रतिनिधित्व देना स्वीकार किया। जबकि इससे पूर्व वहाँ की विधान सभा में हिंदुओं के प्रतिनिधि का प्रवेश तक नहीं था।

आप समाज तथा हिन्दूसभा की यह महान सफलता उनके कठिन सघप और धलिदानों से ही प्राप्त हुई थी। सावरकर का इसमें विशेष योगदान था।

सावरकर के बढ़ते वचस्व को देखकर गांधी और उसकी पार्टी कांग्रेस में खल-बली मचने लगी। वे और तो कुछ नहीं कर सके, उन्होंने हिंदू महासभा और उसके नेता सावरकर का राजनीतिक बहिष्कार करने का ऐलान कर दिया। इसने सावरकर तथा हिंदू महासभा में तो किसी प्रकार की हलचल नहीं हुई किन्तु देश के कुछ अन्य ताओ को कांग्रेस का यह नाजीवाद बहुत अघरा तो उन्होंने कांग्रेस के विरुद्ध एक वक्तव्य दे डाला।

इन वक्तव्य देने वालों में प्रमुख थे—इटियन लिबरल्स की ओर स सर कावसजी जहागीर, सर चिमनलाल सीतलवाड, सर बी एन चट्टावरकर, डेमोक्रेटिक म्यराज पार्टी की ओर से एन सी केलकर और जमनादास मेहता, इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी की ओर से डाक्टर भीमराव अम्बेदकर और हिंदू महासभा की ओर से सावरकर। इन्होंने वक्तव्य में कहा, 'कांग्रेस और कांग्रेस सरकार नाजो और फासिस्ट राज्य की ही भाँति सभी पार्टियों को निगलकर अपना वचस्व स्थापित करना चाहती है, जो कि प्रजातंत्र के लिए मृत्यु सिद्ध होगा।'

इस वक्तव्य का जन साधारण पर अच्छा प्रभाव रहा। जनता कांग्रेस की ओर से

सावधान हो गई। काँग्रेसी क्षेत्रों में इसकी बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया हुई, उन्होंने इसका विरोध किया। काँग्रेसी पत्रों में इसके विरोध स्वरूप साप्ताहिक पर बहुत कीचड़ उछासो गई। काँग्रेस के नाजीवाद से सावधान करना मानो देशद्रोह हो और सब कुछ जिला के चरणों में समर्पित कर देना काँग्रेस के लिए देशभक्ति का काय दिखाई देता था। अपने आरम्भ से लेकर कांग्रेस का कार्य भारतीयता की पीठ पर छुरा भोंकना ही रहा था किन्तु गांधी के नेतृत्व में यह प्रक्रिया अधिक तीव्र हो गई थी।

## द्वितीय विश्व युद्ध

### जिन्ना का धर्मस्व

१९३५ के सुधार एक्ट में एक धारा भारत के महासभ के निर्माण के रूप में भी थी। सावरकर अमुमय कर रहे थे कि वर्तमान में जिन्ना बड़ी चतुराई से राष्ट्रीय हित को आघात लगान में प्रवृत्त था और बीबेसी नेता उसकी इस चाल को समझते हुए भी सत्ता के मोह में फँसे हुए उसके सम्मुख नत होते जा रहे थे। इसलिए सावरकर ने 'भारत महासभ' का विषय उठाया तो कांग्रेस के गले यह सही उतर सका। उसमें उनको स्पष्ट दिखाई देता था कि पूरा सत्ता उनके हाथ में न रहने से उनका बचस्व क्षीण हो जाएगा।

जिन्ना को मय लगा कि यदि 'भारत महासभ' बन गया तो फिर उसकी राजनीति का ही नहीं अपितु उसका भी सावजनिक जीवन समाप्त हो जाएगा। महासभ में मुसलमानों के अलगवावाद की हत्या हो जाएगी और उनका पृथक अस्तित्व नगण्य हो जाएगा। इसलिए उसने इस योजना को 'सबका मंत्री नसी, सिद्धान्ततया निरुद्ध तथा पूणतया अग्राह्य' कहकर इस योजना का बहिष्कार कर दिया।

यह समोग की ही बात थी कि लगभग उसी समय द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध की अफरातफरी में 'महासभ' की योजना छटाई में पड़ गई। युद्ध आरम्भ होत ही कांग्रेस ने ही सरकार से पत्ला झाड़ लिया और निजी असहयोग आंदोलन जसा कोई आंदोलन आरम्भ कर दिया। इस अवसर पर मद्रास में सम्पन्न मुस्लिम लीग के अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में जिन्ना ने कहा, "जब से युद्ध आरम्भ हुआ है तब से अयाय अनेक बुरे समाचारों में एक शुभ समाचार यह मिला कि वायसरॉय ने घोषणा कर दी है कि ब्रिटिश सरकार ने 'गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट १९३५' के अन्तर्गत अ भा फेडरेशन स्कीम को रद्द कर दिया है। यह हमारी बहुत बड़ी जीत है।"

कांग्रेस ने जब मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिया तो उस समय उस मंत्रिमण्डल में मुसलमान मंत्रियों और विधायकों की संख्या बहुत कम थी। किन्तु कांग्रेस के जेल

भरो आन्दोलन ने जिन्ना को बहुत सहारा दिया और कुछ ही दिनों में वह पाच राज्यों में मुस्लिम मन्त्रिमण्डल गठित करने में सफल हो गया। ये मन्त्रिमण्डल उसकी भावी नीति और योजना के लिए सीढ़ी के रूप में सिद्ध हुए। सात राज्यों से काँग्रेस मन्त्रिमण्डल के त्यागपत्र के दिन को मुस्लिम लीग ने 'भुक्ति दिवस' के रूप में मनाया।

गांधी, नेहरू और काँग्रेस पार्टी के अग्र सौग समझत थे कि जिन्ना तो कुछ गिने चुने मुसलमानों का नेता है, मुस्लिम जन साधारण का नहीं, इसलिए उन्होंने मुसलमानों को काँग्रेस की ओर आकर्षित करने के लिए सम्पक अभियान आरम्भ किया। नेहरू की मुसलमानों के विषय में यह धारणा न केवल गलत सिद्ध हुई अपितु इससे मुसलमानों में परस्पर विरोध उत्पन्न होने के कारण उनमें जागृति का संचार भी होने लगा। जिन्ना की अवसर मिल गया और उसने मुसलमानों में प्रचार आरम्भ कर दिया।

विश्वयुद्ध प्रगति करने लगा तो १ सितम्बर, १९३९ को ब्रिटिश ने जमनी पर आक्रमण की घोषणा कर दी। परिणामस्वरूप भारत के तत्कालीन बायसराय लीड लिन-लियगो ने घोषणा कर दी कि भारत का इस समय जमनी से जुड़ हो रहा है अतः भारत-वासियों को चाहिए कि वे नाजी शक्ति के सफाए के लिए जी जान से युद्ध में प्रवृत्त हो जाय।

### गांधी-नेहरू ने घुटने टेके

इस अवसर पर गांधी और नेहरू ने घुटने टेक दिए। गांधी ने तो बायसराय से कह दिया कि वह इस समय ब्रिटेन की इस सङ्कट की घड़ी में उसको किसी प्रकार के सङ्कट में नहीं डालना चाहता। नेहरू उस समय चीन गया हुआ था। बाहू से लौटते हुए उन्होंने भारत पहुँचने से पूर्व ही वर्मा में वक्तव्य दिया कि, "मैं घोषणा करता हूँ कि ब्रिटेन की इस सङ्कट की घड़ी में भारत की ऐसी कोई आकांक्षा नहीं है कि वह उस भाव ताव कर।"

लिबरल नेताओं ने विचार किया कि इस समय यदि भारत सशत सहायता करता है तो यह भारत के हित में नहीं होगा। पारसियों ने ब्रिटिश की विजय के लिए प्राय-नायों की ताँटाटर अश्वेदकर ने कह दिया कि ब्रिटेन को चाहिए कि वह भारत को अपना बचाव करने के लिए सब प्रकार की सुविधा प्रदान करे। मुस्लिम लीग ने शत रखी कि ब्रिटिश सरकार भारत के मुसलमानों की सुरक्षा की गारंटी देता वह इस युद्ध में उसकी सहायता कर सकती है।

सावरकर इस प्रकार झुकने के लिए तयार नहीं थे। परिणामस्वरूप ६ अक्टूबर, १९३९ को बायसराय लिनलियगो ने सावरकर को दार्शनिक के लिए आमंत्रित किया। यह भेंट दिल्ली में हुई। बायसराय ने जब उनसे पूछा कि विश्व युद्ध के सम्बन्ध में उनकी क्या नीति है तो सावरकर ने स्पष्ट शब्दों में बताया, "त्रान्तिकारी होने के नाते मैं देश के सैनिकीकरण के पक्ष में हूँ, मैं इसमें देश का हित समझता हूँ। देश के भीतर और देश सीमाओं पर हिन्दू सैनिकों की टुकड़ियाँ यदि रहें तो यह देश के हित में होगा। इसमें

ही हिन्दुओं का हित भी निहित है।”

वायसराय पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा और बाद में एक पत्रकार सम्मेलन में उसने कहा, “सावरकर अनेक वर्षों तक अण्डमान में कारागार की यात्रा करते रहे हैं। किन्तु इससे न तो उनका तेज क्षीण हुआ है और न ही उनके त्रान्तिकारी विचारों में किसी प्रकार का परिवर्तन हुआ है। इस द्वितीय विश्व युद्ध के प्रश्न पर भी वे सर्वप्रथम भारतीय हित को सम्मुख रखते हुए ही कुछ बातें करते हैं।”

सिनसिथगो ने यह बात न केवल पत्रकारों को बताई अपितु उसने अपन कौंसिल के कुछ सदस्यों को भी बताई। डा० मुखर्जी के सम्मुख भी लीड ने सावरकर की प्रशंसा की। परिणामस्वरूप उनके दिल्ली प्रवास के समय वायसराय ने एक्जीक्यूटिव कौंसिल के दो सदस्य सर जगदीशप्रसाद और सर रामास्वामी मुदालियार ने सावरकर को साय-कालीन चाय पर आमंत्रित कर उनसे वार्तालाप का सीभाग्य प्राप्त किया।

## सैनिकीकरण का प्रचार

उस समय भारत में सावरकर ही एक ऐसे हिन्दू नेता थे जो भारत के सैनिकीकरण पर बल दे रहे थे। सावरकर जहाँ कहीं भी भाषण देते, अपन भाषण में वे युवकों को सेना में प्रविष्ट होकर सैनिक प्रशिक्षण लेने के लिए प्रवृत्त करते। वे कहते थे कि जो सेना में न जा सकते हों वे अपने-अपने स्थानों पर राईफल क्लबों की स्थापना करें।

१९३६ के दिसम्बर में कलकत्ता में हिन्दू महासभा का वार्षिक अधिवेशन निश्चित हुआ। सावरकर इसके अध्यक्ष थे। ऐसा माना जाता है कि हिन्दू महासभा और सावरकर के जीवन के इतिहास में यह अधिवेशन ‘न भूतो न भविष्यति’ सिद्ध हुआ। इस अधिवेशन के समय इतनी भीड़ उमड़ी थी कि जिसका अनुमान नहीं किया जा सकता। सावरकर के स्वागत के लिए हावड़ा स्टेशन पर इतनी भीड़ एकत्रित थी कि कहीं तिल घरने को ठौर नहीं। और उस समय निकाली गई सावरकर की शोभा यात्रा बंगाल के इतिहास में अभूतपूर्व थी।

कलकत्ता के प्रमुख समाचारपत्र—हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड, अमृत बोजार पत्रिका, आदि ने अपने पत्रों के पृष्ठों को सावरकर की प्रशंसा से भर दिया था। उनका कहना था ‘कर्म से कर्म भारतीय राजनीति में कोई तो ऐसा उत्पन्न हुआ जो बुरे को बुरा कहने में सैनिक भी सर्कोच नहीं करता। न केवल कलकत्ता के अपितु देश के विभिन्न प्रान्तों के पत्रों ने भी उस अधिवेशन के समाचारों को प्रमुखता से प्रकाशित कर सावरकर के यत्न को स्वीकारा।

तदनन्तर अगले वर्ष भर सावरकर भारत के विभिन्न प्रान्तों और नगरों में जा जाकर भारतीयों को उनके अस्तित्व के प्रति जागरूक रहने का आह्वान करते रहे। वे स्थान-स्थान पर जाकर सैनिकीकरण की बात पर बल देते रहे उनका कोई भी भाषण ऐसा न रहा जिसमें उन्होंने सैनिकीकरण की बात न की हो।

‘हिंदुआ का सैनिकीकरण और सेना का हिन्दूकरण’ सावरकर का मुख्य उद्देश्य



घोष बन गया था।

वायसराय, लीड लिनलिथगो ने, सावरकर से, दोबारा ५ जुलाई, १९४० को शिमला में भेंट की। उस समय जब भारतीयों के सैनिकीकरण की बात हुई तो सावरकर ने वायसराय से स्पष्ट शब्दों में कहा था, "ब्रिटिश सत्ता के हित को दृष्टि में रखते हुए ही आपको भारतीय सना की आवश्यकता अनुभव होती है। किंतु हमारा दृष्टिकोण इससे सबधार भिन्न है। हम हिंदू और हिंदुस्थान के हित को देखते हुए अधिक हिंदुओं की भरती को उपयुक्त समझ रहे हैं। भारतीय सना में हिन्दुओं को कमीशन नहीं मिलते। यह प्रतिबंध हटाया जाना चाहिए। कुछ हिन्दू जातियों पर असैनिक होने का जो आरोप है उसे रद्द करके प्रत्येक हिन्दू मात्र को सेना में भर्ती की छूट मिलनी चाहिए।"

वायसराय ने उनकी बातों को ध्यान से सुना और आश्वासन दिया कि उनकी मांगों पर सतनुक्य विचार किया जाएगा। परिणामस्वरूप भारतीय सेना में हिन्दुओं की संख्या प्रतिदिन बढ़ने लगी।

उसी दिन शाम को साहौर हाईकोर्ट के सेवानिवृत्त जज श्री जियालाल ने सावरकर के सम्मान में एक चायपार्टी का आयोजन किया। सर जोगेंद्रसिंह, राजा सर बलजीतसिंह, सरदार रघुवीरसिंह और पटना हाईकोर्ट के जस्टिस वर्मा आदि अनेक प्रमुख व्यक्ति उस पार्टी में विद्यमान थे। चायपार्टी में अग्रान्त विषयों के साथ सावरकर ने उन्हें हिंदू राजनीति का पाठ भी पढ़ाया।

शिमला से लौटते हुए सावरकर की गाड़ी में ही यात्रा कर रहे बड़े उद्योगपति बालबंद हीराचन्द और सर सिकन्दर हयात खाँ से उनकी पुष्क-भयक बात हुई और सिकन्दरहयात खाँ की पहल पर, दिल्ली में मदनमोहन मालवीय से भेंट बातों निर्धारित की गई। किन्तु समयभाव के कारण सावरकर नहीं जा सके।

नेताजी की परामर्श

वायसराय लिनलिथगो से भेंटवार्ता से पूर्व २२ जून, १९४० को नेताजी सुभाष बोस उनसे मिलने के लिए बम्बई आए। वे सावरकर के सैनिकीकरण के उद्योग से बहुत प्रभावित थे। उससे पूर्व सुभाष बाबू जिन्ना से मिलकर आए थे। उस समय जिन्ना ने कह दिया कि कांग्रेस स उनकी निवाला जा चुका है, फारबस ब्लोक कोई बड़ी सत्ता नहीं है। सुभाष ने जब कहा कि वे तो हिन्दू के नाते मिला रहे हैं तो जिन्ना ने कह दिया, "हिंदुओं के एकमात्र नेता सावरकर हैं।" इस प्रकार वह भेंटवार्ता असफल हो गई।

सुभाष बाबू ने सावरकर को बताया कि वे कसबता में अंग्रेजों की प्रतिमाओं को ध्वस्त करना चाहते हैं। सावरकर ने उनको कहा कि इन छोटे स साधारण कामों को करके उन जैसे सज्जसी नेता का अंग्रेजों को जेलों में सड़ना उपयुक्त नहीं है। बहुत मानचौत के उपरान्त सावरकर ने उनको परामर्श देते हुए कहा, 'इस समय आपको भी रामविहारी बोस आदि नेताओं की भाँति अंग्रेजों को धनमा दबर् निवृत्त जाना चाहिए

और विदेश पहुँचकर जमनी और इटली, म. फ़से-भारतीय सैनिकों का भाग दर्शन कर सम्पूर्ण भारत की स्वतंत्रता की घोषणा कर देनी चाहिए। जापान के युद्ध की घोषणा करते ही बंगाल के उपसागर या ब्रह्मदेश से हिंदुस्थान की ब्रिटिश सत्ता पर आक्रमण किया जा सकता है। इस प्रकार का संशय प्रयास किए बिना हिंदुस्थान को कदापि स्वतंत्र नहीं कराया जा सकता।”

नेताजी सुभाष बोस पर इस कथन का प्रभाव हुआ और वे गुप्त रूप से भारत से बाहर जाकर अपनी योजना को कार्यान्वित करने में लग गए। तदनन्तर १९४४ के अपने एक प्रसारण में नेताजी ने स्वयं स्वीकार किया कि जब कि गाँधी आदि कांग्रेसी नेता भारतीय सैनिकों को ब्रिटिश किराये के टट्टू कहकर बदनाम कर रहे थे उस समय सावरकर ने भारतीय युवकों को सेना में भर्ती होने की प्रेरणा दी और वे ही युवक आज 'आजाद हिन्द सेना' के सिपाही बनकर भारतीय स्वतंत्रता के लिए जूट रहे हैं।

वासराय के साथ सावरकर की शिमला भेंटवार्ता का गाँधी और उसके अनुयायियों पर विपरीत प्रभाव पड़ा और समय-समय पर वे सावरकर पर दश मारते रहे। सावरकर ने एक बार गाँधी को उत्तर देते हुए कहा, “सत्य, अहिंसा से ब्रिटिश साम्राज्य को ध्वस्त करने की कल्पना किसी बड़े दुर्ग को बारूद की अपेक्षा फूँक से उड़ा देने का स्वप्न देखने के समान ही हास्यास्पद है। अत्याचार व आतंक पर आधारित ब्रिटिश साम्राज्य को ध्वस्त करने के लिए पहले उसकी नींव में बारूद ही लगानी पड़ेगी और यह सन् १९५७ से निरन्तर लगाई जाती रही है।”

आसाम को मुस्लिम बहुल प्रांत बनाने के लिए मुसलमान बाहर से आ-आकर बसने लगे थे। १९४१ में इस सफ़र की ओर संकेत करते हुए सावरकर ने कहा कि यदि आसाम में मुसलमानों की संख्या बढ़ जाने की तो यह आसाम और हिंदुओं के लिए भयावह सिद्ध होगा। नेहरू ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा कि आसाम में खाली जगह पड़ी थी मुसलमान वहाँ आकर बस रहे हैं। प्रकृति नहीं चाहती कि कोई स्थान रिक्त पड़ा रहे।

सावरकर ने इसका उत्तर देते हुए कहा, “जबकि वास्तव में नेहरू न दार्शनिक हैं और न शास्त्रज्ञ। उन्हें विदित नहीं कि प्रकृति तो सदा ही घुस आई हुई विपाक वायु को सदा दूर ही फेंकना चाहती है।”

आज की आसाम की स्थिति जहाँ सावरकर की दूरदृष्टि का लोहा मानती है वहाँ वह नेहरू और उसके अनुयायियों के मुख पर करारा धपत भी है।

सुभाष से भेंटवार्ता के प्रकरण में हमने रासबिहारी बोस के नाम का उल्लेख किया है। त्रान्तिकारी रासबिहारी बोस यद्यपि दश से बाहर थे तदपि सावरकर के साथ उनका पत्र-व्यवहार चलता रहता था। द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में श्री बोस ने एक बौद्ध भिक्षु के माध्यम से जापान से सावरकर का एक पत्र भेजा था। उसमें उन्होंने संकेत किया था कि जापान और इटली द्वारा प्राप्त धन और अस्त्रास्त्रा की

अंग्रेजों ने विरुद्ध एक क्रान्ति सना तैयार की जा रही है। आप भारत में भी इसी प्रकार की योजना बनाएँ।

## सिंगापुर का पतन

सन् १९४१ के अन्तिम दिनों में सुधार आयुक्त हडसन, जो उन दिनों भावी भारत के विधान निर्माण विवरण एवजित करने के लिए भारत का दौरा कर रहा था, उसने सावरकर से भेंट की। प्रा० रेगिनाल्ड कूपर, जो भारत के विधान के विषय में अध्ययन कर रहे थे, बम्बई के गवर्नर के सेक्रेटरी के साथ सावरकर से मिले। इसी अवधि में विदेशों के अनेक समाचार-पत्रों के प्रतिनिधि आदि ने भी सावरकर से भेंट करके भारत की राजनीति के विषय में विस्तृत रूप से चर्चाएँ कीं। उस समय तक सावरकर के वक्तव्य के साथ-साथ राजनीतिक भ्रम पर हिन्दू महासभा का वक्तव्य भी स्थापित हो चुका था।

द्वितीय विश्वयुद्ध की स्थिति भी इस समय तब तक की स्थिति में पहुँच गई थी। उसी समय ११ फरवरी, १९४२ को चाइनीज रिपब्लिक के चैयरमैन च्यांग काई शेक भारत के वायसराय से विचार विमर्श के लिए भारत आए और उन्होंने भारतवासियों से सहायता की अपील की तो सावरकर ने उसका उचित उत्तर दिया। च्यांगकाई शेक दम्पति सावरकर ने इसके लिए का धन्यवाद किया। उसके तुरन्त बाद सिंगापुर पर जापानियों ने अधिकार कर लिया। ब्रिटिशों की स्थिति सफटापन्न हो गई थी। उस समय सावरकर ने बखनव्य दिया कि अब समय है जब अंग्रेजों को भारत की समानता का पद देना होगा। यह किसी प्रकार की धमकी नहीं थी अपितु परिस्थिति का मूल्यांकन मात्र था।

इसी वातावरण में मार्च १९४२ में कांग्रेस के महान् नेता महात्मा गाँधी के समझी राजगोपालाचारी ने मुसलमानों की पाकिस्तान की माँग को उचित ठहराया तो सावरकर ने जोरदार शब्दों में इसका खिन्न किया। सावरकर ने राजगोपालाचारी के 'फ़ैयर एण्ड जस्ट' शब्दों की जो खिल्ली उड़ाई वह उचित ही था। सावरकर ने ब्रिटिश गवर्नर-मेंट की चेतावनी दी कि कांग्रेस द्वारा किया गया यह समझौता हिन्दू महासभा को स्वीकार नहीं होगा।

युद्ध की स्थिति बिगड़ती गई तो अखिर पाकर सावरकर ने चर्चित का तार द्वारा सावधान किया कि अब भी समय है कि ब्रिटिश सरकार भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा करते हुए इण्डो ब्रिटिश कॉमनवेल्थ में उसे बराबर का भागीदार बनाए। ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने भारत के वायसराय के माध्यम से उस तार का उत्तर देते हुए सावरकर का धन्यवाद भी किया था। इसी समय कांग्रेस और लीग में किसी प्रकार का समझौता होने लगा। सर सिक्न्दर हयात खाँ उसमें मुख्य भाग ले रहा था। सावरकर ने सिक्न्दर हयात खाँ को सावधान किया कि हिन्दुओं को दबाकर दिया गया कोई भी समझौता हिन्दुओं को मान्य नहीं होगा।

## क्रिप्स योजना

११ मार्च, १९४२ को प्रधानमंत्री चर्चिल ने भारत में क्रिप्स मिशन भेजने की घोषणा कर दी। २३ मार्च को सर स्टैफर्ड क्रिप्स भारत पहुँच गया। क्रिप्स ने जो योजना प्रस्तुत की वह किसी भी भाँति भारत के हित में नहीं थी। क्रिप्स ने भारत के प्रमुख राजनीतिज्ञों से भेंट की। इसी प्रसंग में डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, डा० भुजे सर ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव और लाला गणपतराय का साथ लेकर सावरकर ने क्रिप्स से भेंट की। सावरकर ने क्रिप्स को स्पष्ट बता दिया कि हिंदुओं को भारत विभाजन की योजना किंचित् भी स्वीकार नहीं है। क्रिप्स ने कालान्तर में वक्तव्य दिया कि भारत कभी भी एक रूप में, एक देश के रूप में, रहा ही नहीं। सावरकर ने इसका ऐसा करारा उत्तर दिया कि क्रिप्स भौवकसा रह गया। सावरकर के तक को निरस्त करना क्रिप्स के वश में नहीं था।

सावरकर ने स्पष्ट घोषणा की कि 'रक्त की अंतिम बूंद तक हम पाकिस्तान के विचार का विरोध करेंगे' क्रिप्स से सावरकर की इस भेंट का विवरण समाचार-पत्रों में विस्तार में प्रकाशित हुआ। नेहरू के अपने पत्र 'नेशनल हेराल्ड' तक को कहना पड़ा— 'सावरकर से राजनीति में भेद ही हमारे मतभेद हो किंतु वे वर्तमान युग के उन युग पुरुषों में से हैं जिन्होंने इतिहास निर्माण किया है और जन जागृति के लिए योगदान किया है।' हिंदू महासभा की कार्यकारिणी ने क्रिप्स का 'केबिनेट' प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

भारत के उदारवादी नता यह अनुभव कर रहे थे कि कांग्रेस की नीतियाँ भारत को गत की ओर धकेल रही हैं। इस प्रकार कांग्रेस और कांग्रेसतर राजनीतिज्ञों में एक प्रकार से रस्सा-कसी सी होने लगी। मई २, १९४२ को इलाहाबाद में आयोजित कांग्रेस के अधिवेशन में बाबू जगतनारायण ने 'अखण्ड हिंदुस्तान' का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो विशाल बहुमत से स्वीकार कर लिया गया। किन्तु राजगोपालाचारी ने इस प्रस्ताव का भी विरोध करना आरम्भ कर दिया और जब उसी दिन उन्होंने पाकिस्तान निर्माण सम्बंधी प्रस्ताव प्रस्तुत किया तो १५ के विरुद्ध १२० मतों में कमेटी ने उसको अस्वीकार कर दिया। तब तथाकथित नेशनलिस्ट मुसलमानों ने अखण्ड भारत प्रस्ताव का विरोध करना आरम्भ किया। पण्डित नेहरू और मौलाना आजाद उनकी पीठ थपथपाने लगे। गांधी ने नेहरू और मौलाना की पीठ थपथपा दी।

'मुसलमानों को साथ लिए बिना स्वराज्य मिलना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है।' गांधी के इस अदूरदर्शितापूर्ण विचार में जिन्ना आदि पथक्तावादी मुसलमानों को बहुत बल मिला। कांग्रेसियों के हिंदू मुस्लिम एकता के प्रयासों का मिटाते हुए मुस्लिम लीग ने 'पाकिस्तान' का नारा घोषित कर दिया और समस्त दश में मुसलमानों की ओर में उसका स्वागत हुआ।

पाकिस्तान की बढ़ती हुई माँग को देखकर गांधी विचलित हो गया तो बोर्ड

अब उगाय - दख उसने घोषणा कर दी कि पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा' इसके साथ ही वे मुसलमानों की खुशामद में जुट गए।

## सावरकर की भविष्यवाणी

सावरकर अब तक गाँधी और उनकी कांग्रेस को भली प्रकार जान और समझ चुके थे। सावरकर ने इस आत्मघाती नीति के विरोध में चेतावनी देन हुए कहा, पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा' की घोषणा करने वाला नेता एक दिन मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए पाकिस्तान की योजना को अवश्य ही स्वीकार कर लेंगे। अतः हिंदुओं को चाहिए कि वे उनके आश्वासनों पर तनिक भी भरोसा न करें उनके जाल में न फँसे।

अतः में वहीं हुआ जिसकी ओर सावरकर ने सबत किया था। डेढ़ वषर बाद ही १९४४ में राजाजी ने कांग्रेसी नेताओं को कुछ शर्तों के साथ भारत विभाजन का समर्थन करने के लिए तैयार कर ही लिया। किंतु उधर जिना था कि किसी अर्थ की शर्तों को माने बिना अपनी शर्तों पर 'पाकिस्तान' की अपनी भाग को पूरा करवाने के लिए कृत सकल्प था।

ज्योही गाँधी ने भारत विभाजन की भाग को स्वीकार किया कि समस्त भारत में क्षीम की चहुर सी कौंधने लगी। न केवल कांग्रेसीतर जन अपितु अधिकांश कांग्रेसीजन भी इस काम में खिन दिखाई देन लग। सावरकर को अब यह विदित हुआ तो उस समय के हिंदू महासभा के कार्यकारी अध्यक्ष डाक्टर श्यामप्रसाद मुखर्जी को गाँधी के पाम भेजकर उनके माध्यम से उन्हें यह बताने का यत्न किया कि गाँधी की यह नीति नितांत आत्मघाती नीति होने के साथ साथ देशवासियों के साथ भी मिश्रवातघात है। मुखर्जी ने गाँधी को यह भी बताया कि इससे समस्त भारत में विरोधतया मुस्लिम बहुल प्रांतों में भयंकर नर संहार होने की सम्भावना है।

गाँधी ने कभी किसी का सत्परामश स्वीकार नहीं किया। विशेषतया सावरकर जस हिन्दू नेताओं का। गाँधी की नजर से निराश होकर सावरकर ने हिंदू महासभा के नेताओं तथा कार्यकर्ताओं को परामश दिया कि समस्त देश में पाकिस्तान योजना विरोधी सभायें करके इसका कडा विरोध किया जाय। परिणामस्वरूप समस्त भारत में हिंदू महासभा के प्रयत्न से पाकिस्तान विरोधी जन सभायें ओर आंदोलन किए गए, जिनमें भारतीय जनता को पाकिस्तान बनने के दुष्परिणामों से अवगत कराया गया। इन सभाओं में ओर सावरकर, आशुतोष लाहिरी, डा मुंजे भाई परमानन्द आदि आष नेताओं ने अपनी वान रपी। अक्टूबर १९४४ में नई दिल्ली में आयण्ड भारत सम्मेलन का आयोजन किया गया। देशभर के सभी हिंदू नेता और शकराचार्यों ने इस सम्मेलन का सम्बोधन किया। इस ऐतिहासिक सम्मेलन का दशवासिया पर यथोचित प्रभाव हुआ। परिणामस्वरूप स्थान-स्थान पर कांग्रेसी नेताओं का जाने शण्डा में स्वागत करार होन लगा।

किंतु जब निर्वाचन का समय आया तो कांग्रेस न कुटिल चाल चलकर 'अखण्ड भारत' का आश्रय लेकर निर्वाचन में भाग लिया। उस समय भी सावरकर ने हिंदू मतदाताओं को सावधान करत हुए कहा था, "कांग्रेसी नेता निर्वाचन में हिंदुओं का मत प्राप्त करने के लिए ही 'अखण्ड भारत' का नारा लगा रहे हैं। किंतु निर्वाचन सम्पन्न होत ही य दो मुह कांग्रेसी नेता पुन पाकिस्तान का समर्थन करके देश के साथ विश्वास-पात करेंगे।"

सावरकर की यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। न केवल गांधी अपितु उनके सभी अनुयायियों ने पाकिस्तान योजना का समर्थन किया और यथामय पाकिस्तान को भी 'सह्य' स्वीकार कर लिया। लाख पर बनन वाला पाकिस्तान या सहज ही उहाने स्वीकार कर लिया। भल ही उसमें असह्य हिंदुओं को लाख के रूप में धराशायी कर दिया हो।

इस अवधि में देश विदेश के अनेक लोग सावरकर से मिलकर अथवा पत्र व्यवहार द्वारा उनसे भारत की राजनीति, विशेषतया पाकिस्तान निर्माण की कार्यविधि आदि, पर विचार विमर्श करत रहे थे। इन सबके साथ सावरकर ने अपने विचारों में भारत विभाजन का प्रत्यक्ष शब्दों में विरोध किया और घोषणा की कि भारत का विभाजन घोर अराष्ट्रीय कार्य होगा।

प्रसिद्ध गांधीवादी अमेरिकी पत्रकार लुई फिशर उन दिनों भारत का भ्रमण कर भारत विभाजन के बारे में नेताओं की प्रतिक्रिया जानने में लगे हुए थे। इसी प्रसंग में पहले वे जिन्ना से और फिर हिंदू नेता के रूप में सावरकर से मिलने के लिए भी गए। उस समय उन्होंने सावरकर से पूछा कि यदि मुसलमानों को पथक देश पाकिस्तान दे दिया जाए तो उसमें सावरकर को क्या आपत्ति है?

सावरकर ने उसको ऐसा सटीक उत्तर दिया कि फिशर 'फिरा' हो गया। उन्होंने कहा कि अमेरिका में इतने दिनों से नीग्रो जाति के लोग पृथक 'नीग्रोलैंड' की मांग कर रहे हैं, आप उस स्वीकार क्या नहीं कर लेते?

फिशर ने बिना सोच समझे और एक क्षण का भी विलम्ब किए बिना उत्तर दिया, "देश का विभाजन करना राष्ट्रीय अपराध होगा, इसलिए हम उनकी मांग को स्वीकार नहीं करते।"

सावरकर ने कहा, 'आपका उत्तर न केवल राष्ट्रभक्ति से ओत प्रोत है अपितु सत्यपरक भी है। कोई भी राष्ट्रभक्त अपने देश का विभाजन स्वीकार नहीं कर सकता। जो देश का विभाजन चाहता है उनको देशभक्त नहीं कहा जा सकता। हम भी इसीलिए भारत विभाजन की योजना को राष्ट्र विरोधी मानकर उसका विरोध कर रहे हैं। जब कि मुस्लिम लोग जो इस देश को ही 'नापाक' मानते हैं, इन्होंने टुकड़े करने पर तुली हुई है।'

फिशर के पास इसका क्या उत्तर हो सकता था। वह चुप हो गया।

लुई फिशर ने कालांतर में अपने एक लेख में लिखा, "सावरकर के हृदय में

जहाँ मैंने राष्ट्रभक्ति की असोमित भावना पाई, वहाँ जिना के हृदय में भारत व भारतीय सभ्यता के प्रति घोर घणा के बीज दिखाई दिए।”

### सत्याप्य प्रकाश पर प्रतिबन्ध

भारतीयता के विरुद्ध मुसलमानों का अभियान अनेक पक्षीय था। जहाँ भी और जिस स्तर पर भी हो सकता था, वे भारत का विरोध करने में नहीं चूकते थे। बीसवीं शती के पाँचवें दशक के पूर्वार्द्ध में सिन्ध में मुसलमानों का बहुमत होने के कारण वहाँ लीग का मन्त्रिमण्डल शासन कर रहा था। १९४३ में वहाँ मुस्लिम लीग का अधिवेशन हुआ और उसमें एक प्रस्ताव द्वारा ‘सत्याप्य प्रकाश’ के चौदहवें समुल्लास को इस्लाम के विरुद्ध बताकर उस पर प्रतिबन्ध की माँग की गई। माँग तो समस्त भारत के लिए की गई थी परन्तु क्योंकि उस समय सिन्ध में लीग मन्त्रिमण्डल शासन कर रहा था अतः सिन्ध में सत्याप्य प्रकाश के चौदहवें समुल्लास पर तुरन्त प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

इस प्रतिबन्ध में समस्त भारत में, न केवल आपसमाज के क्षेत्र में, अपितु समस्त हिन्दू समाज में क्षोभ की लहर दौड़ गई। २० फरवरी, १९४४ को दिल्ली में एक विशाल आय सम्मेलन आयोजित कर उसमें इस विषय पर भाषण हुए और प्रतिबन्ध की निन्दा कर उसे हटाने के प्रस्ताव पारित किए गए। देश के कोने-कोने से बापसराय को असह्य तार भेजे जाने लगे। भाई परमानन्द ने इस विषय को केन्द्रीय असेम्बली में उठाया और कहा कि इसी प्रकार के आपत्तिजनक अनेक अश कुरान में हैं, अतः उस पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया जाना चाहिए।

सावरकर ने इससे जागे बड़ कर कहा, ‘जब तक सिन्ध में सत्याप्य प्रकाश पर प्रतिबन्ध है तब तक काँग्रेस शासित प्रांतों में कुरान पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाना चाहिए।’

सावरकर ने भारत के बापसराय और सिन्ध के गवर्नर को तार देकर कहा, “सत्याप्य प्रकाश आय समाजियों के लिए तो विशेषतया पवित्र पुस्तक है और सामान्य हिन्दू भी उसका उसी भाँति आदर करता है। प्रत्येक शास्त्र ग्रन्थ, जिसमें ‘वाइबल’ भी सम्मिलित है, कुछ न कुछ जय मता के विषय में विपरीत बात कहते ही हैं। किन्तु किसी हिन्दू मन्त्रिमण्डल ने अहिन्दू शास्त्र ग्रन्थ पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया है। सिन्ध सरकार द्वारा सत्याप्य प्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाए जाने से साम्प्रदायिक वैमनस्य उत्पन्न होगा। यदि सत्याप्य प्रकाश पर से प्रतिबन्ध न हटाया गया तो हिन्दू कुरान पर प्रतिबन्ध का आन्दोलन आरम्भ कर देंगे। अतः उचित यही है कि सिन्ध में सत्याप्य प्रकाश पर से प्रतिबन्ध तुरन्त हटा लिया जाय।”

उत्थापित आन्दोलन पर प्राणपण से योछावर गाँधी और उनके अनुयायियों ने इस सम्बन्ध में कहीं एक शब्द भी नहीं बोला। किन्तु सावरकर तार और वक्तव्य देकर ही चुप नहीं बैठे, उन्होंने इस विषय में बापसराय से भेंट करके उनके समर्थ अपना पक्ष

प्रस्तुत किया।

जयपुर के दीवान मिर्जा इस्लाम ने जब रियासत में हिंदी के साथ खिलवाड़ कर उद्दू का प्रस्थापित करना चाहा तो वहाँ के हिंदू नेता पण्डित रामचंद्र शर्मा 'वीर' ने उसके इस कृत्य के विरुद्ध आमरण अनशन की घोषणा कर दी। उन्होंने इस्माइल के राज्य शासन को हिंदू विराधी शासन बताया। उनके आमरण अनशन ने मिर्जा इस्माइल की नीतियों का पर्दा-फाश कर दिया और अन्त में सावरकर के आग्रह पर उन्होंने पैंतालीस दिन बाद अपना अनशन समाप्त किया।

इस अवधि में आजाद हिन्द फौज ने भी अपने कार्य में पर्याप्त प्रगति कर ली थी। इसके नेता सावरकर से ही प्रेरणा प्राप्त करके कार्य में जुटे थे। २५ जून, १९४४ को सिंगापुर रेडियो से प्रसारण में नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने कहा था, "जबकि अग्र-विश्वास और अधानुकरण से प्रभावित होकर कांग्रेस के नेता हमारे सनिका को हतोत्साह कर रहे हैं ऐसे में और सावरकर हमारे भारतीय युवकों को सेना में प्रविष्ट होने के लिए प्रोत्साहित कर हमारा उत्साह बढ़ा रहे हैं। वे ही युवक कालान्तर में प्रशिक्षित होकर हमारी सेना में आकर भारत मुक्ति के कार्य में सलग्न होते हैं।"

इसी प्रकार रासबिहारी बोस ने भी अपने रेडियो प्रसारण में सावरकर के कार्य और प्रेरणा के लिए उनका आभार जताया।

अक्टूबर, १९४४ में नई दिल्ली में अखण्ड हिंदुस्तान सम्मेलन में सावरकर ने गांधी और कांग्रेस की नीति का पर्दाफाश करते हुए भारतवासियों, विशेषतया हिंदुओं, को पुनरेण सावधान किया।

सावरकर ऐसा कोई भी अवसर नहीं चूकते थे जिसमें कि वे अखण्ड भारत और हिंदू की बात कर सकते हों।

## बड़े भाई का निधन

ज्यो-ज्यो सावरकर का संगठन और आमरण का कार्य प्रगति करता जाता था त्यों त्यों उनकी अधिक परिश्रम करना पड़ता था। परिणामस्वरूप अण्डमान में जिन दण्डिता ने जड़ जमाई थी वह धीरे धीरे उभरने लगती। इस स्थिति की ध्यान में रखते हुए सावरकर ने हिंदू महासभा का उत्तरदायित्व अब डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी के कंधे पर डालना आरम्भ कर दिया और विलासपुर अधिवेशन के अवसर पर डा. मुखर्जी को हिंदू महासभा का अध्यक्ष निर्वाचित कर दिया गया। विलासपुर अधिवेशन में सावरकर ने केवल सत्याग्र प्रकाश सम्मेलन की अध्यक्षता की।

सन् १९४५ का वर्ष सावरकर के जीवन में अनेक प्रकार से महान परिवर्तन का वर्ष सिद्ध हुआ। निरन्तर गिरता हुआ स्वास्थ्य उन्हें अब कार्य करने से रोक रहा था। कुछ समय बाद ऐसी स्थिति आ गई कि उनका हिलना दूलना भी दूभर हो गया। सन् १९३७ में जब वे रत्नागिरि में स्थानबद्ध हुए थे तब से निरन्तर अथक प्रयत्न कर रहे थे। किन्तु अब उनका स्वास्थ्य जबाब दे गया।



सावरकर स्वयं तो रुग्ण थे ही, किंतु माच १९४५ में उनको एक बहुत बड़ा झटका लगा। उनके बड़े भाई बाबासाहेब सावरकर, जो अनेक महीनों से रुग्ण चल आ रहे थे माच, १९४५ में सांगली में उनका निधन हो गया। सावरकर के लिए उन बड़े भाई, मात्र बड़े भाई नहीं अपितु उनके परामशदाता, सहयोगी और प्रेरणा के स्रोत थे। वे उनके सुख-दुःख में निरंतर सहयोगी रहे थे। भाईचारे के इतिहास में ऐसे भाई कदाचित ही वही देखने को मिलते हैं। उनके दण्डांत के कुछ दिन पूर्व सावरकर उनसे मिल कर आए थे। डा. नारायण सावरकर निरन्तर उनकी सेवा कर रहे थे। भाई से मिलकर जान के उपरान्त सावरकर ने अपने बड़े भाई का एक सात्वतापूर्ण पत्र लिखा था कि उन्होंने अपने जीवन में जितना अधिक से अधिक हो सकता था, वह किया और अब मृत्यु आपके समीप खड़ी है। उसे आप शत्रु नहीं अपितु मित्र समझें। आपने क्रांति की मशाल को सुख तथा सकट, दोनों ही घड़िया में ऊँचा उठाए रखा, यही आप और हमारे लिए सब की बात है।

बाबासाहेब सावरकर की मृत्यु पर सावरकर को दश दिनों तक पत्रों और तारों का ढेर मिला। किंतु मोहनदास कमचन्द गांधी, जिसने निजाम की माता की मृत्यु पर उस देशद्रोही और हिंदू द्रोही को सात्वता का तार भेजा, सावरकर के प्रति उसकी सहानुभूति की स्याही सबका सूखी रही। बहुत सोच समझ कर उसने सावरकर को पत्र तो भेजा किंतु उस पत्र पर जहाँ सावरकर कभी रह ही नहीं थे। देश विदेश के नेता, समाचार पत्र, राजनेता सब जानते थे कि सावरकर बम्बई में हैं, किन्तु गांधी के मस्तिष्क में यह बात नहीं आई। फिर भी सावरकर ने उसके पत्र के लिए धन्यवाद का पत्र भेजा था।

## युद्ध के उपरान्त

भारत के वायसराय लीड बक्स २१ मार्च, १९४५ को अंतरित सरकार का प्रस्ताव लेकर सदन के लिए रवाना हुए। वह हिन्दुओं के लिए और अधिक हानि की बात थी। कांग्रेस में तथा उसने बाहर भी केवल हिंदु महासभा को छोड़कर कोई भी ऐसा नहीं था जो हिंदू हिता की रक्षा के लिए कुछ कर रहा हो। हाँ हिंदुभा के साथ विश्वासघात करने वाले सभी थे।

सावरकर निरन्तर हिंदू नेताओं को हिंदू हितों की रक्षा के लिए प्रेरित करते रहते थे अतः जब अप्रैल १९४५ में बड़ौदा में अखिल भारतीय हिंदू राज्य सम्मेलन हुआ तो आयोजकों के आग्रह पर अत्यंत रुग्ण होने पर भी सावरकर उसकी अध्यक्षता करने के लिए बड़ौदा गए। मई में अपनी कन्या के विवाह अवसर पर सावरकर पूना गए तो वहीं पर उन्होंने राष्ट्रदल को सम्बोधित किया।

भारत के वायसराय लीड बक्स सदन में ही थे तभी जर्मनी ने आत्म समर्पण कर दिया। इस प्रकार मई के प्रथम सप्ताह में योरोप में द्वितीय विश्व युद्ध का अंत। मई १९४५ में ही चर्चित न प्रधानमन्त्रित्व से अपना त्याग पत्र द दिया था।

जापान अभी भी ऐशिया में युद्ध जारी रखे हुए था। १४ जुलाई, १९४५ को वायसराय ने एक रेडियो प्रसारण द्वारा भारतीय नेताओं को बातचीत का निमन्त्रण दिया। इस योजना के अन्तर्गत हिंदू और मुसलमानों को बराबर का प्रतिनिधित्व देने की बात थी किन्तु भारतीय राज्यों के प्रतिनिधित्व का उसमें किंचित भी उल्लेख नहीं था। इसी अवसर पर 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के हीरो लोगों को बर्धनमुक्त किया गया। इस घोषणा के बाद कांग्रेसी नेता अग्नेज साम्राज्यवाद की रक्षा के लिए जापान के विरुद्ध, इतना ही नहीं अपितु नेताजी सुभाष बोस तथा उनकी आजाद हिन्द सेना के विरुद्ध, लड़ने के लिए प्रवृत्त हो गए। पण्डित नेहरू ऐसी घोषणा करने वालों में अग्रिम व्यक्ति थे।

## शिमला सम्मेलन

गांधी नेहरू और लीड बेवेल की मिली भगत से २२ प्रतिशत जनसंख्या वाले मुसलमानों और ७८ प्रतिशत जनसंख्या वाले हिंदुओं को भारत के शासन में आधा-आधा भाग दिये जाने का निश्चय हो गया। शिमला में इस सम्बन्ध में जो सम्मेलन हुआ था उसमें कांग्रेस का नेता मोलाना आजाद था और लीग का नेता जिन्ना। अर्थात् हिंदुओं का नेता भी मुसलमान और मुसलमानों का नेता भी मुसलमान। हिन्दू महासभा ने शिमला सम्मेलन का बहिष्कार किया था। २८-६-१९४५ को सम्पन्न शिमला सम्मेलन की पहली बैठक के पहले ही कुछ क्षणों में बेवेल योजना को स्वीकृति की मोहर लगा दी गई। इसमें जापान और आजाद हिन्द फौज का विरोध मुख्य था। किन्तु केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में किस किस को सम्मिलित किया जाय इस पर अनेक दिनों तक बहस के उपरांत भी निणय नहीं किया जा सका और वह सम्मेलन १४ जुलाई को समाप्त घोषित किया गया। इस प्रकार भले ही बेवेल योजना असफल रही हो किन्तु इससे मुसलमानों को और अधिक लाभ की बात भी स्पष्ट हो गई। बेवेल मुस्लिमों का घोर पक्षपाती था। उसके आश्रय ही राजनीतिक दल मुस्लिम लीग साम्प्रदायिक दल के रूप में परिणत हो गया। जून १९४५ की पूर्णतः सम्पन्न हिन्दू महासभा की कार्यकारिणी में लीड बेवेल तथा शिमला सम्मेलन का विरोध व्यक्त किया गया। हिन्दू और मुसलमानों में समानता के बेवेल के प्रस्ताव की सावरकर ने घोर निन्दा की। इस सभा में जो नेता ब्रिटिश सरकार के उपाधिधारी थे उन सबने इसके विरोध स्वरूप अपनी-अपनी उपाधियाँ त्याग दीं।

संयोग की बात थी कि जुलाई में ब्रिटन में आम निर्वाचन हुए और उन निर्वाचनों में मजदूर दल विजयी रहा। उधर जापान को अणु-बम ने ध्वस्त कर दिया तो अगस्त १९४५ में उसने भी हथियार डाल दिए। घटनाएँ द्रुत गति में आगे बढ़ती जा रही थीं। वायसराय एकबार पुनः लन्दन गया और वहाँ से लौटकर उसने भारत में भावजनक चुनाव की घोषणा कर दी, जिसमें कि भारत की राजनीतिक पार्टियों की शक्ति का अनुमान लगाया जा सके।

सन् १९४६ के आरम्भ में साधजनिक निर्वाचन हुए। सावरकर अवस्थ थे,

तदपि उहोने हिन्दुओ और हिंदू महासभा को निर्देश दिया कि इन निर्वाचनो हैं उनका ध्येय 'पूर्ण स्वाधीनता और अखण्ड भारत' होना चाहिए। उनका कहना था 'कांग्रेस को वोट, पाकिस्तान को वोट' है। नेहरू ने जब देखा कि हिन्दू मतदाता कांग्रेस की रीति नीति से रुष्ट हैं तो उसने कलकत्ता की एक सभा में स्पष्ट घोषणा करत हुए कहा, 'मुस्लिम लीग साम्प्रदायिक दल है, हम उससे कदापि समझौता नहीं करेंगे और न भारत का विभाजन ही स्वीकार करेंगे।' उस समय के मध्य प्रांत और बरार के मुख्यमंत्री रविशंकर शुक्ल ने तो यहाँ तक कह दिया कि यदि पाकिस्तान की स्थापना हो गई तो भारत में मुसलमानों को विदेशी समझा जाएगा।

इसके विपरीत सियाक्त अली और सुहरावर्दी जैसे मुसलमान नेताओं ने मुसलमानों को भड़काने के लिए बड़े ही जोशीले और धिनीने भाषण दिए। जिनसे भार काट और हत्या की दुर्गंध आती थी। उन्होंने नेहरू तक को चेतावनी दे डाली कि वह मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में एक भी स्थान जीतकर दिखा दे। यह घटनावश या अथवा कि हिन्दुओं का दुर्भाग्य इस निर्वाचन में कांग्रेस अच्छे बहुमत से जीती थी और हिन्दू नेता हार गए थे।

### आजाद हिंद सेना के बन्दी

जापान के अगस्त १९४५ में आत्म समर्पण के साथ ही आजाद हिंद सेना के सैनिक और अधिकारी बन्दी बना लिए गए थे। दिसम्बर में सावरकर ने ब्रिटन के प्रधानमंत्री मि एटली से आग्रह किया कि आई एन ए के सभी सदस्यों को मुक्त कर दिया जाय। अतीत में जिन कांग्रेस ने सुभाष बोस और उनकी आजाद हिंद सेना का घोर विरोध किया था अब स्थिति बदलने पर और हिंदू महासभा द्वारा उनके वचन को राजनीतिक मंच पर स्थापित कर देने पर कांग्रेस ने अबसरवादिता का रुख अपनाया और आई एन ए के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करनी आरम्भ कर दी। निर्वाचना के ध्यान में रखते हुए कांग्रेस ने आई एन ए के अभिमुक्तों की पैरवी करने का निश्चय भी कर लिया।

इस प्रसंग में एक बात ध्यान देने की है कि जहाँ एक ओर कांग्रेस जी जान से हिन्दुओं का अहित करने पर उतारू थी, वहाँ दूसरी ओर हिन्दू महासभा उत्तनी ही शक्ति और प्राण-पण से हिन्दुओं का हित करने के लिए कृत सकल थी। किन्तु भारत में राष्ट्रीय स्वयं सेवक सघ और आय समाज जैसी दो विनाश अखिल भारतीय संस्थाएँ थी, वे उस स्थिति में क्या कर रही थीं, यह विचारणीय था। हिन्दुओं के लिए जहाँ जीवन मरण का प्रश्न बन गया था, जहाँ हिन्दू राष्ट्र दौब पर लगा हुआ था वहाँ ये दोनों संस्थाएँ मौन थीं। आय समाज के अधिकांश सदस्य तो कांग्रेसी होने के कारण उसके साथ बंधे हुए थे। आई परमानंद आदि जैसे कुछ लोग ही ऐसे थे, जो हिंदू महासभा के मंच से हिन्दुओं के हित साधन में सलग्न थे। किन्तु 'सघ ? सघ क्या कर रहा था ? हिन्दुओं के लिए हिन्दुओं का संगठन अथवा संगठन-संगठन के लिए कहने वाला केवल सघ-स्थान पर था तो बबडूही सेल रहा था या फिर साठी खताना सीधे भर

रहा था। हाँ, निर्वाचनों में दोनों संस्थाओं के सदस्यों ने कांग्रेस की विजय में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी थी।

सावरकर का स्वास्थ्य निरंतर गिरता गया, उनकी गतिविधियों पर रोक लगती गई। जनवरी २०, १९४६ के दिन उन्हें प्रबल हृदयाघात लगा। डा. साठे की औपधि और शोलापुर के गोकुलचंद हीराचंद की परिचर्या से सावरकर ने वह आघात किसी प्रकार सह लिया।

## सैनिक विद्रोह

निर्वाचन हुए। यदि कांग्रेस के प्रचार जादि को देखा जाय तो कहना पड़ेगा कि मुसलमानों के सामने उसने भ्रुह की खाई। हिन्दू महासभा के साथ जो विश्वासघात का बीज कांग्रेस ने बोया उसके परिणामस्वरूप निर्वाचनों में उसका तो सफाया ही हो गया कि तु कांग्रेस को भी प्रांतीय सभाओं में ५०७ स्थान ही प्राप्त हुए, जबकि २२ प्रतिशत जनसंख्या वाला मुस्लिम समुदाय ४२७ स्थान प्राप्त करने में सफल हो गया।

परिस्थिति दिन प्रति दिन बदलती जा रही थी। आई एन ए के जवानों पर किए गए और किए जाने वाले अत्याचार रंग दिखा रहे थे। वायु सेना और नौ सेना के बम्बई, कलकत्ता और कराची के द्रो में विद्रोह के स्वर उभरते दिखाई देने लगे थे। उधर स्पल सेना भी स्वतंत्रता का रंग देखने लगी थी।

इस सब स्थिति को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने १० सांसदों का एक प्रतिनिधि मण्डल भारत भेजा जो चार सप्ताह तक देशभर में भ्रमण, सर्वेक्षण तथा विभिन्न दलों के नेताओं से भेंट बार्ता करता रहा। उसने भेंट बार्ता के लिए सावरकर को भी आमन्त्रित किया था, किंतु सावरकर अस्वस्थ होने के कारण नहीं जा सके। अंत में शिष्ट मण्डल १० फरवरी, १९४६ का वापस चला गया।

इस शिष्ट मण्डल के वापस जाने के उपरान्त १६ फरवरी १९४६ को सर स्टैफर्ड क्रिप्स, ए की अलेक्जेंडर और लौड पथिक लारेन का एक अन्य शिष्ट मण्डल भारत भेजने का निश्चय किया गया। १४ मार्च १९४६ को ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने भारत को ब्रिटिश कौमनवेल्थ के भीतर रहत हुए अपना बाहर रहत हुए, जैसा वह चाह स्वतंत्रता देने की घोषणा कर दी। अल्पसंख्यक समस्या के विषय में एटली का कहना था कि हम अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों पर 'वीटो' का अधिकार देना स्वीकार नहीं कर सकते।

२४ मार्च, १९४६ को ब्रिटिश केबिनेट मिशन दिल्ली पहुँच गया।

इस अवसर पर नेहरून जो घोषणा की उससे पत्रकार जगत में खलबली मच गई। सभी ने कहा कि आखिरकार नेहरून पाकिस्तान के कपन में आखिरी कील ठोक ही दी। दूसरी बात जो उल्लेखनीय थी वह यह कि इस अवसर पर भी मुसलमानों का नेतृत्व जिन्ना कर रहा था तो कांग्रेस के हिन्दू दल के रूप में मौलाना आजाद उनका नेतृत्व कर रहा था। ब्रिटिश सरकार तथा भीम आरम्भ से ही कांग्रेस को हिन्दूओं की

पार्टी मानते आए थे। उसी अवसर पर गांधी के तथा रचित परमभक्त हसन शहीद सुहरावर्दी ने घोषणा कर दी कि 'पाकिस्तान मुसलमानों की नवीनतम मांग है, किंतु यह ध्यान रहे कि यही अंतिम मांग नहीं है। यदि अंग्रेजों ने भारत का भाग्य कांग्रेस के हाथ में सौंपा तो मुस्लिम लीग के द्वितीय सरकार को एक दिन भी नहीं चलने देगी।' सय्यद फिरोजखान नून ने तो यहाँ तक कह दिया कि वह भारत को चंगेजखाँ के दिनांक स्मरण करा देगी।

## अन्तरिम सरकार

१२ मई, १९४६ को शिमला में त्रिपक्षीय चर्चा हुई किन्तु वह किसी नियम पर नहीं पहुँच पाई। भारत की स्वतंत्रता पर केबिनेट मिशन के प्रस्तावों पर विचार करना कांग्रेस ने १६ मई को स्वीकार किया तो लीग ने २२ मई को। जून के अंत में केबिनेट मिशन वापस लंदन चला गया। समय समय पर गुरु ब्रूखतापूज और जितना धूमतापूर्ण वक्तव्य दत्त रहे। २४ अगस्त को वायसराय ने अन्तरिम सरकार की स्थापना की इच्छा की घोषणा कर दी। १६ सदस्यों के मन्त्रिमण्डल में से ६ कांग्रेस के, ५ लीग के तथा शेष ५ विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों के प्रतिनिधियों के रूप में लेने का नियम हुआ। कांग्रेस ने २ सितम्बर को शपथ ग्रहण करत हुए अपने भाग के ६ स्थानों में से एक स्थान शोपित समाज को दिया तथा एक स्थान मुसलमानों को। इस प्रकार अपने बहुमत को स्वयं ही कांग्रेस ने अल्पमत में परिणत कर दिया।

इसमें पूर्व अगस्त में मुस्लिम लीग ने नोआघासी, कलकत्ता आदि अनेक स्थानों पर डायरेक्ट ऐक्शन के रूप में 'जिहाद' आरम्भ कर दिया। मुस्लिम गुण्डों ने वह करके दिया जो फिरोजखाँ नून ने कहा था। इतना ही नहीं जो चंगेजखाँ ने नहीं दिया होगा वह डाँ मुसलमान गुण्डों ने हिंदुओं के साथ किया। सावरकर ने उस समय अपनी भाषा शैया से वक्तव्य देकर हिंदुओं को कहा, "हिंदुओं को इन अत्याचारों का दुस्ता स सामना करना चाहिए। 'अहिंसा' व 'महिष्मृता' जैसी मुखतापूज नीति को त्याग कर गुण्डों की उन्नी की भाषा में जब तक उत्तर नहीं दिया जाएगा, व विराम नहीं लेंगे।" हिंदुओं ने वही किया और अपने अपमान का बदला लिया।

अक्टूबर में मुसलमानों के प्रतिनिधियों ने भी मन्त्रिमण्डल में अपना स्थान ग्रहण कर लिया।

दश में भारत विभाजन की बात फिर बल पकड़ने लगी। कांग्रेस कार्यकारिणी विचलित होती रही। कालांतर में कांग्रेस कार्यकारिणी ने पञ्जाब का विभाजन स्वीकार कर लिया। किन्तु बंगाल व विभाजन की बात पर बहुत विवाद होता रहा। ऐसी स्थिति में सावरकर ने गिरन और दुष्टों हात हुए कहा, 'बंगाल में हिंदू बहुल प्रान्त का निर्माण किया जाना चाहिए। जो बिना द्वितीय हिंदू राज्य के प्रति वफादार रहे।'

ब्रिटिश सरकार की घोषणा के अनुसार २२ मार्च १९४७ को भारत के नए के रूप में सोड माउंटबेटन भारत पहुँच गया। सावरकर ने उसकी तार द्वारा

सूचित किया कि भारत को स्वतंत्रता देने के विषय पर कोई सद्धान्तिक निर्णय होने से पूर्व हिंदू महासभा और मास्टर तारासिंह से भी वार्तालाप किया जाय। सावरकर ने ४ अप्रैल, १९४७ को बंगाल की हिंदू महासभा को लिखा कि वे पश्चिम बंगाल में एक पृथक हिंदू प्रान्त के निर्माण की जोरदार माँग करें। आमाग से बंगाल में घुसकर आने वाले मुसलमानों को बंगाल से निष्कासित किए जान की माँग के लिए सावरकर ने बंगाल हिंदू महासभा को लिखा। उन्होंने माँग की कि सिंध के हिंदू बहुल जिलों को बम्बई के साथ मिला दिया जाना चाहिए। मुस्लिम बहुल प्रान्तों में मुसलमानों द्वारा हिंदुओं के साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा है। हिंदू बहुल प्रांतों में मुसलमानों के साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए।

लौड माउटबेटन ने कांग्रेसी और लीगी नेताओं से विचार विमर्श किया और १८ मई, १९४७ को अपने अधिकारियों से वार्तालाप करने के लिए लंदन चला गया। सावरकर समझ गए कि निर्णायक घड़ी आ पहुँची है। सावरकर ने कांग्रेसियों से अपील की कि वे भारतवासियों के साथ विश्वासघात करके भारत विभाजन को किसी भी मूल्य पर स्वीकार न करें। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि यदि उनको गद्दी की बहुत ही ललक हो तो वे अपने सभी मंत्रिमण्डला तथा पदा से त्यागपत्र देकर इस मुद्दे पर पुनः चुनाव लड़ लें। किंतु कांग्रेस पार्टी में ऐसा कौन था जो इस प्रकार की बुद्धिमत्ता की बात को समझने और फिर उस पर काय करने के लिए तैयार होता? उनको तो प्रसन्नता थी कि जैसी कौसी भी सही स्वतंत्र सत्ता तो प्राप्त हो रही है। क्या किसी अन्य देश ने भी इस प्रकार का अनाचार अपने लोगों के हाथों सहा है?

जवाहरलाल नेहरू न तो २९ मई, १९४७ को ही लखनऊ राजनीतिक कांग्रेस में कह दिया था कि यदि मुसलमान चाहत हो कि उन्हें पाकिस्तान चाहिए तो वे ले सकते हैं। सरदार पटेल ने उससे भी पूर्व १४ अप्रैल, १९४७ को बम्बई में कह दिया था कि 'यदि भारत का विभाजन करना ही हो तो बहुत भी सम्भव है जब हम लोगों ने भी उस विषय में परामर्श किया जाय और शान्तिपूर्ण रीति से समझौता किया जाय।' डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने सुरक्षा सनिकों के भी विभाजन की माँग की। इस प्रकार भारत की एकता और अखण्डता का विषय केवल सावरकर का ही मिरदद रह गया था।

### ३ जून की घोषणा

मई के अंत में वायसराय लंदन से वापस आया और ३ जून, १९४७ को ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने लंदन से तथा वायसराय माउटबेटन ने दिल्ली से वक्तव्य प्रसारित कर दिया कि पंजाब तथा बंगाल का विभाजन कर पाकिस्तान की स्थापना के साथ भारत और पाकिस्तान को स्वतंत्रता प्रदान की जायगी। इसको जून ३ की घोषणा कहा गया।

३ जून की घोषणा पर नेहरू ने कहा था, "भारत में विद्यमान हिंदू और

मुस्लिम समस्या का सदैव के लिए समाधान करने हेतु ही हम भारत का विभाजन स्वीकार कर रहे हैं।”

वीर सावरकर ने उस समय नेहरू और उनकी कांग्रेस को सावधान करते हुए कहा था हिंदू मुस्लिम समस्या के समाधान के रूप में देश को खण्ड-खण्ड करने वालों को मैं चेतावनी देता हूँ कि दश के बटवारे से यह समस्या सुलझने के स्थान पर और भी अधिक उत्पन्न जाणगी। क्योंकि यह प्रश्न दो जातियों के बीच का नहीं है। पाकिस्तान की स्थापना होते ही यह समस्या और भी तीव्र रूप धारण कर लेगी।”

६ जून को गाँधी की प्रायश्चात सभा के बाद उसी सभा में गाँधी का सदेश पढ़कर सुनाया गया— ‘कांग्रेस द्वारा ब्रिटिश सरकार को नई योजना स्वीकार किए जाने का मैं विरोध नहीं कर रहा हूँ।’

भारतवासियों को भली प्रकार स्मरण है कि गाँधी ने अनेक बार यह घोषणा की थी कि पाकिस्तान मेरे शत्रु पर बनेगा। नेहरू ने भी कहा था कि हम पाकिस्तान नहीं बचने दग और अब सत्ता के लोभ में किसी को अपने पूर्व वचन का स्मरण नहीं रहा। यहाँ तक कि किसी ने क्षमा याचनापूर्वक यह भी नहीं कहा कि ‘हमने जा बचन दिया था उस निभा न पाने का हमें खेद है।’

१४ जून, १९४७ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के दिल्ली अधिवेशन में ३ जून योजना को स्वीकार कर लिया गया। उस समय मौलाना आजाद कांग्रेस का अध्यक्ष था और उन्होंने कहा कि मुझ प्रसन्नता है कि हमने इस समस्या का शांतिपूर्ण उपाय ढूँढ लिया है। आजाद की प्रसन्नता क्यों न हो? मुसलमानों को पक्का रास्ता के रूप में भारत का बहुत बड़ा भाग जा मिल गया था।

इस योजना को स्वीकार करने में कांग्रेस के भीतर के सोशलिस्ट तटस्थ रह। कांग्रेस जना में से केवल एक ही विरोध का स्वर जो उठा वह बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन का था। उन्होंने उस समय भी कहा था कि भले ही कांग्रेस काय समिति ने इस स्वीकार कर लिया हो किन्तु कांग्रेसजन इसको अब भी अस्वीकार कर सकते हैं और उनको इसे अस्वीकार करना ही चाहिए।

सरदार पटेल का सहसा पाकिस्तान के पक्ष में हो जाना सबके लिए आश्चर्य की बात थी।

उस अधिवेशन में गाँधी ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को ‘अल्टीमेटम’ भेजा कि या तो पाकिस्तान की योजना को हमने वक्तमान रूप में स्वीकार करो या फिर कांग्रेस के जब तक के परीक्षित नेताओं के ध्यान पर दूसरे नौ सिद्धि लोगो को रेंटा दो। कांग्रेस जनों का यह कतब्य है कि वे अपने नेताओं की इच्छाओं का आदर कर उनका पालन करें। कांग्रेस नेताओं के लिए राष्ट्र और करादा जनो की प्रतिष्ठा की दायता अपनी प्रतिष्ठा महत्वपूर्ण थी।

सावरकर का कांग्रेस की रीति नीतियों का निरंतर विरोध करते ही रहते अतिरिक्त डा भीमराव अम्बेडकर भी एक ऐसा व्यक्ति था जिसने विधान

सभा में कांग्रेसी नेताओं को कहा था कि लोगों के भाव्य का निणय करते समय किसी व्यक्ति विशेष या नेताओं अथवा दलों की प्रतिष्ठा का प्रश्न नगण्य समझा जाना चाहिए।

किंतु गांधी ने इस प्रस्ताव के पक्ष में तूफान खड़ा कर दिया। दस वर्ष पूर्व जिस गांधी ने अपने शव पर पाकिस्तान बनने की बात कही थी वही गांधी पाकिस्तान बनाने की बात पर अड गया था। सत्य शोधक गांधी का सत्य यही था।

भारत में केवल दो ही व्यक्ति ऐसे थे जो इस विभाजन की रोक और रकवा सकते थे। एक था गांधी और दूसरा सावरकर। उनमें से गांधी ने तो स्वयं ही विभाजन स्वीकार कर लिया था और सावरकर आरम्भ से ही बार-बार कांग्रेस नेताओं और देशवासियों को चेतावनी देते आते हुए भी वर्तमान में अत्यंत रणता के कारण सीढ़े खड़े होने में सवथा असमर्थ थे।

‘ग्रह एण्ड तारे’ में ‘सत्याग्रही’ ने पृष्ठ ६० पर लिखा है “गांधी ने अपने राजनीतिक गुरु गोखले की भविष्यवाणी को सायक सिद्ध किया। जिसने कहा था कि जन साधारण में गांधी का बहुत प्रभाव होगा किंतु जब कभी राजनीतिक महासभों का इतिहास लिखा जाएगा तो उसमें गांधी का नाम असफल नेताओं के रूप में अंकित होगा।”

कम्युनिस्टों तथा वामपंथी दलों ने भी विभाजन की योजना को स्वीकार किया था। वे कहते थे कि दोनों भागों में मानवता का सन्देश प्रसारित करना उनका उद्देश्य है।

इतना होने पर भी पाकिस्तान निर्माण का विरोध अभी शांत नहीं हुआ था। ३ जुलाई १९४७ को समस्त भारत में विरोध दिवस मनाया गया। इसमें बम्बई, पूना, दिल्ली आदि अनेक बड़े नगरों में पूरा हड़ताल रही। प्रभात फेरियाँ निकाली गईं, विरोध सभायें की गईं, काले झण्डे सहाराये गए और कहा गया कि देश की स्वतन्त्रता के लिए क्रान्तिकारी बलिदानी वीरों ने अपने प्राणों की आहुति दी थी। पाकिस्तान स्वीकार करना उनके रक्त के साथ विश्वासघात करना है।

किसी ने किसी की नहीं सुनी। कांग्रेस नेता अब वृद्ध होने के साथ-साथ चूक गए थे। कांग्रेस के अनेक नेता इस अवधि में अनेक विषयों पर बातचीत करते रहे और मुसलमानों की ओर से अवेला जिन्ना वायसराय से बात करता रहा। अंत में अंग्रेजों ने मुसलमानों का साथ दिया और पाकिस्तान बनना निश्चित हो गया।

मोसले लियोनाड ने अपनी पुस्तक ‘दि लास्ट डेज ऑफ दि ब्रिटिश राज’ के पृष्ठ २४८ पर लिखा है, ‘पण्डित नेहरू ने बाद में कहा था — ‘यदि गांधी जी ने हम पाकिस्तान स्वीकार न करने की बात कही होती तो हम लोग निरन्तर लड़त-लड़ते प्रतीप्ता करते रहते।’

जब पाकिस्तान बनना निश्चित हो गया तो सावरकर को इससे बड़ा दुःख हुआ। तभी त्रायणकोर के दीवान ने ‘इंडियन इंडिपेंडेंस एक्ट’ के अन्तर्गत त्रायणकोर को स्व-



तत्र राज्य घोषित करने का निश्चय किया तो सावरकर ने उसका समर्थन किया। डा. अम्बेडकर ने त्रावणकोर तथा हैदराबाद राज्य को सुझाव दिया कि वे भारत राज्य में सम्मिलित हो जाय।

आय समाज और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, भारत के विभाजन की मूक दशक के रूप में दखत रहे। विभाजन विरोधी शक्तियों के साथ न आय समाज ने सहयोग किया और न ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने।

## भारत स्वतंत्र

### खण्डित भारत

सविधान सभा ने तिरंग झंडे को राष्ट्रीय झंडा स्वीकार कर उसके मध्य में चरखे के स्थान पर घमचक्र स्वीकार किया और छादी के स्थान पर देशम को ग्रहण किया तो गांधी ने इसे स्वीकार नहीं किया। ३ अगस्त १९४७ के अपने 'हरिजन' में उन्होंने एक लेख द्वारा अपनी असहमति व्यक्त कर दी।

जब कांग्रेस में मन्त्रीमण्डल गठन की भीतरी प्रक्रिया चलन लगी तो दक्षिण पश्चिमी कांग्रेसिया ने सावरकर को अपने पक्ष में करने के अनेक प्रयत्न किए। सचच्री द्वारकाप्रसाद मिश्र, रामराव देशमुख तथा सरदार पटेल आदि इसमें प्रमुख थे। उन्होंने सावरकर को पत्र तक लिखे। किंतु उनकी योजना नहीं चल पाई।

अंत में १५ अगस्त १९४७ का वह दिन भी आया और भारत, विभाजित भारत, स्वतंत्र हुआ। किंतु इसके साथ ही समस्त देश में हिंदू मुस्लिम दंग भी आरम्भ हो गये। दंग तो मुसलमानों ने जून मास से ही आरम्भ कर दिए थे, किंतु अब उन्होंने भीषण रूप धारण कर लिया था। कांग्रेसी न तो यह चाहते थे कि विभाजित पंजाब और बंगाल के हिंदू भाग्य आए और न यह कि भारत के मुसलमान पाकिस्तान जाए। नेहरू को इसकी बड़ी पीड़ा थी और वह इस सबके लिए हिंदू संगठनकारियों को कोसता और सतावता रहता था। उसने तो एक बार यहाँ तक कह दिया कि भले ही उसको प्रधानमन्त्रित्व से त्यागपत्र देना पड़ जाय, किंतु वह इन हिंदू संगठनकारियों से निपट लेगा। (फ्री हिन्दुस्तान न्यूज, पृष्ठ १६-१८, ६६-७१)

उस समय मुसलमानों का एक ही नारा था 'हम के लिए पाकिस्तान, लड़के लेंगे हिन्दुस्तान'। यह नारा आज भी भारत के मुसलमानों का जिहवा पर विद्यमान है और जब कभी भी साम्प्रदायिक दंग भड़कते हैं मुसलमान यही घोष दोहराते रहते हैं।

नेहरू की इस घमकी का सावरकर ने उसी भाषा में उत्तर दिया था। लोग म बड़ा रोप था। स्वतंत्रता मिलन से २४ घण्टे पूर्व गांधी के कलकत्ता निवास को जनता न घेर लिया और 'गांधी वापस जाओ' के नारे लगाए। जिस साहरावर्दी को बंगाली जन मानस हत्यारा मानता और कहता था वहां साहरावर्दी गांधी का अभिन मित्र बन गया था। इतना ही नहीं, गांधी ने जब अपना अंतिम अनशन किया था उस समय नेहरू आदि अनेक कांग्रेस नेताओं को जनता के मुख से यह सुनकर कि 'गांधी को मरने दो' बड़ा आश्चर्य होता था। तब से गांधी की प्रायना सभा में भक्तों की अपेक्षा गुप्तचरों की संख्या अधिक रहन लगी थी।

### गांधी का अनशन एस वध

अक्टूबर १९४७ में पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। दूसरी ओर पाकिस्तान न भारत से पाकिस्तान जान वाले मुसलमानों के बसान के लिए ५५ कराड रुपये की मांग की। पटेल और नेहरू भी अब यह समझते थे कि यदि पाकिस्तान को धन दिया गया तो यह उसके कश्मीर में घुसपैठ को बढ़ावा देने के लिए ही होगा। किंतु गांधी चाहता था कि धन तुरंत दिया जाए। जब भारत सरकार तुरंत तयार नहीं हुई तो गांधी ने १३ जनवरी १९४८ को आभरण अनशन आरम्भ कर दिया।

गांधी का कहना था कि मुसलमानों का भारत में उनके अपने मकानों में बसाया जाय, नष्ट की गई मस्जिदों को उनकी सौंपा जाय और उनकी मर मत् की जाय, पाकिस्तान को वांछित धन दिया जाय। ऐसी ऐसी सात मांगें गांधी के आभरण अनशन का आधार थी।

गांधी के इस आभरण अनशन ने तो पाकिस्तान से अपनी जान बचाकर भाग कर आए दर दर के भिखारी बने हिंदुओं के घावा पर माना नमक ही छिड़क दिया हो। पाकिस्तान के अत्याचारों से अस्त हिंदुओं ने जब गांधी को पाकिस्तान और मुसलमानों के अधिकारों की रक्षा के लिए अनशन करते देखा तो उनमें अत्यंत क्षाम छा गया। हमने ऊपर वर्णन किया है कि उस समय सबके मुख से यही निकलता था 'गांधी को मरने दो'।

कांग्रेसी सरकार असह्य हिंदुओं को भले ही मरने दना चाहती हो अनगिनत ललनाओं को बलात मुस्लिम हरमाम से जाने और उतनी ही महिलाओं का वैधव्य का दुख भोगने के लिए विवश होने को भले ही साधारण बात मानती हो किंतु एक गांधी के जीवन बचान के लिए वह इन सबका परित्याग कर सकता थी।

और वही हुआ। सरकार ने गांधी को सब मांगें मान लीं। गांधी का अनशन टूट गया। किंतु क्या वे कांग्रेसी गांधी का वचा सच ?

३० जनवरी १९४८ की सायंकाल प्रायना सभा में जान से पूर्व गांधी ने सरदार पटेल से वात्तालाप किया और उन्हें परामर्श दिया कि वे नेहरू साथ भारत के प्रति मुसलमानों की निष्ठा के सम्बन्ध में अपने मतभेदों का तुरंत पूर करें।

१५ जून ३ से १२ फरवरी तक सेवाराम में रहकर विधायक बन का नायक

बना चुके थे ।

गांधी अब भगी कानोनी में नहीं अपितु विरसा हाउस में ठहरने लगे थे । वही उ-होने अनशन किया था और वही सरदार पटेल से वह भेंटवार्ता हुई थी, जिसका हमने ऊपर उल्लेख किया है ।

सरदार पटेल से वार्ता पूरा कर ठीक साढ़े पांच बजे गांधी दो कयामा के कंधा पर हाथ रमे हुए प्रार्थना के लिए बाहर के मंच पर आ रहे थे कि नयूराम गोडसे नामक युवक ने गांधी को नमस्कार किया और तुरंत अपना रिवाजदार निवाल छा पर गोली चलाकर उनका वहीं पर वध कर दिया ।

इस प्रकार न केवल भारतीय राजनीति अपितु विश्व की राजनीति के मंच का एक प्रमुख पात्र के जीवन का अंत हो गया । गांधी वध का समाचार भीषण जन-अग्नि की भांति समस्त विश्व में फैल गया । भारत में तो जैसे भूकम्प ही आ गया हो । दुकानें बंद हो गईं । सिनेमा शो स्थगित कर दिए गए । झंडे झुकाए जाना तथा साधारण सी बात थी । चारों ओर भाति भाति की बातें और चर्चाएँ होनी लगी ।

गांधी वध पर कांग्रेसियों और कम्युनिस्टों की दृष्टि हिंदू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर पड़ी । क्योंकि नयूराम गोडसे प्रारम्भ में संघ का स्वयंसेवक था और कालांतर में हिंदू महासभा में प्रविष्ट होकर उसकी अखिल भारतीय समिति का प्रमुख सदस्य बन गया था । महाराष्ट्र में अपनी उग्र पत्रकारिता के लिए वह प्रसिद्ध था ।

स्वाभाविक ही गांधीवादियों तथा गांधीवादी सरकार का नजला इन दो संस्थाओं पर ही डलना चाहिए था । परिणामस्वरूप कांग्रेसियों और कम्युनिस्टों की अनियंत्रित भीड़ ने ३१ जनवरी १९४८ को बम्बई के 'सावरकर भवन' पर आक्रमण कर दिया । इसके साथ ही स्थान स्थान पर हिंदू समा और संघ के कार्यालयों पर भी आक्रमण किए गए । ध्वज जलाए गए, कार्यालय लूटे गए, मकान गिराए गए । संघ के नागपुर कार्यालय पर आक्रमण बोल दिया । हिंदू महासभा तथा संघ से सम्बंधित सभी स्थानों तथा भवनों को नष्ट भ्रष्ट करने में कांग्रेसी और कम्युनिस्ट गुंडों में होड़ लग गई ।

परिणाम स्वरूप दुबल आत्मा हिंदुओं ने हिंदू महासभा और संघ से अपने सम्बंध विच्छेद की घोषणाएं आरम्भ कर दीं । नयूराम गोडसे पूना का निवासी था । अतः पूना में भयंकर दंग हुए तो वहाँ कायू लगा दिया गया । न केवल संघी और समाई लोगों पर अपितु वही वही तो ब्राह्मण मात्र पर आक्रमण किए जाने लग गया कि नयूराम गोडसे जन्मा ब्राह्मण था ।

सावरकर के साथ उसी शैल में उनके छोटे भाई का निवास था । गुंडे वहाँ पहुँच और उस मकान का घेर कर दामोदर सावरकर को घायल कर दिया, घर को नष्ट भ्रष्ट कर दिया । सावरकर पर भी आक्रमण होने वाला था कि सावरकर स्वयं रिवाजदार सेवर सड़े थे और साथ ही उसी समय हिंदू महासभा के कार्यकर्ता

उन्हें बचाने के लिए वहाँ पहुँच गए। उन्होंने पीछे से काँग्रेसी गुण्डों पर आक्रमण कर वहाँ से भाग दिया। सावरकर ने अपने पुत्र विश्वास सावरकर को वहाँ से अन्यत्र जाकर अपनी सुरक्षा करने का परामर्श दिया। बाल सावरकर और भास्कर शिंदे सावरकर की रक्षा के लिए सन्नद्ध रहे। विश्वास सावरकर भी उनके साथ द्वार पर सन्नद्ध था।

३० जनवरी १९४८ की रात से ही सरकार की आर से पकड़ा धकड़ी आरम्भ हो गई थी। सावरकर के अग्निरक्षक और निजी सचिव का पहले ही बंदी बना लिया गया था। ३१ जनवरी को सावरकर के घर की तलाशी ली गई। पुलिस अधिकारी ने सावरकर का परामर्श दिया कि उनका किसी सुरक्षित स्थान पर रखा जा सकता है किंतु सावरकर ने यह सुझाव अस्वीकार कर दिया।

३१ जनवरी को सावरकर ने एक वक्तव्य प्रसारित करते हुए कहा, गाँधी के वध का समाचार दहला देने वाला है। भारत की जनता को चाहिए कि वह इस समय देश में शांति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए केन्द्रीय सरकार के साथ सहयोग करे।'

## स्वतंत्र भारत में बंदी

१ फरवरी से लेकर ५ फरवरी १९४८ तक समस्त देश में हिंदू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेताओं एवं कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी का भीषण दौर चला। जिस पर तनिक भी सन्देह हुआ अथवा किसी कांग्रेसी को किसी साधारण व्यक्ति से अपना बँध चुकना था तो उसको सच्ची अथवा संभाई बता कर बंदी बनवा दिया। इस प्रकार २५-३० हजार लोगों को पकड़ कर जलों में ठूस दिया गया। उनमें अनेक बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति भी थे।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

४ फरवरी की रात्रि में एक सरकारी डाक्टर ने आकर सावरकर का निरीक्षण परीक्षण किया और बताया कि सावरकर सब प्रकार से स्वस्थ हैं। जब कि विगत एक वर्ष से सावरकर क्षीण ऊबड़ और हृदय पीड़ा से ग्रस्त थे। जिस समय डाक्टर उनका निरीक्षण परीक्षण कर रहा था, उस समय भी उनका ऊबड़ था।

५ फरवरी के दिन मुह अंधेरे ही पुलिस की गाड़ी आई और पुलिस अधिकारी ने सावरकर से कहा बम्बई पब्लिक सिक्थोरिटि मैजिस्ट्रेट के अंतर्गत आपको बंदी बनाया जा रहा है। सावरकर ने स्वाकृति में सिर हिलामा और कहा कि बाहर जान से पूर्व वे शौचालय जाना चाहते हैं।

पुलिस अधिकारी अनिश्चय की स्थिति में था। सम्भवतया उसका सावरकर के मार्गोत्सव में इसी प्रकार भाग निवृत्तन की घटना का ज्ञान था और इस समय वहाँ स्मरण आ रहा था। उसका अचानक देख सावरकर ने कहा 'धराना नहीं। मैं अब बहुत बूढ़ा हो गया हूँ आप मार्गोत्सव का घटना की पुरावृत्ति का चिन्ता न करें,

न ही उनके लिए अब कोई अवसर ही है ।”

सावरकर को बम्बई की आयर रोड कारागार में रखा गया ।

कांग्रेस जनों तथा कांग्रेसी समाचार पत्रों को सावरकर से बदला लेने का यह अच्छा अवसर हाथ लगा था । अतः उन सब ने कम्युनिस्टों के साथ मिलकर कुप्रचार आरम्भ कर दिया । उनका आरोप था कि गाँधी वध का पद्धत सावरकर के ‘मस्तिष्क’ की उपज था । सावरकर इस सारी अवधि में शांत रहे । उन्होंने घर से भोजन मगाने के प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया । मार्च २३ तक उनके साथ उनकी पत्नी और पुत्र की उनमें भेंट तक नहीं होने दी गई । कांग्रेस और कम्युनिस्ट पत्रों में जो कुछ उनके विरुद्ध प्रकाशित होता रहा उसके अतिरिक्त तब तक उनके विषय में किसी को कोई समाचार भी नहीं मिला कि वे कहाँ हैं और कैसे हैं ।

बम्बई के स्थानीय एडवोकेट श्री एस० बी० देवधर सावरकर की पेरवी के लिए हाथ पंर चलाते रहे । वकील होने के नाते किसी प्रकार ६ फरवरी को उनको सावरकर से मिलने की अनुमति मिल गई । उस समय उनकी अनुभव हुआ कि इस गिरफ्तारी का सावरकर पर महान् प्रभाव पड़ा है । बहुत दिनों तक तो सावरकर पर किसी प्रकार के आरोप भी नहीं लगाए जा सके । अतः मे ११ मार्च १९४८ को दिल्ली के मजिस्ट्रेट के आदेश से गाँधी वध पद्धत में सावरकर को प्रमुख बताकर उन्हें पुनः आयर रोड कारागार में लाया गया । उस समय श्री देवधर ने उनकी जमानत की प्रायना की जो अस्वीकार कर दी गई । हाँ, श्री देवधर को इस बात में सफलता मिल गई कि सावरकर की पत्नी और पुत्र उनसे भेंट कर सकते हैं । उनके ही प्रयत्न से सावरकर अपने पुत्र को अपने घर के संचालन आदि के विषय में पावर ऑफ अटोर्नी देने में भी सफल हुए ।

हिंदू महासभा के तत्कालीन अध्यक्ष श्री एस० बी० भोवतकर, जो स्वयं अच्छे वकील भी थे, अपने प्रयत्नों से सावरकर के बचाव के लिए जुट गए और उन्होंने एक समिति गठित की । उधर बम्बई विधान सभा में श्री माडलिक ने प्रश्न उठाया कि सावरकर की जन्त सम्पत्ति, उनके पिछले बलिदान को ध्यान में रखते हुए उनके परिवार को वापस क्यों नहीं की गई ? इसके उत्तर में तत्कालीन बम्बई के गृहमंत्री मोरारजी देसाई, जो अपने गाँधीवादी होने के लिए प्रसिद्ध रहे, उन्होंने उत्तर दिया, ‘सावरकर की विगत सेवाओं से उनका वर्तमान कार्य अत्यन्त निन्दनीय है, अतः उनकी सम्पत्ति वापस नहीं की जा सकती ।’ कालांतर में वही मोरारजी देसाई दुषटनायक भारत का प्रधानमंत्री बना और उस काल में अपने पुत्र के कुकृत्यों के कारण उसे पर्याप्त अपकीर्ति का सामना करना पड़ा । इतना ही नहीं अमेरिका के एक पत्रकार ने भारत पर लिखी अपनी पुस्तक में गाँधीवादी मोरारजी देसाई को सी०आई०ए० का एजेंट तब सिद्ध कर दिया । अर्थात् मोरारजी ने भारत के साथ द्रोह किया । था माण्डलिक ने उस समय भा विधान सभा में मोरारजी की खबर सेत हुए उससे पूछा था, मोरारजी बनाए कि सावरकर न कीन-सा निन्दनीय वृत्त्य

किया है ?' किंतु मोरारजी के पास इसका कोई उत्तर नहीं था। वह मौन रहा।  
ऐतिहासिक वक्तव्य

गांधी वध अभियोग में साढ़े तीन मास बाद प्रारम्भिक कायवाही पूरा की गई। सावरकर के विषय में जब सरकार को अर्थ कोई आक्षेप नहीं था तो उपलब्ध नहीं हो सका तो ऐसे बीर वलिदानी को पडयंत्र में सम्मिलित व्यक्ति घोषित कर उन्हें आठवाँ अभियुक्त बनाया गया। १५ मई १९४८ को सभी अभियुक्तों के नाम एक विशेष गजट में प्रकाशित कर दिए गए। उसी गजट में आई०सी०एस० अधिकारी श्री आत्मा चरण को इस अभियोग के लिए जज की नियुक्ति तथा अभियोग के दिल्ली के लालबित्ते में चलाए जाने का भी घोषणा की गई।

अभियोग आरम्भ होने से कुछ दिन पूर्व २४ मई १९४८ को सभी अभियुक्तों को दिल्ली लाया गया। सावरकर के साथ अन्य अभियुक्त थे गोडसे, आष्ट, करकरे, बडग, मदनलाल पाहवा, गापाल गोडसे, डॉ० दत्तात्रय परचुरे तथा किस्तिया। कालांतर में बडगे पुलिस का गवाह बन गया और उसने पुलिस के आदेशानुसार अपने वक्तव्य में कहा कि गांधी का वध करने के पूर्व १७ जनवरी १९४८ को गोडसे और आष्टे बम्बई में सावरकर से भेंट करने के लिए गए, वहाँ सावरकर ने उन्हें गांधी के जिना और सोहरावर्दी के वध की सफलता के लिए आशीर्वाद दिया।

यह अभियोग उसी स्थान पर चलाया गया जहाँ आजाद हिन्द सेना के अधिकारियों पर अभियोग चलाया गया था।

बम्बई के एडवोकेट जनरल सी० के० दपतरी अभियोग पक्ष के प्रमुख वकील थे और श्री भोपतकर रचाव पक्ष के प्रमुख वकील थे। इसके अतिरिक्त अलग-अलग अभियुक्तों के अलग-अलग वकील भी थे। वे सभी सम्मानित वकील थे। २७ मई १९४८ को जब अभियोग आरम्भ हुआ तो सरकारी पक्ष द्वारा घोषित १२ अभियुक्तों में से केवल ६ को वहाँ लाया गया और शेष तीन—गगाधर दण्डवते, गगाधर जाधव तथा सुयदेव शर्मा को भगोड़ा घोषित किया गया। उस दिन प्राथमिक औपचारिकता के बाद ३ जून के लिए अभियोग स्थगित कर दिया गया। ३ जून को कुछ अर्थ आवश्यक प्राथमिकताओं और नियम आदिका निर्धारण कर २२ जून के लिए अभियोग स्थगित कर दिया गया। २२ जून को अभियोग आरम्भ होने पर आठ अभियुक्तों पर गम्भीर दोषारोपण करके अभियोग पक्ष के प्रमुख वकील दपतरी ने सावरकर को उन सबका गुरु घोषित करते हुए उनको एक विशिष्ट विचार धारा का पोषक और उसी विचारधारा की एक सस्था का बहुत समय तक अध्यापक तथा अहिंसा के सिद्धांत पर किंचित भी विश्वास न करने वाला एक मुसलमानों का कट्टर शत्रु बताया। और कहा कि इससे प्रभूत प्रमाण हैं कि इस कृत्य का न केवल सावरकर को पान था अपितु बिना उनकी अनुमति के यह काम हा ही नहीं सकता था।

अभियोग पक्ष ने अपन समयत में १४६ गवाह प्रस्तुत किए। अंत में

८ ११-४८ को नयूराम गोडसे ने अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया और उसमें उसने स्पष्टतया स्वीकार किया कि उसने पाकिस्तान के पिता गांधी पर अपने रिवाज्वर से तीन गोलियाँ चलाईं। गोडसे और आष्टे दोनों ने ही बार-बार अपने वक्तव्यों में बताया कि उनके इस कृत्य से सावरकर का लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं रहा। गोडसे का वक्तव्य ६२ पृष्ठ का था, जो दूसरे दिन ही प्रतिबन्धित कर दिया गया था।

२० ११-१६४८ को सावरकर ने अपना ५२ पृष्ठ का वक्तव्य पढ़ा। जिसमें उन्होंने कहा कि 'उनको जानबूझ कर मिथ्या अभियोग में फँसाया गया है। "एक पुलिस गवाह बयान के कहने पर कि 'जाओ, विजयी बन कर लौटो' मैंने कहा था, के अतिरिक्त पुलिस के पास अन्य कोई प्रमाण नहीं है।' और बड़गे की गवाही कितनी विश्वसनीय हो सकती है इस विषय पर सावरकर ने विस्तार से अपना वचाव प्रस्तुत किया। उन्होंने यह तो स्वीकार किया कि गांधी के साथ उनकी विचार समानता नहीं रही। किन्तु इसके साथ ही उन्होंने १६०८ से आरम्भ कर अब तक की गांधी के साथ हुई भेंट बातियाँ, पत्र व्यवहार और कस्तूरबा के निधन पर शोक सन्देश आदि का उल्लेख करते हुए गांधी और नेहरू की समय-समय पर गलत रीति से बंदी बनाए जान के तथा जिन्ना पर किए गए घातक आक्रमण के विरोध में दिए गए अपने वक्तव्यों का उल्लेख करते हुए कहा कि 'भारत विभाजन का दुःख हम लोगो को सालता रहा है। किन्तु मुझे प्रसन्नता है कि मैं अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए कायरता रहा और मुझे इस बात की भी प्रसन्नता है कि उसे स्वतन्त्र देखने के लिए मैं जीवित रहा।'।

उस दिन की गवाही का विवरण देते हुए समाचार पत्रों ने लिखा कि उस समय 'यायालय में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति सावरकर के विचारों के साथ स्वयं भी प्रयत्नमान दिखाई देना था। समस्त 'यायालय में रात्रि की सी गहन निस्तब्धता छाई हुई थी।

यह उल्लेखनीय है कि गांधी भवन मोरारजी देसाई ने भी इस अभियोग में गवाही दी थी, जिसे सावरकर जी ने 'कही-सुनी बातों पर आधारित' बना कर उसकी तिल्ली उड़ा दी थी। सावरकर ने यह भी कहा कि उनके घर से जिन १०,००० पत्रों को सरकार उठा कर साई है क्या किसी एक में भी इस प्रकार की कोई बात पाई गई है? अतः मैं सावरकर ने अपने सम्मान रक्षा किए जान का अनुरोध करते हुए अपना वक्तव्य पूरा किया।

सभी अभियुक्तों से पूछा गया कि क्या वे अपने पक्ष में कोई गवाही प्रस्तुत करना चाहें? सभी अभियुक्तों ने गवाही प्रस्तुत करने तथा अपने वक्तव्यों के समयन में कुछ और प्रस्तुत करने से इनकार कर दिया।

रिहाई

इन वक्तव्यों के उपरांत १ दिसम्बर से ३० दिसम्बर तक न्यायाधीन न



वकीलां के तब मुने । और अंत में सात मास में ८४ दिनों की सुनवाई के बाद १० फरवरी १९४६ को 'यायमूर्ति आत्माचरण ने अपना ऐतिहासिक निणय सुना दिया ।

११ वजे अपने आसन पर आसीन होते ही 'यायमूर्ति आत्माचरण ने सब प्रथम सावरकर पर ही अपना निणय सुनाते हुए कहा, "सावरकर सहित सभी आठ अभियुक्तों के व्यवहारों पर विचार करते हुए, तथा सरकारी गवाह बढग की गवाही का निरोक्षण करने पर, यही निष्पत्ति निष्पन्न होता है कि २० १ १९४८ से ३० १ १९४८ तक दिल्ली में क्या होता रहा है, इसका सावरकर से कोई सम्बन्ध नहीं था । इस लिए उन पर जो अभियोग लगाया है उसमें वे किसी प्रकार भी दायी नहीं पाये जाते । अतः उनको यदि किसी अन्य अभियोग में लिप्त न करना हां तो उन्हें तुरन्त मुक्त कर दिया जाय ।"

नयूराम गोडसे और आष्टे को मृत्यु दण्ड तथा बरबरे, पाहवा, गापाल गोडसे किस्तिया एव परचुरे को आजीवन कारावास का दण्ड घोषित किया गया । उद्यो ही 'यायमूर्ति अपने आसन से उठे सभी अभियुक्त सावरकर के घरणा में झुक गये । नमन के साथ ही उन्होंने 'अखण्ड भारत अमर रहे हिंदू हिंदा हिंदुस्तान—कभी न होगा पाकिस्तान' के नारे लगाए ।

सावरकर की रिहाई का समाचार जंगल की आग की भांति सारे देश में तुरन्त फैल गया और चारों ओर से बघाई के सदश आन लग । हिंदू महासभा की ओर से लाल किले से उनकी शोभा यात्रा निकालने का प्रबंध किया जाने लगा । किंतु सावरकर जिन महापुरुषों (?) की आख की किरकिरी बने हुए थे और जो इस समय के द्रीय सरकार के सर्वेसर्वा थे, वे यह सब किस प्रकार सहन कर सकते थे । अतः उनकी इच्छा के अनुरूप दिल्ली के मजिस्ट्रेट ने सावरकर के लाल किला से बाहर जाने पर प्रतिबंध लगा दिया ।

न केवल इतना उसके कुछ ही घंटों बाद पञ्जाब पुलिस सिविलियरिटी मेजिस्ट्रेट एकट उन पर लागू करके तीन मास तक दिल्ली में उनके प्रवेश और निवास पर प्रतिबंध लगा दिया ।

पुलिस ने सावरकर को अपनी गाड़ी में बैठाया और रेलगाड़ी से बम्बई भेज दिया गया । १२ फरवरी को प्रातः काल साढ़े दस वजे के बम्बई पहुँच गये । यद्यपि उनके प्रस्थान को नितान्त गुप्त रखा गया था अतः किसी को इसकी कानो कान सूचना तक नहीं थी । फिर भी सकड़ो लांगा न बम्बई स्टेशन पर सावरकर का स्वागत और अभिनन्दन किया । दिल्ली का पुलिस अधिकारी उनके साथ था, उसने बाहर मोटर कार में उनको बैठाया और उन्हें सावरकर सदन पहुँचा दिया ।

सावरकर के सम्मान मुक्त होने पर अ०भा० हिंदू महासभा के अध्यक्ष तथा सावरकर के वकील श्री भोपलकर ने बम्बई के गृहमन्त्री का लिखा कि सावरकर को गांधी वध अभियोग में जानबूझ कर फसाए जान की सरकारी जाँच का जानी चाहिए ।

सावरकर को जब इस बात का ज्ञान हुआ तो उन्होंने भोपतकर को लिखा कि बिना उनकी स्वीकृति के इस प्रकार की प्रायना करना उपयुक्त नहीं था। वे चाहते हैं कि यह प्रकरण अब यही पर समाप्त कर दिया जाना चाहिए। यही उनके हित में होगा और सार्वजनिक हित में भी यही उचित होगा। जो होना था हो चुका है, अब उस पर अधिक विवाद उठाना ठीक नहीं। इसी प्रकार एक पत्र उन्होंने बम्बई के गृहमंत्री मोरारजी देसाई को भी लिख दिया कि भोपतकर द्वारा दिया गया प्रायना पत्र निरस्त कर दिया जाय, उस पर आगे कोई कायवाही न की जाय।

बम्बई पहुँचने पर सावरकर ने उन सब लोगों को धन्यवाद के पत्र लिखने आरम्भ किए जिन्होंने इस संकट की घड़ी में उनका साथ दिया था। अपने एक अन्य प्रमुख वकील श्री पी०आर० दास को भी जब इसी प्रकार का पत्र लिखा तो उसके उत्तर में श्री दास ने लिखा कि "यायमूर्ति का केवल आपको कारामुक्त कर देना ही मेरे तर्कों का उद्देश्य नहीं था। मैं तो यायमूर्ति के मुख से यह सुनने के लिये ही अपने तक प्रस्तुत कर रहा था कि 'आपके चरित्र में कहीं कोई दोष नहीं है।' उसने वही किया, इसकी मुझे प्रसन्नता है।"

बम्बई में कुछ दिन रहने के उपरांत वे विभ्राम करने के लिए बंगलौर चले गए।

१० मई १९४६ को सावरकर की आत्मकथा 'माझ्या अठावणी' का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। इसमें भगूर से नासिक तक की जीवन गाथा का वर्णन है। मई के अंत में जब सविधान सभा ने पथक मताधिकार समाप्त किया तो सावरकर ने सरदार पटेल को इसके लिये बधाई सन्देश भेजा। जुलाई के मध्य में जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर से प्रतिबंध हटा तो उन्होंने सरसंघचालक श्री मा०स० गालवलकर को बधाई सन्देश भेजकर संघ की प्रगति की कामना की।

५ अगस्त १९४६ को सावरकर ने सविधान सभा के अध्यक्ष को एक तार भेजकर आग्रह किया कि देश का नाम 'भारत' रखा जाय।

## छोटा भाई दिवगत

उसी वष सावरकर को एक अन्य आघात लगा। उनके छोटे भाई को अक्टूबर में पक्षाघात हो गया और एक पखवाड़े तक मूर्च्छित रहने के उपरांत १६ अक्टूबर को उनका ६१ वर्ष की आयु में देहांत हो गया। छोटे भाई नारायण सावरकर को काप्रेसी गुण्डा ने गांधी वध के अवसर पर घायल कर दिया था तब से वे पूरी तरह स्वस्थ नहीं हो पाये थे और अंत में उसी आघात से उनका देहांत हुआ।

दिसम्बर १९४६ में कलकत्ता में हिंदू महासभा का अधिवेशन होने वाला था। गांधी वध के बाद हिंदू महासभा का काय लगभग स्थागित हो गया था। सभा के अधिकारी सभा के विधान और ध्वज में परिवर्तन करने का विचार करने लगे

ये तब सावरकर ने उनकी इसके लिये सावधान किया था। परिणाम स्वरूप न ध्वज बदला गया और न ही सविधान। वसन्तता अधिवेशन में सावरकर का विशाल जलूस निकाला गया। यद्यपि इस अवसर पर सावरकर अस्वस्थ थे तदपि अपन मित्रों के आग्रह का उन्होंने सम्मान किया और वसन्तता गए। इसी अधिवेशन में सावरकर ने 'राजीनी के हिंदूकरण और हिंदुओं के सैनिकीकरण' की आवश्यकता पर बल दिया।

डाक्टर मुखर्जी उस समय हिंदू महासभा के प्रतिनिधि के रूप में केन्द्रीय मंत्री मण्डल में औद्योगिक मंत्रालय के अध्यक्ष थे। किन्तु नहरू लियाकत पंखट के विरोध में उन्होंने मंत्रीमण्डल से त्यागपत्र दे दिया और २८ अप्रैल १९५१ को जन सभा के संस्थापक अध्यक्ष बन गए।

२६ जनवरी १९५० को भारत को गणराज्य घोषित कर दिया गया। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद इसके प्रथम राष्ट्रपति बनाए गए। सावरकर ने राष्ट्रपति का बधाई संदेश देने के साथ साथ देशवासियों से अपील की कि वे इस अवसर पर उत्सव मनाएं।

माघ १९५० में पूर्वी बंगाल में मुसलमानों ने हिंदुओं का नरसंहार करना आरम्भ कर दिया। ढाका, नारायणगंज नोआवाली आदि अनेक नगर आग की लपटों में धूँ धूँ करने लगे। उस समय सावरकर को बड़ी ठंड लगी और उसी दुःख में उन्होंने अपना वक्तव्य देते हुए कहा, "पाकिस्तान भदा सदा के लिए भारत के लिए सिर दर्द बन गया है। पाकिस्तान भारत की शांति और सुरक्षा के लिए घातक सिद्ध होगा।"

उही दिनों रोहतक में हिंदू सम्मेलन आयोजित किया गया था। सावरकर उस सम्मेलन में भाग लेने के लिये दिल्ली पहुँचे। उन्ही दिनों नहरू ने पूर्वी बंगाल की समस्या के हल के लिए वात्सलाप करने के उद्देश्य से पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाकत अली ख़ाँ को दिल्ली बुलवाया था। इससे कुछ ही दिन पूर्व लियाकत अली ने पाकिस्तान की पार्लियामेंट में हिंदू महासभा और वीर सावरकर के पूर्वी बंगाल सम्बंधी वक्तव्यों की निंदा की थी। इतना ही नहीं सरदार पटेल ने उन दिनों कलकत्ता में जो भाषण दिया था उस पर भी लियाकत अली ने रोष व्यक्त किया था।

नेहरू तो आरम्भ से ही मुसलमानों का अश्लील दास था। उसने लियाकत अली को प्रसन्न करने के लिए सावरकर सहित अनेक हिंदू महासभा के नेताओं के बंदी बनाए जाने के आदेश दे दिए। तब तक सावरकर बम्बई पहुँचे गए थे। उन्हें ४ अप्रैल १९५० को बम्बई में बंदी बना लिया गया।

सावरकर को बंदी बनाए जाने के आधार में सरकार ने कहा कि वे बम्बई में अपन भाषणा में हिंदुओं को मुसलमानों के विपरीत भड़काने का काय कर रहे थे। जबकि उनके साथी अथ वीरदियों पर यह आरोप लगाया था कि वे लोग केन्द्रीय मन्त्रियों की हत्या का षडयंत्र कर रहे थे। जब कि तथ्य यह था कि गांधी वध काण्ड से मुक्ति के बाद सावरकर ने बम्बई में तब तक कोई भाषण दिया ही नहीं

था। सावरकर का स्वास्थ्य इतना गिर गया था कि वे कारागार का जीवन सहन करने में सक्षम नहीं थे। सावरकर ने जमानत पर छोड़ने की प्रार्थना की। २८ मई को सचिव भारत में सावरकर का जमानत मनाया गया और उसमें भी उनकी मुक्ति के प्रस्ताव पारित कर सरकार को भेजे गए। अंत में हाई कोर्ट में याचिका देने पर जुलाई में सावरकर का सशर्त रिहा किया गया। तब तक नेहरू का प्रिय लियाकत अली भारत में अपनी मनोकामना पूर्ण कर पाकिस्तान वापस जा चुका था।

१५ अगस्त निकट आने पर सावरकर ने सरकार से पूछा कि क्या उनका अपने भवन पर झंडा फहराना राजनीतिक कार्य माना जायेगा? सरकार ने उन्हें सुझाव दिया कि वे झंडा तो फहरा सकते हैं, किंतु उस अवसर पर किसी प्रकार का कोई भाषण आदि नहीं दे सकते।

तदनंतर सावरकर ने अछूतों द्वारा की अपनी सभ्य बनाया। जब सविधान सभा ने अछूतों द्वारा के लिए धारा १७ पारित की तो सावरकर ने एक वक्तव्य में कहा कि जिस प्रकार अशोक स्तम्भों पर उसके आदेश उल्लिखित हैं, उसी प्रकार सविधान की इस धारा में भी गिलालेख स्थापित स्थान पर लगवा देना चाहिए।

समय बीतता गया किंतु सावरकर पर से प्रतिबंध उठाना सरकार के लिए कठिन होता जा रहा था। भारत गणराज्य घोषित होने के उपरान्त सन् १९५२ में निर्वाचन सन्निकट दिखाई देने पर सरकार नहीं चाहती थी कि सावरकर राजनीतिक मंच पर विद्यमान रहें। अतः उनकी अपीलों को निरस्त किया जाता रहा। किंतु अंत में सरकार को जुलाई १९५१ में सावरकर पर सारे प्रतिबंध उठाने ही पड़े।

### गणराज्य भारत

सन् १९५२ के आरम्भ में स्वतन्त्र भारत में गणतन्त्र के आधार पर प्रथम निर्वाचन सम्पन्न हुए। हिंदू महासभा ने यद्यपि उसमें भाग लिया किंतु सावरकर के अपमानक तथा अस्वस्थ रहने के कारण उसे मुह की खानी पड़ी। विपरीत इसके सावरकर सभा यही उपदेश देते रहे कि संनिव साज-सज्जा से सन्निद्ध एक ऐसा दल भारत में होना चाहिए जो कि भारत की हितों की रक्षा में तत्पर रहे। सन् ५२ के निर्वाचनों में जनसंघ और हिंदू महासभा का ३३ स्थान प्राप्त हुए। यद्यपि कांग्रेस की छाने भारत के पचास प्रतिशत से भी कम मन्त्र प्राप्त हुए, तदपि उसने ४८६ स्थानों पर विजय प्राप्त की। वामपंथियों में साधुनिस्टों को १२ और कम्युनिस्टों का १६ स्थान प्राप्त हुए। राज्य विधान सभाओं में हिंदू दलों की स्थिति इससे भी निम्न स्तर की रही।

इस सब विवरण का सावरकर के जीवन से कोई भी सम्बन्ध नहीं है किंतु हिंदू जीवन दशन, जिसका कि सावरकर पोषक रहे, उसको सदा से आधार समझा रहा है। यह बात विचार करने की है। इसी उद्देश्य से यहाँ पर हम

उल्लेख आवश्यक समझा गया। इतना ही नहीं जो सावरकर सदा अछूतों के पक्ष में धौलते रहे, उनके साथ बैठ कर साते रहे और उनके मंदिर प्रवेश का आदोलन करते रहे तथा भीमराव अम्बेदकर को सदा प्रोत्साहित करते रहे, उसी सावरकर ने इन निर्वाचनों में भीमराव अम्बेदकर के विरुद्ध खड़े कांग्रेस प्रत्याशी एन०एस० फिजरोलकर के पक्ष में मतदान किया था।

## मांसाहार का पोषण

भारत में उस समय खाद्य समस्या विकराल रूप धारण कर रही थी। यहाँ तक कि लोगो ने यह कहना आरम्भ कर दिया था कि इससे तो अंग्रेज ही भले थे, कम से कम उनके राज में भूखों तो नहीं मरे थे। उस समय सावरकर ने कहा कि लोगो को इस प्रकार के विचार व्यक्त करना उचित नहीं है उन्हें स्वयं भी इसका समाधान ढूँढना चाहिए। ऐसे अवसर पर उन्होंने जो वक्तव्य दिया वह भी विचारणीय है—

“यदि समस्त हिंदू समाज जिसमें ब्राह्मण, बौद्ध, जैन, लिंगायत, वैष्णव, वरकारिस्त आदि सभी रुढ़िवादी हिंदू अपने खान पान की आदतें बदलें और वे मांसाहार आरम्भ कर दें तो इससे करोड़ों लोगो की खाद्य समस्या मुलान्न जाएगी।

“मनुष्य क्या खाये और क्या पिये यह धर्म का विषय नहीं है। धर्म की इसमें कोई दखलानाजी नहीं करना चाहिए। मनुष्य को चाहिए कि इस सम्बन्ध में वह आधुनिकान के सिद्धांतों का पालन करे। जो कोई भी खाद्य सामग्री मनुष्य की स्वस्थ रख मने पावन निया की ठीक रख सके, उसका यदि मनुष्य पसंद करता है तो उस खाने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए। उसको यह विचार नहीं करना चाहिए कि धर्मशास्त्र इस विषय में क्या कहता है।”

जब टिड्डी दल ने भारत के खानानों का सफाया कर दिया तो सावरकर ने सुझाव दिया कि भारतवासी अपनी सुधा भाति के लिए मछली और भुर्गी पालन आरम्भ करें और मछली तथा अण्डों के माध्यम से अपनी खाद्य समस्या का समाधान ढूँढें। उन्होंने कहा कि शास्त्रों का क्या है कोई शास्त्र मांसाहार के पक्ष में लिखता है तो कोई शास्त्र इसका घोर विरोध करता है।

सावरकर के इस सुझाव पर कितने लोगो ने ध्यान दिया होगा स्वयं हिंदू सभा के सदस्यों ने कितना इसका पालन किया होगा यह गणना करने का विषय भले ही बन जाय, किंतु इतना निश्चित रूपेण कहा जा सकता है कि कुछ अस्थिरचित्त व्यक्तियों के अतिरिक्त इस निष्ठा में किसी स्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति ने विचार तक नहीं किया होगा। क्योंकि सभी समझदार व्यक्ति यह भला भाति जानते हैं कि मानव शरीर की रचना मांस भोजी के रूप में नहीं हुई है। मनुष्य के लिए मांस को पचाना सट्टा सरल नहीं है। मांसाहार का तो राजसी भी नहीं अपितु तामसी भोजन माना गया है। तामसी भोजन की रिफारिश कोई भी बुद्धिशील प्राणी नहीं

कर सकता। हाँ, आपत्तिकाल का घम इससे भिन्न होता है।

परम्परावश अथवा किसी भी कारण से हो, कुछ प्रदेशों में माँसाहार का प्रचलन हो गया था। सम्भवतया यह चार्वाक का दशन था, जिस और मनुष्य प्रवृत्त हुआ था खाओ, पियो, मोज करो।' उस काल की यह दुष्प्रवृत्ति महाराष्ट्र आदि प्रांतों के ब्राह्मणों में भी समा गई थी और उन्होंने माँसाहार को अपनाया था। आज भी अनेक ऐसे चितपावन ब्राह्मण हैं, जो माँसाहार करते हैं। सावरकर भी उही चितपावन ब्राह्मणों के वंशज थे। बगल में सभी वंश और वंश के प्राणी मत्स्याहार करते हैं। वहाँ सामान्य घरों में भी मत्स्यपालन बहुत पहले से किया जाता रहा है। यह प्रचलन भी चार्वाक कालीन है। काली को बलि चढ़ाना भी इसी निमित्त आरम्भ किया गया होगा। जिसने कि बलि के माँस को प्रसाद के रूप में ग्रहण कर माँसाहार का औचित्य सिद्ध किया जा सके।

सरकार ने इस मुद्दे को अवश्य पकड़ा और धीरे धीरे सरकार की आर से मुर्गी और मत्स्य पालन के द्र संचालित होने लगे। इसे हम सावरकर की उपलब्धि मने ही कह दें, किन्तु ग्राह्य नहीं कह सकते।

### ‘अभिनव भारत’ का समापन

बलिदानियों का स्मृति दिवस मनाने के लिए सावरकर की प्रेरणा से ‘शहीद स्मृति समिति’ का गठन किया गया और पूना में १० से १२ मई १९५२ को शहीदों को राष्ट्रीय अडाजलि समर्पित करने का आयोजन किया गया। १८५७ से १९४७ तक जितने भी बलिदानों थे उन सबका श्रद्धाजलि अर्पित करने का कार्यक्रम आयोजित किया गया। उसी अवसर पर नासिक में १८६६ में सावरकर द्वारा स्थापित गुप्त क्रांतिकारी संस्था अभिनव भारत का समापन समारोह भी सम्पन्न करने का निश्चय किया।

देश भर से हजारों लोग इस समारोह में भाग लेने के लिए उपस्थित हुए। इसी प्रकार शताधिक क्रांतिकारियों ने भी इस समारोह को शोभावित किया। इस अवसर पर सावरकर ने अपन भाषण में कहा ‘स्वतंत्रता प्राप्त हुई, यह कहना सचया गलत है। अपितु स्वतंत्रता ली गई है यह कहना उपयुक्त होगा।’ सावरकर इस अवसर पर अत्यंत भावुक हो गए थे और बोलते हुए उनका गला अवद्व होने लगा था। उसी अवद्व गले से उन्होंने भारत विभाजन की स्मृति में कहा — ऐ सिंधु ! मुक्त करेगी तुझे महाराष्ट्र की रक्त बिंदु।’

इसी समारोह में ‘अभिनव भारत’ का समापन किया गया। इससे कांग्रेस क्षेत्र में बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की गई। यह कांग्रेस संचालित एवं कांग्रेस समर्थक तथा कांग्रेस समर्पित पत्रों में प्रकाशित विवरण से स्पष्ट परिलक्षित होता था। किन्तु सावरकर ने जब कहा कि हमारा देश सैन्य दृष्टि से असावधान है तो इसी पत्रों में उसकी खूब आलोचना भी हुई।

जन सघ के अध्यक्ष डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी जब २६ अगस्त १९५२ को सावरकर से भेंट करने गए तो उस अवसर पर सावरकर ने उनसे कहा कि यदि 'जन सघ' ने मुसलमानों की तुष्टीकरण की नीति अपनाई तो यह न केवल जन सघ के लिए अपितु देश के लिए भी घातक सिद्ध होगी। क्योंकि मुसलमान कभी मनसा, वाचा, कर्मणा, पूरा रूप से भारतीय बनेंगे ही नहीं।

उसी वर्ष नवम्बर ३० में सावरकर ने 'भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पन्थ' पर व्याख्यान माला आरम्भ कर दी थी। उनका प्रथम व्याख्यान चित्रगुप्त पर, दूसरा पुण्यमित्र पर, तीसरा विक्रमादित्य पर, चौथा यशोधर्मन पर हुआ।

१९५३ के वर्ष में उन्होंने शहीद स्मारक के लिए धन एकत्रित करने के लिए व्याख्यानमाला आरम्भ की।

सावरकर ने अनेक प्रचलित अंग्रेजी नामों और संज्ञाओं को हिंदी नाम दिए। यथा मेयर को महापौर, बजट को अथ सक्ल्प, टेलीविजन को दूरदर्शन, इसी प्रकार रेलवे, अण्डरग्राउण्ड, थ्री डायमेंशन, हाईस्कूल आदि के लिए हिंदी शब्दों का प्रयोग बताया।

१० मई १९५३ को उन्होंने नासिक में शहीद स्मारक का उद्घाटन किया। उन दिनों नासिक में अनेक स्थानों पर अनेक अवसरों पर, सावरकर के सावजनिक भाषण का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आयोजित सवादाता सम्मेलन में पत्रकारों ने विभिन्न प्रकार के प्रश्नों में एक प्रश्न यह भी पूछा कि उनके इस दीर्घ जीवन की कृष्ण क्या है? सावरकर ने कहा कि एक तो जेल जीवन और दूसरे समय समय पर देश भ्रमण के कारण वे अपने खान-पान पर ठीक से ध्यान नहीं दे पाए, जहां और जिस समय, जो मिला वह खाया। इस कारण उनका स्वास्थ्य निरंतर गिरता जा रहा है, तद्विपरीत उनकी जिजीविषा ही इसकी मुख्य कृष्ण हो सकती है। मनुष्य की आत्म शक्ति मनुष्य से बहुत कुछ कराने में समर्थ होती है।

सावरकर अपने जन्म ग्राम भगूर में गए। वहाँ अपने इष्ट देवता के दर्शन कर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। उस अवसर पर सावरकर के स्वागत में आयोजित भाषण में सावरकर ने कहा कि वे अब अपने जीवन के आठवें दशक को पूरा कर रहे हैं, कदाचित्त यह उनका अंतिम आगमन हो अतः "मैं आज विशेषतया आप लोगों से विदा लेने के लिए यहाँ आया हूँ।" उनके इन शब्दों ने लोगों को अभिभूत कर दिया था। उसके बाद वे शोषित श्रेणियों के जनो की बस्ती में भी गए और उनको कहा कि अपन जीवन में उनके लिए वे जो कुछ कर सकते थे वह करने का उन्होंने यत्न किया। उन्होंने दलितों का साधधान करत हुए कहा कि वे हिंदुत्व से चिपके रहे, यदि उन्होंने किसी अन्य समुदाय में पग रखा तो फिर वे न इधर के -होंगे और न उधर के। वहाँ भी उनकी दशा नहीं सुधरेगी। ईसाई और मुसलमानों की ओर से किया जान वाला धर्मांतरण का खेल राजनीति का एक खेल है, इससे अधिक कुछ नहीं। वे इससे राजनीतिक लाभ तो उठा लेंगे किंतु आप लोगों को किसी प्रकार का लाभ पहुँचायेंगे

इसमें सदेह है। अतः उनके लिए उचित यही है कि वे अपने धर्म में बने रहें।

**मुखर्जी की हत्या ?**

सन् १९५३ में देश की स्थिति बड़ी विचित्र थी। जिस साथ समस्या का उल्लेख हम पिछले परिच्छेद में करके आये हैं वह अभी बरकरार थी, वही कही तो अकाल की स्थिति तक आ गई थी। मई में सावरकर का जन्म दिन पड़ता था यह सावरकर का ७१ वाँ जन्म दिन था। किन्तु सावरकर ने अपने प्रशंसकों को सूचित कर दिया कि इस स्थिति में जन्म दिन मनाना उचित नहीं है। इस अवसर पर बिहार के एक बहुत बड़े जमींदार ने सावरकर को एक हजार एकड़ भूमि क्षेत्र दान में देना चाहा तो सावरकर ने उसे अस्वीकार करते हुए लिखा कि यदि आप उस भूमि का दान करना ही चाहते हैं तो अखिल भारतीय महिला आश्रम बम्बई की भाँति वहाँ किसी आश्रम की स्थापना कर दें। और भूमि की आय से उस आश्रम की व्यवस्था करें।

कश्मीर की स्थिति बड़ी भयंकर होती जा रही थी। कश्मीर के भारत में विलय को लेकर जन सभा के अध्यक्ष डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने आन्दोलन आरम्भ किया हुआ था। कश्मीर में निर्वाध प्रवेश के लिए चलाये गए उनके आन्दोलन के आधार पर वे अपने दो साथियों, दिल्ली जनसभा के अध्यक्ष बच्चू श्री गुनदत्त और अपने तत्कालीन निजी सचिव श्री टेक्चर शर्मा के साथ कश्मीर में प्रवेश करना चाहा तो कश्मीर सरकार ने उन्हें जम्मू में ही बंदी बना लिया।

उन दिनों शेख अब्दुल्ला कश्मीर का अताज बादशाह बना हुआ था। किन्तु ऐसा माना जाता है कि डाक्टर मुखर्जी से सम्बन्धित मामलों में केन्द्र के सकेत पर उसका नतन करना पड़ता था। डाक्टर मुखर्जी के व्यक्तित्व के सम्मुख नेहरू का व्यक्तित्व फीका पड़ता जा रहा था। नेहरू को अवसर मिल गया और उसने अब्दुल्ला के माध्यम से अपनी चाल चली। डॉ० मुखर्जी हृदय रोगी थे, यह बात अब्दुल्ला और नेहरू दोनों को ही ज्ञात थी किन्तु कश्मीर में उनके साथ जो व्यवहार किया गया उससे २३ जून १९५३ को सदेहास्पद स्थिति में उनका देहांत हो गया। देहांत के समय न बँधजी उनके पास रखे गए और न टेक्चर शर्मा ही। इस प्रकार 'एक प्रधान, एक विधान, एक निशान' आन्दोलन के समयक डाक्टर मुखर्जी का अस्तित्व समाप्त करने में नेहरू-अब्दुल्ला पट्टयंत्र सफल हो गया।

सावरकर को इससे आघात लगा। उन्होंने अपने अनुयायियों को कहा कि हमें यह नारा अपना कर उसकी सफलता के लिये प्रयत्न करना चाहिये। अपनी सचदना में उन्होंने कहा था, मेरे लिए यह मात्र राष्ट्रीय क्षति नहीं अपितु इससे मेरी निजी क्षति भी हुई है।

डॉ० मुखर्जी के निधन पर सारे भारत वष में एक प्रकार का आन्दोलन सा उठ खड़ा हुआ और जिन परिस्थितियों में उनका निधन हुआ उसकी जाँच की माँग जोर पकड़ने लगी। किन्तु जवाहरलाल नेहरू की सरकार के काना तक राष्ट्र की



पुकार पहुँची ही नहीं अथवा यो कहा जाय कि उसने सुनी ही नहीं। सदेहास्पद स्थिति में डाक्टर मुखर्जी का निघन सदा सदा के लिए नेहरू सरकार के लिए लज्जा का कारण माना जाता रहेगा।

किंतु यह भी विचित्र घटना ही थी कि जिस अब्दुल्ला का नेहरू आरम्भ से ही समयन ही नहीं सहायता भी करता आ रहा था, जिसके कारण उसने कश्मीर के महाराज से अधोपित युद्ध तब ठान लिया था, उसी देशद्रोही, विध्वंसक अब्दुल्ला को नेहरू के प्रधानमन्त्रित्व काल में ही बन्दी बनना पड़ा था। ६ अगस्त १९५३ को भारत सरकार ने अब्दुल्ला को बन्दी बना लिया।

### ईसाई वर्चस्व

अकाल का लाभ यदि उस समय कोई अर्जित कर रहा था तो वह था भारत का ईसाई समुदाय। भारत में कायरत ईसाई मिशनरी इस अवसर का लाभ उठाकर अपने धन बल से निघन हिंदुओं को अन और औपधि आदि की सुविधा देकर लोभ-लालच में फसाकर उन्हें धर्मांतरित करने में लगे थे। सावरकर बार बार इस तथ्य को दोहराते रहते थे कि 'धर्मांतरण का अभिप्राय है 'राष्ट्रांतरण' यह तथ्य भारत के सम्मुख स्पष्ट था। सभी जानते हैं कि भारत के अधिकांश मुसलमान भारत मूल के ही थे। उनके पूर्व पुरुष इसी प्रकार के लाभ लालच में फसकर मुसलमान बन गए थे। उन्हीं मुसलमानों ने १००-२०० वर्ष बाद पाकिस्तान की माँग उपस्थित कर दी थी। यही स्थिति ईसाई भी करेंगे, इस विषय में सावरकर अपने राष्ट्रवासियों को समय समय पर बताते रहते थे। आसाम के नागाओं ने स्वतंत्र नागालैंड की माँग रखनी आरम्भ कर दी थी और जब नेहरू ने उसको अस्वीकार कर दिया तो उन्हीं नागाओं ने आसाम में नेहरू की सावजनिक सभायें होनी ही नहीं दी।

इस प्रकरण में एक और घटना उल्लेखनीय है। कांङ्गनल प्रेसियस को बम्बई का आचविशेष नियुक्त किये जाने पर जब वह बम्बई आया तो बम्बई के गवर्नर और कांग्रेसी नेता उसका स्वागत करने के लिए गए। उस अवसर पर सावरकर ने कहा था। क्या इस प्रकार किसी गवर्नर और कांग्रेसी नेता ने कभी किसी जगद्गुरु शंकराचार्य का भी स्वागत किया था? कांग्रेस सरकार ने जिस प्रेसियस का स्वागत किया था—अपने भारत दोरे के अवसर पर उसी ने नेहरू और काटजू की ईसाई मिशनरियों के प्रति सम्मान न दिखाने के लिए आलाचना की। सरदार पटेल के देहांत के बाद उन दिनों काटजू भारत के गृहमंत्री थे, नेहरू तो आजीवन प्रधानमंत्री था ही। किंतु दूसरे दिन ही पूना के हिंदू संगठनकारियों ने पूना से ईसाई मिशनरियों को सदेह कर भगा दिया। सावरकर ने उनका प्रशंसा करते हुए कहा था, हिंदुओं ने उसे को तसा का पाठ पढ़ाकर उचित ही किया। सावरकर ने उस अवसर पर हिंदुओं से कहा कि वे इसाई पब्लिक स्कूलों और अस्पतालों का भी बहिष्कार करें, क्या कि यही दो मुख्य स्थल हैं जहाँ मिशनरी ईसाइयत का बाज बाया करते हैं।

जब आंदोलन ने जोर पकड़ा तो मध्य प्रदेश सरकार ने श्री नियोगी के नेतृत्व में क्रिश्चियन मिशनरी ऐक्टिविटी इक्वायरी कमेटी का गठन कर दिया। इस कमेटी ने अपने प्रतिवेदन में ईसाई मिशनरियों का कच्चा चिट्ठा खोल कर रख दिया।

सन् १९५० में चीन ने तिब्बत पर आक्रमण करके उसको अपने अधिकार में कर लिया था। उस समय भारत की संसद में बहुत कुछ कहा और सुना गया। किंतु इस सम्बंध में कोई कुछ नहीं कर सका। उसका कारण था चीन और नेहरू, दोनों का ही रुख भक्त कम्युनिस्ट होना। इतना ही नहीं नेहरू ने 'हिंदी चीनी भाई-भाई' के नारे को जन्म दिया और 'पंचशील' के सिद्धांत को पुनर्जागृत करने का श्रेय अर्जित करने का यत्न किया। यद्यपि नेहरू के जीवन काल में ही चीन ने उसके पंचशील की शर्षयात्रा निकाल दी थी।

इस सबको भूलकर नेहरू ने २६ जून १९५४ को चीन के प्रधानमंत्री चाउ-एन लाई का दिल्ली में स्वागत किया। उस समय कई बरारों पर हस्ताक्षर किए गए। उस समय सावरकर ने भारतवासियों को सावधान करते हुए कहा कि यह सब महाशक्तिवादी की भारत को दुबल करने की धातें हैं। क्योंकि वे चाहेंगे कि भारत तो पंचशील का पालन करता रहे किंतु वे इसके लिए बाध्य न किए जाय।

सन् १९५५ में हिंदू महासभा के जोधपुर अधिवेशन के समय सावरकर ने हिंदू राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए पुनः कहा था कि राजनीति का हिंदूकरण और हिंदू का सैनिकीकरण करना ही समय की माँग है। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक भारत की स्वतन्त्रता सुरक्षित नहीं है। हिंदू युवकों को चाहिए कि वे अधिकाधिक सख्या में सेना में प्रविष्ट होकर शस्त्र विद्या ग्रहण करें। जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर वह विद्या राष्ट्र की सुरक्षा के काम आ सके।

उसी वष 'गोआ मुक्ति आंदोलन' आरम्भ हुआ तो समस्त देश से सत्याग्रही जल्ये गोआ की ओर प्रस्थान करने लगे। मेरठ का जल्ये जब गोआ के लिए चला तो मांग में बम्बई तककर सावरकर से आशीर्वाद लेने भी गया। जल्ये के नेता दैनिक प्रभात के सम्पादक स्व० विनोद थे। सावरकर ने उनसे कहा 'आप प्रातिभूमि मेरठ से गोआ को मुक्त कराने की अभिलाषा से इतनी दूर आये हो, यह आप लोगो की देशभक्ति का परिचायक है। किन्तु सशस्त्र पुतगाली दानवों के सम्मुख आप निरस्त्र मरने के लिए जायें, यह नीति मैंने न कभी पहले ठीक समझी और न ही अब ठीक समझता हूँ। आप लोगो के मन में महान बलिदान की भावना थी तो आप अपने हाथों में राइफल लेकर क्या नहीं आये? शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर जाया और दुश्मन को भारकर मरो।

"गोआ की मुक्ति के लिए तो सरकार को चाहिए कि वह यह काय मना का सौंप दे। सशस्त्र सैन्य वायवाही से ही गोआ मुक्त होगा। सत्याग्रह की अपेक्षा शस्त्राग्रह से ही सफलता मिलेगी।"

यही हुआ। इस आन्दोलन में अनेक शीर बलि चढ़े, अनेक घायल हुए। अनेक शीरो ने कारागार की यातना सहनी। किन्तु गोआ मुक्त नहीं हुआ। अतः सन् १९६१ में सरकार को गोआ पर सशस्त्र सैनिक बाधवाही करनी पड़ी, तभी गोआ मुक्त हुआ। सावरकर ने इस विजयोत्सव पर अपने निवास स्थान पर ध्वज फहराया।

अक्टूबर १९५६ में जब डाक्टर भीमराव अम्बेदकर बौद्ध बने तो उस अवसर पर सावरकर ने कोई विशेष प्रतिक्रिया व्यक्त न करते हुए केवल यही कहा था कि बौद्ध बनकर अम्बेदकर ने यही सिद्ध किया है कि वे हिन्दू ही हैं। उन्होंने वैदिक धर्म को छाड़कर अवैदिक धर्म को स्वीकार तो किया है किन्तु बौद्ध धर्म भा हिन्दुत्व का ही एक अंग है। उसी वर्ष दिसम्बर में डा० अम्बेदकर की मृत्यु पर सावरकर ने कहा था कि भारत ने एक महान् व्यक्ति खो दिया है।

## क्रान्ति की शताब्दी

१९५७ में १८५७ के स्वातन्त्र्य संघर्ष की शताब्दी मनाई गई। सुरेन्द्रनाथ सेन और आर० सी० मजूमदार जैसे तथाकथित भारतीय इतिहासकारों की अपेक्षा ब्रिटिश समाचार पत्र—दि यु स्टेट्समैन, मैन, द टाइम्स, द गार्जियन आदि ने इस अवसर पर विशेष लेख प्रकाशित किए और उनमें यह कहा गया कि तथाकथित इतिहासकारों की अपेक्षा सावरकर ने इस विषय पर जो कुछ लिखा है वही वास्तविक इतिहास है। सावरकर ने भारतीय दृष्टिकोण का स्पष्ट और सुन्दर शब्दों में चित्रण किया है।

इस समारोह के लिए दिल्ली में एक समिति का गठन किया गया। और सावरकर को उसमें मुख्य अतिथि के रूप में आमन्त्रित किया गया। समिति का एक शिष्ट मण्डल नेहरू से भेंट करके उससे निवेदन करने गया कि सावरकर के मुख्य अतिथित्व में किए जाने वाले इस समारोह में वे भी सम्मिलित हों। उस अवसर पर नेहरू ने कहा—

“सावरकर बहुत ही शीर पुरुष हैं वे हीरो हैं वे महान् हैं। जब मैं इंग्लैंड में विद्याभ्यास कर रहा था मैंने उनकी पुस्तक १८५७ पढ़ी थी। उससे मुझे प्रेरणा मिली थी। यह महान् पुस्तक है जिसने अनेक भारतीयों को प्रेरित किया है। किन्तु उसकी इतिहास नहीं कहा जा सकता। अनेक समस्याओं पर हममें परस्पर मतभेद हैं और यह अच्छा नहीं होगा कि उनके सम्मुख मैं किसी दूसरे ही स्वर में बोलू। सावरकर के प्रति मेरे मन में अत्यधिक आदर भावना है और मुझे उनसे मिलने में प्रसन्नता होती किन्तु एक ही मन्त्र से विभिन्न भाषा में बोलना हम दोनों के लिए ही ठीक नहीं होगा।”

सावरकर अस्वस्थ होते हुए भी इस समारोह में सम्मिलित हान के लिए दिल्ली पधारे। उनकी अन्त्य स्वागत किया गया और एक शोभायात्रा निकाला गई। उसमें सावरकर के साथ अन्य अनेक क्रांतिकारी राजा महेंद्र प्रताप आशुतोष

साहिरी, बी बी गोगटे, हार्डिंग वम केस के लाला हृदयराम, लाला हनुमंत सहाय और त्रातिवीर शहीद भगतसिंह की माता तथा सरदार अजीत सिंह की विधवा पत्नी उस रथ पर विराजमान थे। दिल्ली के प्रमुख नागरिक और अनेक ससद सदस्य इस समारोह में उपस्थित थे। लाला हसराम गुप्ता इस समारोह के स्वागत-ताम्यक्ष थे।

१२-५-१९५७ को रामलीला मदान में विशाल जनसभा के सम्वाधितों करते हुए सावरकर ने कहा, 'हमारे सम्मुख बुद्ध और युद्ध, इस प्रकार से दो आदर्श हैं, जिन में से हमको एक को चुनना होगा। यह हमारी दूरदर्शिता पर निर्भर करता है कि हम बुद्ध की आत्मघाती नीति को अपनाते हैं अथवा कि युद्ध की विजयिनी वीर नीति को। शांति और अहिंसा की बात हम लोगो के लिए नहीं है, यह हमारी बौद्ध परम्परा में आदि काल से निहित है। किंतु केवल मंत्रों से ही रक्षा सम्भव न होने के कारण भारतवासियों ने शस्त्र के महत्त्व को समझा और उनकी अपनाया।'

१०.५.५७ का इसी स्थान पर अपनी क्षय मिटाने के लिए कांग्रेस ने भी त्रातिदिवस मनाया था और इसमें पण्डित नहरू मुख्य वक्ता थे। किंतु १२ ता० वाले समारोह में उससे दुगुनी भीड़ थी। इस सभा के वक्ताओं ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि यह उनका परमसौभाग्य है कि आज उनको 'वीर' सावरकर को सुनने का सुअवसर प्राप्त हो रहा है।

सावरकर को यही प्रसन्नता थी कि कम से कम सरकार ने भी त्रातिवीरों को मान्यता देकर १८५७ की शताब्दी का आयोजन तो किया। अर्थात् कांग्रेस सरकार ने त्राति और त्रातिकारियों के महत्त्व को स्वीकार तो किया। गांधी उस समय जावित होता तो कांग्रेस सरकार इस दिवस को कदाचित ही मनाती। क्या होता, यह तब अथवा अब कहना कठिन है। किंतु गांधी ने त्रातिकारियों की जिस प्रकार अवहेलना की थी, उससे यही निष्कर्ष निष्पन्न होना स्वाभाविक है।

उसी वर्ष नवम्बर में राजा महेन्द्र प्रताप ने ससद में एक बिल प्रस्तुत किया कि सावरकर सहित अन्य अनन्त जीवित त्रातिकारियों की राष्ट्र के प्रति की गई सेवाओं का मान्यता प्रदान की जाय। किंतु केन्द्रीय मन्त्रियों ने इस पर सवधानिक आपत्ति उठाई ता तत्कालीन लोकसभाध्यक्ष सरदार हुवर्मासिंह ने उसे निरस्त करते हुए बिल प्रस्तुत करने की आज्ञा दी। अन्त में जब मतदान हुआ तो ७५ और ४८ के विभेद से उसे अस्वीकार कर दिया गया। यह देखकर सभी विपक्षी सदस्य बहि-गमन कर गए। सरकार और कांग्रेस की सर्वत भत्सना हुई।

कांग्रेस अथवा नेहरू चाहें अथवा न चाहें किंतु देश की जनता चाहती थी, अतः समस्त देश में १८५७ की शताब्दी धूमधाम से मनाई गई। इसमें प्रादेशिक सरकारों ने भी बड़ चढ़कर भाग लिया। बम्बई में महाराष्ट्र सरकार ने भी १५ अगस्त के अवसर पर शहीद दिवस का आयोजन किया। यद्यपि सावरकर इस

समारोह में सम्मिलित नहीं हो पाए तदपि तत्कालीन महाराष्ट्र के मुख्य मंत्री यश वन्तराय चव्हाण ने सावरकर की भुवत कठ से प्रशंसा करते हुए उनके प्रति सम्मान और आदर व्यक्त किया। यह माना जाता है कि अपने जीवनकाल में हांग और एस० एम० जोशी की ही भाँति चव्हाण ने भी सावरकर से प्रेरणा प्राप्त की थी।

उही दिन नाना साहेब पेशवा की प्रतिमा की प्रस्थापना की उत्तर प्रदेश सरकार ने पेशवा की ओर जा प्रतिमा उहाँन निश्चित का उस पर विवाद उत्पन्न हो गया कि यह नाना साहेब पेशवा के व्यक्तित्व को उजागर नहीं करती। सावरकर का जब सारे तथ्य विदित हुए तो उहाँन उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री डाक्टर सम्पूर्णानन्द को लिखा कि पेशवा की जो प्रतिमा उहाँन चुनी है यह सबका भ्रामक है। सावरकर ने उनको लिखा कि लन्दन के 'इंस्टीट्यूट यूज' में नाना साहेब के नाम से जा चित्र छपा था वह नाना साहेब का न हो कर भारतीय व्यापारी अयोध्या प्रसाद का था, जिसे उस व्यापारी के कपील की दुरभिमर्षि से उसमें प्रकाशित कराया गया था।

इसके साथ ही सावरकर ने डाक्टर सम्पूर्णानन्द को नाना साहेब का वास्तविक चित्र भेजा और सुझाव दिया कि इसके आधार पर प्रतिमा का निर्माण किया जाए। डाक्टर सम्पूर्णानन्द ने इसके लिए सावरकर का बहुत आभार माना और कृतज्ञता का पत्र भेजा।

१५ अगस्त के अपने रेडियो प्रसारण में डाक्टर राजेंद्र प्रसाद ने भी १८५७ की क्रांति का उल्लेख किया और उसे स्वतन्त्रता का युद्ध सिद्ध करने वाला की उहाँन सराहना की।

## पूना में स्मृति चिह्न

पूना वासियों ने निश्चय किया कि सावरकर के नाम पर पूना में एक सभा गृह का निर्माण किया जाए। तुरन्त ही इस निश्चय को कार्यान्वित किया गया और एक सभागृह का निर्माण कर उसका नाम 'स्वातन्त्र्यवीर सावरकर सभागृह' रखा गया। फरवरी १९१६ के सत्र सी०पी० रामास्वामी अय्यर ने उसका उद्घाटन किया। उसी दिन उ होने सावरकर की प्रतिमा का भी अनावरण किया। उस अवसर पर श्री अय्यर ने कहा कि आज वह समय आ गया है कि अब कोई स्वयं को हिंदू कहता है तो उसको साम्प्रदायिक करार दिया जाता है। सावरकर हिंदुत्व के संरक्षक होते हुए भी रूढ़िवाद से बहुत दूर हैं। वे प्रगतिवादी हिंदू हैं। उनका हिंदुत्व दूसरे के प्रति घणा पर आधारित नहीं है। मेरा विश्वास है कि सावरकर के सिद्धांतों पर यदि राष्ट्र का काय चले तो इससे देश में सुख समृद्धि का साम्राज्य आएगा।

उही दिन सावरकर का ७५वाँ जन्म दिन मनाने के उद्देश्य से एक अमृत महोत्सव समिति का गठन कर उसका कार्य आरम्भ कर दिया गया। बम्बई के महा-

पौर की अध्यक्षता में एक नागरिक समिति का गठन किया गया। बम्बई नगर निगम ने सावरकर का अभिनन्दन करने का निश्चय किया।

२८ मई १९५८ को बम्बई के कमला नहरू पार्क में बम्बई नगर निगम ने विशाल स्तर पर सावरकर का अभिनन्दन करते हुए उनका ७५वा जन्म दिन अमृत महोत्सव के रूप में मनाया। इस अवसर पर सावरकर के प्रशंसकों की अपार भीड़ देखने लायक थी। सारा मैदान नर मुण्डा से भरा दिखाई देता था। बम्बई के महा-पौर श्री मिराजकर ने सावरकर का अभिनन्दन किया और उनकी प्रशंसा के गीत गाये। उसके उत्तर में सावरकर ने बड़ा मुझे आशा है कि भारत कुछ ही समय में रूस की भाँति सुदृढ़ शक्ति वाला देश बन जाएगा।

अप्रैल १९५६ में पूना विश्वविद्यालय ने सावरकर को 'डाक्टर' की मानद उपाधि से सम्मानित किया। सावरकर को डाक्टरेट प्रदान करने के लिए पूना विश्वविद्यालय के उपकुलपति आदि अपने अयाय अधिकारियों के साथ स्वयं बम्बई के सावरकर सदन में पधारे थे।

माघ १९६० से सावरकर का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता गया। उसी समय सदन में निदेशीय सौंसद श्री पी० आर० पटेल ने सदन में प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि अंग्रेज सरकार ने सावरकर की जो सम्पत्ति जप्त कर ली थी अब वह उनको सौंप दी जानी चाहिए। लोक सभा ने उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

राजा महेन्द्र प्रताप तो उस धिल की परिधि में आ गए किन्तु सावरकर फिर भी रह गए। जब राजा महेन्द्र प्रताप ने सावरकर से कहा कि वे इसके लिए सधप करें तो सावरकर ने कह दिया, "मैंने तो अपना सम्पत्ति के लिए अंग्रेजा से सधप नहीं किया। मैं तो केवल भारत माता की मुक्ति के लिए ही सधप करता रहा हूँ। अपनी निजी सम्पत्ति के लिए मैं सधप नहीं करूँगा।"

## नेहरू का ओद्घापन

बाहरी कांग्रेस सरकार! बाहरी प्रधानमंत्री नेहरू! ब्रिटिश सरकार ने सावरकर की जिस सम्पत्ति को जप्त किया था कांग्रेस सरकार को चाहिए था कि सरकार बनाते ही सबसे पहले सावरकर की सम्पत्ति उन्हें सम्मान सौजन्य का पुण्य कृत्य करती। किन्तु वह तो सदन में विधि विधान के स्वीकार हा जान पर भी उस सम्पत्ति को लौटाने के लिए उद्यत नहीं हुई।

ऐसे थे हमारे गुर्वक हृदय सम्राट, किन्तु तन मन मस्तिष्क-बुद्धि से सदाया युद्ध नेहरू।

पूना के बाद बम्बई विश्वविद्यालय ने भी सावरकर को मानद डाक्टर की उपाधि से सम्मानित किया। १ मई १९६० को महाराष्ट्र राज्य की स्थापना हुई। उस अवसर पर सावरकर ने अपने संदेश में इच्छा व्यक्त की कि महाराष्ट्र भारत की तलवार का काम करे।

सावरकर का सम्पत्ति के विषय में श्री वी० वी० गोटे ने बम्बई सरकार

से वातचीत की तो तत्कालीन महाराष्ट्र के नहीं अपितु भारत सरकार के अधिकार में है। तब लोगो ने उनसे कहा कि यदि उनकी इच्छा हो तो उसने लिए मांग भी बन सकता है। जहाँ चाह, वहाँ राह।' विन्तु चौहाण मंत्री मण्डल इस काय में सफल नहीं हुआ। इसका कारण नेहरू सरकार का सावरकर के प्रति विद्वेष पूर्ण व्यवहार ही था।

सावरकर के स्वास्थ्य को देखते हुए उनका मृत्यु जय दिवस निरन्तर मनाया जा रहा था और स्थान स्थान से समय-समय पर उनके प्रशंसक, भक्त आ-आ कर उनको सम्मानित करते रहते रहते थे। इनमें आचार्य डॉ. आचार्य अत्रे, भिडे गुरुजी, हीरेन मुखर्जी, राजा महेन्द्र प्रताप, विशनचन्द्र सेठ, पं. ब्रजनारायण ब्रजेश, राजगोपालाचारी आदि अनेक लोगो ने अनेक समारोहों पर सावरकर की प्रशंसा में अपनी वाणी को धन्य किया। राजाजी ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा था "भारत के स्वातन्त्र्य संग्राम में सावरकर गिने घुने वीर पुरुषों में से एक हैं। स्वातन्त्र्य समर में अधिरथ की भाँति उनका सदा आदर और सम्मान होता रहेगा और जनता उन्हें प्यार देती रहेगी।"

एक प्रश्न के उत्तर में कि 'नेहरू के बाद कौन?' सावरकर ने कहा कि किसी के बिना कोई काम नहीं रुकता। उन्होंने यह भी कहा कि नेहरू का सारा क्रिया कलाप बाजीराव द्वितीय के समान रहा है। नेहरू ने इस देश को जितनी हानि पहुँचायी है कोई भी साधारण व्यक्ति यदि उसके स्थान पर होता तो वह भी देश की इतनी हानि नहीं करता जितनी कि नेहरू ने की है।

'अमृत महोत्सव' का समापन १५ जनवरी १९६१ को पूना की सचदलीय समिति की ओर से आयोजित सभा में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर न केवल स्व-साधारण नेताओं अपितु राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद, उपराष्ट्रपति डा० राधा-कृष्णन, महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री यशवतराव चव्हाण आदि अनेक गण्यमाय जनों ने अपने शुभकामना संदेश भेजे।

सनापति वापट ने समारोह की अध्यक्षता की। उन्होंने कहा कि उन्होंने सदा सावरकर का अपना नेता माना और उनके आदेशों का पालन करते रहे। समाजवादी नेता एस० एम० जोशी ने कहा कि अपने जीवनकाल में वे सावरकर के पूर्ण स्वराज्य की माँग से प्रभावित और प्रेरित हुए थे। इनके अतिरिक्त भी लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के पौत्र और तत्कालीन विधायक श्री जयंत तिलक, श्री माऊ-राव मोदक श्री ग० वि० केतकर आदि नेताओं ने वीर सावरकर की प्रशंसा में भाषण देते हुए उन्हें स्वाधीनता संग्राम का अजेय पराक्रमी सेनानी बताया।

गोआ मुक्ति का आन्दोलन जोर पकड़ने लगा था। इससे यह आशा होने लगी थी कि गांधी मुक्ति अब सन्निकट है। गोआ के भीतर से भी सघष हो रहा था और पुतगालियो पर बाहर से भी दबाव पड़ने लगा था। भारतीयों ने भारत पर ही जार दे डाला और एक प्रकार से सरकार के विरुद्ध युद्ध का अभियान कर दिया। परिणाम स्वरूप २० दिसम्बर १९६१ को गोआ भी पुतगालियो के चंगुल से

मुक्त हुआ। जब भारतीय सेना ने गोआ में प्रवेश किया तो उस अवसर पर सावरकर ने अपने घर पर राष्ट्रीय ध्वज फहराया। सगभग ४५० वर्ष बाद गोआ मुक्त हुआ था। भारत की पसली पर चुभा बाँटा, जो भारत को बहुत पीड़ा पहुँचा रहा था, आखिर किसी न किसी प्रकार निकल ही गया।

अक्टूबर १९६२ में नेहरू के मुँह बोले भाई चाउ एन लाई ने भारत पर आक्रमण कर दिया। चीन के इस आक्रमण से सावरकर को बड़ा आघात लगा। उनका स्वास्थ्य पहले से ही गिरता जा रहा था इससे उन्हें अतीव मानसिक वेदना हुई। उस समय सावरकर ने कहा था, “काश! अहिंसा, पंचशील व विश्व शांति के भ्रम में फँसे ये शासनाधिकारी मेरे सुझाव को मान कर सवप्रथम राष्ट्र का सैनिकीकरण कर देते तो आज हमारी बार व पराक्रमी सेना चीनियों को पीकिंग तक खदेड़ कर उनका मद घूर घूर कर डालती। किंतु अहिंसा व विश्व शांति की काल्पनिक उड़ान भरने वाले ये ‘महापुरुष’ न जाने कब तक देश के सम्मान का अहिंसा की बसौटी पर परीक्षण करते रहेंगे।”

उस समय सावरकर ने एक बक्तव्य भी दिया जिससे उन्होंने कहा, “भारत के शासनधिकारियों को यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि आज के युग में जिसकी सेना उसका ही राज्य सुरक्षित है।’ का सिद्धांत ही व्यावहारिक है। यदि हमारे शत्रु चीन के पास अणुबम है तो हमें उसका सामना करने के लिए उससे भी अधिक शक्तिशाली बमों के निर्माण के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। “हम अणु बम वंदापि नहीं बनाएँगे” की घोषणा करना मूलता तथा कायरता का ही परिचायक होगा।’

चीन के आक्रमण से श्रुत हो कर देशवासियों ने तत्कालीन रक्षा मंत्री और पण्डित नेहरू के अन्तर्गत मित्र बी० के० कृष्ण मेनन को एक क्षण के लिए भी सहन नहीं किया। विवश नेहरू को उस हटाना पड़ा। नेहरू की ही भाँति मेनन भी प्रच्छन्न कम्युनिस्ट था। यही कारण था कि भारत की निर्माणियों में आयुध आयुध नहीं अपितु कोफी परकोलेटर आदि का निर्माण किया जा रहा था।

मेनन के त्यागपत्र के उपरान्त जब आयुध निर्माणियों में आयुध बनने लग तो सावरकर ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा था, “कम से कम २५ लाख सैनिकों की नियमित सेना बनाओ और उसे आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों से सज्जित करो।” उसी अवसर पर पुन उन्होंने देश के प्रत्येक नवयुवक को आधुनिकतम शस्त्रास्त्र और सैनिक शिक्षा दिए जाने का भी सुझाव दिया था।

सावरकर का स्वास्थ्य निरंतर गिरता जा रहा था। और जब सारा राष्ट्र उनका ८० वाँ जन्म दिन मना रहा था उस दिन सावरकर रुग्णता एवं दुबलता के कारण घर में ही गिर पड़े और उनकी जाँघ की हड्डी टूट गयी। उन्हें अस्पताल पहुँचाया गया। ३० मई को उनकी जाँघ का ऑपरेशन किया गया। इससे उनके स्वास्थ्य में और गिरावट आ गयी। २४ जून १९६३ को वे घर पर मर गए।



## पत्नी का निधन

तान मास के उपरांत जब वे किसी अन्य की सहायता से कुछ चलन के योग्य हुए कि तभी उनकी घमपत्नी बहुत सक्षत बीमार हो गयी। उधे तुरंत डा० तलवरकर के अस्पताल में ले जाया गया। श्रीमती यमुनाबाई अस्पताल में पड़ा पड़ी सावरकर से मिलन के लिए छटपटा रही थी किंतु सावरकर अब उनसे मिलन के लिए जान में कोई सार न समझ उनसे अंतिम विदा लेने के लिए भी नहीं गए। यद्यपि अनेक बार नर्स के माध्यम से सावरकर ने कहलवाया कि वे उनका देखन के लिए आएंगे, किंतु गए नहीं। तब उनकी पत्नी ने आग्रह किया कि उनको घर वापस ले जाया जाय जिससे कि वे अपने पति के समीप रह कर अपने प्राण त्याग सकें। अंत में ८ नवम्बर १९६३ को ७६ वर्ष का आयु में उनका देहांत हो गया। सावरकर को इससे कुछ तो हुआ किंतु उ होन अपन अनुपायिया को कहा कि उनके मृत शरीर को चुपचाप ज़ेदनवाड़ी बिछुत शवदाह गृह ले जा कर बिना किसी समाराह के भस्म करवा दिया जाए।

२७ मई १९६४ को नहरू की मृत्यु हुई ता उस समय सावरकर की ओर से कोई सन्देश अथवा वक्तव्य प्रसारित नहीं किया गया। नहरू के बाद जब लालबहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बने तो उ हान सावरकर को भासिक सहायता देनी आरम्भ कर दी। यह सहायता अक्टूबर १९६४ से आरम्भ हो गई थी। इसके साथ ही उनके गीता पर लगा प्रतिबंध भी हट गया और उनका प्रसिद्ध गीत 'जयोस्तु ते स्वतंत्रते आकाशवाणी के पूना केन्द्र से प्रसारित हुआ।

मुस्लिम मनोवृत्ति कभी भी भारतीय मनोवृत्ति नहीं हो सकती। इसका प्रमाण १२ मार्च १९६५ को मौलाना आजाद के बाद कांग्रेस दल में सर्वोत्तम राष्ट्रीय मुसलमान गान जान वाले आबिद अली ने सदन में यह प्रश्न उठा कर प्रस्तुत किया कि सावरकर को सरकारी सहायता क्यों दी जा रहा है। भल ही उनका आरम्भिक जीवन सेवा और त्याग का रहा हो किंतु उनका जीवन कांग्रेस की नीतियों का विरोधी रहा है। आबिद अली के इस विरोध की न केवल गिफत न निंदा की अपितु कुछ कांग्रेस जनों ने भी उसकी खूब निंदा की थी। उस समय के राज्य सभा अध्यक्ष जाकिर हुसैन ने भी कुछ इस प्रकार की ही टिप्पणी की थी कि उनका मुसलमान होने की पुष्टि करती थी। सदन में गृहमंत्री ने बताया कि सावरकर को महाराष्ट्र सरकार की सिफारिश पर सहायता दी जा रही है। तब जाकिर हुसैन ने अध्यक्ष पद से टिप्पणी करते हुए कहा था, 'जो हो, महाराष्ट्र सरकार आबिद अली के विचारों से सन्मत नहीं लगती। जाकिर हुसैन का मुख खालना हो था ता वह सावरकर की प्रशंसा में कुछ कह सकता था।

किंतु किसी मुसलमान से किसी भारत भक्त की प्रशंसा की अपेक्षा रखना बालू में तेल की अपेक्षा के समान निरर्थक होगा।

## दीप निर्वाण

सावरकर का स्वास्थ्य निरंतर गिरता जा रहा था। डाक्टर अनेक प्रकार के सुझाव उनको दे रहे थे। राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन ने उनके स्वास्थ्य पर चिंता व्यक्त की और अपने सहायक का सावरकर का स्वास्थ्य समाचार लेन के लिए वमर्ग भेजा। नेशनल इन्डियन चर्च के विशेष विलियम्स स्वयं सावरकर सदन में उनका समाचार लेन के लिए आए थे।

अगस्त १९६५ में काश्मीर के विद्रु पाकिस्तान का पडमत्र का भडाफाड हुआ ता समय पर उसका प्रतिशोध खने का अवसर मिल गया। ६ सितम्बर ६५ को रक्षा मंत्री श्री वह षाण ने ससद में घोषणा की कि भारतीय सेनायें तीन ओर से साहीर की ओर बढ़ा लगी हैं। सावरकर का जब यह समाचार सुनाया गया तो राग प्रस्त और मुरझाया हुआ उनका चेहरा भी खिस उठा।

किंतु भारतीय नेताओं ने अब बार पुन स्वयं की कांसेसी जयया गांधीवादी सिद्ध कर दिया। रस की बूटनीनि के दयाव में आकर भारत न मुद्रिराम की घोषणा कर दा। समझौता वात्ता हान लगी। ताशकद समझौता होने वाला था कि उसमें पूर्व हा सावरकर १ अपनी रुग्ण शैया से बड़ा सह्याधिव हिंदू युवकों ने अपना वलिगन देकर जा विजयया प्राप्त की उसे य गांधीवादी नेता यो ही गवा देंग। अब इनसे विवित भी आशा करना व्यय है "

उस दिन से सावरकर आर अधिष म्बन्ध रहने लगे। उनके हृदय पर इसका प्रभाव पडा। ताशकद समझौते के लिए तत्कालीन भारत के प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री रस गए और वहाँ पर पाकिस्तान के पक्ष में लिए गए समझौते पर ज्यो ही उहान हस्ताक्षर किए, अथवा उनमें करवाए गए उसी दिन ११ जनवरी १९६६ की रात्रि में सदेहास्पद स्थिति में उनका निधन हा गया। कहन का तो यही कहा जाता रहा है, और आज भी यही कहा जाता है कि हृदयाघात से उनकी मृत्यु हुई। किंतु उस समय की घटनायें सिद्ध करती हैं कि यह साधारण और सामान्य स्थिति की मृत्यु नहीं थी।

सावरकर अब चारों ओर से निराश से हो गए थे। उह लगता था कि अब अधिक दिन तक जीवित रहना उचित नहीं होगा। अतः वे मृत्यु का वरण करने के लिए स नद्व हा गए इस प्रक्रिया में उ होने सवप्रथम औपधि सेवन छाड दिया। परिजन इससे चिंतात हुए और उनके पुत्र विश्वास सावरकर, भतीजे विक्रम सावरकर तथा निजी सचिव बाल सावरकर ने डाक्टर से कह कर उनको चाय के माध्यम से औपधि देने का यत्न किया। किंतु किसी प्रकार सावरकर को इसकी भी भनक लग गई तो उहाने कह दिया, "यदि औपधि मिश्रित चाय दोग ता मैं चाय भी नहीं पियूंगा। मैं अब जीवित रहना नहीं चाहता। मुझे अब जीवित रह कर करना ही क्या है? मेरा जो कर्तव्य था वह मैंने पूरा कर लिया है।" यहाँ तक कि उहोन भावावेश में आकर अपने निजी विकित्सक डा० साठे से कहा कि वे उहे कोई ऐसी

औपधि दें जिससे कि वे सदा-सदा के लिए शान्त हो जाय।

सावरकर ने ३ फरवरी १९६६ से भोजन आदि सेना सवया त्याग दिया। मृत्यु से दो दिन पूर्व द्वारावापोठ के जगदगुरु शंकराचार्य न सावरकर से मिलन की इच्छा व्यक्त की तो सावरकर को इस बात का खेद था कि वे शंकराचार्य के दर्शन करने स्वयं न जा सकें, अतः उनको उनके पास आता पड़ रहा है। उन्होंने वान सावरकर आदि से यह शर उनका यथाचित स्वागत सत्कार की व्यवस्था के लिए निर्देश दिए।

सावरकर की स्थिति दिन पर दिन बिगड़ती गई। २४ फरवरी को डाक्टर न अपने युलेटिन में बताया कि सावरकर की दशा चिंताजनक है। २५ फरवरी को भी यही स्थिति रही।

२६ फरवरी को वे प्रातः साढ़े आठ बजे निद्रा में गये। परिवारिका न उन्हें झुल्ला कराया। जबरन भी बना हुआ था। जिस मृत्यु को वे अपने बाल्यकाल से ही दूर दूर भगते आए थे, वह आज इस दुःसावस्या में भी उनके निकट आने से भानी डर रही हो। किंतु अब तो स्वयं सावरकर उसके सम्मुख आत्मसमर्पण कर रहे थे। सावरकर के पुत्र विश्वास, पुत्री विदुला और धैर्यती उनके पास ही बठे सुबक रहे थे।

१० बजे उनकी नाड़ी की गति मन्द पड़ने लगी। रक्तचाप का परीक्षण नहीं हो पा रहा था। डाक्टरों ने कृत्रिम श्वास देने का यत्न किया। डाक्टर कभी कुछ, तो कभी कुछ देते रहे। कभी श्वास चलने लगती किंतु फिर बन्द हो जाती। अंत में २६-१९६६ को ११ बजे कर १० मिनट पर ८३ वर्ष की आयु में उन्होंने अपनी इहलौका पूरा की।

डाक्टरों का कहा था कि वे आयुर्विज्ञानियों को निरंतर चुनौती देते रहे। उनकी जिजीविषा ने आयुर्विज्ञान को असफल सिद्ध कर दिया था। वे अपने अंतिम क्षण तक होश में रहे। यह सब उनकी याग शक्ति का ही प्रभाव था।

## उपसहार

सावरकर के निधन का समाचार आवाशवाणी, समाचार पत्र तथा टेलीफोन द्वारा देश के एक कोन से दूसरे कोने तक प्रसारित हो गया। समाचार सुनते ही बम्बई में जो जहाँ था, वहीं से सावरकर सदन की ओर चल पड़ा। उस दिन किसी को सावरकर सदन का माग व दिशा पूछने की आवश्यकता नहीं थी। जिस ओर भीड़ जाती दिखाई दे वही सावरकर सदन का मार्ग था।

अपनी मृत्यु से कई वष पूर्व सावरकर ने अपनी वसीयत लिख दी थी। उसमें जो दो विशेष उल्लेखनीय बातें थी, यहाँ पर हम केवल उनका ही वर्णन कर रहे हैं। पहली तो यह कि "मेरे श्राद्ध का धन बचा कर हिंदू धार्मिक सस्थाओं को दान में दे दिया जाय तथा मैं अपने निजी कोष से पाँच सहस्र रुपये शुद्धि-आन्दोलन के लिए भेंट करता हूँ। हिंदुओं को शुद्धि आन्दोलन को सुचारु रूप से चलाते रहना चाहिए।"

दूसरी उल्लेखनीय बात थी, "मेरी मृत्यु का शोक प्रकट करने के लिए न किसी प्रकार की हड़ताल की जाय और न बंद। मेरे मरण के शोक के लिए कोई भी व्यक्ति अपना काय बंद न करे।"

'मेरी राष्ट्र भारत माता को तथा मेरी सम्पत्ति मेरी पुत्री को' जैसी इच्छा उनकी नहीं थी।

मृत्यु का समाचार सुनते ही मंत्री, उपमंत्री, कांग्रेस के तथा विपक्ष के नेता, केन्द्रीय मंत्री एवं नेता, स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख सेनानी, शिक्षाशास्त्री, वकील, समाज सचक, सभी क्षेत्रों के नेता सावरकर को श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए सावरकर सदन की ओर चले।

२६ फरवरी, १९६६ को उनका शव परिजनो मित्रो तथा अन्याय दशनकर्ताओं की सुविधा के लिए सावरकर सदन में रखा रहा और २७ को उनकी शवयात्रा की व्यवस्था की गई। २७ फरवरी, १९६६ को उनकी शवयात्रा निकली। ५० हजार से भी अधिक लोग इस शवयात्रा में सम्मिलित हुए। इनमें सभी राजनीतिक दलों के मुखिया

तथा नेता एवं विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधि और देश के गण्यमान्य जन भी सम्मिलित थे। सावरकर जी न अपने इच्छा पत्र में यह भी लिख दिया था कि उनका शव किसी के कंधों पर रख कर न ले जाया जाय। अतः शव को एक वाहन में सजा कर रखा गया था। वाहन में चालक के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था। सब शव के साथ पदल चल रहे थे। मार्ग में 'वीर सावरकर अमर रहे' 'स्वातन्त्र्य लक्ष्मी की जय हो', 'हिन्दू राष्ट्र की जय हो' आदि गगन भेदी घोष लगाय जा रहे थे।

सड़क के दोनों ओर हजारों लोगों की भीड़ सावरकर के अंतिम दशनों के लिए शान्ति मुद्रा में शवयात्रा की प्रतीक्षा में खड़ी रही। इस भीड़ में हर आयुवर्ग तथा प्रत्येक वर्ग और व्यवसाय के लोग थे। मार्ग के दोनों ओर के भवनों की छतों और छज्जे दशनायियों से भरे हुए थे।

सावरकर का अंतिम संस्कार चन्दनवाडी स्थित विद्युत् शवदाह गृह में किया गया। यही उनकी इच्छा भी थी। चन्दनवाडी पहुँचने पर अनन्त नेताओं तथा प्रतिष्ठित जनों ने पुनः सावरकर को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की तदनन्तर उनकी अंत्येष्टि की गई।

सावरकर की मृत्यु पर देश विदेश के समाचार पत्रों ने विस्तृत समाचार प्रसारित कर अपनी श्रद्धाञ्जलि व्यक्त की। लगभग सभी समाचार पत्रों ने उन पर सम्पादकीय अप्रलेख लिखत हुए देश और समाज के प्रति की गई उनकी सेवाओं का मूल्यांकन, सराहना और प्रशंसा की। देश का कोई भी समाचार पत्र इससे वंचित नहीं रहा।

देश के नेताओं ने भी सावरकर को भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। चक्रवर्ती राजगोपालचारी ने कहा, 'सावरकर हमारे प्रथम क्रान्तिकारी आदर्श थे।' डा. राधाकृष्णन ने कहा, 'अपने देश के लिए वे धीरता में लड़ने वाले क्रान्तिकारी थे। उनके युवकों के लिए उनका जीवन पुराणकथा के समान प्रेरणादायी रहा।' प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने कहा 'सावरकर की मृत्यु से समकालीन भारत का एक महान व्यक्तित्व चला गया।' कम्युनिस्ट नेता एस. ए. डांग ने कहा, 'सावरकर की मृत्यु ने बहुत बड़ा साम्राज्य विरोधी क्रांतिकारी इस धरती से उठा लिया।' तत्कालीन रक्षामंत्री श्री चव्हाण ने कहा देश ने महान क्रांतिकारी और स्वतंत्रता सेनानी खो दिया। महाराष्ट्र के मुख्य मंत्री बी. पी. नायक ने कहा, 'सावरकर क्रांतिकारियों में अग्रणी थे जिन्होंने बड़ी श्रद्धा से स्वतंत्रता का मुद्दा लड़ा था।'

गोआ के मुख्य मंत्री बांदोडकर, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के नेता एस. एम. जाशी जनसंघ के प्रधान वच्छराज व्यास तथा बलराज मधोक मध्य प्रदेश के पूर्व राज्यपाल श्री पाटसकर सरसंघ चालक श्री एस. एस. गालवलकर, श्री अणे, श्री गुलजारीलाल तन्दा, सकडो नगर पालिकाओं, कुछ विधान सभाओं, विधान परिषदों, जिला परिषदों, कुछ प्रदेश सरकारों अनेकानेक साहित्यिक शक्ति जगत के पण्डितों, सामाजिक संस्थाओं ने सावरकर की मृत्यु पर शोक संदेश भेजे, शोक मनाया और शोक प्रस्ताव पारित किए।

२८ फरवरी, १९६६ को ससद मे कम्युनिस्ट नेता हीरेन मुखर्जी तथा जनसघ के नेता श्री उमाशंकर त्रिवेदी ने लोकसभा को सुझाव दिया कि सावरकर द्वारा इस देश के प्रति की गई अमूल्य एवं अनुपम सेवाओं के लिए ससद में उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की जानी चाहिए। किन्तु तत्कालीन स्वतंत्र पार्टी के सासद सरदार कपूरसिंह ने कहा कि सावरकर की सवाआ की अनदेखी नहीं की जा सकती, किन्तु वे इस ससद के कभी सदस्य नहीं रहे, अतः असदस्य की श्रद्धांजलि अर्पित करना कहाँ तक उचित होगा, यह विचार कर लेना चाहिए।

लोकसभा अध्यक्ष सरदार हुकुमसिंह ने कहा कि इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि सावरकर ऐसे महान् नेता थे जिन्होंने बड़ी श्रद्धा और लगन से अपन जीवन को देश के लिए समर्पित कर दिया था, किन्तु भविष्य के लिए यह बड़ा कठिन हो जाएगा कि जो साग ससद के सदस्य नहीं रहे उनमें से किन किन को श्रद्धांजलि अर्पित की जाय और किनको न जाय। यदि इस प्रकार की परम्परा चालू कर दी गई तो भविष्य में ससद कभी पक्षपात की दोषी भी बताई जा सकती है। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि वे उनके परिजनों को ससद की भावना से अवगत करा देंगे।

सासद स० कपूरसिंह और लोकसभा अध्यक्ष स० हुकुमसिंह (सरदार-द्वय) ने लोकसभा को यह नहीं बताया कि महारमा गांधी और रूस का स्टालिन लोकसभा के कभी सदस्य रहे थे अथवा नहीं। और नहीं यह बताया कि जब देश-धु चितरंजन दास का दहान्त हुआ था तो केन्द्रीय विधान सभा में उनको श्रद्धांजलि अर्पित की गई थी।

कांग्रेस कलचर का यह निरुद्धतम उदाहरण था।

४ मार्च, १९६६ को दिल्ली में सबदलीय शोक सभा का आयोजन किया गया था। केन्द्रीय मंत्री श्री सत्यनारायण सिन्हा ने इस सभा की अध्यक्षता की थी। इसमें केन्द्रीय मंत्री, विपक्ष के नेता, लोकसभा अध्यक्ष तथा विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षिक, धार्मिक आदि आदि संस्थाओं के अनेक नेताओं ने उपस्थित होकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी। जिसमें सावरकर को अनेक प्रतिभागियों का सम्मिलित स्वरूप स्वीकार किया गया और कहा गया 'भावी पीढ़ियाँ सावरकर के जीवन से प्रेरणा प्राप्त करती रहेगी।'।

इस सभा में ही डा० राममनोहर लोहिया ने कहा था कि भारत का रहने वाला हर नागरिक हिन्दू है, चाहे वह किसी भी मत का मानने वाला क्यों न हो। तत्कालीन शिक्षा मंत्री मोहम्मद करीम छागला ने सावरकर को बड़ी भाव भरी श्रद्धांजलि अर्पित की थी। कम्युनिस्ट नेता हीरेन मुखर्जी ने सावरकर की देशभक्ति की भूरि भूरि प्रशंसा की।

इसी सभा में प्रस्ताव पारित करके यह मांग की गई कि सावरकर की दश सवाओं के अनुरूप उनका एक स्मारक स्थापित किया जाय और उनकी स्मृति ॥ डाक टिकट निकाला जाय।

अपनी मृत्यु को सम्बोधित करते हुए सावरकर ने लिखा था—

“मेरा वश सम्पूर्ण मानव जाति की सेवा के लिए समर्पित हो गया है। मैंने अपने सकल्प के अनुसार प्रत्येक दिवस के कार्य को किए बिना सुय को अस्त न होने दिया। मैंने अपने समस्त कृतव्या की-पूर्ति की सदा चेष्टा की है। अपने कृत कार्यों से मेरा जीवन सम्पन्न बना है। धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक कृतव्या का मैंने पालन किया है। मृत्यु के उपरान्त होने वाली अवस्था में सुयोग्य निवास पाने के लिए मैंने अपने कर्मों से ही अग्रिम किराया चुका दिया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं अपने कर्मों के फल पर परलोक में एक अच्छी सी कोठी प्राप्त करूँगा।”

यह है आत्मविश्वास का उदाहरण। तथाकथित नेताओं की भाँति उन्होंने नहीं कहा ‘अभी मुझे मीलों जाना है, अपनी सन्तति को स्थापित करना है।’ बड़े आत्म-विश्वास के साथ सावरकर ने कहा ‘मैंने अपना करणीय कर दिया है।’ उन्होंने कहा, ‘मैंने ध्याज सहित सारा मात और पित ऋण चुका दिया है। इस जीवन पर अब किसी का, किसी भी रूप में कोई ऋण शेष नहीं है।

‘हे मृत्यु ! अब यह जीवन केवल तुम्हारे लिए ही शेष है। तुम जब चाहो बड़ी प्रसन्नता से इसे ले जा सकती हो।”

## सावरकर साहित्य

प्रातिहारियों के मुकुटमणि, स्वातंत्र्य धीर विनायक दामोदर सावरकर अपन 'कृत्य' और 'कृति', दोनों ही के कारण इस ससार में अमर हैं। उनक कृत्यों और कृतियों न न केवल भारतवासियों को अपितु ससार के अनेक देशों क युवकों एवं स्वतंत्रता प्रेमियों को प्रेरणा प्रदान की है। सावरकर के कृत्यों पर तो हम यथाशक्ति पूव पृष्ठों में अकित तरह अध्यायों में प्रकाश डाल आए हैं। उनकी कृतियों का परिचय देना भी स्वयं न एक ग्रन्थ का ही विषय है। तदपि पाठकों के ज्ञानवर्धन के लिए हम यहाँ पर उनकी कृतियाँ का संक्षिप्ततर परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं। सावरकर की कृतियाँ प्रत्येक पाठक क मन-मस्तिष्क को झकझोर देती हैं। उनकी रचनाओं में न केवल प्राति का अपितु शान्ति का भी तत्त्वदर्शन उपलब्ध है। उनकी कृतियों को पढ़कर पाठक उन पर विचार करने के लिए और उनमें व्यक्त किए गए विचारों को स्वीकार करने के लिए विवश हो जाता है। उनकी लोह-लेखनी से निस्सत स्वर्णिम शब्द पाठक को उसके गौरवमय अतीत का स्मरण करा कर उसको अपना तथा अपने देश का उज्ज्वल भविष्य निर्माण करने क लिए प्रोत्साहित करते हैं।

सावरकर स्वयं भोज और तेज के पुत्र थे। उनकी बाणी और लेखनी दोनों में भोज था। उनका वह भोज उनके बाल्यकाल में ही रचित उनके 'पोवाडों' के माध्यम से प्रस्फुटित होने लगा था। 'पोवाड' मराठी भाषा में कविता एवं गीत की एक विशिष्ट विधा है। मराठी के प्रसिद्ध साहित्यकार तथा मराठी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष स्व० श्री माडखोलकर ने उनसे इस भोज के विषय में एक स्थान पर कहा है—

" सावरकर का भोज प्रतिपक्षियों के आसुरी आघातों द्वारा भी दुर्दमनीय सिद्ध हुआ है। मानो वज्र सिद्ध करने के उपरान्त महर्षि दधीचि की अवशिष्ट दिव्य अस्थियों में से ही विघाता ने सावरकर जी की प्रतिमा का निर्माण किया हो।"

सावरकर के भोज के प्रति व्यक्त किए गए उपरिलिखित विचारों से उत्कृष्ट



अय विचार क्या हो सकते हैं ? उनका रोम रोम ओजस्वी और तपस्वी था। महर्षि दधीचि की ही भाँति सावरकर भी तपस्वी एवं कूशकाय थे। इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं कि उनकी लोह लेखनी ने हिंदुत्व रूपी जिस शस्त्र का निर्माण किया है उसका यदि उचित रीति से प्रयोग किया जाय तो वह हिंदू को उनका उचिन् एव प्राप्य गौरव पुनरेण प्रदान कर सक्ता है।

प्रस्तुत है सावरकर की कृतियों का अकारादि क्रम से संक्षिप्त परिचय—

- १ '१८५७ का स्वातंत्र्य समर' यह ग्रंथ मूलतया मराठी भाषा में लिखा गया था। सर्वप्रथम उसका अंग्रेजी अनुवाद हुआ। मराठी हिन्दी गुजराती तमिल भाषाओं में यह ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। यह ग्रंथ १९०८ में लंदन में लिखा गया और प्रकाशन से पूर्व ही इसकी पाण्डुलिपि प्रतिबिम्बित कर दी गई। किन्तु फिर भी यह पुस्तक किसी प्रकार होलेण्ड में प्रकाशित हो ही गई। तदनन्तर १९१० में अभिनव भारत संस्था ने इसे प्रकाशित किया था। लाला हरदयाल ने इसे अमेरिका में प्रकाशित करवाया था। सावरकर की स्थान बढ़ता के काल में क्रांतिकारी सरदार भगतसिंह ने गुप्त रूप से प्रकाशित करा कर इसकी आय से क्रांतिकारी आन्दोलन को आग बढ़ाया था।
- २ 'अण्डमान की गूँज' मराठी, अंग्रेजी तथा हिन्दी में प्रकाशित यह ग्रंथ अण्डमान की काल कोठरी में लिखे गए ओजस्वी व धार्मिक पत्रों का संग्रह है। सन १९२५ में यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ था।
- ३ 'आत्म चरित्र'। यह मराठी में प्रकाशित सावरकर की संक्षिप्त जीवनी है।
- ४ 'उत्तर क्रिया यह सर्वप्रथम मराठी में प्रकाशित है और अब इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो गया है। मराठा के पानीपत में हारन के उपरान्त केवल बारह वर्षों में उन्होंने मुदद संगठन बनाकर पुनः किस प्रकार पानीपत पराजय का प्रतिवार लिया था, इस ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित यह नाटक सन् १९२६ में प्रकाशित हुआ था।
- ५ 'उ शाप' मूल मराठी में सन १९२७ में प्रकाशित यह अत्यन्त मार्मिक और संवेदनशील नाटक है। इसी नाम से इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो गया है।
- ६ 'बाने पाणी' अण्डमान के जीवन पर आधारित यह उपन्यास सन १९३७ में मराठी में प्रकाशित हुआ था। कालांतर में 'बाला पानी' नाम से इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है।
- ७ 'गांधी गांधल' मराठी में प्रकाशित इस ग्रंथ में गांधी के तत्त्वज्ञान पर प्रबल प्रहार किया गया है।
- ८ 'गोमान्तक' यह खण्ड काव्य सर्वप्रथम मराठी में सन् १९२४ में प्रकाशित हुआ था। यह गोवा की पण्डूमि पर लिखा गया है। कालांतर में ५० वान शान्धी हरिदाम ने इसका संस्कृत में तथा श्री माधवराव मुले ने हिन्दी में

इसका अनुवाद प्रकाशित कराया ।

- ६ 'जोसफ मेजिनी' इटली के प्रख्यात नाटिकारी मेजिनी की यह जीवनी वीर सावरकर की सवप्रथम कृति है । इसका लेखन उन्होंने सन १९०७ म लंदन म रहते हुए किया था । प्रकाशित होते ही भारत सरकार ने इसको प्रतिर्बाधित कर दिया था, किंतु फिर भी यह किसी न किसी प्रकार प्रसारित होनी रही और सन् १९४६ मे प्रतिवध हटने पर इसका पुनःप्रकाशन हुआ ।
- १० 'तेजस्वी तारे' प्रमुख नाटिकारियों के रेखाचित्रों का यह अनुपम संग्रह, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, मराठी मे प्रकाशित है ।
- ११ 'नपाल' सन १९२८ मे मराठी भाषा म प्रकाशित यह पुस्तक स्वतंत्र हिन्दू राज्य नपाल का स्वर्णिम इतिहास है ।
- १२ 'प्रतिशोध यह नाटक मूल मराठी म प्रकाशित होने के उपरान्त अब इसी शीर्षक मे हिंदी मे भी प्रकाशित हो गया है ।
- १३ 'मराठी भाषा की शुद्धि' सन् १९२८ मे प्रकाशित इस पुस्तक म मराठी तथा अन्य भारतीय भाषाओं म ठूने गए अंग्रेजी, अरबी, फारसी आदि अन्याय परकीय भाषाओं के शब्दों के बहिष्कार के विषय मे तक पूर्ण विवेचन किया गया है ।
- १४ 'मला काय त्याचे' मालावार के मोपसो के विद्रोह की पृष्ठभूमि पर लिखा गया यह उपन्यास मराठी भाषा म १९२६ म प्रकाशित हुआ था । कालान्तर मे 'मोपला' नाम से इसका हिंदी अनुवाद प्रकाशित हुआ ।
- १५ 'माझी जन्म ठेप' मूलतया मराठी मे और कालांतर म अंग्रेजी, गुजराती तथा हिंदी भाषाओं म प्रकाशित इस ग्रंथ म वीर सावरकर ने अपने अण्डमान कारावास की रोमांचक कहानी बड़ी ही रोचक भाषा मे प्रस्तुत की है । सवप्रथम यह ग्रंथ १९२७ म मराठी मे प्रकाशित हुआ था और तत्काल ही इसे प्रतिर्बाधित कर दिया गया था । सन् १९४६ मे प्रतिवध हटने पर पुनः प्रकाशित हुआ और विभिन्न भाषाओं मे इसके अनुवाद भी प्रकाशित होने लगे । इससे समस्त विश्व मे इसकी धूम मच गई ।
- १६ 'रणशिंग' ऐतिहासिक निबंधों का यह अनुपम संग्रह मराठी म प्रकाशित है ।
- १७ 'रानफुले' यह मराठी छण्ड काव्य है । अण्डमान की कोठरी म कोलू चलते हुए इस काव्य की रचना की गई जो सन् १९२३ म प्रकाशित हुआ ।
- १८ 'विमान निष्ठ निबंध' दो भागों म मराठी म प्रकाशित इस ग्रंथ मे जसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, वैज्ञानिक और बौद्धिक निबंधों का संग्रह है ।
- १९ 'शास्त्र और शास्त्र' यह नाटक मूलतया मराठी म प्रकाशित हुआ था किन्तु अब इसका हिंदी अनुवाद भी उपलब्ध है ।
- २० 'सहा मोनरी पाने' मराठी मे प्रकाशित भारतीय इतिहास के इन छ स्वर्णिम

पृष्ठों में सावरकर न हिंदुओं की घोरता का रोषक वर्णन बड़ी सलित भाषा में किया है। कालान्तर में 'छ स्वर्णिम पृष्ठ' शोधक से यह ग्रंथ तीन भागा में हिन्दी में भी प्रकाशित हो चुका है।

- २१ सावरकरों की कविता' यह सावरकर की मराठी कविताओं का संग्रह है।
- २२ 'सावरकरों का गोष्ठी' दो भागा में मराठी में प्रकाशित यह सावरकर की मराठी कहानियों का संग्रह है।
- २३ 'सिंध्या का स्फूर्तिदायक इतिहास' यह ग्रंथ मराठी भाषा में सन् १९१० में सावरकर ने अपने परिण प्रवासकाल में लिखा था और प्रकाशित होने से पूर्व ही मरकार ने इस पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया था।
- २४ 'संयस्त छद्म' भगवान् बुद्ध के जीवन और उनके आत्मघातक राजनीतिक चिन्तन पर आधारित यह नाटक मूलतया मराठी में प्रकाशित होने के उपरान्त कालांतर में हिंदी में भी प्रकाशित हो गया है।
- २५ 'हिंदुत्व' यह ग्रंथ सन् १९२३ में रत्नागिरी के कारागार में लिखा गया था, मराठी के अतिरिक्त हिंदी, अंग्रेजी, बंगला व गुजराती भाषाओं में प्रकाशित इस पुस्तक ने प्रथम बार 'हिंदू' को व्याख्यायित किया।
- २६ 'हिंदुत्वा के पंच प्राण' मराठी में प्रकाशित यह ग्रंथ 'हिंदुत्व के पंच प्राण' नाम से हिंदी में भी प्रकाशित है। इस पुस्तक में हिंदू सगठन के पांच मौलिक तत्वों का विस्तार से विवेचन किया गया है।
- २७ 'हिंदू पद पादशाही' मराठी हिंदी, अंग्रेजी तेलुगु में प्रकाशित यह ऐतिहासिक ग्रंथ में रत्नागिरी कारागार में ही लिखा गया था। 'हिंदुत्व' की ही भांति यह ग्रंथ भी बहुत प्रसारित हुआ।
- २८ 'हिंदू राष्ट्र दर्शन' मराठी तथा अंग्रेजी में प्रकाशित यह पुस्तक हिंदू राष्ट्र पर विशेष प्रकाश डालती है।

इनके अतिरिक्त भी सावरकर जी ने जो ग्रंथ लिखे हैं वे मराठी में प्रकाशित हैं, उनका किसी अन्य भाषा में अनुवाद नहीं हो पाया है। उन ग्रंथों की सूची निम्नो-रूप में है—

- २९ क्ष किरणें।
- ३० गरमागरम चिवडा।
- ३१ प्राचीन अवाचीन महिला।
- ३२ अदमानाच्या अघेरी तून।
- ३३ भाषणें—तीन भाग।
- ३४ ऐतिहासिक निवेदने।
- ३५ स्फुट लेख।
- ३६ लदन की बात भी पत्रे।
- ३७ सहा वीरात्मे (पोवाहे)।

- ३८ कमला (कविता-संग्रह) ।
- ३९ सप्तपि (कविता-संग्रह) ।
- ४० महा-सागर (गद्य-पद्य) ।
- ४१ विरहोच्छवास (गद्य-पद्य) ।
- ४२ पूव पीठिका,
- ४३ भगूर नासिक तथा
- ४४ शयूष्या शिविरात (ये तीनों ग्रंथ सावरकर जी का आत्मवक्तृ हैं) ।
- ४५ लिपि शुद्धि के आन्दोलन ।

ये सभी ग्रंथ और इनके विभिन्न भाग मिला कर ५० से अधिक हैं, इनमें लगभग आधे ग्रन्थों का हिन्दी तथा कुछ का अंग्रेजी अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद भी प्रकाशित हो गया है। कुछ का अंग्रेजी अनुवाद भी उपलब्ध है। किन्तु आधी के लगभग उनकी कृतियों का किसी भी भाषा में अनुवाद नहीं हो पाया है। हिन्दी एवं प्रादेशिक भाषाओं में उनका अनुवाद प्रकाशित होना नितांत आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है। भारत ज्यों ज्यों २१वीं शती की ओर अग्रसर होता जा रहा है, सावरकर की चेतावनियाँ सायब सिद्ध होती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में उनके ग्रंथों का पठन तथा अनुशीलन हमें तथा भावी पीढ़ी को उचित मार्ग दर्शन कर सकता है।

सावरकर साहित्य कालातीत है। साहित्य का सम्बन्ध किसी एक प्रदेश अथवा देश से भी नहीं होता है, वह इन सबसे परे होता है। यही स्थिति सावरकर साहित्य की भी है। अतः सावरकर प्रेमियों को चाहिए कि वे शीघ्रातिशीघ्र उनके साहित्य का भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित करने का यत्न करें। इसे 'सावरकर ग्रंथावलि' के रूप में भी प्रकाशित किया जा सकता है। यही हमारी उनके प्रति श्रद्धाजलि होगी।

## सहायक ग्रन्थ सूची

### हिंदी

स्वातंत्र्य वीर सावरकर—हिंदी अनुवाद—पदमाकर ।  
 भारत के क्रांतिकारी—मनमथनाथ गुप्त ।  
 विनायक दामोदर सावरकर—शिवकुमार गोयल ।  
 भाई परमानंद और उनका युग—धर्मवीर ।  
 युगद्रष्टा भगतसिंह—वीरेन्द्र सधु ।  
 लन्दन में गोली—बनारसी सिंह ।  
 उदित मातण्ड वीर सावरकर लन्दन में—हरीन्द्र श्रीवास्तव ।

### सावरकर साहित्य हिंदी अनुवाद

१८५७ का भारतीय स्वातंत्र्य समर ।  
 मेरा आज्ञा कारावास—शिवकुमार गोयल ।  
 हिंदू पद पादशाही ।  
 हिंदुत्व ।  
 सावरकर विचार-दशन ।  
 क्रान्ति के नभत्र ।  
 हिंदुत्व के पंच प्राण ।  
 भारतीय इतिहास के छ स्वर्णिम पृष्ठ ।

### अंग्रेजी

वीर सावरकर—धनंजय फीर ।  
 लाइफ ओफ वरिस्टर सावरकर—चित्रगुप्त ।  
 गांधी मडर केस—तपन घोष ।  
 द मैं हू किल्ड गांधी—मनोहर मुलगावकर ।

हिस्ट्री ऑफ इंडियन रेवोल्यूशनरी मूवमेंट—मनमथनाथ गुप्त ।

हिस्ट्री ऑफ दी फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया—आर० सी० मजुमदार ।

श्यामजी कृष्ण वर्मा—इन्दुलाल याज्ञिक ।

ग्रह एण्ड तारे—सत्याग्रही ।

इंडियन अनरेस्ट—वेलेन्टाइन चिरोल ।

माइ हायरीज—ब्लण्ट ।

फोर्टी फोर इयर्स ए पब्लिक सर्वेंट—किफेड ।

दि गोल्डन इको—डेविड गारनेट ।

## जीवनियों

हिन्दुत्व के प्रेरक  
 प दीनदयाल उपाध्याय महाप्रस्थान  
 मेवाड का सूर्य महाराणा प्रताप  
 छत्रपति शिवाजी  
 क्रांतिकारी वासुदेव बलवत फडके  
 स्वतन्त्रता सेनानी तात्या टोपे  
 क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद  
 झांसी की रानी लक्ष्मीबाई  
 युगपुरुष वीर सावरकर  
 भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ

तनसुखराम गुप्त  
 तनसुखराम गुप्त  
 सत्यशकुन  
 सत्यशकुन  
 सत्यशकुन  
 सत्यशकुन  
 सत्यशकुन  
 सत्यशकुन  
 अशोक कौशिक  
 डा रामलाल वर्मा

## राजनीतिक, पुस्तकें

गांधी वध और मैं  
 गांधी वध क्यों  
 Gandhiji's Murder & After  
 May it please your Honour  
 हिन्दू समाज और राष्ट्रियता

गोपाल गोडसे  
 गोपाल गोडसे  
 Gopal Godse  
 Nathu Ram Godse  
 भगवतीस्वरूप शास्त्री







